॥ ॐ श्री अर्हन् ॥

श्री तिलोक शताब्दी अभिनंदन ग्रंथ

पंडितरत्न उपाध्याय मुनि श्री आनद ऋषिजी महाराज के
— तत्वावधान में —

—० संपादक ०—

पं. श्री महेन्द्रकुमार जैन, वल्लभनगर (राज)

१९६१

प्रकाशक

सेठ श्री. चन्द्रभान रूपचंद डाकलिया, श्रीरामपूर
— तथा —
श्री रत्न जैन पुस्तकालय, पाथर्डी, जि अहमदनगर

जयति तिलोक

ये सब जीव तिलोक के कहते जयति तिलोक।
जय ऋषिवर कविवर त्रिविध हरे हमारे शोक ॥
सिद्धि-साध्य की ओर थी, काव्य-कला की झोंक।
जीवन-चर्या में रही पचास्रव की रोक ॥

पचास्रव की रोक साधु का मार्ग सुहाया।
पच पदों के वदन का संगीत सुनाया ॥
प्रति-दिन रात समस्त संघ में यश फैलाया।
रत्नत्रयमय शिष्य रत्नऋषि का वर पाया।

उपाध्याय आनंद है निजानंद-आलोक।
ये सब जीव तिलोक के, कहते जयति तिलोक ॥

—सूरजचन्द डाँगी
बड़ी सादड़ी राजस्थान

पार्श्व जयंती २४८७

— मुद्रक —
प. बदरीनारायण शुक्ल श्री सुधर्मा मुद्रणालय
पाथर्डी जि. अहमदनगर

वीर संवत् २४८७ विक्रम सं. २०१७ माघ कृष्ण प्रतिपदा

प्रति ५००

卐 समर्पण 卐



प्रात स्मरणीय कविकुलभूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की दीक्षा-शताब्दी के सुअवसर पर तैयार किया गया प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ उन्ही ऋषिवर के प्रशिष्य शान्तमूर्ति, शिक्षाप्रेमी प्रसिद्धवक्ता पंडितरत्न उपाध्याय मुनि श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के पवित्र कर-कमलो में उनकी । कल्पना के अनुरूप यह ग्रन्थ सादर समर्पित

विनयावनत
चन्द्रभान रूपचन्द डाकलिया
श्रीरामपुर



प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रमुख विषय











परिशिष्ट



दिवंगत महाराज श्री के दिव्य स्मारक



१.–श्री तिलोक जैन विद्यालय व छात्रालय (पाथर्डी)

२ –श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड (पाथर्डी)



॥ श्री ॥

अनुक्रमणिका

श्रद्धांजली प्रकरण

पृष्ठ

कलात्मक कृतियो का विवेचन

— निबध सार —

परिशिष्ट



प्रकाशक की ओर से—

कृतज्ञता सब गुणो का मूल है, यही समझकर पूज्यपाद उपाध्याय श्री आनदऋषिजी म के हृदय में महाराष्ट्र के परम उपकारी प्रात स्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की दीक्षाशताब्दी के अवसर पर अभिनदन समर्पण करने की भावना जागृत हुई और उसी निमित्त से उनकी लोकोत्तर सेवाओ का परिचय सर्वसाधारण को विस्तृत रूप से हो जायगा यह विचार कर अपने सहृदय अतेवासी मुनि श्री मोतीऋषिजी महाराज को सूचित किया कि सारी सामग्री व्यवस्थित करना आवश्यक है। प. मुनि श्री मोतीऋषिजी महाराज साहब ने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करके परिश्रमपूर्वक कविवर्य ऋषिप्रवर की कलाकृतियो को एकत्र किया। दानवीर श्रीमान् चद्रभानजी डाकलिया (श्रीरामपुर) ने जब यह मंगल जानकारी प्राप्त की तब तुरत प्रकाशित करने का भार वहन कर लिया और एक हजार प्रतियो का सारा खर्च संस्था को समर्पण करने का वचन दिया। इसी तरह अभिनदन ग्रंथ के प्रकाशन में अनेक धर्मप्रेमी बधु भगिनियो ने सहायता पहुँचाई है, अतः संस्था उनका आभार मानती है।

दीक्षा शताब्दी समारोह के लिये पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि महाराज की पुण्य स्मृति में स्थापित अनेक लोकोपकारक सस्थाओ के केन्द्र पाथर्डी का स्थान सर्वप्रथम ध्यान में आया। दूसरे स्वर्गारोहण की भूमि अहमदनगर के श्रावको की भी इच्छा थी कि यह समारोह अपने प्रागण में किया जाय परंतु आखिर विदुषी महासती श्री सुमति कुवरजी महाराज की सुमति मुख्यतया सफल हुई और घोडनदी श्रीसघ को यह गौरव प्राप्त हुआ। क्यो कि पूज्यपाद श्री तिलोक-ऋषिजी महाराज ने इसी नगरी मे सर्वप्रथम पदार्पण के पश्चात् चार भागवती दीक्षा ने अपना तीर्थ-सेवा का लोकोत्तर कार्य प्रारभ किया था।

आज श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी गौरव का अनुभव कर रहा है कि यह अनुपम ग्रथ प्रकाशित करने का उसे श्रेय प्राप्त हुआ है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के प्रति वर्तमान आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज, उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज, उपाध्याय मडल, मंत्री मुनि मडल आदि अनेक सत सतियो और विद्वान् लेखको ने श्रद्धाजलियां तथा अपनी विचार विभूतियाँ समर्पित की है। साहित्य तथा दर्शन शास्त्रके उत्कृष्ट विद्वान् प श्री महेन्द्रकुमारजी जैन न्यायाचार्य वल्लभनगरने परिश्रम पूर्वक इस ग्रंथ का प्रशसनीय सपादन किया है। पडितजी का प्रस्तुत अभिनदन ग्रंथ के सपादन के अतिरिक्त इसके अधिकतर भाग के लेखन तथा प्रूफ आदि देखने में बहुत बडा हाथ रहा है। जिनके लिये हम सब आभारी है।

अत में हम धार्मिक परीक्षा बोर्ड के परीक्षा मत्री और सुधर्मा मद्रणालय के मनजर प बदरीनारायणजी शुक्ल तथा प्रेस के अन्य सभी कर्मचारियों के परिश्रम को भी कसे भूल सकते है जिन्होंने अत्यन्त अल्प समय में इतन बडे ग्रथ को मद्रित करके ठीक अवसर पर उपस्थित कर दिया। शीघ्रता के कारण जो त्रुटियाँ रह गई हों उनके लिए हम क्षमाप्रार्थी ह।

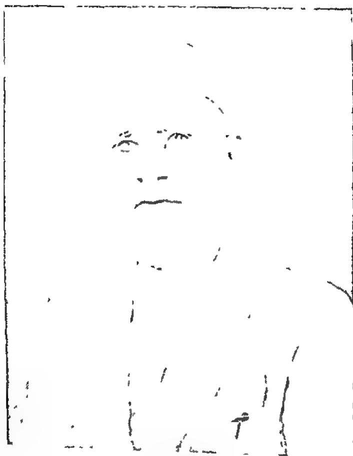
पाठक वद से नम्र निवेदन ह कि इस ग्रथ में कोई त्रुटि दृष्टि गोचर होवे तो हम सूचित करनपर उनका दूसरी आवर्ति में सशोधन हो सकेगा।

यह ग्रथ हमें शासन के प्रति सब प्रकार के कर्तव्यों की प्ररणा देन म यत्किंचित भी सहायक सिद्ध हुआ तो हम अपना परिश्रम सार्थक समझेंग।

नम्र
हीरालाल गांधी
अध्यक्ष—श्री रत्न जन पुस्तकालय
पाथर्डी अहमदनगर



प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशक



दानवीर सेठ

श्री. चंद्रभानजी रुपचंदजी डाकलिया

श्रीरामपुर

कमल-कांत प्रिं प्रेस, मुंबई ४

श्री चंद्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया का अल्प परिचय

श्रीरामपुरनिवासी श्री चन्द्रभानजी का जन्म इसवीसन् १८९६ में पूना जिला के बोपगाव में हुआ। इनके माताजी का नाम भागीरथीजी और पिताजी का नाम रूपचंदजी था, उन्होंने केडगावनिवासी महाभाग गुरु नारायण महाराज से शिक्षण प्राप्त किया। सन १९०७ में जब स्वर्गस्थ मुनि श्री रत्नऋषिजी महाराज पूना में अपना चातुर्मास समाप्त करने के पश्चात् अनेक छोटे-छोटे देहातों में विहार करते हुये भिवरी पधारे तब पूरे एक मास तक आपश्रीद्वारा आस-पास के अनेक श्रावकों को जैनधर्म का सच्चा बोध प्राप्त हुआ। गुरुदेव श्री रत्नऋषिजी महाराज के इन महान् उपकारों से उपकृत हो उन्होंने आपश्री को अपना गुरु मान लिया। पूज्य गुरु महाराज ने इन्हें धार्मिक शिक्षा देते समय जो प्रेमभाव दिखाया उसकी स्मृति इन्हें बार-बार आया करती है। श्री रत्नऋषिजी महाराज के पट्टशिष्य उपाध्याय मुनि श्री आनंदऋषिजी महाराज आज महाराष्ट्र में जैन तत्त्वज्ञान का प्रचार करके श्रावक संघ के ऊपर जो महान् उपकार कर रहे हैं, उन्हें श्री डाकलियाजी धार्मिक-दृष्टि से अपने धर्मबंधु मानते हैं।

श्री डाकलियाजी अपने ग्राम में सन् १९१८ तक पितृव्यवसाय वाणिज्य-व्यापार करते रहे। इसी वर्ष जब महाराष्ट्र में बहुत बड़ा अकाल पड़ा तब करमाळा, इंदापुर आदि बाजार में केवल चार आने में कसाई लोग गौओंको खरेदी कर आस-पास के नाले में उनकी कत्तल करके उनकी चमडी उस वक्त तीन रुपये में बेचते थे। यह मानवी क्रूरता देखकर उन्होंने उन बाजारों में से करीब ७००-८०० गौओंकी खरेदी की उनम से उन्होंने कुछ गौयें पंढरपुर पांजरापोळ में पहुँचाई और शेष गौओं का स्वस्थान पर ही पोषण किया। वर्षाऋतु का चारा पैदा होने के वक्त कुछ गौयें किसान लोगों को मुफ्त में दे दी और कुछ गौओं का वंश विस्तार अभीतक उनके पास मौजूद है। उसी समय आपके परमस्नेही बम्बईनिवासी श्री भीमजी रणजी सॉलिसिटरने यह दुःखद कहानी अवलोकन करके अपनी तरफ से करीब ढाई-तीन हजार गौओं को उस स्थल से छुडवाकर बम्बई के पास पवईस्टेट के पहाड में उनकी व्यवस्था की।

मनुष्यनिर्मित बंगाल के भयकर अकाल के समय अनेक मनुष्यों को मरते देख ये स्वयं वहाँ गये और वहाँ पर स्वर्गस्थ श्यामाप्रसाद मुकर्जी और मारवाडी रिलिफ सोसायटी के सहकार से मिदिनापुर जिले में छात्रालय के पाँच केन्द्र खोले। छात्रालय का वह कार्य स्वर्गस्थ ठक्करबापा के नेतृत्व में कई दिनो तक चलता रहा।

सन् १९२१ में अहमदनगर जिले के बेलापुर को जब प्रवरा कॅनॉल से खेती के लिए पानी मिलने की सुभीता हुई तब से बेलापुर में ही आकर आप बस गये। और उसी स्थान को अपना कर खेती का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

शिक्षण क्षेत्र में भी आप महाराष्ट्र में चलनेवाली अनेक जन शिक्षण संस्थाओं का तन मन-धन से सेवा करते रहे है। महाराष्ट्र में श्रावकसंघद्वारा जो अनेक जगह शिक्षण संस्थायें खोलने का कार्य चल रहा है उसमें उनकी यह वृत्ति रहती है, कि ये शिक्षण संस्थाएं अपने परिश्रम द्वारा स्वावलंबी बने। संस्था के लिए चन्दा एकत्रित करने के लिए विद्यार्थियों को पर्युषणपर्व में याचक रूप से जगह-जगह भेजना उन्हे वीरता के बदले याचक बनाया जाना यह उन्हे पसंद नहीं। इसलिए किसी ऐसी संस्था का होना आवश्यक है जहां विद्यार्थी एवं शिक्षक स्वयं परिश्रम कर संस्था को स्वावलंबी बना सकें और विद्यार्थियों को पेटके लिए जगह-जगह जाकर याचक नहीं बनना पडे।

इसी दृष्टि से उन्होंने एक स्कीम बनाकर चिंचवड के श्री फत्तेचंद जैन विद्यालय को चिंचवड के नजदीक नदी किनारे ६५ एकर जमीन खरेदी कर उनमें जमीन ठीक बनाने को कुछ खर्चा करके पानी आदि का बन्दोबस्त करके विद्यार्थियों का कुछ समय खेती शिक्षण में लेकर उनके द्वारा पैदा होनेवाले उत्पादन से १०० विद्यार्थियों का शिक्षण और १० विद्यार्थियों का भरण-पोषण तीन वर्ष में योजनापूर्वक बन और विद्यार्थी तथा संस्था स्वावलंबी बने इस हेतु से आपने इस काम में बहुत बडा भाग लिया और इसका ही रूपांतर खेती के महा विद्यालय में बने यह उनकी मनीषा थी। लेकिन सहयोग के अभाव से वे आगे बढ न सके।

श्री डाकलियाजी लगभग ४० वर्ष से खेती का काम अच्छी तरह से कर रहे है। इसलिये वे महाराष्ट्र के खेती व्यवसाय से अच्छी तरह परिचित है। सन १९५६ में अपने देशविदेश के १२५ इक्षुतज्ञों के साथ भारत के सभी इक्षु क्षेत्रों में परिभ्रमण करके बहुत ज्ञान प्राप्त किया है। आप डेक्कन नॅशनल शुगर केन टेक्नालॉजिकल के सदस्य तथा ऑल इंडिया केन ग्रोवर फेडरेशन के बंबई प्रांत के अध्यक्ष रह चुके है।

श्री डाकलियाजीने अपनी खेती में यहां के भूमि योग्य बैलों की शक्ति से चलनेवाले ढंग ढंग के अनेक औजारोंको अपने स्वानुभव से बनवा कर उनके द्वारा अपार संपत्ति खेती से पैदा की है इसलिए वे हमेशा कहते है। उत्तम खेती मध्यम व्यापार, कनिष्ट नौकरी। यह बात उन्होंने प्रयोगसिद्ध करके बताई है। शुगर इंडस्ट्रीज में भी आप दक्ष है। इसलिये कुछ समयतक आप श्री शिवाजी सहकारी साखर कारखाना राहुरी के डायरेक्टर पद पर भी रहे थे।

जैन धार्मिक संस्थाओं को आप सदैव सहायता करते रहे है। पाथर्डी आदिमें चलनेवाली अनेक धार्मिक संस्थाओं को भी आपने बहुत आर्थिक सहायता पहुंचाई है। ऐसी परिस्थिति में इन्होंने प्रस्तुत अभिनंदन ग्रंथ के प्रथम एक हजार प्रतियों के प्रकाशन का कार्य अपने जिम्मे लेकर समाजकी थोडी बहुत सेवा करने की संधि प्राप्त की है। इस कार्य को डाकलियाजी अपना अहोभाग्य समझते है।

सम्पादकीय—

अपने ग्राम वल्लभनगर में मेरे मकान के निकट ही जैन धर्म स्थानक होने से मेरा यह सौभाग्य रहा है कि मेरे कर्ण-कुहरों को शैशवावस्था से ही सायंकालीन प्रतिक्रमण के समय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की श्रुतिमधुर गेयप्रधान पांच पदों की वंदना पवित्र करती रही है। उनकी इस वंदना से आकर्षित हो मैंने आठ नौ वर्ष की अवस्था में ही स्वयं प्रेरणा से सामायिक प्रतिक्रमण आदि आवश्यक सूत्र कण्ठस्थ किये। कुछ अधिक समझ में आने पर बाल्यावस्था में ही मेरे मन में यह जिज्ञासा हुई कि इस भाव-वंदना में सबको आकर्षित करनेवाले यह 'तिलोक रिख' कौन है? अध्ययनानन्तर समाज से दूर विशाल क्षेत्र में विविध विद्याविषयक प्रवृत्तियों में रत रहने के कारण अपनी वह जिज्ञासा मस्तिष्क में संस्कार रूप से स्थित थी। अत में इस वर्ष जुलाई महीने के मध्य में उपाध्याय मुनि श्री आनंदऋषिजी महाराज के दर्शन होनेपर उन्होंने मेरे सामने श्री तिलोकऋषिजी महाराज का जीवन-चरित्र लिखने का प्रस्ताव रखा। उस समय आपने प्रस्तुत अभिनंदन ग्रंथ की चर्चा नहीं की थी। इस महा मुनि के प्रति मेरी बचपन से श्रद्धा थी। तत्काल आपके इस प्रस्तावानुसार कार्य करना प्रारंभ कर दिया। मैं अपनी योजनानुसार स्व० रत्नऋषिजी महाराज के परिशिष्टवर्ती जीवन चरित्र की तरह इन 'ऋषि वरेण्य' का आधुनिक शैली में जीवन चरित्र लिखना चाहता था, किंतु बहुत ऊहापोह के पश्चात् अभिनंदन ग्रन्थ वर्ती रूप ही निश्चित किया गया। इसे भी मैं एक विधि का संकेत ही समझता हूँ, क्योंकि आज से दस साल पहले मैसूरी में महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन के साथ कार्य करते समय उनकी प्रेरणा से 'बुद्धचर्या' की तरह 'महावीर चर्या' लिखने का मैंने निश्चय किया था। वह कार्य कुछ प्रारंभ भी कर दिया था, पर आवश्यक आगम ग्रंथों के अभाव के कारण उस आरब्ध कार्य को वहीं स्थगित करना पड़ा। न मालूम वह कार्य कब संपन्न होगा, पर उन श्रमण भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट पवित्र संयम मार्ग को ग्रहण कर अपने जीवन को पवित्र बनानेवाले इस 'ऋषि पुंगव' की चर्या लिखकर धन्यता का अनुभव करता हूँ। पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज का यह जीवन-चरित्र, जीवन चरित्र नहीं वरन् 'श्री तिलोक चर्या' है। आपकी इस चर्या में उनकी दैनंदिनी के अनुसार प्रत्येक वर्ष का विशिष्ट कार्यविवरण है। मालव प्रांत से विहार कर विन्ध्य एवं सातपुड़ा पर्वत के बीहड़ घाटों को पार करते हुए जब आप महाराष्ट्र में पधारे उस समय रास्ते में पड़नेवाली नर्मदा और ताप्ती नदियों का इसमें हूबहू वर्णन है। नर्मदा नदी के पुल पर लगी हुई

पाम्यो की सख्या का उल्लेख भी इसमें किया गया ह । रास्ते में पडनेवाले और भी अनक छोट मोट नदी-नालों के प्राकृतिक सादय का भी इसमें दशन होगा। अपन विहार काल में रास्ते में आपन किस ग्राम से किस ग्राम की ओर पदापण किया प्रत्यक गाँव के बीच में कितनी दूरी थी सांवत्सरिक और फाल्गुनी चातु मासा के समय आपका कोनसा लोच हुआ, किस स्थान पर रहकर आपने किस ग्रथ की रचना या प्रतिलिपि की आदि जीवन से सबध रखने वाली छोटी छोटी बातो का इसमें वणन किया गया ह । इस तिलोक चर्या' के आधार से कोई भी जिज्ञासु अपने जीवन में अप्रमत्त वत्ति से कार्य करता हुआ स्पहणीय काय कर सकता ह । चरित्र में दिय हुए नदी नालों एव ग्रामों के आधार से उनकी पद यात्रा का अच्छा नकशा तयार कर जनता तक पहुचाया जा सकता है, जिससे उनकी यह श्रम-यात्रा उनकी कृतियों के साथ सदव अमर रहेगी ।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के इस जीवन-चरित्र को मने केवल अपनी भाषा एव विचारो द्वारा अलकृत किया ह परन्तु इसकी सामग्री सकलन का सारा श्रय ऋषि-सप्रदाय के कमठ मुनि श्री मोतीऋषिजी महाराज को ह । श्री मोतीऋषिजी म० द्वारा अनक वर्षों के परिश्रम के फलस्वरूप एकत्रित की हुई सामग्री के आधार से म एक महीने से कम समय में ही यह जीवन चरित्र तयार कर सका हू ।

पहले मन उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज को केवल एक महीने तक ही काय करन का वचन दिया था पर इस एक महीन की अल्प अवधि में ही म आपके गुणो से अत्यत मुग्ध हुआ । आपका भी मुझ पर विश्वास बढता गया । अतएव आपश्री के आग्रह से आपके ही तत्त्वावधान में प्रस्तुत अभिनदन ग्रथ के सपादन का गुरुतर भार अपने सिर पर लिया । काय का सचालन उपा० श्री के कुशल नतत्व में ही होता रहा श्री उपाध्यायजी महाराज के प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व एव सद्गत पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज क प्रति श्रद्धा से प्रेरित होकर समस्त श्रीसघ ने विपुल परिमाण म इस स्व० ऋषि के प्रति प्रस्तुत अभि नदन ग्रथ के लिए अपनी श्रद्धाजलियाँ भजी । हर्ष ह कि हमें चतुर्विध श्रीसघ से ५५ श्रद्धाजलियाँ प्राप्त हुई हैं । श्रद्धाजलियो के रूप में आचाय श्री से लेकर अनक श्रद्धाशील व्यक्तियो ने उन दिवगत ऋषिवर के प्रति अपने श्रद्धा के फूल चढाय ह । इन बिखरी हुई श्रद्धाजलियो में महाराजश्री के सपूण जीवन प्रवाह के उज्ज्वल रूप का दशन होता ह । भावप्रवणता से लिखी होन के कारण य सब श्रद्धाजलियाँ हृदय को छूती हैं ।

श्रद्धांजलियाँ हमें श्रद्धांजली–प्रकरण समाप्त होने के अंतिम क्षण तक प्राप्त होती रही, इसलिए हम उनमें से कई श्रद्धांजलियो को उचित स्थान पर नहीं रख पाये है। दूसरी अनेक श्रद्धांजलियो को समुचित स्थान पर नही रखने का मुझे उतना दुःख नही जितना कि प. मुनि श्री फूलचंदजी श्रमण, (पंजाब) की 'ऋषि तिलोक' का। आपकी यह श्रद्धांजली हमें २७–१२–६० को प्राप्त हुई। इसके पहले १५२ पृष्ठ तक का मेटर छप चुका था।

प्रस्तुत ग्रंथ का बहुत कुछ मुद्रण होने के बाद हमें शताब्दी-उत्सव के समय और तीन श्रद्धांजलियाँ प्राप्त हुई हैं। वे अत्यन्त उपयोगी होने से उन्हे हम पूज्यपादश्रीकी प्राकृतिक प्रतिभा के बाद दे रहे है।

श्रद्धांजली प्रकरण के बाद पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० की कलात्मक कृतियो का एक क्रमिक इतिहास है। पूज्यपाद श्री के स्वर्गवास के समय परमोपकारी स्व० श्री रत्नऋषिजी म० की अवस्था केवल १६ साल की थी। उन्हे दीक्षा लिये केवल चार वर्ष ही हुए थे। अतएव अपने गुरुदेव की सब कृतियाँ उनके पास नही रहना सहज है पर शिक्षा के क्षेत्र मे नवीन उत्क्रांति करने वाले स्व० रत्नऋषिजी महाराज को शास्त्राभ्यास की प्रेरणा देकर मालव आदि प्रान्त का राह दिखाने वाली पूज्यपाद श्री की सहोदरा धर्मभगिनी महासतीजी श्री हीराकुंवरजी महाराज ने उन सब कृतिओ को अपने पास सुरक्षित रखा। उनके पश्चात् अपने उज्ज्वल सयमी जीवन से अनेक बहनो को इस मार्ग की ओर प्रवृत्त करने वाली इन्ही महासतीजी की शिष्याएँ महासती श्री रामकुंवरजी म० विदुषी महासती श्री शान्तिकुंवरजी महाराज तथा महासती श्री भूराजी महाराज की विदुषी शिष्या श्री राजकुंवरजी म० पंडिता महासतीजी श्री उज्ज्वलकुंवरजी महाराज श्री फूलकुंवरजी महाराज तथा तपस्विनी महासती श्री नन्दूजी की शिष्या श्री सिरेकुंवरजी महाराज आदि अनेक महासतियो से ऐतिहासिक दृष्टि से सदैव अमर रहने वाली ये कृतियाँ पूज्यपाद उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज को प्राप्त हुई है। इनमें से कुछ कृतियाँ तो ऐसी है जो कि पूज्यपाद श्री के सान्निध्य में रहने वाले सत मुनियो के शिष्य परिवार से परंपरया प्राप्त हुई हैं। विवेचित कृतियाँ किस सन् में किस स्थान पर किस दिन लिखी गई, इसका पूज्यपाद श्री ने अपनी कृतियो में उल्लेख किया है।

उदाहरणार्थ—

समुद्रबध एवं नागपाशबंध काव्य संवत् १९२४ वैशाख वदि ३० लि० तिलोक। यह कृति आपश्री ने अपनी २० वर्ष की अवस्था में लिखी थी।

दशवकालिक सूत्र, पुच्छिसुण और २५६ इमला का थोकड़ा—संवत १९२८ वर्षे चैत्र शुक्ल ४ शनिवार। चित्रालंकार काव्य-संवत् १९२८ भाद्रपद शुक्ल पंचमी। ज्योतिष चक्र संवत १९२८ आश्विन कृष्ण ६ भमुवासरे लिपिकृत तिलोकरिख सहर साहजापुरे। पन्नवणा पद ११—संवत १९२८ पौष सुद २ शुक्रवासरे लिपिकृत तिलोकरिख सहर साहजापुर।

उपर्युक्त इन चारों कृतियों की रचना के समय पूज्यपाद श्री की केवल २४ वर्ष की अवस्था थी।

इस प्रकार पूज्यपाद श्री के वय क्रम से समस्त कलाकृतियाँ दी गई हैं। जब आपश्री की अवस्था केवल २० साल की थी। दीक्षा लिए केवल दशवर्ष ही हुए थे। उस समय से आपने पद्य साहित्य तथा कलात्मक कृतियों के निर्माण की ओर ध्यान दिया। इस के पूर्व भी आप अनेक इस प्रकार की रचनाएँ कर चुके होंगे। पर मालूम होता है वे प्रारम्भिक होने से आपने उन्हें ऐसे ही रख दी होगी। निरंतर अभ्यास करते करते इस प्रकार की रचना करने में जब आप सिद्धहस्त हो गये, उस समय भी केवल आप की बीस साल की अवस्था थी। प्रस्तुत ग्रंथ में जिन १९ कलात्मक कृतियों का विवेचन किया गया है उनसे आप के निरंतर विकासशील जीवन का पता चलता है। अशोकवृक्ष ज्ञानकुंजर एवं शीलरथ के निर्माण काल में तो आप श्री पूर्ण सिद्ध हस्त हो गये थे। अपने जीवन काल के अंतिम वर्षों में आपश्री ने क्रमशः अहमदनगर घोडनदी और वांबोरी में संवत १९३६ ३७ और ३८ में अपनी बत्तीस तंतीस और चौतीस वर्ष की आयु में इन तीनों कृतियों की रचना की। ये रचनाएँ कितनी नयनाभिराम आकर्षक एवं ज्ञान से परिपूर्ण है? यह तो इन के दर्शन मात्र से सहज ही अनुभव हो सकता है।

कलाकृतियों के विवेचन के बाद पूज्यपाद श्री की चित्रकारी के हमें प्राप्त कुछ उत्कृष्ट नमूने दिये गये है। वे है —

(१) नृत्याकार मयूर की आकृति जगत में दस प्राणी लेखन एवं विचारात्मक शैली का उत्कृष्ट नमूना भमिपनका और अष्टमंगल। इन सबके द्वारा पूज्यपाद श्री के जैन परंपरा के अनुसार निरंतर गुणश्रेणी की ओर ऊपर प्रयाण करनेवाले साधक जीवन का अच्छी तरह पता चल सकता है।

कलाकृतियों के विवेचन के बाद निबन्ध विभाग प्रारंभ होता है। इस विभाग में भी उपाध्यायश्रीजी के महान व्यक्तित्व से हमें आचार्यश्री से लेकर अनेक संत सतियों एवं विद्वानों के उत्कृष्ट निबन्ध प्राप्त हुए है। सब लेख विद्वत्ता से परिपूर्ण है। वाङ्मय की दृष्टि से उनमें से अनेक का शाश्वत कोटिके साहित्य में

नजर आता है, उनके कारण प्रस्तुत ग्रथ की बहुत अधिक शोभा बढ़ गई है। साधना के उपासक पूज्य श्री आत्मारामजी म० ने अपनी अस्वस्थावस्था में भी प्रस्तुत ग्रन्थ के लिए ध्यान और योग सबन्धी अपना अध्यात्मप्रधान लेख भेजकर इस दिशा में आगे बढ़नेवाले प्राणियो के लिए पाथेय प्रदान किया है।

सबके अंत में परिशिष्ट रूप से श्री रत्नऋषिजी म० का सक्षिप्त जीवन-वृत्त, श्री तिलोक जैन विद्यालय पाथर्डी और श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी का इतिवृत्त दिया गया है। पूज्यपाद श्री के स्वर्गवास के पश्चात् उनके महान् उपकारो से कृतज्ञ होकर श्रावकसघ ने ये सब संस्थाएँ स्थापित की है। इसके पीछे परमोपकारी श्री रत्नऋषिजी म० तथा उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी म० की सतत प्रेरणा तो है ही, इसलिए प्रारभ में उचित समझ-कर पूज्यपादश्री के पट्टशिष्य स्व श्री रत्नऋषिजी म० की भी सक्षिप्त जीवनी दे दी गई है।

दिनाक २–१–६१ माघ कृष्ण प्रतिपद को घोडनदी मे इन्ही ऋषिवर्य का जो दीक्षा शताब्दी उत्सव मनाया गया उस समय सारे देश की जनता ने इस महापुरुष के ज्ञान से आलोकित होकर साप्रदायिक आदि भेद से परे श्री तिलोक जैन पारमार्थिक सस्था की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य व्यापक एव महान् है, इसके द्वारा भविष्य में शिक्षा एव आजीविका की दृष्टि से अनेक बालक-बालि-काओ एव गृहस्थो की सहायता करना, अध्ययनशील होने पर भी केवल द्रव्य के अभाव के कारण आगे नही बढ़नेवाले छात्र–छात्राओ को छात्रवृत्ति देना, इसी प्रकार अपनी हीन स्थिति के कारण अत्यन्त कष्टप्रद जीवन व्यतीत करनेवाले सद्‌गृहस्थो के लिए भी योग्य मार्ग निकालना। इत्यादि प्रकार से शैक्षणिक, धार्मिक एव सामाजिक आदि सब दृष्टिओ से समाज को उन्नत बनाने का प्रयत्न करना है। इसके लिए सारे देश की ओर आशा की दृष्टि से देखना सहज है। यह सस्था अकेली घोडनदी की नही वरन् सारे देश की है। जिस पवित्र पुरुष के नाम से उपरिनिर्दिष्ट महान् उद्देश्यो से परिपूर्ण इस सस्था की स्थापना की गई, उन उद्देश्यो की पूर्ति करने में संचालक वर्ग सदैव प्रयत्नशील एवं जागरूक रहेगे ऐसी हम आशा रखते है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के संबध में 'तिलोक चर्या' एवं 'विवेचन भाग' में जगह-जगह मैने अपने विचार व्यक्त किये है। वे स्थानकवासी समाज में अपने समय के एक युग-प्रवर्तक महामुनि थे। उस समय सारा राष्ट्र एक अद्‌भुत सक्रमण युग से गुजर रहा था। अनेक महान् विभूतियाँ अपने अध्या-त्मपरक युगजीवन द्वारा राष्ट्र को आध्यात्मिकता का सदेश देकर भारतीय जनता

को कर्म–योग की ओर प्रवत्ति कर रही थी। आपके जन्म लेने के कुछ पूर्व ही श्री रामकृष्ण परमहंस अपनी जाज्वल्यमान सब धर्मों की जीवित साधना द्वारा भारतीय समन्वयात्मक भावना का उत्कृष्ट रूप जनता के सामने रख चुके थे। राजयोगी विवेकानन्द ने भी अपने अपूर्व व्यक्तित्व से भारत की प्रतिष्ठा बढाई थी। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ एवं राष्ट्रपिता म. गांधी तो पूज्यपाद श्री की जीवितावस्था में पैदा हुए। स्थानकवासी समाज में भी उस समय पूज्य श्री रत्नराज जी, ज्ञानचन्द्रजी, उदयचन्द्रजी महाराज आदि अनेक विख्यात पूज्यगण धर्म का प्रचार कर रहे थे। प्रतीत होता है–पूर्वकालीन अपनी अधूरी साधना के पूर्ण करने के लिएही आप इस धर्मभूमि आर्यावर्त में अवतीर्ण हुए। इसी लिए बाल्यावस्था में ही आप भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट साधना पथ के पथिक बने। जीवन पर्यन्त आपने अप्रमत्त वत्ति से रह सातत्य योग की साधना की। जैन परंपरा के अनुसार आप सतत विकास करनेवाले अप्रमत्त संयत मुनि थे। तीर्थ स्वरूप समस्त श्री संघ से क्षमा मांग कर इस स्व. अप्रमत्त मुनि के बारे में नम्र शब्दों में यही कहना चाहता हूं कि वे संत या मुनि प्रथम है कवि बाद में। संत के उत्कृष्ट स्वरूप ने ही उन्हें कवित्व प्रदान किया है कवि भी वे ऐसे वैसे नहीं स्वयंभू है। उनका काव्य अयत्न–साध्य है। संत के उच्च विरुद से अलंकृत होने के कारण उनका काव्य आज स्था॰ समाज की जन-जन की जिह्वा पर शोभित है कोरे कवि होते तो उनके पद केवल ग्रंथों की ही शोभा बढाते कविकुलभूषण कविकुलकमल दिवाकर कविवर्य आदि की अपेक्षा उनका महामहिम संत पद ही अपनी महत्ता के लिए पर्याप्त है। कवित्व पद तो उन्हें अपनी निर्मल साधना के कारण फलरूप में प्राप्त हुआ है। भारतीय परंपरा में किसी भी महान सन्त आचार्य उपाध्याय या मुनि के पहले आज तक सर्व साधारण की जिह्वापर अप्रचलित विशेषणों का प्रयोग कर उन्हें जन समाज से पृथक नहीं किया गया है। वे अपने छोटे से सीधे सादे नाम से जितने निकट पहुंच सकते है उतने अलंकारों से आच्छादित अपने भारी भरकम रूप में नहीं। उनके नाम के साथ जुडा हुआ ऋषि शब्द ही उनकी महत्ता का उच्च मापदण्ड है ऋषि आचार्य उपाध्याय एवं मुनि से भी महान् होते है। कवि पंडित आदि की तो उनके सामने कोई गणना नहीं। 'ऋषिर्दर्शनात्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार ऋषि अन्तर्मुख होकर अन्य व्यक्तिओं (कवि)की पहुंच के बाहर नवीन ज्ञान का दर्शन करते है वे द्रष्टा होते है। हमारे श्री तिलोक ऋषिजी महाराज ऐसे ही ऋषि थे। उन्होंने अपने मानस सागर में छिपे हुए अनेक ज्ञान रूपी रत्नों का अपनी अन्तर्दृष्टि से दर्शन कर मुक्त हस्त से साहित्य के रूप में समाज के सामने रख है।

अध्यात्ममूलक इस जीवन-स्रोत के कारण ही आपकी स्वतत्र सृजन, लेखन चित्रकला, विहार सर्वत्र समान दृष्टि रही है। कही पर भी आपका वह मूल ध्येय खडित या धूमिल नही हुआ है। कलाकृतियो में तो जगह-जगह आपके इस सत-रूप का दर्शन होता है। काव्य-सृजन में भी आप की यह दृष्टि ओझल नही हुई है। लोक त्योहारो में प्रसिद्ध दशहरा आदि का आपश्री ने आध्यात्मिक दशहरे के रूप मे वर्णन किया है। विहार करते हुए रास्ते में जो गांव मिलते, उन के नामो पर आपने अध्यात्मप्रधान अनेक कविताओ की रचना की है। एक सच्चे योगी की तरह सातत्य योग के कारण ही आपने साधना एव कला के विविध क्षेत्रो में आश्चर्यजनक विकास किया है। अप्रमत्त मुनि होने के कारण ही आपने अपने जीवन के मध्यम काल में वह कार्य कर दिखाया, जो लबी आयु प्राप्त करने पर भी अनेक व्यक्तियो द्वारा अशक्य है। दिवगत महाराजश्री की इस अलौकिक प्रतिभा की परिचायक उनकी जन्म एव दीक्षा कुडलियाँ है, जिनके द्वारा पहले ही आभास हो गया था कि वे भविष्य में समाज को नव चेतना देने-वाले मुनि-श्रेष्ठ होगे। उन्हे हम सपादकीय के बाद पूज्यपादश्री की प्राकृतिक प्रतिभा, शीर्षक से दे रहे है।

सतहत्तर वर्ष पूर्व उस श्रेष्ठ आत्मा के स्वर्गवास होने पर भी वे अपने स्वरूप में अमर है। जो विचार उनके हृदय में थे, जिनका प्रचार देह के बधन के कारण मर्यादित था, वे आज उनके देहविहीन होने के कारण हमसब के हृदय में प्रवेश कर रहे हैं। उस ऋषि-वरेण्य के प्रति हम सब की सच्ची श्रद्धाजली यही है कि हम उच्च और नीच के दुष्ट भेद को दूर कर अभेद की ओर प्रयाण करें। सत्य और अहिसा रूपी मूल व्रतो का जीवन में चिंतनपूर्वक निरंतर विकास करे। साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाएँ अपने श्रेष्ठ पद के अनुसार जीवन में प्रत्येक दृष्टि से शुद्धि की ओर प्रयाण करे।

इस अभिनदन ग्रंथ के मूल प्रेरक उपाध्याय मुनि श्री आनदऋषिजी महाराज है। आपके मार्गदर्शन में ही लेखन, सपादन आदि सब कार्य हुआ है। अभिनदन ग्रथ के लिए आई हुई श्रद्धाजलियो एव लेखो में कोई ऐसा नही, जो आपकी दृष्टि से नही गुजरा हो। इतना ही नही इस स्थविरावस्था में भी आपने अभिनदन ग्रथ के बहुत बडे भाग की अपने सुदर अक्षरो में प्रेसकापी की है। प्रारभ से अत तक आपश्री इस ग्रथ के लिए इतने अधिक उलझे रहे कि इच्छा होने पर भी प्रस्तुत अभिनदन ग्रंथ के लिए श्रद्धाजली तक नही दे पाये है। दीक्षा शताब्दी के इस पवित्र आयोजन के समय उपाध्याय श्री ही सघ के बीच अपने दादा गुरु के प्रतीक के रूप में उपस्थित है। समस्त श्रीसघ द्वारा अर्पित

को कर्म-योग की ओर प्रवृत्ति कर रही थी। आपके जन्म लेने के कुछ पूर्व ही श्री रामकृष्ण परमहंस अपनी जाज्वल्यमान सब धर्मों की जीवित साधना द्वारा भारतीय धर्म-समन्वयात्मक भावना का उत्कृष्ट रूप जनता के सामने रख चुके थे। राजयोगी विवेकानन्द ने भी अपने अपूर्व व्यक्तित्व से भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ एवं राष्ट्रपिता म० गांधी तो पूज्यपाद श्री की जीवितावस्था में पैदा हुए। स्थानकवासी समाज में भी उस समय पूज्य श्री रत्नराज जी, ज्ञानचन्द्रजी, उदयचन्द्रजी महाराज आदि अनेक विख्यात पूज्यगण धर्म का प्रचार कर रहे थे। प्रतीत होता है-पूर्वकालीन अपनी अधूरी साधना के पूर्ण करने के लिए ही आप इस धर्मभूमि आर्यावर्त में अवतीर्ण हुए। इसी लिए बाल्यावस्था में ही आप भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट साधना पथ के पथिक बन। जीवन पर्यन्त आपने अप्रमत्त वृत्ति से रह सातत्य योग की साधना की। जैन परंपरा के अनुसार आप सतत विकास करनेवाले अप्रमत्त संयत मुनि थे। शील स्वरूप समाज की श्रद्धा से क्षमा माँग कर इस स्व० अप्रमत्त मुनि के बारे में मैं शब्दों में यही कहना चाहता हूं कि वे संत या मुनि प्रथम हैं कवि बाद में। संत के उत्कृष्ट स्वरूप ने ही उन्हें कवित्व प्रदान किया है कवि भी वे ऐसे वैसे नहीं स्वयंभू हैं। उनका काव्य अयत्न-साध्य है। संत के उच्च विरुद से अलंकृत होने के कारण उनका काव्य आज स्था० समाज की जन-जन की जिह्वा पर शोभित है कोरे कवि होते तो उनके पद केवल ग्रंथों की ही शोभा बढ़ाते कविकुलभूषण कविकुलकमल दिवाकर कविवर्य आदि की अपेक्षा उनका महामहिम संत पद ही अपनी महत्ता के लिए पर्याप्त है। कवित्व पद तो उन्हें अपनी निर्मल साधना के कारण बलात् ही प्राप्त हुआ है। भारतीय परंपरा में किसी भी महान् सन्त आचार्य उपाध्याय या मुनि के पहले आज तक सर्व साधारण की जिह्वापर अप्रचलित विशेषणों का प्रयोग कर उन्हें जन-समाज से पृथक नहीं किया गया है। वे अपने छोटे-से सीधे सादे नाम से जितने निकट पहुंच सकते हैं उतने अलंकारों से आच्छादित अपने भारी भरकम रूप में नहीं। उनके नाम के साथ जुड़ा हुआ ऋषि शब्द ही उनकी महत्ता का उच्च मापदण्ड है ऋषि आचार्य उपाध्याय एवं मुनि से भी महान् होते हैं। कवि पण्डित आदि की तो उनके सामने कोई गणना नहीं। 'ऋषिदर्शनात्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार ऋषि अन्त-मुख होकर अन्य व्यक्तियों (कवि)की पहुंच के बाहर नवीन ज्ञान का दर्शन करते हैं वे द्रष्टा होते हैं। हमारे श्री तिलोक ऋषिजी महाराज ऐसे ही ऋषि थे। उन्होंने अपने मानस सागर में छिपे हुए अनेक ज्ञान रूपी रत्नों का अपनी अन्तर्दृष्टि से दर्शन कर मुक्त हस्त से साहित्य के रूप में समाज के सामने रखे हैं।

अध्यात्ममूलक इस जीवन-स्रोत के कारण ही आपकी स्वतंत्र सृजन, लेखन चित्रकला, विहार सर्वत्र समान दृष्टि रही है। कहीं पर भी आपका वह मूल ध्येय खंडित या धूमिल नहीं हुआ है। कलाकृतियों में तो जगह्-जगह आपके इस सत-रूप का दर्शन होता है। काव्य-सृजन में भी आप की यह दृष्टि ओझल नहीं हुई है। लोक त्योहारों मे प्रसिद्ध दशहरा आदि का आपश्री ने आध्यात्मिक दशहरे के रूप में वर्णन किया है। विहार करते हुए रास्ते में जो गाँव मिलते, उन के नामो पर आपने अध्यात्मप्रधान अनेक कविताओं की रचना की है। एक सच्चे योगी की तरह सातत्य योग के कारण ही आपने साधना एवं कला के विविध क्षेत्रों में आश्चर्यजनक विकास किया है। अप्रमत्त मुनि होने के कारण ही आपने अपने जीवन के मध्यम काल में वह कार्य कर दिखाया, जो लबी आयु प्राप्त करने पर भी अनेक व्यक्तियों द्वारा अशक्य है। दिवगत महाराजश्री की इस अलौकिक प्रतिभा की परिचायक उनकी जन्म एवं दीक्षा कुडलियाँ है, जिनके द्वारा पहले ही आभास हो गया था कि वे भविष्य में समाज को नव चेतना देनेवाले मुनि-श्रेष्ठ होगे। उन्हे हम सपादकीय के बाद पूज्यपादश्री की प्राकृतिक प्रतिभा, शीर्षक से दे रहे है।

सतहत्तर वर्ष पूर्व उस श्रेष्ठ आत्मा के स्वर्गवास होने पर भी वे अपने स्वरूप में अमर है। जो विचार उनके हृदय में थे, जिनका प्रचार देह के बधन के कारण मर्यादित था, वे आज उनके देहविहीन होने के कारण हमसब के हृदय मे प्रवेश कर रहे है। उस ऋषि-वरेण्य के प्रति हम सब की सच्ची श्रद्धाजली यही है कि हम उच्च और नीच के दुष्ट भेद को दूर कर अभेद की ओर प्रयाण करे। सत्य और अहिंसा रूपी मूल व्रतो का जीवन में चिंतनपूर्वक निरंतर विकास करे। साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाएँ अपने श्रेष्ठ पद के अनुसार जीवन में प्रत्येक दृष्टि से शुद्धि की ओर प्रयाण करे।

इस अभिनदन ग्रंथ के मूल प्रेरक उपाध्याय मुनि श्री आनदऋषिजी महाराज है। आपके मार्गदर्शन में ही लेखन, सपादन आदि सब कार्य हुआ है। अभिनदन ग्रथ के लिए आई हुई श्रद्धाजलियो एव लेखो में कोई ऐसा नही, जो आपकी दृष्टि से नही गुजरा हो। इतना ही नही इस स्थविरावस्था में भी आपने अभिनदन ग्रथ के बहुत बडे भाग की अपने सुदर अक्षरो में प्रेसकापी की है। प्रारभ से अत तक आपश्री इस ग्रथ के लिए इतने अधिक उलझे रहे कि इच्छा होने पर भी प्रस्तुत अभिनदन ग्रथ के लिए श्रद्धाजली तक नही दे पाये है। दीक्षा शताब्दी के इस पवित्र आयोजन के समय उपाध्याय श्री ही सघ के बीच अपने दादा गुरु के प्रतीक के रूप में उपस्थित है। समस्त श्रीसघ द्वारा अर्पित

इस अभिनदन ग्रथ का दशन कर आपको जितनी प्रसन्नता न हो होगी उसकी कल्पना तक नही की जा सकती। साथ ही उसके निर्माण में मेरा भी बहुत योग दान होने से समाज के ऋण से कुछ उऋण होने की सधि से अपने चित्त का कुछ समाधान होना सहज ह।

इस अवसर पर अपन स्व पिता श्री का पुण्य-स्मरण करना सहज ह। मेरे जीवन का बचपन से अधिकतर भाग घर से बहुत दूर विद्या-सबधी प्रवत्तियों में व्यतीत हुआ ह। इस बार अपने पिता श्री की लबी बीमारी के कारण बाहर के काय से निवत्त होकर केवल उनके साथ रहने की इच्छा से घर आया था। इसी बीच अपने बालसाथी श्री महेन्द्रकुमारजी हिंदी अध्यापक श्री ति जन विद्या लय पाथर्डी द्वारा उपाध्याय श्री को मेरा नाम सुझान पर मुझ इस काय में प्रवत्त होना पडा। काय करते हुए भी उनकी भयकर बीमारी के कारण बीच में तीन बार उनके दशनाथ विवश होकर आना पडा। अतिम समय में जब उनसे बिदा ली तब अपन जीवन में उ होन पहली बार अश्रुपूण नयनो से अवरुद्ध कठ हो य शब्द कहे– तुम अब मेरे पास ही रहो अब मेरी मत्यु सन्निकट ह। तुम्ह सामन देखकर मुझ शान्ति होती ह। मेरी ठीक तरह से भक्ति कर के अब कही बाहर जाना अपन स्व पिताजी के सामन मेरी वाचा अवरुद्ध हो गई। इधर उपाध्यायश्री को दिये हुए वचन की रक्षा भी करना था। अत में अपने वचन की रक्षा करने के लिए सिर पर लिए हुए इस काय को सम्पन्न करने के लिए उपाध्यायश्री के पास ठीक समय पर पहुच गया। बाद में सारे कुटुब के लिए सिरच्छत्र रूप पूज्य पिताश्री मेरी अनुपस्थिति म सथारा कर, आलोयणा करन के साथ नवकार मत्र का स्मरण करते हुए स्वग सिधार गये। अपन जीवन म यह पहली बार मन उनकी अतिम आज्ञा की अवहेलना की ह।

सकट के इन घडियो म उपाध्यायश्री का मुझ पर बराबर सौहादभाव रहा। उ होन आत्मीय-भाव से मेरी सुविधा असुविधा का बराबर ध्यान रखा। आपन इस काय में गुरु पद के अधिकारी नही रहकर मेरे वात्सल्य मूर्ति पिता का व्यवहार किया। आपश्री के इस औदायपूर्ण बर्ताव से ही ग्रथ को इस रूप म तयार करन में समथ हो सका हूँ।

महेन्द्रकुमार जन

पूज्यपाद श्री की प्राकृतिक प्रतिभा

पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज का जन्मांग एवं दीक्षा चक्र

विक्रम संवत् १९०४ शके १७६९ उत्तरायणे रवौ वसतर्तौ चैत्र मासे कृष्ण पक्षे तृतीयायां तिथौ घटचा ६०१० चित्रा नक्षत्रे ६१. घटचादय. १०—३७ व्याघ्यात योगे ३९—० सूर्योदयादिष्ट घटी ३३—५० सूर्यमीनसंक्रांतेर्गताशः १२—६० समये जन्म ।

जन्मांग चक्रम्



पहले स्थान में राहु अपने घर का स्वामी होने से ससार मे त्यागवृत्ति का निर्माण करता है। लग्नस्थान का स्वामी बुध और उसके साथ शुक्र शनि इन तीनो ग्रहो का एक स्थान में सम्मिलन होने से यह योग वैराग्य भाव का उत्पादक है। इस योग में जन्म लेनेवाले पुरुष महापुरुष होते हैं। गृहस्थ-जीवन में रहने पर भी उनका जीवन वैराग्यमय एवं विशिष्ट होता है। ऐसे पुरुष का शरीर बहुत गौरवर्ण वाला नही होने पर भी तेजस्वी एवं कांतियुक्त होता है। दूसरे स्थान में चन्द्र का योग भी चारित्र लक्ष्मी की वृद्धि का सूचक है।

तृतीय स्थान में वृश्चिक राशि है। उसका स्वामी मगल है, पर नववे भाग्य स्थान में रहने पर भी उसकी दृष्टि अपने घर पर संपूर्ण रूप से पड रही है। यह योग सहज प्रेरणा से कवित्व शक्ति को उत्पन्न करने का सूचक है। चतुर्थ स्थान की धन राशि है और उसका स्वामी गुरु दशम स्थान में मिथुन राशि पर पडा हुआ है। यह बड़ा भारी पुण्य-योग है। इससे प्राणी पुण्यानुबधी पुण्य सपादन करता है तथा शास्त्रो का अध्ययन कर उनका तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करता है। उसकी औत्पातिकी बुद्धि होती है। पंचम स्थान की मकर राशि है और उसका स्वामी छट्ठे स्थान में अपने घर में मालिक बन कर पडा हुआ है। इसलिए शुक्र शनि और बुध ये तीनो ग्रह यद्यपि बुद्धि की तेजस्विता के लिए

अत्यंत सूचक है फिर भी छट्ठे स्थान में शनि होने से वह संस्कृत के प्रखर पाण्डित्य के लिए अंतरायरूप है। पर वह चित्रकला तथा कवित्व शक्ति के विकास में अत्यंत सहायता पहुंचाता है। सप्तम स्थान में रवि और केतु होने से वह संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करता है आजीवन ब्रह्मचारी रहता है और उपसर्ग के समय वह सिंह के समान विजयी होता है। अष्टम स्थान में मेष राशि है और उसका स्वामी मंगल भाग्य स्थान में पड़ा हुआ है पर चन्द्र की दृष्टि आठवें स्थान पर पड़ रही है। इसलिए ऐसे व्यक्ति का आयुष्य मध्यम होने पर भी उसकी कीर्ति बहुत फैलती है। नवम स्थान में मंगल होने से पूर्वकृत शुभ पुण्य के उदय से उसके चारित्र में उत्तरोत्तर निर्मलता की वृद्धि होती है। दशम स्थान में गुरु होने से भव-भ्रमण घटाता है वह पुण्यानुबंधी पुण्य का अधिकारी होता है तथा गुरु चंद्र का नवम-पंचम योग होने से वह शीघ्र मोक्षगामी होता है। ऐसा योग कर्म-निर्जरा करने में अत्यंत सहायक है। इससे त्याग वैराग्य तप, संयम आदि का संचय होता है एकादश एवं द्वादश दोनों स्थान शुद्ध एवं निर्मल होने से स्वर्ग तथा अपवर्ग के अधिकारी बनाते हैं। वह ऊँचे देवलोक में महाऋद्धि का स्वामी होकर कैवल्य की ओर प्रयाण करता है।

॥ इति शुभम् ॥

दीक्षा कुण्डली



संवत् १९१४ माघमासे कृष्ण पक्षे प्रतिपत तिथौ शुक्र वासरे मध्याह्न समये इष्टघटी ११।५२ रवि ८।२७ लग्न ११।८

फलादेश

मीन राशि में लग्न होने के साथ उसका स्वामी गुरु होने से ये प्रखर चारित्रवान् बनेंगे। दीक्षा लेने के बाद इनके शरीर में सात्विक तेजस्विता आ जाती है। गुरु दूसरे स्थान में होने के साथ लग्न का स्वामी होने के कारण चारित्र को संपूर्ण रूप से ग्रहण करते हुए अपने चारित्र की उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहेंगे एवं लोगों के हृदय में बिना पट्ट के ही सम्राट की तरह स्थान प्राप्त करेंगे अभिषेक के बिना संघ के नायक बनेंगे। तीसरे स्थान का स्वामी शुक्र दशम स्थान में पड़ा हुआ है। यहां शुक्र तथा गुरु का नव-पंचम योग है। अतएव यह योग

कवित्व शक्ति को बढाता है । पंचम स्थान के स्वामी का चतुर्थ स्थान में निवास होने से अलौकिक बुद्धि की प्राप्ति होती है और उस पर नवम स्थान में स्थित रवि, शुक्र और बुध की सपूर्ण दृष्टि होने से बुद्धि के विविध पहलू विकसित होने है । जिससे लेखन-कला, चित्रकला आदि अनेक विषयो में निपुणता प्राप्त करेगे । पचम स्थान में शनि कर्क का होने से स्वय उसकी अपने स्थान पर दृष्टि पड रही है । जिससे वह अनेक कवित्वसूचक कल्पनाएँ करने के साथ औत्पातिकी बुद्धि के धनी बनेंगे । छट्ठे स्थान में केतु होने के कारण आचार्य पद से विभूषित न हो सके । सातवें स्थान में कन्या राशि है और उसका स्वामी बुध दशम स्थान मे पडने से ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहेगे । अष्टम स्थान में मगल है और उस पर किसी अन्य ग्रह की दृष्टि नही पड रही है । इसलिए इनका मध्यमायु योग है, नववे स्थान में वृश्चिक होने से उसका मगल गुरु समसप्तक योग करता है। यह योग दिन-प्रतिदिन प्रत्येक प्रकार की पुण्यवानी बढाता है । दसवे स्थान का स्वामी गुरु अन्य घर में होने से उनका यश चारो ओर व्याप्त होवा । ग्यारहवे स्थान में मकर की राशि होने के साथ उसके स्वामी शनि की सपूर्ण दृष्टि पडने से ये निकट भविष्य में एक दो भव में ही मोक्ष प्राप्त कर सकते है । भगवान् महावीर की कुडली में भी राहू था ।

॥ शुभ भवतु ॥

श्रद्धा के दो कुसुम

बालब्रह्मचारिणी जैनशासन प्रभाविका पडिता महासतीजी
श्री रतनकुवरजी महाराज शाजापुर

पूज्यपाद चारित्रचूडामणि, कविसम्राट्, विद्वद्वर्य महाराष्ट्रउद्धारक ऋषि-वर्य श्री श्री १००८ श्री तिलोकऋषिजी महाराज साहब जैन जगत् में एक जाज्व-ल्यमान नक्षत्र के रूप में उदित हुए । अपनी ज्ञान-गरिमा एवं चारित्रनिष्ठा से उन्होंने समाज को नव चेतना प्रदान की। उनके साहित्य-सृजन से हमारे साहित्य-भडार में अनेकानेक ग्रन्थ रत्न आये जो हिन्दी जैन साहित्य की अमूल्य कृतियाँ है । उनके ग्रन्थो के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जन्म-जात कवि थे । उनके ग्रन्थो में शब्द-चमत्कार एव भावसौन्दर्य का अद्भुत सम्मिश्रण है—जो उनके काव्यत्व गुण का परिचायक है।

आपश्री रविहृदय होने के साथ ही श्रेष्ठ लिपिकार एव चित्रकार भी थे । आपके ज्ञान शक्ति का परिचय तो इसमे लगता है कि वे दोनो हाथ पैर से लिखते हुए भी अपनी पीठ पर लिखे हुए प्रश्न का उत्तर भी दे देते थे ।

ज्ञान के साथ त्यागनिष्ठा एवं चारित्रबल का संयोग विरले संत पुरुषों में ही होता है लेकिन आपश्री ज्ञानमूर्ति एवं तपमूर्ति दोनों ही थे। गुण व गरिमा दोनों ही आपको प्राप्त थे। ऐसे महान् संतों का आविर्भाव समष्टि एवं व्यष्टि दोनों के लिए कल्याणकारक होता है। आपश्री को भी तिन्नाण तारयाण का पद सार्थक था।

एसे महान संत के प्रति जिसन अल्प लेकर अधिक दिया! जो भिक्षु होते हुए भी ज्ञान का दाता था और दाता होने पर भी भिक्षु (मोक्षका) था हम क्या अर्पण करें? श्रद्धा के दो कुसुम!!

श्रद्धा के सुमन

परमविदुषी महासतीजी श्री वल्लभकुंवरजी महाराज साहब

शाजापुर

जन्म और मृत्यु दो पहलू हैं जिन पर यह संसार अपना स्वरूप बताता है। साधारणतया समष्टि के लिए व्यक्तिका जन्म और मृत्यु दोनों ही अर्थहीन हैं किसे चिन्ता है कि नदी के प्रवाह में कौन कौन से जलकण आते हैं और चले जाते हैं। चिन्ता होती है केवल प्रवाह को प्रवाहमान बने रहने की। यही बात मानवीय सृष्टि के लिए भी है। लेकिन वही जलकण सार्थक होता है जो किसी प्यासे की तृष्णा को परितोष देता है यही बात व्यक्ति के लिए भी उतनी ही सत्य है। जो दूसरों की रक्षा में स्व की बलि देता है वही अपना जीवन सार्थक करता है। जन्म लेना उसका सार्थक है जो पर की रक्षा में व्यतीत हो हिंसा में नहीं और मरण उसका सार्थक है जिसे अंतिम समय पर स्व और पर में कोई भेद दृष्टिगोचर नहीं होता।

जिनके जन्म और मृत्यु दोनों सार्थक होगये ऐसे थे पूज्यपाद श्री तिलोक-ऋषिजी म० सा०। वे कवि थे वक्ता थे लेखक थे चित्रकार थे आत्मचिकित्सक थे, निरीक्षक थे और एक शब्द में कहा जाय तो सब कुछ थे। इन सबसे अधिक वे संत थे और सच्चे श्रमण थे। बस यही उनकी महानता थी।

एसे महान् व्यक्तित्व के लिये यह श्रद्धा के सुमन भी निर्मूल्य हैं जिसे मान और अपमान दोनों में समानता परिलक्षित हो उसे इनसे प्रयोजन ही क्या? लेकिन हे ज्योतिधर! हम अपने मन के परितोष के लिए यह श्रद्धा के सुमन तेरे चरणों में समर्पित करते हैं। हे प्रकाश-पुंज! तेरा यह प्रकाशमय जीवन अनंतकाल तक जन-जन के हृदय को आलोकित करता रहे।

श्री तिलोकऋषि पूज्यपादानां दीक्षा शताब्दी महोत्सवे श्रद्धांजली

ले.–पं. दिगंबर महादेव कुलकर्णी बी. ए. शिक्षक, सातारा

कालिदासाद्यसंख्यात कविरत्नै सुशोभिता ।
भोजभर्तृहरीत्यादि-कविराजैश्च शासिता ॥ १ ॥
मालवा जन्मभूर्यस्य, स त्रिलोकोऽभवत् कवि. ।
नाश्चर्यलेशस्तत्रास्ति, 'तथा मृत्स्ना यथा खनि' ॥ २ ॥

भावार्थ––कालिदास आदि असंख्य कविरत्नों से सुशोभित तथा राजा भोज और भर्तृहरि जैसे कवि और राजाओं के आसन में स्थित मालवा देश जिनकी जन्मभूमि थी, वे श्री तिलोकऋषिजी म० यदि कवि हुए हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नही क्योंकि 'जैसी खान वैसी मिट्टी'

हठादाकृष्टाना कतिपयपदाना रचयिता,
नरः कोऽपि क्षुद्रो भवति कुकविर्हन्त भवने ।
सहस्राणा षष्ठेः सरसकविताना कवयिता
त्रिलोकस्त्रैलोक्येऽपि कथमिव न स्यात् कविवर ॥३॥

भावार्थ––अरेरे ! जबर्दस्ती से खींचतान कर कमश. शब्दों की रचना करके कोई क्षुद्रमनुष्य भी इस संसार में कवि होता हो तो ६० हजार श्रेष्ठश्लोक निर्माण करनेवाले श्री तिलोकऋषिजी म० त्रैलोक्य में उत्कृष्ट कवि क्यो नही होंगे ?

काव्यवैराग्यगुणाभ्यां भूपो भर्तृहरि कवि ।
त्रिलोकर्षिस्त्रिलोक्यां स्यात्तथैव च कविर्यति ॥ ४ ॥

भावार्थ––काव्य और वैराग्य इन गुणों से युक्त भर्तृहरि कवि और भूपति थे । इसी प्रकार श्री तिलोकऋषिजी म० कवि और यति थे ।

रत्नलामपुरी मन्ये, साक्षाद्रत्नखनिं भुवि ।
यत्रोद्भूत त्रिलोकर्षि-रत्न त्रैलोक्यभासुरम् ॥ ५ ॥

भावार्थ––रतलाम नगरी यह ससार में प्रत्यक्ष रत्नों की खान है, ऐसा मुझे लगता हैं, क्यो कि त्रैलोक्य को प्रकाशित करनेवाले श्री **तिलोकऋषिरूप रत्न** जहाँ उत्पन्न हुए हैं ।

गोकर्णमात्रविस्तीर्णे पत्रे सूत्रे लिखत्द्वयम् ।
भालपट्टाक्षर सूक्ष्म विधिन्यस्त पठेन्नृणाम् ॥ ६ ॥

भावार्थ––गाय के कान जितने विस्तृत कागद पर दो सूत्रो को लिखनेवाले यह मनुष्यों के कपाल पर विधाता से लिखे गये सूक्ष्म अक्षरो को पढेगा ।

ज्ञान के साथ त्यागनिष्ठा एव चारित्रबल का सयोग विरले सत पुरुषों में ही होता ह लेकिन आपश्री ज्ञानमूर्ति एव तपमूर्ति दोनों ही थे । गुण व गरिमा दोनो ही आपको प्राप्त थे । ऐसे महान् सतों का आविर्भाव समष्टि एव व्यष्टि दोनों के लिए कल्याणकारक होता ह । आपश्री को भी तिन्नाण तारयाण का पद सार्थक था ।

ऐसे महान सत के प्रति जिसने अल्प लेकर अधिक दिया ! जो भिक्षु होते हुए भी ज्ञान का दाता था और दाता होने पर भी भिक्षु (भोक्ता) था हम क्या अर्पण करें ? श्रद्धा के दो कुसुम !!

श्रद्धा के सुमन

परमविदुषी महासतीजी श्री वल्लभकुवरजी महाराज साहब

बालापुर

जन्म और मत्यु दो पहलू ह जिन पर यह ससार अपना स्वरूप बताता है । साधारणतया समष्टि के लिए व्यक्तिका जन्म और मत्यु दोनों ही अर्थहीन है जिसे चिन्ता ह कि नदी के प्रवाह में कौन कौन से जलकण आते ह और चले जाते ह । चिन्ता होती ह केवल प्रवाह को प्रवाहमान बन रहने की । यही बात मानवीय सष्टि के लिए भी है । लेकिन वही जलकण सार्थक होता ह जो किसी प्यासे की तृष्णा को परितोष देता ह यही बात व्यक्ति के लिए भी उतनी ही सत्य ह । जो दूसरों की रक्षा में स्व की बलि देता ह वही अपना जीवन सार्थक करता ह । जन्म लेना उसका सार्थक ह जो पर की रक्षा में व्यतीत हो हिंसा में नही और मरण उसका सार्थक ह जिसे अतिम समय पर स्व और पर में कोई भद दृष्टिगोचर नही होता ।

जिनके जन्म और मत्यु दोनो सार्थक होगये ऐसे थ पूज्यपाद श्री तिलोक-ऋषिजी म० सा० । वे कवि थे, वक्ता थे लेखक थ चित्रकार थ आत्मचिकित्सक थ, निरीक्षक थ और एक शब्द में कहा जाय तो सब कुछ थ । इन सबसे अधिक वे सत थ और सच्चे श्रमण थे । बस यही उनकी महानता थी ।

ऐसे महान व्यक्तित्व के लिय यह श्रद्धा के सुमन भी निमूल्य ह जिसे मान और अपमान दोनों में समानता परिलक्षित हो उसे इससे प्रयोजन ही क्या ? लेकिन हे ज्योतिधर ! हम अपने मन के परितोष के लिए यह श्रद्धा के सुमन तेरे चरणो में समर्पित करते है । हे प्रकाश-पुज ! तेरा यह प्रकाशमय जीवन अनतकाल तक जन-जन के हृदय को आलोकित करता रहे ।

श्री तिलोकऋषि पूज्यपादानां दीक्षा शताब्दी महोत्सवे श्रद्धांजली

ले.-पं दिगंबर महादेव कुलकर्णी बी ए शिक्षक, सातारा

कालिदासाद्यसंख्यात कविरत्नै सुशोभिता ।
भोजभर्तृहरीत्यादि-कविराजैस्च शासिता ॥ १ ॥
मालवा जन्मभूर्यस्य, स त्रिलोकोऽभवत् कवि. ।
नाश्चर्यलेशस्तत्रास्ति, 'तथा मृत्स्ना यथा खनि' ॥ २ ॥

भावार्थ—कालिदास आदि असंख्य कविरत्नो से सुशोभित तथा राजा भोज और भर्तृहरि जैसे कवि और राजाओ के शासन में स्थित मालवा देश जिनकी जन्मभूमि थी, वे श्री तिलोकऋषिजी म० यदि कवि हुए है तो इसमें कोई आश्चर्य नही क्योकि 'जैसी खान वैसी मिट्टी'

हठादाकृष्टाना कतिपयपदाना रचयिता,
नरः कोऽपि क्षुद्रो भवति कुकविर्हन्त भवने ।
सहस्राणा षष्ठेः सरसकविताना कवयिता
त्रिलोकस्त्रैलोक्येऽपि कथमिव न स्यात् कविवर ॥३॥

भावार्थ—अरेरे ! जबर्दस्ती से खीचतान कर क्रमश शब्दो की रचना करके कोई क्षुद्रमनुष्य भी इस संसार में कवि होता हो तो ६० हजार श्रेष्ठश्लोक निर्माण करनेवाले श्री तिलोकऋषिजी म० त्रैलोक्य में उत्कृष्ट कवि क्यो नही होगे ?

काव्यवैराग्यभूषाभ्या भूपो भर्तृहरि कवि ।
त्रिलोकर्षिस्त्रिलोक्या स्यात्तथैव च कविर्यति ॥ ४ ॥

भावार्थ—काव्य और वैराग्य इन गुणो से युक्त भर्तृहरि कवि और भूपति थे । इसी प्रकार श्री तिलोकऋषिजी म० कवि और यति थे ।

रत्नलामपुरीं मन्ये, साक्षाद्रत्नखनिं भुवि ।
यत्रोद्भूत त्रिलोकर्षि-रत्न त्रैलोक्यभासुरम् ॥ ५ ॥

भावार्थ—रतलाम नगरी यह ससार में प्रत्यक्ष रत्नो की खान है, ऐसा मुझे लगता है, क्यो कि त्रैलोक्य को प्रकाशित करनेवाले श्री तिलोकऋषिरूप रत्न जहाँ उत्पन्न हुए हैं ।

गोकर्णमात्रविस्तीर्णे पत्रे सूत्रे लिखन्नयम् ।
भालपट्टाक्षर सूक्ष्म विधिन्यस्त पठेन्नृणाम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—गाय के कान जितने विस्तृत कागद पर दो सूत्रो को लिखनेवाले यह मनुष्यो के कपाल पर विधाता से लिखे गये सूक्ष्म अक्षरो को पढेगा ।

दशवकालिक पूर्ण मूल पुच्छीसुणस्य च ।
सूक्ष्मस्पष्टाक्षर रम्यं, पत्र स्वल्पे लिखन् कवि ॥ ७ ॥
भालपट्टसहस्रेषु दुर्वाच्या अक्षरावली ।
लिखितश्चित्रगुप्तस्य स्पर्धायामहरद्यश ॥ ८ ॥ युग्मम् ॥

भावार्थ——छोटे से कागज पर श्री दशवकालिकसूत्र सपूर्ण और पुच्छीसुण (वीरस्तुति) स्पष्ट और रम्य सूक्ष्म अक्षरों को लिखनेवाले इस मुनि ने हजारो कपालों पर पढ़ने में कठिन एसे अक्षरों की पक्तिओं को लिखनेवाले चित्रगुप्त के यश को हस्ताक्षर की स्पर्धा में हरण किया।

हस्त्यश्वरथपत्तीनां स्तुतिपाठावलेस्तथा ।
प्रभो प्रसादप्राप्तस्य योगो राज्ञोऽस्ति वा कवे ॥ ९ ॥

भावार्थ——प्रभु की कृपा को प्राप्त करनेवाले राजा अथवा कवि के हिस्से में ही हस्तिअश्व रथअश्व और स्तुतिपाठ का योग आता है। राजा को चतरंग दल और भाट होते हैं। कवि चित्र काव्य-रचना और स्तुति पर काव्य करते हैं।

संसारासह्यदु खैर्ये, वैराग्य यान्ति पीडिता ।
तेऽपि लोक प्रशस्यन्ते सादर देववत् सदा ॥ १० ॥

भावार्थ——ससार के असह्य दु खों से पीडित लोगों को यदि वैराग्य प्राप्त हुआ है उनकी भी लोग आदर से देवतुल्य स्तुति करते हैं।

स्वप्नेऽप्यदृष्टदु खाश्च एकवर्षात्मक शिशु ।
यश्च यो तीव्रवैराग्य स यती देववन्दताम् ॥ ११ ॥

भावार्थ——परन्तु स्वप्न में भी जिसने दुख का लवलेश नहीं देखा और जो केवल १ वर्ष के थे ऐसे त्रिलोक मुनि ने प्रापचिक सुख की तरफ न देखते हुए तीव्र वैराग्य देवता को आज्ञा अर्पण की, ऐसे श्री त्रिलोकर्षि अर्थात् श्री तिलोकऋषिजी म० देवों के लिए वन्दनीय है।

त्रिलोकर्षे पदस्पर्शात् पूता घोडनदीपुरी ।
दिष्टनाऽद्य वर्धते भूयस्तच्छिष्याणां महोत्सव ॥ १२ ॥

भावार्थ——पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० के पदस्पर्श से घोडनदी क्षेत्र पहले पवित्र हुआ है। वर्तमान में यहीं उन्हीं के यावक शिष्यों द्वारा किया हुआ दीक्षा षष्ठ्यब्दी महोत्सव के निमित्त पुन हम उसका अभिनन्दन करते हैं।

समुल्लङ्घ्य महारण्य गिरिनद्यादि दुर्गमम्
त्रिलोकर्षि समायातो यम्या दिशमगस्त्यवत् ।। १३ ।।

भावार्थ—कविकुलभूषण श्री तिलोकऋषिजी म० पर्वत, नदियाँ, मार्गाभाव वगैरह असुविधाओ के कारण सचार करने के लिए अनेक कठिनाइयो को पार कर दक्षिण देश को अगस्त्यऋषि के समान आये ।

सर्पहिसाप्यगस्त्येन, निषिद्धा मुनिना स्फुटम ।
श्री त्रिलोकोऽप्यहिंमाया प्रचार मर्वथाऽकरोत् ।। १४ ।।

भावार्थ—अगस्त्यमुनि ने सर्प हिंसा का भी स्पष्ट रूप से निषेध किया। इसी तरह पूज्यपाद श्री त्रिलोकऋषिजी म० ने भी अहिंसा का प्रचार सब तरह से किया ।

रत्नानन्दादिशिष्याणा प्रयत्नैर्जैनधर्मिणाम् ।
ऐहिकामुष्मिकश्रेयो-वृद्धि स्याद्भुवि सर्वथा ।। १५ ।।

भावार्थ—श्री रत्नऋषिजी म० श्री आनन्दऋषिजी म० आदि शिष्य प्रशिष्यों के उपदेशरूप प्रयत्नो से केवल जैनों का ही कल्याण नही हुआ किन्तु समस्त ससार में सर्वदा ऐहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण की वृद्धि होवे ऐसी शुभ कामना है ।



श्रमणशिरोमणि पूज्य पाद श्री तिलोक ऋषिजी म०

ले. मोतीलाल सुराणा

वदन प्रसादसदन सदयं हृदयं सुधामुचो वाच ।
करण परोपकरणं येषा केषा न ते वद्याः ।।

जिन आत्माओ का मुख प्रसन्नता का घर है, हृदय दया से परिपूर्ण है, वचन अमृतमय एव कार्य परोपकार की भावना से ओतप्रोत है वे किसके वन्दना योग्य नही होते ! वे सभी के आदरणीय विश्वबधु होते है ।

इसी प्रकारकी एक महान् आत्मा सवत् १९०४ में रतलाम शहर में श्रीपति सेठ दुलीचन्दजी सुराणा के घर रत्नगर्भा नानूबाई के गर्भ से तिलोकचन्दजी के रूपमें अवतरित हुई ।—

केवल १० वष की आयु में ही ससार की अनित्यता को समझ श्रीसम्पन्न होते हुए भी माता बहन भाई के साथ चरित्र नायक ने भागवती दीक्षा अगीकार की। आपके गुरुवर बाल ब्रह्मचारी श्री अयवन्ताऋषिजी महाराज साहब परम विद्वान् एव असरकारक व्याख्यानी थ। आपके बड भाई भी बडे तपस्वी थे। उन्होंने सयम के बाद आजीवन एकान्तर तप किया सयम धारण करने के बाद तिलोकऋषिजी महाराज गुरु सेवा व ज्ञान ध्यान में अपना सारा समय व्यतीत करने लग। अपनी विलक्षणता के कारण कुछही समय में महान कवि और शास्त्र विशारद हो गए। सवत् १९२७ में आपके गुरुमहाराज का निधन भसरोज में हुआ और सारा कार्यभार आपके ऊपर आगया। आप एक प्रतिष्ठित सन्त थ।

एक बार अहमदनगर में जब आपके पदार्पण की खबर पहुँची तो एक भक्त बाईन हर्षातिरेक में अपने हाथ का स्वणकगण उतार कर खबर देन वाले को भट कर दिया। इससे सहज जाना जा सकता है कि जनता में आपके प्रति कितनी श्रद्धा थी।

श्रमण शिरोमणि तिलोकऋषिजी म० न अपनी कुल ३६ वष की अल्प-आयु सत्य अहिंसा दान, तप और भक्ती भावना का ग्राम नगरों में विहारकर धर्मोपदेश दिया। अनेको ग्रन्थो की पद्यमय बजोड रचना की। धम का बहुत उद्योत हुआ किन्तु १९४ की श्रावण वदि २ को जनजगत् का सूय अस्त होगया। जन भारती निरास्पद होगई।



लाल भवन,

॥ ॐ अर्हन् ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः । श्रीसद्गुरवे नमः ॥



ऐतिहासिक दृष्टिसे जैनधर्म अत्यत प्राचीन है। जैन शास्त्रों के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में भी इसकी प्राचीनता के प्रमाण उपलब्ध हैं। इस अवसर्पिणी काल में जैन-धर्म के आद्य तीर्थङ्कर भगवान् श्री ऋषभदेव हुए। भागवतपुराण मे भी बडे आदर के साथ भगवान् ऋषभदेव की गणना अवतारों में की गई हैं। ऋषभदेवके बाद और तेईस तीर्थंकर हुए। उनमें चरम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी चौवीसवें थे। उन चरम तीर्थंकर भगवान महावीर का आजसे २४८७ वर्ष पूर्व निर्वाण हुआ। उनकी उपस्थिति कालमें ही उनके ग्यारह गणधरोंमें से नौ गणधर केवलज्ञान प्राप्त कर चुके थे। केवल श्री इंद्रभूति (गौतमस्वामी) और सुधर्मास्वामी को केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था। भगवान् के निर्वाण के थोडे समय बाद गौतमस्वामीने भी मोह का सर्वथा उच्छेद कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। केवलज्ञान के द्वारा आत्मा की सर्वोच्च अवस्था उपार्जन करने के कारण श्री गौतम गणधर भगवान महावीरस्वामी के पाटपर अधिष्ठित नहीं हुए, परन्तु सुधर्मा स्वामी उस समय छद्मस्थ होनेसे उसपर अधिष्ठित हुए। अर्थात् वे भगवान् महावीर के सारे श्रमणसंघ के नायक हुए। भगवान् महावीर के पश्चात् परंपरासे जो पट्टावली उपलब्ध हैं। उसकी नामावली इस प्रकार हैं —

१ श्री सुधर्मा स्वामी
२ " जम्बू स्वामी
३ " प्रभव स्वामी
४ " शय्यंभव स्वामी
५ " यशोभद्र स्वामी
६ " संभूतिविजय स्वामी
७ " भद्रबाहु स्वामी
८ " स्थूलिभद्र स्वामी
९ " महागिरिजी
१० " आर्यसुहस्तिजी
११ " बलिस्सह स्वामी
१२ " श्यामार्य स्वामी
१३ " स्वाति स्वामी
१४ श्री शाण्डिल्य स्वामी
१५ " समुद्र स्वामी
१६ " मंगु स्वामी
१७ " नन्दिल स्वामी
१८ " नागहस्ती स्वामी
१९ " रेवती स्वामी
२० " ब्रह्मद्वीपिकसिंह स्वामी
२१ " स्कंदिलाचार्य स्वामी
२२ " हिमवंत स्वामी
२३ " नागार्जुन स्वामी
२४ भूतदिन्न स्वामी
२५ " लोहित्य स्वामी
२६ " दूष्यगणि स्वामी

२७ श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण स्वामी

इस सत्ताईस पाट परंपरामें भगवान् महावीर के निर्वाण प्राप्त करने के बाद केवल ६४ वर्षों तक केवलज्ञान रहा। श्रीसुधर्मास्वामी के सुशिष्य चरमकेवली श्रीजम्बू स्वामी के निर्वाण प्राप्त करने के बाद भरतक्षेत्र से इन बोलों का विच्छेद हो गया। उनमें केवलज्ञान, केवलदर्शन का भी समावेश है।

पं मुनि श्री अमीऋषिजी महाराज ने अपने अमृत काव्यसंग्रहमें उन दश बोलों का उल्लेख इस प्रकार किया है —

जम्बू स्वामी मोक्षमें बिराज्या पीछे भरतमें
गये है विच्छेद दस बोल ये अहारी है।
परम अवधि मन पर्यव केवलज्ञान
चारित्र सूक्ष्मसम्पराय गुणभारी है॥
यथाख्यात जंघा विद्याचारण लब्धिमुनि
पडिमा द्वादशमी पुलाक अणगारी है।
उपशम श्रेणि और क्षपक श्रेणि ये दोय
कहे अमीरिख जनग्रन्थ में उच्चारी है॥ १॥

ऊपर के छंद में परिगणित परमअवधि, मन पर्यवज्ञान, केवलज्ञान, सूक्ष्मसम्पराय, यथाख्यातचारित्र, जंघाचारण-विद्याचारण-लब्धि, मुनिकी बारहवीं प्रतिमा, पुलाक-लब्धि, उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि इन दश बोलों का उच्छेद हो गया। वीर निर्वाण के बाद १७० वर्षों तक भद्रबाहुस्वामी पर्यंत चतुर्दश पूर्वों का ज्ञान था। तब तक यह सारा ज्ञान कंठस्थ था। पर भद्रबाहु के पश्चात् यह ज्ञान उत्तरोत्तर क्षीण होने लगा। उसका ह्रास होते-होते अन्त में भगवान् महावीर के पाटपर बिराजित सत्ताईसवें पट्टधर श्री देवर्द्धिक्षमाश्रमण तक वह केवल एक पूर्व का ही रह गया। तब तक भगवान् महावीर को निर्वाण हुए ९८० वर्ष हो चुके थे। चार मूलसूत्रोंमें से नंदीसूत्र में भगवान् महावीर के शासनपर अधिष्ठित सत्ताईस पट्टधर आचार्यों का उल्लेख है। पर इस पट्टावली में परिगणित आचार्यों के सबंधमें कुछ मतभेद है। वह विद्वानों तथा संशोधन की चर्चा का विषय होनेसे इसके संबंधमें हम विशेष ऊहापोह नहीं करना चाहते।

श्रीभद्रबाहु अंतिम श्रुतकेवली थे। उन्हें चौदह पूर्वोंका सम्पूर्ण ज्ञान था, जम्बूस्वामी से भद्रबाहुस्वामी तक जो पट्ट परंपरा है उस परंपरा में दिगंबर और श्वेतांबरों में कुछ मतभेद है। भद्रबाहुस्वामी अपने समय के महान् ज्योतिर्धर थे। वे तत्कालीन सम्राट् चंद्रगुप्त के धर्मगुरु थे। चंद्रगुप्त को उस समय भविष्यसूचक जो सोलह स्वप्न आये, उनका स्पष्टीकरण भी आचार्य भद्रबाहुने किया था। श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहुने दस-आगमों पर निर्युक्ति की रचना की है। उस समय की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना बारह सालका अकाल है। द्वादश वर्ष के भीषण दुर्भिक्ष के कारण जैन साधुओं को शुद्ध आहार पानी आदि मिलना कठिन हो गया। इसलिए वे जैन धर्मके शुद्ध रूपकी रक्षा करने के लिए सुदूर दक्षिण की ओर चले गये।

आचार्य श्री भद्रबाहु के दक्षिण की ओर विहार करने के बाद इस प्राणहरण भीषण दुर्भिक्ष का सघपर बहुत गहरा तथा स्थायी प्रभाव पड़ा। व्यवस्थित संघ छिन्न-भिन्न हो गया। श्रुति-परंपरासे प्रवाहित अखंड श्रुतज्ञान का बहुत-सा भाग विच्छिन्न हो गया। अनेक श्रुतधर आत्मार्थी श्रेष्ठ मुनिगण काल-कवलित होकर दिवगत हो गये।

इस प्रकार उत्तरोत्तर ज्ञान के क्षीण होनेसे सत्ताईसवें पट्टधर श्री देवर्द्धिगणि क्षमा-श्रमणको यह आशंका हुई कि श्रुतिपरंपरा से कंठस्थ रखनेसे कहीं यह बचा-खुचा ज्ञान ही लुप्त न हो जाय। इसलिए थोड़ी बहुत बची इस ज्ञानज्योति को अखंड प्रज्व-लित रखनेके लिये उन्होंने वल्लभी तथा मथुरामें अनेक विद्वान् आचार्यों को एकत्रित कर उन्हें जितना ज्ञान कंठस्थ था, उसे लिपिबद्ध कराकर ग्रन्थारूढ किया। इसे ग्रन्था-रूढ करते समय उन्होंने वर्षों तक विद्वान् आचार्यों के साथ बहुत कुछ विचार विमर्श किया। अंतमें उन्हें जो शुद्ध स्वरूप दिखाई दिया उसे ही शास्त्र में स्थान दिया। जहाँ कहीं उन्हें कुछ मतभेद प्रतीत हुआ, वहां उसका उन्होंने पाठांतर दिया।

भगवान् महावीर का निर्वाण होने के पश्चात् जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे वैसे साधु परंपरा में भी बहुत कुछ मतभेद होता गया। इसी मतभेद के कारण उनके निर्वाण के ६८० वर्ष बाद अनेक गच्छ स्थापित हो गये। गच्छों की अनेकता के कारण उनकी परम्पराएँ भी विभिन्न होनेसे अनेक प्रकार की हो गई हैं। गच्छों का विविध जाल फैल जाने पर भी उनमें प्रकांड दार्शनिक सिद्धांतवेत्ता प्रभावशाली और विविध विषयोंके ज्ञाता अनेक आचार्य हुए हैं। जिन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण कृतियों से जैन-वाङ्मय की समृद्धि में संस्मरणीय योगदान दिया है। भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान तथा आचार शास्त्र ऐसी ठोस भूमिपर स्थिर था कि उसे लेकर हजारों वर्षों बाद भी कोई खास उल्लेखनीय मतभेद नहीं हुआ, जैसा कि वैदिकदर्शन या ब्राह्मण परंपरामें दृष्टिगोचर होता है या बौद्ध परंपरा में भी दिखाई देता है। परन्तु निष्प्राण बाह्य क्रियाकांडों को ही धर्मके अंग मानकर समय-समय पर अनेक गच्छ उत्पन्न होते गये। क्रियाकांड धर्मके अंग बन जाने से धीरे धीरे संघमें शिथिलता आने लगी। फलस्वरूप वह अनेक विकृतियों का आगार हो गया। कठोरसंयमका पालन करनेवाले साधुप्राय-चैत्यवासी हो गये। यहाँ तक कि यह वाद अपनी पराकाष्ठा तक जा पहुँचा। जो साधु समुदाय पहले जंगल, अरण्य, वन, उद्यान, स्मशान, धर्मशाला आदि जहां कहीं स्थान मिल जाता, वहां सुखपूर्वक निवास करता था, वह अब मठों की तरह उपाश्रय बनाकर रहने लगा।

इस पतनके पीछे यह कारण है, भगवान् महावीर का जब निर्वाण हुआ, उस समय राशि पर भस्मग्रह था। उसके प्रभाव के कारणसे हजार वर्षों तक शासन में हानि-वृद्धि होती रही। यद्यपि किसी समय खद्योत के स्वल्प प्रकाशके समान इसमें भी उन्नति के कुछ लक्षण दृष्टिगोचर होते रहे। पर ऊपरसे दिखाई देनेवाली वह उन्नति आभास मात्र थी।

उसमें पतन के लक्षण ही अधिक थे। भस्मग्रह का यह प्रत्यक्ष प्रभाव हम सब अनेक शताब्दियों से देख रहे है। बीचमें साधु समाज यति रूपमें परिवर्तित हो गया। यह यति समाज अनेक प्रकारके आरंभ का सेवन करने लगा। बहुतसे यति गृहस्थों की तरह आवास बनाकर रहने लगे। सदैव पाद विहार कर प्रकृति के साथ संबंध रखनेवाले पवित्र साधुगण यतिरूप में परिवर्तित होकर पालखी पर आरूढ होकर विचरने लगे। मूर्तिपूजा ही एक मात्र धर्मका अंग बन गया। भगवान् का लोकाभ्युदयकारी पवित्र उपदेश विस्मृत-सा कर दिया गया।

ऐसी परिस्थिति में जब कि धर्म का शुद्ध स्वरूप सर्वथा लुप्त-सा हो गया था। सब अंधेरे में भटक रहे थे। आचार में अहिंसाके साधकों द्वारा सब नियमों का विस्मरण कर दिया गया था। तब एक महान् क्रान्तिकारी श्रेष्ठ पुरुष का जन्म हुआ। यह निलक्षण पुरुष श्री लोंकाशाहके नामसे सारे स्थानकवासी समाज में विख्यात है। उनका जन्म गुजरात प्रांत में स्थित सिरोही राज्यांतर्गत "अरहटवाडा" नामक ग्राममें विक्रम संवत् १४८२ की कार्तिक पूर्णिमा को हुआ। उनके पिता का नाम हेमाभाई और माताका नाम गंगाबाई था। पंद्रह वर्ष की अल्पायु में ही आपका विवाह हो गया था। विवाह के तीन वर्ष बाद आपको पुत्र की प्राप्ति हुई। श्रीमान् लोंकाशाह अपने समय में धार्मिक संस्कारोंसे संपन्न एक असाधारण पुरुष थे। आपकी बुद्धि अत्यंत निर्मल तथा ग्रहण-शक्ति अद्भुत थी। अक्षर भी मोती की तरह सुन्दर लिखते थे। कुछ बडे होनेपर वे अरहटवाडा छोडकर अहमदाबाद आकर रहने लगे। कार्यकुशलता के साथ अपनी अद्भुत सूझ के कारण राजदरबार में भी उनकी बहुत प्रतिष्ठा थी। यह सब होने पर भी आपकी धर्ममय जीवन के प्रति विशेष अभिरुचि थी। अपने जीवन को धर्ममय बनाने के लिये उन्होंने उच्च धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया। इसमें आगमों के अध्ययन का योग मिलने से उनके ज्ञानमें परिपक्वता आई। अक्षर सुन्दर होने से उस समय के यति समुदाय ने इन्हें जीर्ण आगमों की प्रतिलिपि, करने का कार्य सौंपा। जैसे जैसे ये प्रतिलिपि करते गये वैसे वैसे वे आगमों की अर्थ की गहराईमें उतरने लगे। इस परिशीलन से उन्होंने देखा कि आगम प्रतिपादित साधुओं के आचार तथा वर्तमान यति समाज के आचार में कही समानता नही है। दोनों में धरती-आकाश का अन्तर है। यह विषमता उन्हे बहुत खटकने लगी। फिर तो वे अपनी बुलद आवाज से शास्त्रोक्त आचार का प्रतिपादन करने लगे। उनके शुद्ध आचारका दर्शन कर धीरे धीरे उनके अनुयायिओं की संख्या भी बढने लगी।

यद्यपि लोंकाशाह सब आगमों के साधक गृहस्थ जीवन यापन कर रहे थे। फिर भी वे संपूर्ण रूप से शासन की अभिवृद्धि करने में रत रहते थे। आपने प्रबल वेग से शुद्ध संयम मार्ग का प्रचार किया। उस समय यतियों द्वारा उन्हें पथभ्रष्ट करने के लिये अनेक षड्यंत्र रचे गये, उन्हें अनेक यातनाएँ पहुंचाई गई। पर वे अपने मार्ग से किंचि-न्मात्र भी विचलित नही हुए। उन्होंने अपने दृढ संकल्प और अद्भुत आत्मबल से उन

सब संकटों पर विजय प्राप्त की। आपके प्रेरणादायी पवित्र उपदेशसे प्रेरित होकर एक साथ ४५ मुमुक्षु साधकों ने जैन दीक्षा अंगीकार करने की भावना व्यक्त की। उस समय आचार विचार में श्री ज्ञानऋषिजी की बहुत ख्याति थी, उनके समीप उन पैंतालीस मुमुक्षु साधकों ने सवत् १५३१ में जैन दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा अंगीकार करने के बाद उन महापुरुषों ने अपने उपकारी पुरुष के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिये अपने गच्छ का नाम "लोंकागच्छ" रखा। सवत् १५४१ में धर्मप्राण लोंकाशाह का स्वर्गवास हुआ।

इन ४५ महापुरुषों द्वारा आरब्ध "लोंकागच्छ" उत्तरोत्तर प्रगति पथ की ओर प्रयाण करने लगा। इनके शुद्ध आचार और विचार से प्रभावित होकर अनुयायी वर्ग में केवल श्रावक-श्राविकाओं की सख्या ही नहीं बढी, वरन् साधुओं की सख्या भी उत्तरोत्तर बढने लगी। देखते देखते ७०-७५ वर्ष के अल्प काल में यह सख्या ११०० तक जा पहुंची।

इधर नवदीक्षित साधुओं के शुद्ध आचार से लोंकागच्छ की जितने प्रबल वेग से उन्नति हुई, उतने ही वेग से कालान्तरमें पुन साधुओं के शिथिल आचार के कारण उस में ह्रास के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। सबसे अधिक फूट ने इस ह्रास में अपना योगदान दिया।

लोंकागच्छ के पट्टधर श्री श्रीभाणजी ऋषिजी म दूसरे श्री रूपऋषिजी म. और श्री जीवाजी ऋषिजी महाराज थे। श्रीजीवाजी म के तीन मुख्य शिष्य हुए। १ श्रीकुंवरजी ऋषिजी, २ श्रीवृद्धवरसिहजी म और ३ श्री श्रीमल्लजी महाराज। श्री जीवाजीऋषिजी म के स्वर्गवास के पश्चात् गच्छ के तीन विभाग हो गए। १ गुजराती लोंकागच्छ, २ नागोरी लोंकागच्छ, और ३ उत्तरार्द्ध लोंकागच्छ।

श्री वृद्धवरसिहजी म. के पाट पर श्रीलघुवरसिहजी म और उनके पाट पर अधिष्ठित श्री यशवतसिंहजी महाराज प्रसिद्ध विद्वान् साधु हुए। इनके समय में एक वजागजी मुनिश्री हुए। ये भी शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। सर्वसाधारण पर आपका पर्याप्त प्रभाव था। आद्य क्रियोद्धारक पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज ने इन्हीके सान्निध्य में यतिदीक्षा ग्रहण की थी। इनके समय तक सघ पुन अधोगति को प्राप्त कर चुका था। संयम में शैथिल्य, गच्छभेद, एव पारस्परिक वैमनस्य के कारण धर्म धर्मरूप में नहीं रहकर केवल क्रियाकांड रूप बन गया था। डेढ सौ वर्ष भी पूर्ण नहीं होने पाये, इतने अंतर में ही यह फिर अपनी पूर्वावस्था प्राप्त कर चुका था।

ऐसी परिस्थिति में एक किसी ऐसे महापुरुषकी आवश्यकता थी, जो अपने शुद्ध आचरण द्वारा इन सब परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर सारे सघमें शुद्धि का प्रचार कर सके। ऐसे ही समय में श्री लवजी ऋषिजी महाराज धार्मिक क्षेत्रमें अवतीर्ण हुए। उन्होंने अनेक घोर एव विषम परीषहों तथा विपत्तियों का सामना कर सयम मार्ग और ज्ञान मार्ग का उद्धार किया है।

परम पूज्य आद्य क्रियोद्धारक

पूज्य श्री लवजी ऋषि जी महाराज



श्री लवजी की माता का नाम फूलाबाई था। वह सूरत निवासी श्री वीरजी वोराजी की सुपुत्री थी। लवजी की शैशवावस्थामें ही उनके पिताका देहावसान हो गया। लवजी अत्यंत पुण्यशाली थे। पुण्य के प्रभाव से उनका चेहरा बचपन से ही कांतियुक्त था। गौर वर्ण, प्रशस्त ललाट, एवं मधुर वाणीद्वारा वे सबके प्रियभाजन थे। इनकी माता भी धर्मपरायणा थी। उनकी धार्मिक वृत्ति का बालक लवजी पर अच्छा संस्कार पड़ा। क्यों कि माता पिता के अच्छे बुरे जो संस्कार होते हैं, उन संस्कारों का प्रभाव गर्भावस्था से ही बालक के मानस पर पड़ने लगता है। और वे ही संस्कार, कालांतर में उसे गति प्रदान कर अच्छे बुरे मार्ग की ओर ले जाते हैं। धर्मपरायणा माता की धार्मिक वृत्ति देख कर बालक लवजी भी धार्मिक क्रियाओं में रुचि लेने लगे। माता प्रतिदिन सामायिक प्रतिक्रमण करती थी। सामायिक प्रतिक्रमण के समय माता के द्वारा उच्चारित सामायिक प्रतिक्रमण के पाठ को ग्रहण कर बिना सिखाए ही सुनते सुनते सारा प्रतिक्रमण कंठस्थ कर लिया।

एक दिन फूलाबाई अपने इस प्रिय पुत्र को ले कर श्री वज्रांगस्वामी के दर्शन करने गई। उन्हें वंदन कर फूलाबाई ने अपने शिशु पुत्र को दिखा कर कहा। महाराज! यह मेरा एकाकी पुत्र है, इसकी धार्मिक क्रियाओं में रुचि है। मेरे साथ यह भी, सामायिक के समय बैठता है। कृपा कर इसकी इस धार्मिक वृत्ति को पुष्ट करने के लिए आप इसे सामायिक प्रतिक्रमण आदि जीवनोपयोगी आवश्यक शास्त्र सिखाइये। गुरुदेव से यह निवेदन कर उसने बालक की ओर मुड़ कर कहा "पुत्र, तूँ प्रतिदिन महाराज सा. के दर्शन करने आया कर। आपके पास कुछ देर रह कर सामायिक प्रतिक्रमण आदि सीखा कर"। यह सुन कर बालक लवजी ने कहा "माँ! मुझे ये दोनों ही कंठस्थ हैं"।

श्री वज्रांगजी स्वामी बालक के शरीर पर के शुभ लक्षणों और चिन्होंको देख कर पहले ही उसकी ओर आकर्षित हो चुके थे। अब उसकी अद्भुत स्मरण शक्ति और प्रतिभा का दर्शन कर के तो वे फूले नहीं समाये। बालक की ओर अपनी इस प्रमोद वृत्ति तथा उसकी माता के आग्रह से वे उसे जैनागमों का अभ्यास कराने लगे। जिन में कि साधुओं की आचारविषयक क्रियाओं का विशेष रूप से प्रतिपादन है, ऐसे ही शास्त्रों का पहले बालक को अध्यापन कराया गया। उनमें मुख्य हैं-दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग आदि।

अहर्निश मनोयोग-पूर्वक शास्त्रीय अभ्यास करने और निर्मल बुद्धि से उनपर चिंतन करने से बालक के मानस पर धीरे धीरे संयम मार्ग की श्रेष्ठता का प्रभाव पड़ने लगा। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि शास्त्रों में भगवान् द्वारा प्रसारित संयम मार्ग (आत्मकल्याण का मार्ग) कितना सरल और सीधा है? धीरे धीरे शास्त्रों का परिशीलन करते २ बालक लवजी की आत्मा वैराग्य रंग में रंग गई। उन्हें सांसारिक पदार्थ अनित्य एवं असार भासित होने लगे अतः उन्हें इस संसार का वातावरण असह्य प्रतीत होने लगा, वे इसे छोड़ कर संयम मार्ग की ओर प्रवृत्त होने के लिये लालायित होने लगे। अब उनसे नहीं रहा गया तब उन्होंने अपने नानाजी वीरजी वोरा और अपनी माताके सामने दीक्षा विषयक हार्दिक भावना व्यक्त की। बालक की संयम मार्ग की ओर प्रवृत्त होने की उत्कट लालसा देखकर दोनों ने कहा-"यदि वजांगजी स्वामी के पास दीक्षा लेना स्वीकार करते हो तो हम दीक्षा लेने की अनुमति दे सकते हैं।" यह सुनकर मुमुक्षु लवजी ने सोचा, समय ही ऐसा है, अतः एव इस समय इनके पास दीक्षा ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं। फिर प्रगट रूप से अपनी माता की ओर मुड़कर कहा-"मुझे आपकी बात मजूर है, मैं शीघ्र ही वजांग स्वामी के पास अपने विचार प्रकट कर उसके पास ही दीक्षा अंगीकार करूँगा'।

वजांगजी स्वामी तो उन्हें बचपन से ही जानते थे। आचारांग आदि शास्त्रों का अभ्यास भी उन्होंने ही कराया था। अतएव उन्हें दीक्षा देने में क्या आपत्ति हो सकती थी? उन्होंने लवजी की प्रार्थना तुरत स्वीकार कर ली। बादमें स्वामी वजांगजी से श्री वीरजी की लिखित स्वीकृति प्राप्त होने पर संवत् १६६२ में सूरत निवासी श्रीमान् वीरजी वोरा ने बड़े समारोह पूर्वक लवजी को दीक्षा दिलाई।

श्री लवजी दो वर्ष तक अपने गुरु के पास रहे, पर इतने अल्प काल में ही तत्कालीन साधु—संस्था में शिथिलाचार देख कर उनका हृदय काँप उठा। वे साधु समुदाय में संयम का उत्कृष्ट रूप देखना चाहते थे। पर वह वहां उन्हें नहीं दिखाई दिया। अंत में उन्होंने शिथिलाचार से क्षुब्ध होकर अपने गुरुदेव से निवेदन कर दशवैकालिक सूत्र की लिखित गाथा कही।

दस अट्ठ य ठाणाइ, जाइं बालो वरज्झइ।
तत्थ अन्नयरे ठाणे, निग्गंथत्ताओ भस्सई॥ दश०॥ अ ६ गाथा ७॥

शास्त्रों में तो साधुओं के आचार विचार के विषय में इस प्रकार कहा गया है, पर आज कल उससे बहुत भिन्न प्रतीत होता है, इसका क्या कारण है? ऐसा सुनकर भी गुरुदेव ने इस ओर कुछ लक्ष्य नहीं दिया। अंत में बहुत कुछ कहने पर गुरुदेव वजांगजी स्वामीने कहा "मैं अब वृद्ध हो चुका हूँ शरीर शिथिल हो गया है, मेरे द्वारा संयम मार्गमें दृष्ट गहन तब इस फैले हुए शिथिलाचार को मिटाना शक्य नहीं"

तब श्री लवजी ने पुनः उनसे निवेदन किया "यदि आप अब यह कष्ट नहीं उठा सकते, तो क्या मैं आपकी अनुमति लेकर इस दिशा में कुछ कार्य कर सकता हूँ ? मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके शुभाशीर्वाद से मैं अपने शुद्ध जीवन, शुद्ध क्रिया और सतत ज्ञान साधना द्वारा अवश्य साधु संस्था को पुनः शुद्ध संयम मार्ग की ओर प्रवृत्त कर सकूँगा। इस पर श्री बजरंगजी स्वामी ने उन्हें सहर्ष साधुओं में फैले हुए शिथिलाचार को मिटाने की अनुमति दे दी।

अपने गुरु से अनुमति प्राप्त कर श्री लवजी ऋषिजी महाराज श्री थोभण ऋषिजी म० और श्री भानु ऋषिजी म० ऐसे तीन ठाणे उनसे पृथक् होकर विहार कर दिये। सर्व प्रथम ये ३ ठाणे सूरत से प्रस्थान कर खंभात गये। वहां नगर के बाहर उद्यान में ठहर कर अरिहंत सिद्ध भगवान् की साक्षी पूर्वक आपने पांच महाव्रतों का उच्चारण कर शुद्ध संयम धारण किया और कमर कस कर क्रियोद्धार के लिये तत्पर हो गये। संवत् १६९४ में आपने क्रियोद्धार का कार्य प्रारंभ किया।

क्रियोद्धार के विषम कार्य में प्रवृत्त होने पर आपको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पहले पहल खंभात के नवाब ने आपकी इस प्रवृत्ति को आपत्तिजनक ठहरा कर नजरकैद किया। बंदी बनाने में आप के नानाजी का हाथ था। अहमदाबाद में आपके एक साथी को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। अन्तिम अवस्था में आपको जिस मारणांतिक परीषह का सामना करना पड़ा, वह अत्यंत रोमांचक है। इस बात का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज ने अपने ज्ञान तथा तपोमय जीवन द्वारा भारी कीर्ति प्राप्त कर ली थी। सर्व साधारण लोग आपके शुद्ध क्रियामय जीवन से आकर्षित थे। त्याग ही आपश्री का जीवन था। और इस देश की जनता त्याग से ही आकर्षित होती है। आपकी इस कीर्ति को उस समय का यति समाज सहन नहीं कर सका। यति वर्ग आचार में शिथिल तो पहले ही था। साधना द्वारा यह आपका-सा उत्कृष्ट जीवन व्यतीत करने में असमर्थ था।

उस वर्ग ने आपको अनेक कष्ट पहुंचाये, पर जब वह समाज अपने प्रयत्नों में सफल नहीं हो सका, तब अंत में जब आप बरहानपुर के अंतर्गत ईदलपुर पधारे, उस समय वहां के यतियों ने विचार किया कि "जबतक श्री लवजी ऋषि बने रहेंगे हमारी किसी प्रकार प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। इसलिये यथा शक्य शीघ्र से शीघ्र इनके प्राणों का अपहरण करनेमें ही हमारा कल्याण है,,। ऐसा निश्चय कर एक यतिने दो विष मिश्रित लड्डू तैयार किये। मोदक तैयार कर उसने उन्हें एक रंगारिनबाई (सौराष्ट्रदेश में प्रसिद्ध भावसार जातिकी बाई) को देकर कहा " जब तपस्वी मुनि श्री गोचरी के लिये पधारें, तब उन्हें वहरा देना, मैं स्वयं उन्हें वहराने वाला था, पर वे हमारे यहाँ नहीं आने से तुम्हें दे रहा हूँ।

बेले (दो दिन की तपस्या) के पारणे के निमित्त जब पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज गोचरी के लिये पधारे, तब रास्ते में उस रंगारिन बाई का घर मिलने पर उसने महाराजश्री से निवेदन किया। गुरुदेव! मेरा घर भी पवित्र कीजिये। महाराज श्री जब उसके घर पधारे, तब उसने विषमिश्रित लड्डुओं में से एक आपको वहरा दिया। इस विष-मिश्रित मोदक का तत्काल आप पर प्रभाव हुआ। आपने समझ लिया कि अब मेरी जीवन—सन्ध्या निकट है। ऐसा सोचकर तत्काल संथारा (अनशन) ग्रहण कर लिया। और समभावपूर्वक अपना भौतिक देह छोड़ने के पूर्व आपने शिष्य, श्री सोमजी ऋषिजी महाराज को कहा। यह अत्यन्त निर्दय प्रदेश है, अतः इस प्रदेश में नहीं विचरते हुए यहां से विहार कर गुजरात की ओर चले जाओ। इस प्रकार कह सब प्राणियों से क्षमा-याचना कर नमोकार मंत्र का स्मरण करते हुए आपश्री स्वर्ग सिधार गये।

अंत में पाप कहांतक छिपा रह सकता है? पता लगानेपर उस विषमिश्रित मोदक को वहराने की घटना प्रकट हो गई। इससे यति-समाज का गर्हित रूप जनता के सामने आ गया। लोग पूज्यश्री के स्वर्गवास से बहुत दुःखी थे। इधर इस घटना ने लोगों के सामने धर्मका सच्चा स्वरूप प्रकट कर दिया। अब लोगों के मनमें यति-समाज के प्रति जो थोड़ी-बहुत श्रद्धा थी, वह भी कम होने लगी, जीवितावस्था में वे अपने सचरणशील भौतिक देह द्वारा उपदेश देकर जिस शुद्ध धर्म—मार्ग की पुनः स्थापना करना चाहते थे, उनके त्यागी जीवन द्वारा आपश्री के स्वर्गवास के बाद भी उसी प्रकारसे शुद्धिकरण की यह भावना निरवच्छिन्न रूप से प्रवाहित रही। आपने जीवन के उत्सर्ग द्वारा मुनिवृंद के सामने आपश्री ने वह श्रेष्ठ उदाहरण रखा, जिसका पदानुसरण कर हमारा त्यागी साधुवृंद उसी कार्य में सतत संलग्न रहे और आपके द्वारा शुद्धिकरण की प्रज्वलित की हुई ज्योति को जलाये रखे।

पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी महाराज

पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज की सेवा में अहर्निश साथ रहनेवाले श्री सोमजी ऋषिजी म. आपके पट्ट शिष्य थे। उन्होंने भी आपके कार्य में पर्याप्त हाथ बटाया। यही नहीं पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म. के दिवंगत होने के बाद आपने अपने गुरु द्वारा प्रचलित कार्यको सतत रूपसे जारी रखा और अहमदाबाद गुजरात आदि की ओर विहार कर धर्म की प्रभावना की। पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज जिस प्रकार बेले बेले की अखंड तपस्या करते थे, उसी प्रकार आपने भी तपश्चर्या को जीवन-शुद्धि का मुख्य अंग मान कर जीवनपर्यंत तपस्वी जीवन व्यतीत किया। शास्त्रों के

ज्ञाता तो आप थे ही। संयम और तपश्चर्या के साथ आप स्वभावतः अत्यंत सरल थे। अत एव आप के इन उत्कृष्ट गुणों से मुग्ध होकर आपको शिष्यों का भी अच्छा सुयोग प्राप्त हुआ।

उपाध्याय मुनि श्री हस्तिमलजी महाराज द्वारा प्राप्त विस्तृत पट्टावली, लोंकागच्छ पट्टावली, प्रांतीय मंत्री मुनिश्री पन्नालालजी महाराज द्वारा प्राप्त पद्यमय पट्टावली तथा अन्य प्राचीन पट्टावलियों में जिन श्रेष्ठ मुनिवृन्द का नाम है, उनमें अधिकतर आपके ही शिष्य एवं आज्ञानुवर्ती थे। पट्टावली से ज्ञात होता है कि आपके इक्कीस शिष्य थे। उत्तरार्द्ध लोंकागच्छ में एक यति श्री हरदासजी थे, वे आपके संयमपूर्ण जीवन से बहुत प्रभावित होकर एक बार अहमदाबाद आकर आपकी सेवा में उपस्थित हुए और साधुजीवन विषयक अनेक प्रकार की चर्चा करने के बाद आपसे पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी महाराज के पास पुनः शुद्ध संयम धारण कर शिष्यत्व ग्रहण किया। उनके द्वारा प्रचलित शाखा भी ऋषिसम्प्रदाय की शाखा है जो कि आज कल पंजाब सम्प्रदाय के नामसे प्रख्यात है।

अहमदाबाद में पूज्य श्री धर्मसिंहजी महाराज के साथ आपकी छह कोटि आठ कोटि आदि संबंध में चर्चा हुई। पर पूज्य श्री धर्मसिंहजी महाराज द्वारा अपनी परंपरा नहीं छोड़ने के कारण आपको इसमें पर्याप्त यश नहीं मिला। फलतः दोनों विद्वान् विद्वान् अपने समय में पृथक् पृथक् सम्प्रदाय के महारथी बने। पूज्यश्री ने अपनी विद्वत्ता, संयम, त्यागपूर्ण जीवन एवं सरलता द्वारा चारों ओर कीर्ति फैलाई थी। गुजरात, काठियावाड़, आदि प्रान्तों में सतत विहार कर धर्म का व्यापक प्रसार किया। तेईस वर्ष की अवस्था में आपने दीक्षा ग्रहण की। चौबीस वर्ष तक शुद्ध संयम का पालन किया और चारों ओर धर्म प्रचार के लिए अपने साधु-साध्वियों को भेज कर धर्म की रक्षा की।

पूज्य श्री कहानजी ऋषि जी महाराज

पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी महाराज के सुशिष्य कहानजी ऋषिजी महाराज थे। आपने पू० सोमजी ऋषिजी म० के समीप ही दीक्षा ग्रहण की थी। आप विद्वत्ता में अपने गुरु से भी बढ़कर थे। उनकी धारणा शक्ति अद्भुत थी। आपको चालीस हजार गाथाएँ कंठस्थ थी। इतनी गाथाओं का कंठस्थ करना प्रत्येक व्यक्ति द्वारा संभव नहीं। अपने गुरु की तरह पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी म० ने भी मालवप्रान्त में जैन धर्म का बहुत प्रचार किया। उन्हें हुए इतने वर्ष हो जाने पर भी लोग आज तक आपके नामका स्मरण करते हैं। आपने अनेक भव्य प्राणियों को सत्पथ दिखाकर

कल्याण मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। शास्त्रों में अभिरुचि, संयमपूर्ण उत्कृष्ट जीवन, शांत स्वभाव, सरल और गंभीर प्रकृति होने से आपके सान्निध्य का लाभ उठाने के लिये अनेक मुमुक्षु व्यक्तियों ने आपके पास दीक्षा ग्रहण की, परन्तु उपलब्ध नामों में केवल पाँच का ही उल्लेख है। आपने भी अपने गुरु की तरह तेईस वर्ष की अवस्था में दीक्षा अंगीकार की, आपश्री के मुखारविंद से शास्त्रों के गहन अर्थ को सुनकर पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज को वैराग्य प्राप्त हुआ और उन्होंने संवत् १७१६ में स्वयं दीक्षा ग्रहण की। श्री धर्मदासजी महाराज के सम्प्रदाय की जो पट्टावली प्रकाशित है। उसमें ऐसा उल्लेख है। आपका स्वर्गवास आपनी प्रचार भूमि मालव प्रांत में हुआ।



पूज्य श्री रणछोड़ऋषि जी महाराज

आप पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी म. के समीप दीक्षित हुए। अपने गुरु की तरह आपका भी शास्त्रीय ज्ञान अच्छा था। आचार-विचार के साथ शुद्ध संयम मार्ग की ओर प्रवृत्ति होनेसे पूज्य श्री के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके पाट पर आप ही पूज्य पदवी से अलंकृत कर अधिष्ठित किये गये। आपका शिष्य-परिवार भी पर्याप्त था। लगभग चौदह भव्य मुमुक्षु साधकों ने आपके पास दीक्षा ग्रहण कर अपना आत्म-कल्याण किया।



पूज्य श्री ताराऋषिजी महाराज

आपश्री की दीक्षा पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के समीप हुई। दीक्षा लेने के बाद थोड़े समय में ही आप आगमों का गंभीर अध्ययन कर आगमों के ज्ञाता हुए। आप प्रकृति से गंभीर सेवाभावी सरल हृदय एवं अध्ययनपरायण संत थे। पूज्य श्री रणछोड़ ऋषिजी म. का स्वर्गारोहण होनेपर श्रीसंघने आपश्री के कंधोंपर सारे संघ का भार डाला, अर्थात् आपको पूज्य पदवी से अलंकृत किया। संवत् १८१० में पचेवर में चार सम्प्रदायों का सम्मेलन हुआ। उनमें प्रथम सम्प्रदायाधीश पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म. के तृतीय पाटपर अधिष्ठित पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज (मालव शाखा) की ओरसे आप ही प्रतिनिधि रूपसे पधारे। उसमें आपका स्थान अग्रगण्य था। साथ में श्री तिलोक ऋषिजी म., श्री मीठाऋषिजी म. और सतियों में सतीशिरोमणि राधाजी म. आदि थे। वहां जाकर आपने महत्त्वपूर्ण भाग लिया। आपके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सम्मेलन में कुछ नियम बनाये गये।

आपश्री के करीब बाईस शिष्य हुए। उनमें से श्री काला ऋषिजी म. ने मालव प्रान्त में विचरण किया। श्री मंगल ऋषिजी म. ने आपश्री के साथ खंभात की ओर

विहार किया और धर्म की प्रभावना की। मालव प्रान्त में श्री काला ऋषिजी म. ने धर्म का बहुत प्रचार किया।

मालव प्रांतीय पूज्य श्री कालाऋषिजी महाराज

पूज्य श्री तारा ऋषिजी महाराज की शिष्य-परंपरा का कालक्रम भिन्न प्रान्तों में विचरण काल में परस्पर भेद नहीं होने के कारण दो शाखाओं में विभाजन हुआ। उसमें एक है खंभात शाखा और दूसरी मालवप्रांतीय शाखा। मालवप्रांतीय शाखा के पूज्य श्री कालाऋषिजी म. थे। पूज्य श्री तारा ऋषिजी म. के बाद पर आपश्री को अभिषेक द्वारा पूज्य पदवी से अलंकृत किया गया। रतलाम, जावरा, मंदसौर, शुजालपुर, शाजापुर, आगर, भोपाल, आदि क्षेत्रों में आपने उग्र विहार कर धर्म की बहुत प्रभावना की। आपका स्वभाव अत्यंत शान्त था। आपने अपने गुरु पूज्य श्री तारा ऋषिजी म. के शुभ नाम को अपने उज्ज्वल एवं उग्र चारित्र तथा विशुद्ध ज्ञान से बहुत प्रकाशित किया। आपके पास भी अनेक मुमुक्षु आत्माओं ने दीक्षा ग्रहण की। परन्तु उपलब्ध नाम केवल चार ही हैं। १ बख्तावरजी ऋषिजी म. २ श्री मंगलऋषिजी म., ३ श्री दौलत ऋषिजी म. और ४ श्री प्रसादलालजी ऋषिजी म.। ये मुनि श्री इत्यादि ऋषिजी म. उच्चकोटि के विद्वान् एवं शास्त्रज्ञ थे। और बड़े लालजी ऋषिजी महाराज तपस्वी थे।

पूज्य श्री बख्तुऋषिजी महाराज

पूज्य श्री कालाऋषिजी महाराज के सदुपदेश से हुआ। आपका गार्हस्थ्य जीवन वैभव पूर्ण था। फिर भी संसार के समस्त विलासी पदार्थों का त्याग कर आपने तदनंतर पूज्य श्री के समीप रहकर शास्त्रों का तलस्पर्शी और अपने गुरुकी साधनाभूमि मालव प्रांतमें विचरण कर ... बारित किया। आपके सद्गुणों से अत्यंत प्रभावित ... पूज्य श्री कालाऋषि जी महाराज के पश्चात् आप श्री ... आपने पूर्वपरम्परागत आचार्य पदको अत्यंत दक्षता के साथ ... भी अनेक शिष्य हुए उनमें दो की अत्यंत प्रसिद्धि हुई। ... पृथ्वीऋषिजी महाराज और (२) पूज्य श्री धन्नजीऋषिजी ... मालवप्रांतके संत-सतियों की विशाल परिषद्‌ तथा ख्याति भी ... पंडित ही नहीं थे। शास्त्रीय ज्ञान के ... इन अलौकिक गुणों के कारण अनेक

पूज्य श्री धनजी ऋषिजी महाराज

आपश्री की दीक्षा मालवप्रांत में पूज्य श्री बहुऋषिजी महाराज के समीप हुई। दीक्षा के पहले बचपन से ही आपका जीवन-वैराग्य भावना से परिपूर्ण था। आपने भी अपने अन्य पूर्व गुरुजनों की तरह गुरुचरण कमलों में रहकर विनम्र भावसे आगमों का गभीर अभ्यास किया। आपके गुरुबधु पंडितमुनि श्री पृथ्वीऋषिजी म० भी आगमों के प्रकाड विद्वान् थे। आपकी शात एव सौम्य प्रकृति से सर्व साधारण आप से बहुत प्रभावित थे। इन्हीं गुणों से मुग्ध होकर आपश्री को चतुर्विध श्री सघ ने ऋषिसम्प्रदाय में (मालव प्रातीय शाखा) आचार्य पद पर अधिष्ठित किया। ऐसा प्रवाद है कि आप की आचार्य-पदवी मालवप्रातान्तर्गत शुजालपुर क्षेत्र में हुई। उस समय प० रत्न मुनि श्री पृथ्वीऋषिजी म० अपने शिष्य-परिवारसहित शाजापुर में विराजमान थे। मुनि-वृन्द तथा श्रावकों द्वारा सुना गया है कि आपश्री के समय में सतो की सख्या १२५ और सतियों की सख्या लगभग १५० थी।

ऋषिसम्प्रदाय के साधु-साध्वियों ने अनेक कष्ट तथा परीषह सहन कर बहुत से क्षेत्रों में धर्म का प्रकाश फैलाया है। प्रतापगढ़, मन्दसौर, रतलाम, आवरा, भोपाल, शुजालपुर, सिहोर, शाजापुर, सारगपुर, आष्टा, मगरदा, उज्जैन, इन्दौर, आदि क्षेत्रों में इन्होंने अपने प्रचार द्वारा धर्मका बीज बोया। वे सदैव अपने उद्देश धर्म प्रचार को सफल करने के लिये प्रयत्नशील रहे। इन सब मुनियों और साध्वियों के अथक परिश्रम से ऋषिसम्प्रदाय उन्नति के शिखर तक पहुँच गया।

कालका स्वभाव परिवर्तनशील है। अब उन्नति के चक्र ने विपरीत दिशा में चक्कर लगाना प्रारंभ किया। पूज्य श्री धनजीऋषिजी महाराज के समय में परिस्थिति बदलने लगी। उन्नति के बाद अवनति होना यह सासारिक नियम है। उत्थान के बाद पतन होता है। कलिकाल के प्रभाव से कुछ मतभेद के कारण सम्प्रदाय में दो विभाग हुए। एक पक्ष प रत्न श्री पृथ्वीऋषिजी महाराज का और दूसरा पक्ष पूज्य श्री धनजीऋषिजी महाराज का था। इन दोनों प्रभावशाली दिग्गज विद्वानों के अद्भुत प्रभाव के कारण साधु-साध्वियों भी दो पक्षों में विभाजित हो गई। यह पक्ष-भेद ही कलह का कारण हुआ। कलह चाहे जितना सूक्ष्म हो, फिर वह समाज, प्रात, देश तथा राष्ट्र कहीं पर क्यों न हो, सबका नाश कर डालता है। इतिहास इसका साक्षी है।

यद्यपि पक्षभेद के कारण ऋषि सम्प्रदाय के सघ में मतभेद हुआ, तथापि ये दोनों महापुरुष इतने अधिक विवेकसंपन्न, बुद्धिमान् एवं समय-सूचक थे, कि इनके इन गुणों से सघ में सघर्ष नहीं हुआ। आपस में मतभेद होने के कारण ये दोनो पृथक्

विहार किया और धर्मकी प्रभावना की। मालव प्रान्त में श्री काला ऋषिजी म. ने भी धर्म का बहुत प्रचार किया।

मालव प्रांतीय पूज्य श्री कालाऋषिजी महाराज

पूज्य श्री तारा ऋषिजी महाराज की शिष्य-परंपरा का केवल भिन्न प्रान्तों में विचरण करने से परस्पर भेंट नहीं होने के कारण दो शाखाओं में विभाजन हुआ। उसमें एक है खंभात शाखा और दूसरी मालवप्रांतीय शाखा। मालवप्रांतीय शाखा के पूज्य श्री कालाऋषिजी म. थे। पूज्य श्री तारा ऋषिजी म. के पाट पर आपश्री को श्रीसंघ द्वारा पूज्य पदवी से अलंकृत किया गया। रतलाम, जावरा, मंदसौर, शुजालपुर, शाजापुर, आगर, भोपाल, आदि क्षेत्रों में आपने उग्र विहार कर धर्म की बहुत प्रभावना की। आपका स्वभाव अत्यंत शीतल था। आपने अपने गुरु पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी म. के शुभ नाम को अपने उज्ज्वल एवं उच्च चरित्र तथा विशुद्ध ज्ञान से बहुत प्रकाशित किया। आपके पास भी अनेक मुमुक्षु भाविकों ने दीक्षा ग्रहण की। परन्तु उपलब्ध नाम केवल चार ही हैं। १ बख्तालजी ऋषिजी म. २ श्री बछुऋषिजी म., ३ श्री दौलत ऋषिजी म. और ४ श्री छोटे लालजी ऋषिजी म.। ये मुनि श्रीबछु ऋषिजी म. उच्चकोटि के विद्वान् एवं शास्त्रज्ञ थे। और बड़े लालजी ऋषिजी महाराज तपस्वी थे।

पूज्य श्री बछुऋषिजी महाराज

पूज्य श्री कालाऋषिजी महाराज के सदुपदेश से आपको वैराग्य प्राप्त हुआ। आपका गार्हस्थ्य जीवन वैभव पूर्ण था। फिर भी उत्कट वैराग्य भाव से संसार के समस्त विलासी पदार्थों का त्याग कर आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की। तदनंतर पूज्य श्री के समीप रहकर शास्त्रों का तलस्पर्शी अध्ययन आपने किया और अपने गुरुकी साधनाभूमि मालव प्रांतमें विचरण कर जिनशासन को बहुत गौरवान्वित किया। आपके सद्गुणों से अत्यंत प्रभावित होकर चतुर्विध श्रीसंघने पूज्य श्री कालाऋषि जी महाराज के पश्चात् आप श्री को आचार्य-पद प्रदान किया। आपने पूर्वपरंपरागत आचार्य पदको अत्यन्त दक्षता के साथ संभाला। आपश्री के भी अनेक शिष्य हुए उनमें दो की अत्यंत प्रसिद्धि हुई। जिनके नाम हैं (१) श्री पृथ्वीऋषिजी महाराज और (२) पूज्य श्री धनजीऋषिजी महाराज। आपके समय में मालवप्रांतके संत-सतियों की विशेष प्रतिष्ठा तथा ख्याति थी। आप केवल शास्त्रज्ञ पंडित ही नहीं थे। शास्त्रीय ज्ञान के साथ तपस्वी तथा शुद्धक्रियारत थे। आपके इन अलौकिक गुणों के कारण जनसाधारण पर आपका पर्याप्त प्रभाव था।

पूज्य श्री धनजी ऋषिजी महाराज

आपश्री की दीक्षा मालवप्रांत में पूज्य श्री वधुऋषिजी महाराज के समीप हुई। दीक्षा के पहले बचपन से ही आपका जीवन-वैराग्य भावना से परिपूर्ण था। आपने भी अपने अन्य पूर्व गुरुजनों की तरह गुरुचरण कमलों में रहकर विनम्र भावसे आगमों का गंभीर अभ्यास किया। आपके गुरुबंधु पंडितमुनि श्री पृथ्वीऋषिजी म० भी आगमों के प्रकांड विद्वान थे। आपकी शान्त एवं सौम्य प्रकृति से सर्व साधारण आप से बहुत प्रभावित थे। उन्हीं गुणों से मुग्ध होकर आपश्री को चतुर्विध श्री संघ ने ऋषिसम्प्रदाय में (मालव प्रांतीय शाखा) आचार्य पद पर अधिष्ठित किया। ऐसा प्रवाद है कि आप की आचार्य-पदवी मालवप्रान्तान्तर्गत शुजालपुर क्षेत्र में हुई। उस समय पं० रत्न मुनि श्री पृथ्वीऋषिजी म० अपने शिष्य-परिवारसहित शाजापुर में विराजमान थे। मुनि-वृन्द तथा श्रावकों द्वारा सुना गया है कि आपश्री के समय में सन्तों की संख्या १२७ और सतियों की संख्या लगभग १४० थी।

ऋषिसम्प्रदाय के साधु-साध्वियों ने अनेक कष्ट तथा परीषह सहन कर बहुत से क्षेत्रों में धर्म का प्रकाश फैलाया है। प्रतापगढ़, मन्दसौर, रतलाम, जावरा, भोपाल, शुजालपुर, सिहोर, शाजापुर, सारंगपुर, आष्टा, मगरदा, उज्जैन, इन्दौर, आदि क्षेत्रों में उन्हों ने अपने प्रचार द्वारा धर्मका बीज बोया। वे सदैव अपने उच्च धर्म प्रचार को सफल करने के लिये प्रयत्नशील रहे। इन सब मुनियों और साध्वियों के अथक परिश्रम से ऋषिसम्प्रदाय उन्नति के शिखर तक पहुँच गया।

कालका स्वभाव परिवर्तनशील है। अब उन्नति के चक्र ने विपरीत दिशा में चक्कर लगाना प्रारंभ किया। पूज्य श्री धनजीऋषिजी महाराज के समय में परिस्थिति बदलने लगी। उन्नति के बाद अवनति होना यह सांसारिक नियम है। उत्थान के बाद पतन होता है। कलिकाल के प्रभाव से कुछ मतभेद के कारण सम्प्रदाय में दो विभाग हुए। एक पक्ष पं० रत्न श्री पृथ्वीऋषिजी महाराज का और दूसरा पक्ष पूज्य श्री धनजीऋषिजी महाराज का था। इन दोनों प्रभावशाली दिग्गज विद्वानों के अद्भुत प्रभाव के कारण साधु-साध्वियाँ भी दो पक्षों में विभाजित हो गईं। यह पक्ष-भेद ही कलह का कारण हुआ। कलह चाहे जितना सूक्ष्म हो, फिर वह समाज, प्रान्त, देश तथा राष्ट्र. कहीं पर क्यों न हो, सबका नाश कर डालता है। इतिहास इसका साक्षी है।

यद्यपि पक्षभेद के कारण ऋषि सम्प्रदाय के संघ में मतभेद हुआ, तथापि ये दोनों महापुरुष इतने अधिक विवेकसम्पन्न, बुद्धिमान् एवं समय-सूचक थे, कि इनके इन गुणों से संघ में संघर्ष नहीं हुआ। आपस में मतभेद होने के कारण ये दोनों पृथक्

पृथक् विचरे, पर इस बात का पूर्ण ध्यान रखा कि यह मतभेद कहीं पृथकता की दीवाल नहीं बन जाय, जिस से कालांतर में पुन एक होना सर्वथा अशक्य हो जाय। दोनों महापुरुषों ने अत्यंत योग्य तथा समर्थ होने पर भी अपने अलग अलग पूज्य स्थापित नहीं किये। यही इन दोनों की दीर्घदर्शिता थी। आपश्री के पाँच शिष्य हुए। उनमें प्रभावशाली और शास्त्रज्ञ श्रीअयवंता ऋषिजी महाराज थे।

पूज्यपाद श्री अयवंता ऋषिजी महाराज

आपकी दीक्षा भी बाल्यावस्था में पूज्य श्री धनजी ऋषिजी म० के समीप हुई। बचपन से ही आपकी स्वाध्याय की ओर रुचि थी। अतएव दीक्षा अंगीकार करते ही आप दत्तचित्त होकर शास्त्रों के अध्ययन में लग गये। फलत आप शास्त्रों के भी अच्छे ज्ञाता हुए। आप का प्रवचन रोचक, मधुर और प्रभावशाली होता था। आप में एक खास विशेषता यह थी कि आपकी दृष्टि बडे बडे शहरों की ओर नहीं रहकर छोटे छोटे ग्रामों की ओर रहती थी। अतएव आपने शहरों की ओर विहार नहीं कर अधिकतर ग्रामों की ओर ही विहार किया। एक बार आप विहार करते हुए संवत् १९१४ में रतलाम पधारे। यहा आपने प्रभावशाली व्याख्यान का स्थायी प्रभाव पड़ा। अध्यात्म-मार्ग पर इतना अच्छा प्रकाश डाला कि उससे प्रभावित होकर एक साथ एक ही दिन चार मुमुक्षु साधकों ने आपके पास रतलाम में ही भागवती दीक्षा ग्रहण की। उनके नाम क्रमश ये है। —१ तपस्वी श्रीकुंवर ऋषिजी महाराज, २ श्री तिलोक ऋषिजी म०, ३ श्री नानूबाई और ४ श्री हीराबाई। इन दोनों बाइयों ने क्रमश तपश्चर्या और ज्ञान योग की साधना कर अपना जीवन सार्थक तथा सफल बनाया है।

संवत् १९१४ के बाद जहा कहीं चातुर्मास हुए, वे सब ऋषि सम्प्रदाय के इतिहास म व्योरे वार प्रकाशित है। अत में आपश्री मालवप्रांत में सिहोर, शुजालपुर आदि क्षेत्रों को स्पर्शकर मेंसरोडा नामक ग्राम में पधारे। यहाँ अपनी शारीरिक स्थिति का विचार कर आपने अनशन व्रत अंगीकार कर लिया और अंतिम समय में संलेखना कर के संवत् १९ २ आषाढ शुक्ल नवमी के रोज समभावपूर्वक अपना यह पाचभौतिक देह छोडकर स्वर्ग सिधारे। आपके कुल सात शिष्य हुए। उनमें प्रभावशाली दो थे। (१) श्रीलालऋषिजी महाराज और (२) कविकुलभूषण पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज।

पूज्यपाद कविवर श्री १००८ श्री तिलोकऋषिजी महाराज

का

जीवन वृत्त

जन्मभूमि तथा पूर्वचरित

मध्यप्रदेश (मालवा) प्राचीन काल से बहुत प्रसिद्ध है। विक्रमादित्य, भोज जैसे प्रसिद्ध सम्राट् मालव प्रांत में ही हुए। कविकुल गुरु कालिदास तथा माघ जैसे श्रेष्ठ कवियों ने इसी भूमि को अलकृत किया। इसी इतिहास प्रसिद्ध प्रांत में बहुत प्राचीन काल से रतलाम (रत्नपुरी) नामक नगर स्थित है। वहां ओसवाल जाति के सुराणा कुल में उत्पन्न ऐश्वर्य सपन्न एवं प्रतिष्ठित श्री दुलीचदजी नामक सेठ रहते थे। बचपन से ही सन्तों के सहवास में रहने के कारण आपकी अपने धर्म की ओर विशेष रुचि थी। लक्ष्मीदेवी की भी आप पर कृपा थी। इहलौकिक सुख सुविधा तथा भोगोपभोग का पूर्ण साधन होने पर भी आप उससे "पद्मपत्रमिवाम्भसा" पानी में अलिप्त रहने वाले कमलपत्र की तरह निर्लिप्त रहते थे। किसी ने यथार्थ कहा है —

वसन् विषयमध्येऽपि, न वसत्येव बुद्धिमान् ।
संवसत्येव दुर्बुद्धि-रसत्सु विषयेष्वपि ॥ १ ॥

बुद्धिमान् व्यक्ति सासारिक विषय वासना के मध्य रहकर भी उससे उदासीन रहते है, पर दुर्बुद्धि लोग अनित्य विषयों में कुछ भी सासारिक सुखोपभोगों का साधन नही होने पर भी सदैव उनमें लीन रहते है। असत् विषयों में भी वास्तविक विषय रस का आस्वादन करते है।

सेठजी को बाह्य दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता था कि इनकी व्यापारादि बाह्य-प्रवृत्तियाँ इतनी अधिक तथा इतने विपुल परिमाण मे फैली हुई है। इससे इनका अधिकतर समय इन सब की व्यवस्था में ही व्यतीत होता होगा, पर वस्तुत उनके निकट रहने पर उनके मानस तथा दिनचर्या का सही सही पता चलता था। वे अपना विशेष समय सत मुनियों के सहवास मे व्यतीत करते थे। सत समागम के कारण शास्त्रों का श्रवण मनन तो अनायास ही चलता रहता था। निरंतर सत्संगति तथा सच्छास्त्रों के श्रवण में अपना अधिकतर समय व्यतीत करने से आपकी वृत्ति बाह्य ओर से हटकर धर्म की ओर हो गई थी। धर्म के लिए वे अपना तन-मन और धन न्योछावर करने के लिए सदैव कटिबद्ध रहते थे।

सेठ दुलीचदजी की धमपत्नी का नाम नानूबाई था। वह भी अपने पति क अनुरूप धम परायणा थी। पवित्र आचार–विचार तथा पातिव्रत्य धम की वह मगल मूर्ति थी। दोनों समय सदव सामायिक–प्रतिक्रमणादि आवश्यक कतव्य करती थी। सत्पात्र को दान देना तथा सत्कार्यों की ओर प्रवत्ति य उसके जीवन क विशद अग थ। उनका जीवन कवल एकाकी नही था। धार्मिक ज्ञान तथा चारित्र क विकास म वह जितनी ऊंची उठी थी उतनी ही सासारिक व्यवहार को निबाहन म रुचि लेती थी। यहाँ तक कि वह अनक बार अपने पति की सासारिक कठिन समस्याओं का अपनी राय देकर सुलझा देती थी। इस प्रकार अपन पति क अतरंग और बाह्य जीवन क साथ पूण रूप से एकाकार होकर नानूबाई न अर्द्धांगिनी शब्द को साथक किया था।

इस प्रकार सासारिक और पारमार्थिक जीवन व्यतीत करते हुए सठ दुली-चदजी क चार सततियाँ हुइ। उनमें प्रथम धनराजजी दूसरे कुवरमलजी और तीसरी हीराबाई नामक सुपुत्री थी। चतुथ सतति थी हमारे चरित्र नायक श्री तिलोकऋषिजी महाराज। आपका जन्म सवत् १९०४ चत्र कृष्ण ततीया बुधवार को हुआ। जन्म के समय आपका शरीर सत्यान शास्त्रों म वर्णित श्रेष्ठ पुरुषों के समान था। आकृति भव्य थी प्रशस्त ललाट और अलाह्लादकारी आकषक सुवर्ण वण था। शिशु स्वभावत सबके प्रिय होत ह पर आपकी वह भव्याकृति बरबस सबको अपनी ओर आकर्षित करती थी। माता ने अपन पुत्र के रूप–गुण के अनुसार उसका यथाथ नाम तिलोकचद रखा। जो तीनों लोक में चद्रमा के समान शीतल प्रकाश करने वाला हो। श्री तिलोकचद के जन्म ग्रहण करन के चार माह पहल ही उनके पिता का देहावसान हो गया। इसलिए आप सदव पितृ–सुख से वचित रहे।

पिता के अभाव म बालक तिलोकचद के सवद्धन का भार उसकी धम परायणा माता पर पडा। माता की भक्ति पहल ही अतमुख थी। अपन पति के वियोग के बाद तो वह और भी उत्कट रूप से धममय जीवन व्यतीत करन लगी। शशवावस्था [redacted] ही बालक तिलोक पर माता के य धार्मिक सस्कार पडे। फलत छोटी अवस्था में ही व्यावहारिक लिपी ज्ञान के साथ आपने बहुत कुछ धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर ली। अपनी माता की भावना के अनुरूप बचपन से ही आपकी साधु सत तथा महासतियों के प्रति अप्रतिम सद्भावना थी। आपका अधिकतर समय उन्ही के सान्निध्य म व्यतीत होता था।

वैराग्य-प्राप्ति

बालक तिलोक अपनी धर्म-परायणा एवं मुमुक्षु माता के पास इस प्रकार स्पृहणीय जीवन व्यतीत कर रहे थे। दोनो प्रकार की शिक्षा प्राप्त करते करते आप नौ वर्ष के हो चुके थे। उसी समय आपके जीवन को दूसरी दिशा की ओर मोडनेवाली एक घटना हुई। विक्रम संवत् १९१४ के साल मे श्रीमज्जैनाचार्य क्रियोद्धारक परमपूज्य श्री १००८ श्री लवजीऋषिजी महाराज के तृतीय पाट पर विराजित, गच्छाधिपति श्री श्री १००८ श्री कहानजीऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के बालब्रह्मचारी पण्डित प्रवर श्री अयवताऋषिजी म० अपने शिष्य-परिवार-सहित रतलाम नगरी मे पधारे।

वे जन-मानस अच्छी तरह जानते थे। छोटे से लगाकर बडे तक सब उनके व्याख्यान को रुचिपूर्वक सुनते थे। उनके व्याख्यान से किसी को भी अरुचि नही होती थी। रतलाम में भी उनके व्याख्यान में जैन-अजैन सब एकत्रित होते थे। रतलामनिवासिनी गगास्वरूपा माता नानुबाई तो कोई व्याख्यान नही छोडती थी। उनके साथ उनके छोटे बच्चे भी आते थे। महाराजश्री के व्याख्यान में यह विशेषता थी कि एक बडा व्यक्ति उनके व्याख्यान को जितनी अच्छी तरह समझ सकता था, उतनी ही सरलता से बालक भी उनके व्याख्यान में रस लेता था।

कुछ दिन के बाद एक रोज महाराजश्री का व्याख्यान "न वैराग्यात्परो बधुर्न ससारात् परो रिपु " वैराग्य से बढकर अपना कोई बधु नही और सासारिक विषयो से बढकर अपना कोई शत्रु नही, इस विषय पर हुआ। उस रोज आपने उस विषय पर इतना अच्छा प्रकाश डाला कि सारी परिषद् वैराग्य रग में रंग गई। लोग अपना स्वत्व भूलकर आत्म-विभोर हो उठे। किसी को अपना कुछ ध्यान न रहा। व्याख्यान क्या था ? स्वयं मुनि श्री का वैराग्यमय जीवन ही वाणी का रूप धारण कर सामने आया था। उनका जीवन बोल रहा था। हृदय को हिलानेवाले उनके इस अमृतमय पवित्र व्याख्यान को सुनकर सबसे अधिक सच्चरित्रा, पतिवियोगिनी, पुत्रवत्सला, माता नानूबाई प्रभावित हुई। वह वही अपनी सुध-बुध भूलकर वैराग्य के प्रवाह में बह गई। उसे अपना, अपनी पुत्री तथा छोटे बच्चोका कुछ भी ध्यान न रहा और वहाँ पर ही पितृविहीन अपनी चारो सततियो को भाग्य के भरोसे छोडकर दीक्षा ग्रहण करने का अपना दृढ निश्चय प्रकट किया। शास्त्रो में दीक्षाविषयक एक वर्णन है। वह निम्न प्रकार है।—

'तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता त जहा—उवायपव्वज्जा अक्खाय पव्वज्जा सगार पव्वज्जा ' स्थानांग सूत्र तृतीय ठाणा ।

इन तीन प्रकारकी प्रव्रज्याओ म जो द्वितीय प्रकार कहा ह, उसके अनुसार ही नानूबाई की प्रव्रज्या की ओर प्रवृत्ति हुई अर्थात पूज्यपाद श्री अयवता ऋषि जी महाराज का वैराग्य से परिपूर्ण व्याख्यान सुनकर उन्ह सम्बोध प्राप्त हुआ । तदनतर नानूबाईने भी अपन कुटुबीजनो के हृदय को हिलाने वाली उसी वैराग्य परिपूर्ण वाणी द्वारा आकर्षित कर अपनी दीक्षा लेन की भावना प्रदर्शित की।

नानूबाई क साथ उनकी पुत्री हीराबाई भी सतत साथ रहती थी। अपनी माताकी यह दशा देखकर कुमारी हीराबाई के मन पर भी वैराग्य का रंग चढा । अवस्था भी उसकी बहुत छोटी थी । तब तक उसका सम्ब ध (सगाई) अवावाले श्री लछमनदासजी नवयुवक के साथ हो चुका था । लछमनदासजी स्वय नयमकुलोत्पन्न सुशील किशोर थ । कुमारी हीराबाई अभी तक सासारिक व्यवहार को कुछ भी नही जानती थी । लोगों ने बालिका को दीक्षामार्ग की कठिनाइयाँ बताकर अनेक सांसारिक प्रलोभन बताय । अनेक प्रकार की आकर्षक वस्तुएँ तथा वस्त्राभूषण देकर ससार म रहन के लिये ललचाया पर इन सबका उस बालिका पर कुछ भी प्रभाव नही पडा । वह अपनी माताकी अनुगामिनी बनी रही । विनश्वर सांसारिक भोगोपभोगों का आस्वादन किये बिना ही अर्थात कुमारी अवस्था में ही उसने सच्चा वैराग्य धारण कर लिया । लोग उसे अपन निर्णय से विचलित करते करते थक गय, पर वह अपन ध्येय से तिलमात्र भी विचलित नही हुई।

उस समय बालक तिलोकचद की अवस्था केवल नौ वर्ष आठमास की थी । ये सपन्न कुल में पदा होने से इनकी सगाई बचपन में ही सकालाभिवासिनी श्रीमती चुन्नीबाई की सुपुत्री गुलाबकुँवर के साथ हो चुकी थी । उप देश सुनने के बाद अपनी माता तथा अग्रजा भगिनी [redacted] वैराग्य से परिपूर्ण जीवन को देखकर आपकी मोह निद्रा भी एकदम भग हो गई । हृदय में अलौकिक प्रकाश हुआ । सच्चे ज्ञान से इस शिशु का भव्य ललाट और अधिक चम कने लगा । अल्पावस्था में ही उन्हे ससारकी अनित्यता का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगा क्यो कि जिस कन्या के साथ आपका वाग्दान सस्कार हुआ था वह अल्प काल में ही—शैशवावस्था म ही काल—कवलित हो गई । इस छोटी सी घटना का शिशु मानस पर बहुत प्रभाव पडा । उसन सोचा यदि सांसारिक सुख का योग होता, तो मेरी वाग्दत्ता विवाह के पूर्व ही इस ससार को छोडकर क्यों चली जाती ? कही मेरी भी अल्पायु न हो अत एव अब ससार में रहकर उस विवाह तथा व्यापारादि क प्रपच म ग्रस्त होना बेकार ह ।

शिशु-मानस के इन विचारो से बुद्धिमान् सोच सकते है कि भविष्य में अभ्युदय करनेवाले महान् आत्माओ के अध्यवसाय भी उच्च कोटि के और प्रशस्त होते है । इस शिशु के अध्यवसाय भी अनित्य सुख छोडकर शाश्वत सुख प्राप्ति की ओर दौडे और अपनी माता तथा अग्रजा भगिनी के पहले ही वे सयम ग्रहण करने के लिये उत्सुक हो उठे। सयम की ओर आपकी ऐसी उत्कट प्रवृत्ति देख आपके मध्यम भ्राता श्री कुँवरमलजी भी आपके साथ साथ सयम अगीकार करने के लिये कटिबद्ध हो गये।

अपने पूर्वसंचित शुभ कर्मों के कारण आपश्री मे जन्मजात वैराग्य भावना थी। वाल्मीकि रामायण मे राम-वनवास के समय श्री वसिष्ठ ऋषिने इसी-प्रकार के भाव व्यक्त किये है।

वे महा बुद्धिमान् महात्मागण धन्यवादार्ह है, जिनके निर्मल अंतःकरण मे कारण के बिना ही वैराग्य उत्पन्न होता है। बालक तिलोकचन्द्र पर भी यही नियम लागू हुआ। उनके जीवन में हजारों वर्ष पहले वाल्मीकि द्वारा कथित यह सत्य घटित हुआ। अनेक जन्मो के किये हुये पुण्यो के संस्कारों का उदय हुआ। चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से चारित्र ग्रहण करने का समय उदय में आया। पूरे दस वर्ष होने के पहले ही तलवार की धार पर चलने के समान कठिन संयममार्ग को स्वय की अत प्रेरणा से धारण करने के लिये तैयार हो गये। इसके लिए किसी को विशेष उद्बोध करने की आवश्यकता नही हुई। क्योंकि वे पूर्व काल के पूर्ण सयम को धारण करनेवाले महायोगी और बड़े भारी साधक थे।

आपको इस वैराग्यपद से आपकी माता श्री नानूबाई कुछ विचलित कर सकती थीं। सब से छोटे पुत्र होने से माँ की ममता भी इन्हीं पर अधिक थी। शिशु भी माँ के वात्सल्य के सामने सब कुछ छोडने को तत्पर हो जाता है। पर माँ के पास अब अपने पुत्र को समझाकर पुन: ससार मे बने रहने देने का अवसर नहीं रहा। माँ ने पुत्र के पहले ही वैराग्य धारण कर लिया था। वह स्वयं दीक्षा लेने के लिए उतावल कर रही थी। जिस पथ की ओर स्वय वह प्रयाण कर रही थी, उस पथ से अपने पुत्र को कैसे विमुख कर सकती थी? उसका तो एक मात्र यही कर्तव्य था कि वह इन सब से तटस्थ रहती। उसने भी अपने वैराग्यमय जीवन के अनुकूल तटस्थता का मार्ग अंगीकार किया।

दीक्षा महोत्सव काल

एक ही कुल से माता, पुत्री तथा दो पुत्रो की दीक्षा लेने के समाचार से सारे रतलाम शहर में सनसनी फैल गई। जिस किसी ने सुना उसका हृदय

भक्ति के आवेग से उनकी ओर आकर्षित होने लगा। पहले सबने इन्हें मनाने का बहुत प्रयत्न किया परंतु इनके वैराग्य रंग के सामने सबको झुकना पड़ा। अंत में दीक्षा-काल नियत हुआ। पंडितवर्य १००८ श्री अयवंताऋषिजी म० श्री खूबाऋषिजी म० श्री विजयऋषिजी म० और श्री चुन्नीलालजी महाराज आदि ठाणा ४ वहां पर ही विराजमान थे। इनके अतिरिक्त ऋषिसम्प्रदायी सती शिरोमणि श्री दयाजी श्री सरदाराजी म० आदि ठाणे विराजमान थे। इस समाचार से आस पास के और भी अनेक संत-सतियों का शुभागमन हुआ। धीरे धीरे दीक्षा काल भी समीप आ पहुंचा जिसकी कि कुछ समय से अत्यंत प्रतीक्षा की जा रही थी। उस और संवत् १९१४ विक्रम संवत् १९१४ माघ कृष्णा प्रतिपद् गुरुवार का शुभ दिन उदय हुआ। उस दिन रतलाम शहर में दूर-दूर के प्रदेशों से अनेक सार्धर्मिक बंधु इस अपूर्व अवसर को देखने के लिए एकत्रित हुए। रतलाम चतुर्विध संघ के समक्ष बड़े समारोह के साथ दीक्षा-महोत्सव का यह पवित्र आयोजन सफल हुआ। दीक्षा के समय रतलाम में जो संघ एकत्रित हुआ वह दर्शनीय था। वृद्धों के मुंह से सुना जाता है कि ऐसा संघ पहले कभी नहीं एकत्रित नहीं हुआ था।

श्री कुंवरमलजी तथा श्री तिलोकचंदजी विद्वच्छिरोमणि म० मुनि श्री १००८ श्री अयवंताऋषिजी महाराज के शिष्य हुये और नानूबाई तथा हीराबाई सती शिरोमणि श्री दयाजी सरदाराजी महाराजजी की शिष्याएं हुई। इस प्रकार एक ही नगर में एक ही दिन एक ही घर की चार महान आत्माओं ने दीक्षा ली। अब केवल श्री भैरुजी अकेले बचे रहे और वे ही अपने पैतृक संपत्ति के अधिकारी हुए।

श्री कुंवरऋषिजी म० और श्री तिलोकऋषिजी म० इन दोनों भाइयों की अपनी अलग अलग विशेषता थी। श्री तिलोकऋषिजी महाराज ज्ञान मार्ग के पथिक थे तो श्री कुंवरजी महाराज तपोमार्ग के। दोनों एक दूसरे के पूरक थे। दीक्षा लेने के बाद श्री कुंवरऋषिजी म० ने कुछ समय पश्चात् ही तपश्चर्या करना शुरू कर दिया। फिर तो धीरे धीरे वे इस मार्ग में इतने अधिक बढ़े कि आजीवन एकांतर उपवास करते रहे। तेले पचोले अठाई और मासखमण तो उन्होंने कितने ही किये है। उनकी गिनती नहीं। शरीर पर उनकी बिलकुल ममता नहीं थी। सदैव अंतर की ओर ध्यान रहता था। साधु अवस्था में शरीर को ढकने के लिये आवश्यक वस्त्रों का व्यवहार भी बहुत कम करते थे। केवल एक चोलपट्टा एवं एक चादर से अपना निर्वाह कर लेते थे। पाठक समझ सकते हैं अति तपश्चर्या के कारण वे अत्यंत कृशकाय हो गये थे। शरीर की पसलियां दिखाई

देती थी। विशेष शीत के दिनो में भी केवल एक चादर से उस कटी ठंड का मुकाबला करना कितना कठिन काम है ? पर वे अदर और बाहर से पूर्ण रूप से निष्परिग्रही रहकर निरतर अपना विकास करते रहे।

उन्ही तपस्वी मुनि की उत्कट तपश्चर्या और पवित्र आचरण से प्रभावित होकर भोपाल मे अनेक मदिरमार्गी साधुमार्गी हुये। तपश्चर्या के साथ उनकी वाणी मे अद्भुत शक्ति थी। जो कोई इनके संपर्क में आता, वह लोहचुबक की तरह इनकी ओर आकर्षित हो जाता था। आपके सदुपदेशो की चर्चा सुनकर शास्त्रोद्धारक पडितवर्य पूज्य श्री अमोलकऋषिजी म के ससार पक्ष के पिता श्री केवलचंदजी आपके व्याख्यान में श्रीमान् फूलचंदजी धाडीवाल के साथ आये थे। उस समय व्याख्यान में निम्नलिखित गाथा पर विवेचन चल रहा था। —

एव खु नाणिणो सारं, ज न हिंसइ किंचण।
अहिंसा समय चेव, एयावत वियाणिया ॥१॥

मुनि श्री के मुखारविंद से इस गाथा का व्यापक और विशद अर्थ सुनकर आपश्री के हृदय पर गहरा प्रभाव पडा। ज्ञान प्राप्त करने का एक मात्र सार अहिंसा है। अहिंसा का पालन करने से अपने आप सब गुणो की प्राप्ति हो जाती है। परतु ससार में रहते हुए अहिंसा का पालन करना सर्वथा अशक्य है। सासारिक अवस्था में छोटे-बडे ऐसे अनेक कार्य स्वयमेव हो जाते है, जिनमें हिंसा अनिवार्य होती है। इसलिये पूर्ण अहिंसा का पालन करना हो तो इस असार ससार को छोडकर अनगार व्रत धारण कर निराकुल भाव से अहिंसा का पालन करना चाहिये। ऐसी अवस्था में ही प्राणी तीन करण तीन योग से अहिंसा का पालन कर सकता है। यह श्री वीतराग प्रभु की देशना है। भगवान् की यह वाणी सुनने का बार बार सुअवसर प्राप्त नही हो सकता। अनेक जन्मो की तपश्चर्या के बाद हमें यह मानव जीवन प्राप्त हुवा है। उस पर भी अहिंसा का पालन करने के लिये सर्वथा उपादेय जैन श्रावक के कुल मे जन्म लिया है। आप समय समय पर भगवान् के द्वारा प्ररूपित सूत्र और सूक्तियां सुनते रहते है। ऐसा अमृतोपम उपदेश सुनने का अवसर भाग्यशाली व्यक्तियो को ही मिलता है। इसलिये आप सबको क्षण मात्र का प्रमाद किये बिना अपने जीवन को शुद्ध बनाने के लिये अहिंसा धर्म का पालन करने में लग जाना चाहिये। भगवान् ने तो समय मात्र का भी प्रमाद न करने की चेतावनी दी है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र के दसवे अध्ययन की प्रत्येक गाथा के अन्त में यह वाक्य आता है कि "समय गोयम ! मा पमायए"

इस व्याख्यान का आप पर अद्‌भुत प्रभाव पड़ा। बैठे बैठे ही मन अनगार व्रत की ओर दौड़न लगा। इस साधु-जीवन को अंगीकार करने की इतनी बलवती इच्छा हुई कि किसी को कुछ कहे बिना किसीकी आज्ञा लिये बिना स्वयं प्रेरणा से साधुका वेष धारण कर आप स्थानक में आकर बैठ गये। पर उस समय तक आपकी संयम की काललब्धि परिपूर्ण नहीं हुई थी। अभी तक आप उस अवस्था तक नहीं पहुँचे थे कि उस चर्या में अंत तक टिके रहते। जब आपके घरवालों को इस बात का पता चला तो वे एकदम दौड़े दौड़े आपके पास चले आये और विविध प्रकार के प्रलोभन देकर समझाने लगे। भावुक हृदय होने से आप उन लोगों की बातों में आकर पुनः अपने घर चले आये। आपका विवाह हुआ। श्री अमोलकचंदजी और अमीचंदजी नामक आपके दो पुत्र हुए। कुछ समय बाद आपकी पत्नी का देहांत हो गया और दूसरी सगाई भी हो गई। आप होशंगाबाद से मारवाड़की तरफ जा रहे थे कि बीच में रतलाम उतर गये। वहाँ पूज्य श्री उदयसागरजी म० विराजमान थे। पूज्यश्रीजी से प्रतिबोध पाकर आपने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत अंगीकार कर लिया। विवाह के लिये जा रहे थे, मगर ब्रह्मचर्य व्रत लेकर वापिस लौट गये। इस प्रकार आपका कुछ काल संसार में व्यतीत हुआ। इसके बाद पुनः एक बार ऐसा समय आया कि आपकी पूर्व की वह भावना फलीभूत हुई। कुछ समय बाद ऋषि सम्प्रदाय के शास्त्रज्ञ पंडित श्री पूनमऋषिजी महाराज ठाणा २ से भोपाल पधारे। आप उस दिन भी सदैव की तरह प्रवचन सुनने गये। व्याख्यान में राजा दशार्णभद्र के जीवन पर विवेचन चल रहा था। मुनि श्री के वैराग्यमय उपदेश से आपका दबा हुआ वैराग्य दूने वेग से उद्‌भूत हुआ। दीक्षा लेने के लिए अभीतक बीच में जो व्यवधान थे, सब दूर हो गये। आत्मबल ने मोह पर विजय प्राप्त की और संवत् १९४३ में चैत्र शुक्ल पंचमी के दिन श्री पूनमऋषिजी महाराज के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की। शुजालपुर में विराजित स्थविर मुनि श्री खूबाऋषिजी म० के नेश्राय में शिष्य हुये। आप भी उग्र तपस्वी थे। दीक्षा अंगीकार के बाद आपका शुभ नाम श्री केवलऋषिजी म० रखा गया।

दीक्षा अंगीकार करने के समय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० की अवस्था केवल नौ वर्ष दस माह की थी। अभी वे पूरे दस वर्ष के ही नहीं हुए थे। दूध के दांत गिरने के बाद नये दांत आये थे। इसे शैशवावस्था ही कहा जाता है। किशोरावस्था तक को प्राप्त नहीं किया था। फिर भी सब कुछ छोड़कर उत्कट भाव से संयम धर्म को अंगीकार करने के पीछे इनके पूर्व जीवन के पुण्य ही प्रेरक बल थे। इस उपदेशप्रद घटना से पाठक स्वयं समझ सकते हैं, कि

मानव का क्या कर्तव्य है ? उसके जीवन का क्या उद्देश्य है ? मनुष्य योनि मे जन्म लेना कुछ साधरण बात नही। इस योनि में जन्म लेने के लिये देवगण भी लालायित होते रहते है। मानव-जीवन में सार क्या है ? असार क्या है ? धर्म का स्वरूप क्या है ? अधर्म किसे कहते है ? इत्यादि बातो का अच्छी तरह विचार कर आत्मा कर्मो के समस्त बंधनो से निर्मुक्त होकर शाश्वत सुख और शांति प्राप्त कर सकती है। अतएव ऐसे अमूल्य मानव-जीवनरूपी चितामणि रत्न को पाकर इसका किंचिन्मात्र भी दुरुपयोग नही करना चाहिये। कभी ऐसा नही सोचना चाहिये कि अभी जीवन बहुत अवशिष्ट है। धीरे-धीरे सब कुछ कर लूंगा। धर्म-कार्य करने के लिये सतत सुभाषित के इस उत्तरार्द्ध की ओर ध्यान रखना चाहिये।

"गृहीत इव केशेषु, मृत्युना धर्ममाचरेत्॥"

मृत्युने आकर मेरे बाल पकड रखे है, वह खीचकर मुझे ले जा रही है। ऐसा समझकर शुद्ध भाव से धर्माचरण करना चाहिये। संसार में फँसने के लिये चारो ओर अनेक मोहक पदार्थ है। पद-पद पर फिसलने का मार्ग है। हमारी आत्मा अज्ञानरूपी अधकार से ढकी हुई है। इसलिये हमे सतत ऐसे ही पुण्य-शाली आत्माओ के जीवन-चरित्र का अध्ययन करना चाहिए, जिससे हम सुग-मतापूर्वक इस ससाररूपी समुद्र को तिर सके।

गुरु के सान्निध्य में शास्त्राभ्यास

दीक्षामहोत्सव सानद सम्पन्न होने के पश्चात् पूज्यपाद श्री अयवता-ऋषि जी महाराज आदि ठाणे ६ ने रतलाम क्षेत्र से विहार किया। वहाँ से जावरा क्षेत्र बीस मील की दूरीपर है। अच्छीतरह शाततापूर्वक विहार करते २ आपश्री ने जावरा में पदार्पण किया। वहाँ साधु-मुनिराजो के लिये मर्यादित समय तक ठहर कर पूनाखेडी पधारे। दीक्षा ग्रहण करने के बाद ही श्री तिलोक ऋषिजी म० का अध्ययन भी प्रारभ हो गया। सेवाभावी बालमुनिश्री पर गुरुदेव की पूर्ण कृपा थी। इसके अतिरिक्त पूर्व-संचित पुण्यो के कारण आपके ज्ञाना-वरणीय कर्मोका ऐसा क्षयोपशम हुआ था कि जिस शास्त्र को आप पढना प्रारभ करते, वह प्रारभ करने पर ऐसा प्रतीत होता, मानो उस शास्त्र को आपने पहले ही पढ रखा था। गुरु के बतलाते समय आप के मुंहसे भी उसी प्रकार स्पष्ट अर्थोक्त उच्चारण होता रहता था। अनेक जन्मो के अभ्यास के बाद मनुष्य विद्वान् होता है। "बहूना जन्मनामते, विवेकी जायते पुमान्" इस प्रकार अनेक जन्मो तक निरतर विद्याभ्यास करने के पश्चात् आपने ऐसी निर्मल बुद्धि प्राप्त की थी।

फलस्वरुप आपने थोड़े ही समय में दशवैकालिक सूत्र को कंठस्थ कर लिया। पूनाखेडी से विहार कर रायपुर का स्पर्श किया। वहाँ कुछ दिन विराजमान रहकर पीपलोदा क्षेत्र को पावन किया। इन क्षेत्रों पर ऋषिसंप्रदायी मुनिराजों की महती कृपा दृष्टि रही है। आगामी चातुर्मास पहले ही जावरा का निश्चित हो चुका था। अनेक ग्रामानुग्रामों को विचरण करते हुए पूज्यपाद श्री अयवंताऋषिजी म० आदि ठाणे ६ चातुर्मास के निमित्त जावरा पधारे। यह संवत् १९१५ का वर्ष था। इस साल चातुर्मास में श्री दशवैकालिक सूत्रका वाचन हुआ। बालमुनि श्री तिलोकऋषिजी म० का यह प्रथम चातुर्मास और द्वितीय लोच था। इस क्षेत्र में वर्षाकाल अत्यंत शांतिपूर्ण व्यतीत हुआ। महाराजश्री की प्रसिद्धि पहले से ही थी, पर रतलाम में एक साथ चार दीक्षा होनेपर आपकी कीर्ति-पताका सर्वत्र फल गई थी।

संवत १९१६ का द्वितीय चातुर्मास शुजालपुर में।

जावरा क्षेत्र में चातुर्मास संपन्न होने के बाद आपका सैलाना की ओर विहार हुआ। सैलाना से रतलाम पधारे। रतलाम में अपने स्वधर्मी बंधुओं का बहुत आग्रह होने से कुछ दिन वहाँ स्थिरवास किया। वहाँ इंदौर के भाइयों की आग्रहपूर्ण प्रार्थना होनेसे रतलाम से इंदौर की ओर विहार किया। बीच में स्थित छोटे-बड़े अनेक ग्रामों को पार कर आपने साठ मील की दूरी पर अवस्थित इंदौर नगर में पदार्पण किया। वहाँ पर आपके प्रभावशाली व्याख्यानों से जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। इंदौर से सीमरोड आदि क्षेत्रों को पावन कर आप पुनः इंदौर पधारे। यहाँ से आपका विहार देवास की ओर हुआ। इंदोर से देवास बीस मिल की दूरीपर स्थित है। देवास क्षेत्र सांस्थानिक है और यहाँ पोरवाड आदि बंधुओं की धार्मिक भावना प्रशंसनीय है। उस पर फिर गुरुदेव ने अपने धर्ममय प्रवचनों द्वारा जनता को ज्ञानामृत से सिंचित किया, जिससे वहाँ के निवासियों की धार्मिक भावना की वृद्धि के साथ श्रद्धा और अधिक उज्ज्वल हुई। देवास से विहार कर ३४ मील की दूरीपर अवस्थित शाजापुर क्षेत्र की ओर पदार्पण किया। चंक्रमण के समय भी नवदीक्षित मुनि श्री तिलोकऋषिजी म० का अध्ययन अखंड रूप से चल रहा था। इस समय आप अपने गुरुदेव से उत्तराध्ययन सूत्रका अध्ययन कर कंठस्थ कर रहे थे। इस प्रकार छोटे२ ग्रामों की जनता में धार्मिक प्रचार करने के साथ उनको धर्म में दृढ बनाते हुए आप शाजापुर क्षेत्र में पधार कर कसेरवाडी धर्म स्थानक में विराजमान हुए।

इस क्षेत्र में पोरवाड, ओसवाल, मोढ जाति मे धार्मिक प्रेम अच्छा है। ऋषिसम्प्रदाय के महापुरुष संत-सतियाँ आदि का इस क्षेत्र पर महान् उपकार है। अनेक दीक्षा आदि कार्य भी इन क्षेत्रों में उल्लासपूर्वक हुए हैं। रास्ते में सारंगपुर क्षेत्र आता है। पुराने सत सतियो के लिखे हुए पन्नो परसे ज्ञात होता है कि यह क्षेत्र भी पहले ऋषिसंप्रदाय का महान् केंद्र था। शाजापुर से सारगपुर सोलह मील दूर है। यहाँ पर आपश्री शांतिपूर्वक पधारे। यहाँ पहुँचने तक फाल्गुन मास भी आगया था। अत फाल्गुनी चातुर्मास यही पर हुआ।

बालमुनि श्रीतिलोकऋषिजी म० का. तृतीय लोच भी यही पर हुआ। फिर आक्योदिया होते हुए ठाणा ६ का शुजालपुर में पदार्पण हुआ। शुजालपुर के निवासी अत्यत धर्मनिष्ठ है। उनकी आग्रहपूर्ण विनति से पूज्यपाद श्री अयवता-ऋषिजी म० ने अपने अग्रिम चातुर्मास करने की स्वीकृति शुजालपुर श्रीसंघ को दी। शुजालपुर से सिहोर की ओर विहार हुआ। वहाँ से भोपाल पधारे और मोढ जाति के विशाल धर्मस्थानक में ठहरे। आपश्री के पूर्वज पूज्य श्री धनजी-ऋषिजी म० द्वारा यह क्षेत्र खोला गया था, ऐसा यहा के वृद्धो-द्वारा सुना गया है। पुन भोपाल से सिहोर पधारे। भोपाल से सिहोर बीस मील की दूरी पर स्थित है। सिहोर से शुजालपुर करीब चोवीस मील के फासले पर है। यहाँ वर्षाकाल के निमित्त पूज्यपाद श्री अयवता ऋषिजी म०, श्री सुखा ऋषिजी म० श्री विजयऋषिजी म०, श्री चुन्नाऋषिजी म०, तपस्वी श्री कुंवरऋषिजी म० और श्री तिलोक ऋषिजी महाराज आदि ठाणा ६ शुजालपुर पधारे और पोला-याबालो के निकट स्थानक मे बिराजे। इस चातुर्मास में श्री तिलोकऋषिजी म० ने श्री उत्तराध्ययन सूत्र छत्तीसवे अध्ययन तक संपूर्ण कंठस्थ कर लिया। बाल-मुनि श्री का यहां पर सवत्सरी के पूर्व चतुर्थ लोच हुआ। चातुर्मास के दिनो में व्याख्यान के समय श्री उत्तराध्ययन सूत्र का वाचन हुआ। भाइयो तथा बहिनो की धर्म की ओर विशेष रुचि हुई। सबने व्रत और तपश्चर्यादि में स्पर्द्धापूर्वक आगे बढकर अपने अतर की श्रद्धा को प्रदर्शित किया। चातुर्मास का समय भी शांति-पूर्वक पूर्ण हुआ।

विक्रम सवत् १९१७ का चातुर्मास—प्रतापगढ़ में

पूज्यपाद गुरुदेव श्री १००८ श्री अयवताऋषिजी म० ने छह ठाणा के साथ शुजालपुर का चातुर्मास अत्यंत शांति और उल्लासपूर्वक व्यतीत किया। चातुर्मास के पश्चात् आप अपने विहार के समय अनेक क्षेत्रोका स्पर्श करते हुए शाजापुर की पवित्र भूमि में पधारे। शाजापुर में आपके आगमन से धर्मादि-

कार्यों में द्रुत वेग से वृद्धि हुई। अत्यंत निष्ठा-पूर्वक पहले की अपेक्षा धर्म में लोग अधिक रुचि लेने लगे। यहाँ से फिर मध्यवर्ती क्षेत्रों में विचरण करते हुए उज्जैन क्षेत्रको पावन किया। उज्जैन से फिर पहले की तरह बीच के छोटे २ स्थानों मे अपने थोड़े समय के निवास में धर्म की ज्योति जगाते हुए खाचरोद पधारे। यहाँ से जावरा करीब १६ मील दूर है। यहाँ दूरी पार कर आपश्री ने जावरा में पदार्पण किया। यहाँ से सुखेडा रायपुर मुगडो, तेजपुर, तलवाडो, परतापोर, डडुगो गढी गनोडा पनवाडा सरोदा सावरा पारोदा मेमवाला, धनोटा बाटोल आदि ग्रामों में पधारे। बाटोल पहुंचते पहुंचते फाल्गुनी चातुर्मासी का समय हो चुका था। अतएव यह चातुर्मासी बाटोल हुई। यहीं पर श्री तिलोकऋषिजी म० का पंचम लोच हुआ। यहा से पुन खमीरा पीपलखूंटा आदि अनेक क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए आपश्री मदसौर पधारे।

मदसौर भी अत्यंत प्राचीन नगर है। यहाँ पर छठ सन् ईसवी के पूर्व के शिलालेख उपलब्ध है। मदसौर से वर्षा काल निमित्त पूज्यपाद श्री अयवंताऋषिजी म० का ठाणा ६ के साथ मालव प्रान्त की पवित्र भूमि प्रतापगढ में सुख-शान्ति-पूर्वक पधारना हुआ। चातुर्मास के दिनो मे व्याख्यान के समय श्री आचारांग सूत्र का वाचन हुआ। ग्यारह अंगों में आचारांग सबसे प्राचीन और प्रथम है। भगवान् महावीर के साधना काल का जीवन जैसा आचारांग सूत्र में चित्रित किया गया है वैसा अन्य सूत्रो म नही। इस सूत्र के वाचन से श्रावकगण अपने शासननायक चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के चरित्र और साधुओ के आचार आदि के बारे में अनेक बाते जान सकेंगे। यहा पर श्री तिलोक ऋषिजी म० का छट्ठा लोच संवत्सरी के पूर्व हुआ।

प्रतापगढ के क्षेत्र को ऋषिसम्प्रदाय के मुनिवरो ने अपने आगमन-द्वारा अनेक बार पवित्र किया है। इस क्षेत्र में दीक्षा संथारा आदि अनेक धार्मिक कार्य यशस्वीरूप से सपन्न हुए। इस स्थान मे मुख्य रूप से उल्लेखनीय विशेष बात यह हुई कि ऋषि—सम्प्रदायी सतोंने दिगम्बर आम्नाय के हुबड लोगों को अपने पवित्र उपदेश-द्वारा प्रतिबोधित कर साधुमार्गी बनाये। स्थानकवासी धर्म अंगीकार कर ये हुबड बन्धु अपने धर्म के लिए इतने दृढ हुए कि इन्होंने अपने बने बनाये दो धर्मस्थानक संघ को धर्मध्यान के लिए अर्पण किए। उनमें एकमें मुनिराज ठहरते है तथा दूसरे में महासतियाँजी ठहरती है। पहला घोडा टकचदजीने और दूसरा स्थानक मलाशाह श्री जीवनजी कोचर जीने दिया है। यहाँ के स्थानकवासी समाज में ओसवाल पोरवाड, हुबड आदि समाज के कुल मिलाकर लगभग ७०–८० घर है। दिगम्बर समाज के घरों की संख्या लगभग पाँच सौ है और श्वेताम्बर मंदिरमार्गी समाज के घर करीब दो सौ है। विभिन्न सम्प्रदायों के ऐसे विशाल क्षेत्रों

में जहां कि अपने सप्रदाय के लोगो की संख्या दूसरो की अपेक्षा कम हो, अपने धर्म का प्रचार करना साधारण बात नही है। ऐसा करते समय विरोधीपक्ष वालो के हृदय में विरोध तथा प्रतिकार की भावना और प्रबल वेग से उठती है। वे अनेक प्रकार का दूषित वातावरण पैदा करते है। पर इन सतो ने किसी प्रकार का कटु वातावरण पैदा किए बिना अनेक कष्ट सहन करके अपने मार्ग को प्रशस्त बनाया और अपने क्षमाशील स्वभाव तथा उदार चरित्र द्वारा सबको अपनी ओर आकर्षित किया। इस सफलता के मूल में इस सप्रदाय के ज्ञानी और तपस्वी मुनियो का महत्त्वपूर्ण हाथ है। ऐसे महापुरुषो द्वारा दुष्कर कार्य भी अत्यत सरल ढग से सपन्न हो जाते हे।

संवत् १९१८ का चातुर्मास शाजापुर में

प्रतापगढ का चातुर्मास-काल सानंद शाति-पूर्वक व्यतीत कर ठाणा ६ का विहार देवले की ओर हुआ। वहाँ से पुन प्रतापगढ के लोगो की विशेष विनति से प्रतापगढ पधारे। यहां से विहार कर मदसौर की ओर प्रस्थान किया। मदसौर से छोटे २ क्षेत्रो का स्पर्श करते हुए जावरा की भूमि को अलकृत किया। यहाँ से बरडावदा लगभग आठ मील है। वहाँ आपश्री का आगमन हुआ। बरडावदा से खाचरोद पधारकर उज्जैन की ओर विहार किया। उज्जैन को पावन करके शाजापुर क्षेत्र मे पधारे। शाजापुर का उल्लेख पहले हो चुका है। यहाँ कसेरमाडी में एक भव्य स्थानक है। इसी स्थानक में आपश्री का मुनि वृन्दो के साथ आवास हुआ। यहा श्री तिलोकऋषिजी म० का सातवाँ लोच हुआ। शुजालपुर क्षेत्र भी ऋषिसप्रदाय का एक मुख्य केन्द्र है। इस क्षेत्र में स्थानीय श्री संघ के अत्याग्रह से आपका ठहरना स्वाभाविक था। शुजालपुर में ठहरते समय चातुर्मास का समय निकट आगया था। इसलिये यहाँ से सारगपुर होते हुए चातुर्मास के समय को शाजापुर में व्यतीत करने के लिये गुरुदेव पूज्यपाद श्री अयवताऋषिजी म० आदि ठाणे ४ से अपने इष्ट स्थान पर पधारे।

चातुर्मास में उपासक-दशागसूत्र, अतगड-दशासूत्र, निरयावलिकादि पंच-सूत्र का वाचन हुआ। ये सब सूत्र गृहस्थ तथा साधु धर्म की दृष्टि से अत्यत उपयोगी है। गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए श्रावक धर्म का किस प्रकार पालन करना चाहिये। ? प्रत्येक वस्तु की मर्यादा करने से क्या लाभ होता है ? अह-निश अनासक्तिपूर्वक कार्य करने से क्या फायदा है। ? इन सब का विस्तृत वर्णन होने से श्रावक-वर्ग को अपने कर्तव्य का भान हुआ और दूसरी ओर अनगार धर्म की श्रेष्ठता एव उत्कृष्टता का वर्णन किया गया। अनगार होने के बाद साधनावस्था में घोर से घोर परीषह आने पर भी सयमी साधु किस प्रकार

अटल रहते हैं ? अपने विरोधी को सब उपसर्गों के लिये क्षमावृत्ति धारण कर कितने उत्कट भाव से उसकी कल्याण कामना करते रहते हैं ! इस प्रकार की क्षमावृत्ति धारण करना प्रत्येक के लिये सहज नहीं। इन सब सूत्रों का भाव पूर्ण विशद वाचन होने से शाजापुर की जनता पर इस चातुर्मास का स्थायी प्रभाव पड़ा।

यहाँ चातुर्मास काल में श्री तिलोकऋषि जी म० का आठवाँ लोच हुआ। तपस्वी मुनि के प्रभाव से धर्म ध्यान तपश्चर्यादि पवित्र कार्य भी प्रचुर परिमाण में हुए। स्थानीय व्यक्तियों के अतिरिक्त आसपास तथा दूर के अनेक ग्रामों के श्रावक श्राविकाओं ने व्याख्यान आदि से प्रचुर मात्रा में लाभ उठाया। समय समय की जानकारी धार्मिक प्रभावना से इतर समाज के व्यक्तियों पर जैन धर्म का स्थायी प्रभाव पड़ा। यहाँ तक कि कुछ लोगों ने तो विशुद्ध श्री जैनधर्म को स्वीकार किया। इस प्रकार इस चातुर्मास में धार्मिक प्रचार के साथ स्थानीय जनता को विशेष संतोष हुआ। उन्होंने महाराजश्री के सान्निध्य में रह कर एक प्रकार की पावनता का अनुभव किया। उन्हें ऐसा भान हुआ कि हम चातुर्मास कराकर कृतकृत्य हो गए।

संवत १९१९ का चातुर्मास भोपाल में

पूज्यपाद श्री अयवन्ताऋषिजी म० ने ठाणा ४ के साथ शाजापुर के चातुर्मास का वर्षाकाल शांतिपूर्वक व्यतीत कर वहाँ से विहार किया। पहले आप छोटे २ ग्रामों में विचरण कर मोमा पधारे। यहाँ से पुनः आपका शाजापुर में आगमन हुआ। शाजापुर से मध्यवर्ती ग्रामों को स्पर्शते हुए आपश्री ठाणे ४ से शुजालपुर पधारे। यहाँ के ओसवाल और पोरवाड़ समाज के बंधु अपने धर्म के प्रति अत्यन्त श्रद्धाशील हैं तथा उनकी धार्मिक वृत्ति अत्यन्त विमल विशुद्ध एवं दृढ़ है। इस समाज में सौन में सुगंध जैसी बात यह है कि श्रद्धाशीलता के साथ वे शिक्षित भी हैं। इस प्रकार यहाँ के लोगों में ज्ञान और श्रद्धा दोनों का अच्छा समन्वय है। शुजालपुर से सिहोर होते हुए आपश्री का भोपाल क्षेत्र में पदार्पण हुआ। ऋषिसम्प्रदाय के संतों ने मालव प्रांत में विहारादि के समय अनेक कठिनाइयों तथा परीषहों को सहनकर जैन धर्म की मर्यादा के अनुकूल बहुत से क्षेत्र खोले हैं। जहाँ जैन साधुओं का पहले विहार के समय अचित्त और निर्दोष आहार आदि तक नहीं मिलता था वहाँ अब आपके विहार से लोग साधुओं के आचार विचार से थोड़े बहुत परिचित होने लगे। बहुत से लोगों ने आपश्री के उत्कृष्ट चारित्र और जीवन से प्रभावित होकर जैन धर्म अंगीकार किया। इस प्रकार विहार के समय आपने जैन श्रमणों के लिए एक आदर्श उपस्थित किया। पर साथ साथ इस बात का अवश्य

स्मरण रखना चाहिये कि इन महापुरुषों ने अपने प्रतिबोध से धार्मिक क्षेत्र अवश्य खोले, पर कहीं राग द्वेष का बीज नहीं पनपने दिया। सब के साथ सौजन्य, सहृदयता और निजत्व का व्यवहार रखते हुए धर्म के प्रति रुचि जागृत की। इस धार्मिक प्रचार में उन्होंने अपने पक्ष को भी विशेष महत्व नहीं दिया। पक्ष-पात की भावना से दूर रह सदैव तटस्थ वृत्ति से काम करते रहे। इसीलिये आपके निर्मल स्वभाव और दृढ विचार धारा का सब पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

भोपाल में कुछ दिन ठहरकर पुनः सिहोर की भूमि को अलंकृत किया। यहा से इच्छावर लगभग चौदह मील की दूरी पर है। इसी स्थान पर आपश्री का आगमन हुआ। यहा पर यद्यपि समाज के घर बहुत कम है, पर लोगों की धर्म के प्रति विशेष रुचि है, वे श्रद्धाशील है। यहा तक पहुचते पहुचते फाल्गुनी चातुर्मास भी आ गया। इसलिए फाल्गुनी चातुर्मासी यहीं संपन्न की गई, तथा इस चातुर्मासी के समय श्री तिलोकऋषिजी म० का नववा लोच हुआ, फिर इच्छावर से सिहोर होते हुए सुजालपुर पदार्पण किया। यहा से आपका विहार सारंगपुर क्षेत्र की ओर हुआ। कुछदिन यहा ठहर कर पुनः शुजालपुर क्षेत्र का स्पर्श करते हुए आप सिहोर पधारे। सिहोर पहुचते २ चातुर्मास का काल निकट आ गया था, अतएव सिहोर क्षेत्र से चातुर्मास के लिए विहार कर पूज्यपाद शास्त्रज्ञ श्री अयवंताऋषिजी म० आदि ठाणे ४ का भोपाल क्षेत्र में सुख-शांति पूर्वक पधारना हुआ। यहा पहुच कर मोड जाति के विशाल स्थानक में आप विराजमान हुए। ऋषिसंप्रदाय का वर्णन करते समय पहले पूज्य श्री धनजी-ऋषिजी म०का उल्लेख हो चुका है। उन्हीं स्वनाम धन्य पूज्य श्री १००८ श्री धनजी-ऋषिजी म० ने जैन धर्म का उद्धार करने के लिये यहा अनेक परीषहों और कष्टों का सामना किया, और सतत कष्ट झेलने के बाद अंतमें आप वैष्णव धर्म का पालन करनेवाले मोड जातिके वणिकों को वैष्णव धर्म से जैन धर्म की ओर मोड सके। यह सब कार्य आपने अत्यंत शांतिपूर्वक किसी प्रकार की कटुता तथा राग-द्वेष के बीज बोये विना किये।

यहा के नवाब साहब के हृदय पर भी पूज्यश्री का व्यापक और अमिट प्रभाव पड़ा था। आप सब प्रकार से इतने अधिक पवित्र थे कि उनके जीवन और वचन की एक रूपता देखकर नवाब साहब ने यह फरमान निकाला कि मेरे नगर में जैन सेवड़ो को किसी प्रकार का कष्ट न हो, उन्हे कोई कष्ट पहुँचाने की घृष्टता नहीं करे। उन्हें किसी के द्वारा कोई तकलीफ दी जावे पर वे तुरत दरबार में उसकी शिकायत कर दे। जिससे उचित कार्रवाई कर उन्हे

सजा दी जायगी। उर्दू लिपि म निकाले हुए इस फरमान की प्रति लिपि अब भी राज्य में मौजूद है। इससे पाठक इन महापुरुषों के बारे में जान सकते ह कि वे कितन परीषहों को सहन कर अपने धर्म का प्रचार करते थे। अपन निश्चित सकल्प पर दृढ रहकर अंगीकृत काम को सफल बनाने के बाद ही विश्राति लेते थ।

भोपाल चातुर्मास के समय स्थानाग सूत्र का वाचन हुआ। व्याख्यान के समय महाराज साहब की दृष्टि केवल सूत्रों के अर्थोधर ही सीमित नहीं रहती थी। उसके साथ साथ अनेक प्रकार के हेतु दृष्टात कहानी ढाल और उपदेशप्रद सुभाषितो के द्वारा श्रोताओं के हृदय पर सूत्र में वर्णित गभीर आशय को अमिट रूप से अकित करते थ। इस चातुर्मास में सवत्सरी के प्रथम दिनोमें श्री तिलोकऋषिजी म० का दसवा लोच हुआ। चातुर्मास काल म धर्म ध्यान, तपश्चर्या, व्रत प्रत्याख्यान आदि बहुत अधिक परिमाण मे हुए।

भोपाल के लिए इसी प्रकरण में उल्लेख हो चुका ह। यहां नवाब रहते ह। इसलिए यह जन इसलामी धर्म की राजधानी है। यहा के निवासियों में बहु सख्यक लोग मुसलमान ही ह। रियासतों के विलीनी करण के पहले यहा उन्ही का बोल–बाला था। अब राजा तथा नवाबों की सत्ता नहीं रहने के कारण पहले जैसी हालत नही रही। भारत के इस धर्म–निरपेक्ष राज्य म सब समान रूप से हिलमिल कर रहते ह। किसी पर किसी प्रकार का पक्षपात नही। अब सब को समान रूप से आगे बढ़ने का अवसर दिया जाता है।

मध्यप्रदेश की राजधानी पहले इदौर थी। पर अब भोपाल में राजधानी है। धीरे धीरे यहा व्यापारादि की अधिक सुविधा होने के कारण जनो की सख्या भी बढ़ती जा रही है। मुसलमानी प्रबल होन पर भी यहा श्री अयवताऋषिजी म० का चातुर्मास काल बहुत अच्छी तरह सपन्न हुआ। आपके व्यक्तित्व से वे लोग बहुत ही प्रभावित हुए।

संवत् १९२० का चातुर्मास बरडावदा में

भोपाल में चातुर्मास काल सानद व्यतीत कर पूज्यपाद शास्त्रविशारद श्री अयवताऋषिजी म का ठाणा चार सहित विहार हुआ। रास्ते में जिस प्रकार सूर्य की सब पर समान दृष्टि रहती है उसी प्रकार छोटे–बड़े सद क्षेत्रों का आपने समान रूप से स्पर्श किया और स्थानकवासी जन धर्म की प्रभावना करते हुए आपश्री न शुजालपुर क्षेत्र को स्पर्श कर पुन शाजापुर क्षेत्र को पवित्र किया। यहाँ से आपश्री का विहार महेंद्रपुर की ओर हुआ। महेद्रपुर जाते हुए रास्ते में

जितने मध्यवर्ती गाव पडे, वहाँ के निवासियो को आपने अपने धार्मिक प्रवचन तथा सत्संगति का लाभ देकर उन्हे सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। महेंद्रपुर के निवासियो की धार्मिक भावना देखकर आपने कुछ दिन वहाँ निवास किया। अपने अनुकरणीय जीवन द्वारा वहाँ की भूमि को पावन कर आप जावरा पधारे।

जावरा मालव प्रान्त में स्थानकवासी जैन समाज का एक श्रेष्ठ क्षेत्र माना जाता है। इन सब क्षेत्रो मे पहले ऋषिसंप्रदाय के अनेक धर्मस्थानक भी थे, पर अब नही के समान रह गये हैं।

प्राणी का स्वभाव स्वभावत ऊर्ध्वगामी है, पर राग-द्वेष के बन्धन का प्रभाव बडा विचित्र होता है। सदैव ईर्ष्या करनेवाली आत्मा दूसरो की आदर प्रतिष्ठा तथा सन्मानो को समभाव पूर्वक नही देख सकती। वह अपने ईर्ष्या-द्वेष तथा मत्सर बुद्धि से सदैव सामनेवाले पक्ष को गिराने के दाव-पेच खेलती रहती है। इससे अनायास उसमें अहंकार भाव जागृत होता है। समाज में जब किसीकी अहंकार वृत्ति के कारण यह पक्षपात का बीज व्यापक रूप से फैल जाता है, तब अच्छी चीज को मिटाते समय वह जरा-सा भी सोच विचार नही करती। वह अपना यह कुप्रयत्न इतनी हद तक करती है कि उसका नामोनिशान तक नही रहने देती। ठीक यही बात राग-द्वेष तथा पक्षपात के कारण इन क्षेत्रो में हुई है। यहाँ ऋषि-सम्प्रदायी स्थानक का नामोनिशान भी न रहा।

जावरा क्षेत्र मे कुछ समय तक विराजमान रहकर आपने प्रतापगढ की ओर विहार किया। यहाँ से प्रतापगढ लगभग ३६ मील की दूरी पर स्थित है। प्रतापगढ तक विहार करते समय आपने अपने स्वभावानुसार रास्ते मे छोटे-बडे सब क्षेत्रो का स्पर्श किया। प्रतापगढ से आमडी, अरणोद स्पर्शकर पुन झासडी होकर प्रतापगढ पधारे। प्रतापगढ श्री सघ के अत्याग्रह से कुछ समय वहाँ ठहरकर आपश्री थोरी नामक ग्राम में पधारे। यहाँ श्री तिलोकऋषि जी म० का ग्यारहवाँ लोच हुआ।

थोरी से आपका विहार धमोत्तर की ओर हुआ। धमोत्तर के बाद पुन: थोरी, रठाजणा, कणोरा, कणकेटी, नारायणगढ, पुन- कनकेटी, कनोरा, अमरावद, बसाढ, नदावता, वणी, भावगढ, भावता, कालुखेडा, इन क्षेत्रो को स्पर्श कर आपका पुन जावरा पधारना हुआ। इतना विहार करते २ चातुर्मास का काल भी नजदीक आ पहुँचा था। इस लिये चातुर्मास के दिनो में स्थिरवास करने के लिये पहले से निश्चित बरडावदा में श्री अयवंताऋषि जी म० का आगमन हुआ। और वहाँ श्री संघ के स्थानक में पदार्पण कर उसे अलंकृत किया। यद्यपि यह छोटासा क्षेत्र था। जैन श्रावको की सख्या यहाँ बहुत कम थी। अन्य जाति के लोग अधिक

परिमाण म थे। फिर भी यहाँ चातुर्मास काल म धमध्यान दान शील, तप आदि की प्रभावना बहुत अच्छी हुई। व्याख्यान में सूयगडागसूत्र का वाचन हुआ। यहा पर श्री तिलोकऋषि जी म० का बारहवा लोच हुआ। इस छोटे से क्षत्र में चातुर्मास सरीखा दीघकाल भी अत्यत शाति पूवक व्यतीत हुआ। यहाँ चातुर्मास होन स लोगो की धमश्रद्धा दृढतर हुई। अनेक लोगों न महाराजश्री के निकट रहकर नवीन रूप स सामायिक प्रतिक्रमण सीखे लोगों की शास्त्र श्रवण के प्रति रुचि जागत हुई। पच्चीस बोल आदि जिनमें कि सक्षप म धम के बहुत गहन तत्त्वों का सकलन किया गया ह सीखकर लोगों ने अपन धार्मिक ज्ञान को बढाया।

विक्रम सवत् १९२१ का चातुर्मास शुजालपुर में

बरडावदा में चातुर्मास काल सुख-शाति पूवक व्यतीत कर पूज्यपाद श्री १००८ श्री अयवताऋषिजी म० न ठाणा ४ चार से समीपस्थ प्रसिद्ध नगर जावरा म पदापण किया। जावरा से आस-पास इगनोद कर्लालिया, आकोदडा नवावदा वणी भावगढ मावता नालखेडा मम्मटखेडा आदि क्षत्रो को आपश्री ने पावन किय। इन सब स्थानों में अपने स्वधर्मी बधुओं को प्रतिबोध देकर अपन धम में दृढ बनाय। अनक मुमुक्षु व्यक्तियों को अतमुख बनाया। इन छोट २ क्षेत्रों म धम के प्रति उत्साह की लहर फलाकर आपश्री पुन जावरा पधार। यहा से सवत् १९२० का चातुर्मास जहा व्यतीत किया था उस बरडावदा क्षेत्र में पदापण किया। यहा से खाचरौद पधारे। खाचरौद श्री धर्मो का एक महत्व पूर्ण क्षत्र ह। खाचरौद स उन्हल का स्पश करते हुए आपश्री न बहुत प्राचीन नगरी उज्जन म पदापण किया। यहा स तारपुर कारवा कणासा, नेहावद बबूरी होते हुए आपका शुजालपुर शहर म शुभागमन हुआ। शुजालपुर पहुचते २ फाल्गुन मास आया अतएव फाल्गुनी चातुर्मासी यही की गई और यहा पर मुनि श्री तिलोक ऋषिजी म का तेरहवाँ लोच हुआ।

शुजालपुर से सारगपर स्पर्श कर भोना होते हुए आपश्री का शाजापुर क्षत्र मे पदापण हुआ। कुछ समय यहाँ विराजकर पुन सारगपुर होते हुए चातुर्मास के निमित्त शुजालपुर नगरमें पूज्यपाद १०८ श्री अयवताऋषिजी म अपन अन्य मुनिवन्द के साथ पधारे। चातुर्मास काल म यहाँ श्री उववाईसूत्र तथा राजप्रश्नीय सूत्र का वाचन हुआ। यहीं बालमनि श्री तिलोकऋषिजी म का चौदहवाँ लोच हुआ।

श्री तिलोक ऋषि जी म० की दीक्षा हुई, तब से आप अपन गुरुदेव के साथ ही विहार कर रहे थे। एक दिन के लिय भी आपन उनका साथ नही

छोडा था। विहार या स्थिरवास प्रत्येक समय गुरुदेव के निकट आपका अध्ययन, स्वाध्याय, तथा वाचन चलता रहता था। श्री तिलोकऋषि जी म० की धारणा तथा प्रज्ञाशक्ति भी इतनी प्रबल तथा तीक्ष्ण थी कि जहा कही जिस शास्त्र का वाचन होता, उसे आप कठस्थ कर लेते थे। दीक्षा लेने के बाद अभीतक चातुर्मास काल में जितने शास्त्रो का वाचन हुआ, उन सब को आपने किसी के बिना सिखाये ही कंठस्थ कर लिया था। केवल एक बार सुनकर आप उस चीज को ग्रहण कर लेते थे। ऐसी ग्रहण-शक्ति बहुत कम व्यक्तियो की होती है। आपके गुरुदेव श्री अयवताऋषि जी म०भी नम्रता की प्रतिमूर्ति थे। वे अत्यत धैर्य तथा नम्रतापूर्वक शास्त्रो का वाचन तथा अध्यापन करते थे। गुरु और शिष्य में नम्रता-मूलक एकवाक्यता थी। इसलिये शिष्य को शास्त्रो को सीखते समय ऐसा आभास नही हुआ कि मै शास्त्रो को सीख रहा हूँ, वरन् भूले हुए शास्त्रों को गुरु से श्रवण कर अपने पुराने ज्ञान को परिपक्व कर रहा हूं, ऐसा मालूम होता था। ग्रहण-शक्ति की तीव्रता के कारण श्री तिलोकऋषि जी म० की शास्त्रो के स्वाध्याय की ओर विशेष रुचि हुई। आप त्रिकाल में प्रति दिन एक घटे तक ध्यान करते थे। उस समय केवल शास्त्रो का स्वाध्याय आप करते थे। स्वाध्याय के कारण आत्मा पर अज्ञान का जो आवरण था उसका क्षयोपशम होता गया।

श्री उत्तराध्ययनसूत्र के २९ वे अध्ययन मे सम्यक्त्व पराक्रम के जो तिहत्तर बोल हैं, तद्वर्ती अठारहवे बोल मे सूत्रकार कहते हैं:—

"सज्झाएण भते जीवे कि जणयइ?
सज्झाएण जीवे नाणावरणिज्जं कम्म खवेइ"

प्रश्न—हे भगवन्! स्वाध्याय के द्वारा यह जीव क्या अर्जन करता है?

उत्तर.—स्वाध्याय के द्वारा जीवात्मा ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है। अपने आवश्यकीय नैमित्तिक कर्मो को छोडकर आप दिन रात मे क्षणमात्र का भी दुरुपयोग नही करते थे। आलस्य या प्रमाद को कभी अपने पास फटकने नही देते थे। सतत जागृतावस्था मे रहते थे। प्रमाद को वे अपना परम शत्रु समझते थे। इस प्रकार अप्रमत्त वृत्ति से जीवन व्यतीत करने के कारण आपने स्वल्प काल मे ही कवित्व-शक्ति को भी प्राप्त कर लिया। किसी भी विद्या को हासिल करने मे एकाग्रता की आवश्यकता होती है। एकाग्रता आपके जीवन के साथ जुडी हुई थी। वह आप में ओतप्रोत हो गई थी। एकाग्रता-पूर्वक अप्रमादी वृत्ति से निरतर स्वाध्याय करने के कारण आप शास्त्रो के भी पारगामी हो गये। छोटी-सी अवस्था मे इस प्रकार आगमो का वेत्ता होना, कोई साधारण बात नही है। कवित्व-शक्ति द्वारा आपने थोडे में बहुत कुछ कह दिया है। एक प्रकार से

आपने गागर में सागर भरने का कार्य किया है। यह सब निरंतर साधना एवं परिश्रम का परिणाम था। परिश्रम के बिना कोई भी कठिन कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। किसीने ठीक कहा है —

आलस्यं यदि न भवेज्जगत्यनर्थः
को न स्याद् बहुधनको बहुश्रुतश्च ॥
आलस्यादियमवनिः ससागरान्ता
संपूर्णा नरपशुभिश्च निर्धनैश्च ॥ १ ॥

अनर्थकारी आलस्य इस संसार में यदि नहीं होता, तो (यहां) धनाढ्य और प्रखर विद्वान् कौन नहीं होता? परन्तु आलस्य के कारण समुद्रपर्यंत यह पृथ्वी पशुतुल्य मनुष्यों और निर्धनो से भरी हुई है। इसी प्रकार का एक अन्य भी सुभाषित है।

प्रमादः परमो द्वेष्यः प्रमादःपरमं विषम् ॥
प्रमादो मुक्तिपुरदस्यु, प्रमादो नरकायनम् ॥१॥

कायोत्सर्ग में शास्त्रों का स्वाध्याय करते समय कनिष्ठ गुरुबंधु सेवाभावी श्री विजयऋषिजी म० आपको डांस मच्छर आदि छोटे २ जीवों के परीषह तथा त्रास से बचाने के लिये प्रमार्जन करते रहते थे। यह बात वृद्ध परंपरा से सुनी जाती है।

इस प्रकार अपने गुरुदेव श्री अयवंताऋषिजी म० के समीप रहकर थोड़े ही समय में आपने चतुर्मुखी ज्ञान प्राप्तकर लिया था। आगमों का निरंतर स्वाध्याय करने के कारण आप आगमों के प्रकांड वेत्ता हो गये थे। दार्शनिक ज्ञान में भी बहुत प्रगति कर ली थी। ज्योतिष का भी अद्भुत ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आगम तथा दर्शन की तरह आपने ज्योतिष का भी श्रद्धा–पूर्वक ज्ञान संपादन किया। कवित्व रचना का सामर्थ्य भी निरंतर अभ्यास से प्राप्त कर लिया था। काव्य-कला में तो आपने इतनी शक्ति हासिल की कि उस समय सारे स्थानकवासी समाज में आपके कवित्त सवैया आदि की धूम थी। श्रावकों तथा साधुओं को आपकी रचनाएं इतनी अच्छी लगी कि सबके मुंह से आपकी रचनाएँ सुनाई देने लगी। इस दिशा में इतना विकास करने पर भी पूर्व परंपरागत मान्यतानुसार काव्य रचना करने में आपके सामने बाधाएँ उपस्थित हुई। पर आप अपने ध्येय से विचलित नहीं होते हुए गुरुजनों की आज्ञा की ओर लक्ष्य रखकर शास्त्रानुसार कवित्व हो उसमें उदात्त भाव हो उसे पढ़ने से प्राणी अपना विकास कर सके, ऐसी काव्य रचना करने में आपकी सतत दृष्टि रहती थी। आपने अपने जीवन—

काल में ऐसी अनेक कविताएँ निर्माण की हैं, जिनमें शास्त्रो मे वर्णित विषयो का सरल ढगसे समावेश किया गया है।

इस प्रकार अध्ययन-विषयक शुभ प्रवृत्तियो में काल-यापन करते हुए अपने गुरुदेव के सान्निध्य में शुजालपुर का चातुर्मास शातिपूर्वक समाप्त किया। श्री तिलोक-ऋषिजी म० का अपने गुरुदेव के साथ यही अतिम चातुर्मास था। इस अवधि में आपने अपनी नम्रता, सेवावृत्ति अध्ययन-परायणता आदि सद्‌गुणो द्वारा अपने गुरुदेव का पूर्ण स्नेह प्राप्त कर लिया था। उनके पास जो कुछ था, वह अपने योग्य शिष्य को प्रदान कर गुरुदेव ने भी सतोष की सास ली।

पूज्यपाद कविकुल-भूषण श्री तिलोक ऋषिजी म का शुजालपुर क्षेत्र में सं. १९२२ का चातुर्मास

सवत् १९२२ का शुजालपुर क्षेत्र में सानद चातुर्मास समाप्त कर पूज्यपाद श्री अयवताऋषिजी म० आदि ठाणे ४ ने सारगपुर की ओर विहार किया। सारगपुर से शाजापुर होते हुए देवास पधारे। पुन देवास से शाजापुर क्षेत्र की ओर आपका शुभागमन हुआ, कुछ दिन यहाँ विराजमान रहकर आपने पुनः अपने शिष्य समुदाय के साथ देवास की ओर पदार्पण किया। देवास से मालव-प्रान्त के प्रसिद्ध नगर और वहाँ की राजधानी इदौर क्षेत्र मे आपका विहार हुआ। वहा से वापिस देवास क्षेत्र का स्पर्श किया। तत्पश्चात् नेवरी, पीपलिया, मगरदा, आष्टा, सिहोर होते हुए, भोपाल क्षेत्र को पावन किया। यहा पहुँचते २ फाल्गुन मास आ गया था। अत फाल्गुनी चातुर्मासी यही की गई और श्री तिलोकऋषिजी म० का पंद्रहवाँ लोच हुआ।

भोपाल में कुछ दिन विराजकर आपने सिहोर की ओर विहार किया। सिहोर के मध्यवर्ती क्षेत्रो को पावन करते हुए पूज्यपाद शास्त्रज्ञ प० मुनि श्री अयवताऋषिजी म० ठाणे ४ का शुजालपुर क्षेत्र में आगमन हुआ। आपश्री ने कुछ समय-पर्यत यहाँ स्थिरवास किया। शुजालपुर से दस मील की दूरी पर मेसरोज ग्राम है। वहाँ पर आपश्री ने पदार्पण किया।

गुरुदेव श्री का स्वर्गवास

भसरोज पहुचते २ पूज्यपाद श्री अयवंताऋषिजी म० का शरीर निरन्तर धर्म प्रचार के लिए श्रम करने के कारण कुछ शिथिल-सा हो गया था। आपकी अवस्था भी पर्याप्त हो चुकी थी। यहाँ अपनी शारीरिक स्थितिका विचार करके समाधियुक्त समभाव से अंतिम समय में नमोक्कार मंत्र का स्मरण करते हुए पूज्यपाद गुरुवर्य श्री १००८ श्री अयवंताऋषिजी म० का संवत १९२२ आषाढ शुक्ल ९ रविवार के दिन स्वर्गवास हो गया।

उस समय श्री तिलोकऋषिजी म० की अवस्था केवल सत्तरह वर्ष तीन महीने की थी। अपने संयमी जीवन में पूज्यपाद श्री अयवंताऋषिजी म० के सात शिष्य हुए। उसमें कोई उग्र तपस्वी कोई प्रकांड वक्ता और पंडित तथा कोई कविरत्न एवं व्याख्याता हुये जिन्होंने अपने सत्प्रवृत्तिमय जीवन द्वारा जैन धर्म की सुगंधी को प्रसारित किया है। आपके शिष्य-समुदाय के नाम इस प्रकार हैं —

श्री लालजीऋषिजी म० श्री नृसिंहऋषिजी म०, श्री विजयऋषिजी म० श्री अमयऋषिजी म० श्री बालऋषिजी म० उग्रतपस्वी श्री कुंवरऋषिजी म० और कविकुलभूषण पं० श्री तिलोकऋषिजी महाराज। पूज्यपाद श्री अयवंताऋषिजी म० का श्री तिलोकऋषिजी म० पर कितना अनुग्रह था, इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। आपके लिए गुरु पिता तथा माता सब कुछ थे। अपने सान्निध्य में उन्होंने अपने इस योग्यतम शिष्य को किसी प्रकार के अभाव का अनुभव नहीं होने दिया। वे उनके लिये शिरच्छत्र थे। इतनी छोटी अवस्था में अपने योग्यतम गुरु के उठ जाने से पहले तो श्री तिलोकऋषिजी म० को वियोग जन्य अत्यंत दुःख हुआ वे किंकर्तव्यमूढ ही गये उन्हें किसी का कुछ ध्यान नहीं रहा एकमात्र यही ध्यान था, जिस पथ का अनुसरण श्री गुरुदेव ने किया उसी पथ का मैं भी पथिक बनूँ पर आपकी यह शोकावस्था कुछ समय-पर्यंत रही। अपने समर्थ गुरु के निकट रहकर संसार की अनित्यता का अनुभव कर लिया था। मोह की भयंकरता के बारे में सच्चा ज्ञान प्राप्तकर चुके थे। इसलिये अपनी मोह जन्य आसक्ति को विचार धारा से आपने शीघ्र सम्यग्ज्ञान की ओर मोडा और गुरु की देह की ओर आसक्ति नहीं रखकर मन ही मन अपने गुरु के अधूरे छोडे हुए काम को पूर्ण करने का संकल्प किया। संस्कृत के एक सुभाषित में कहा गया है कि—

'काव्य-शास्त्रविनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्"

बुद्धिमानो का समय काव्य तथा शास्त्रा के साथ विनोद करते हुए व्यतीत होता है। वे अपनी सारी शक्ति सद्ग्रन्थो के अध्ययन–अध्यापन और निर्माण में लगा देते है। अहर्निश अपने शुभ अध्यवसायो द्वारा केवल लोक-कल्याण की भावना करते रहते है। श्री तिलोकऋषि जी महाराज नित्य, नैमित्तिक कर्मो के बाद जो समय मिलता था उसे आप इसी प्रकार काव्य-रचना आदि शुभ-प्रवृत्ति में लगा देते थे।

कविकुलभूषण श्री तिलोकऋषि जी म० ने अपने गुरुदेव का वियोग होने पर पुन शुजालपुर क्षेत्र की ओर विहार किया। इधर चातुर्मास-काल भी निकट आ गया था और श्री शुजालपुर नगर के श्रीसंघ ने भी आपसे अपने यहाँ पर चातुर्मास करने के लिये बहुत विनति की। श्री संघ का विशेष आग्रह होने से आपने ठाणे ३ से वहाँ पर चातुर्मास करने की स्वीकृति दे दी और वहाँ पर ही वर्षाकाल व्यतीत किया। पवित्र पुरुष अपने चरण-कमल द्वारा जिस स्थान को पवित्र करते है, वही तीर्थ बन जाता है। उनके पवित्र जीवन से आकर्षित हो कर आस-पास के सब लोग उनके पास मडराते रहते है।

पूज्यपाद महाराजश्री ने गुरुदेव के पश्चात् अपनी स्वतत्रता मे ज्येष्ठ गुरु-बंधुओ के साथ प्रथम चातुर्मास सवत् १९२२ में शुजालपुर में किया। यह चातु-र्मास अत्यंत उत्साह-पूर्ण वातावरण के साथ व्यतीत हुआ। आपकी वाणी तथा चारित्र की लोगो पर इतनी गहरी छाप पडती थी कि व्याख्यान के समय अनेक श्रावक–श्राविकाओ ने बारह व्रत अगीकार किये। दूर २ के बहुत से लोग आपके दर्शनार्थ आये। श्री तिलोकऋषि जी म० यद्यपि अवस्था में छोटे थे, फिर भी आपका व्याख्यान सुनकर सब लोग बहुत संतुष्ट होते थे। आपकी वाणी गभीर, स्पष्ट एव बुलंद थी। सीधे हृदय पर असर करती थी। उसे सुनकर श्रोता किसी न किसी प्रकार का त्याग किये बिना न रहता था। अब यहाँ से आपकी कीर्तिरूपी भेरी का निनाद चारो दिशाओ में होने लगा। चारो ओर आपके ज्ञानरूपी कमल की सुगधी फैलने लगी।

चातुर्मास के दिनो में व्याख्यान के समय श्री ज्ञाताधर्म कथासूत्र तथा श्री अतगडसूत्र का वाचन होता रहा। श्रोतागण आपकी मधुर तथा अमृतमयी वाणी सुनकर प्रफुल्लित होते थे। वे आपके व्याख्यान का लाभ लेकर कृतकृत्यता तथा धन्यता का अनुभव करते थे। यहाँ पर आपका मोलहवाँ लोच हुआ। इस बात का पहले ही उल्लेख हो चुका है कि आप अपने समय का निरतर सदुपयोग करते

थे। एक क्षण भी व्यर्थ नही जाने देते थ। इस चातुर्मास में आपश्री न आवश्यक-सूत्र (श्रमणसूत्रसहित) साथ पत्र ३१, सवत् १९२२ कार्तिक वदि ४ रविवार के दिन पूण किया ह। आपकी यह हस्तलिखित प्रति मालव प्रान्त में बडोद क्षत्र के श्री सघ के पास थी। जब उपाध्यायजी श्री आनदऋषिजी म० अपना प्रता पगढ का चातुर्मास समाप्त कर अपन लघु गुरुबधु महात्माजी श्री उत्तमऋषिजी म० से समागम करन के लिए शाजापुर पधारते हुए सवत् २०१३ म बडोद पधारे, तब आपन अपने दादागुरु पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० द्वारा लिखित वह प्रति देखी। प्रति को देखते ही आप अत्यत उल्लसित हो उठ। उनकी आँखों के सामन स्वर्गीय पूज्यपाद म० का अलौकिक प्रत्यक्ष भासित होने लगा। आपकी भावना देख श्री सघ न आवश्यकसूत्र की यह प्रति उपाध्यायजी म० की सेवा में समर्पित कर दी। वह प्रति श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी (अहमदनगर) के हस्तलिखित शास्त्र भडार म रखी गई ह। इस प्रकार कविकुलभूषण प० मुनि श्री तिलोकऋषिजी म० का प्रथम चातुर्मास शुजालपुर में सानद शातिपूर्वक सपन्न हुआ।

विक्रम सवत् १९२३ का चातुर्मास मदसोर में

शुजालपुर में चातुर्मास सानद सपन्न होने के पश्चात महाराज श्री ठाणे ३ न साधुओं की मर्यादा अनुसार अन्य क्षत्रों की ओर विहार किया। चातुर्मास के बाद सर्वप्रथम आपका सारगपुर म पदार्पण हुआ। सारगपुर से छोट २ क्षत्रों का स्पश करत हुए शाजापुर को अपने शुभागमन से अलकृत किया। वहाँ से उज्जन पधारकर छह दिन का स्थिरवास किया। तब तक फाल्गुनी पौणिमा भी निकट आ गई थ।। जावरोद श्रीसघ का अत्यत आग्रह होन से फाल्गुनी चातुर्मास वही पर किया। यहा ही आपश्री का सतरहवाँ लोच हुआ। वहाँ से बरडावदा होते हुए अपनी जन्मभूमि रतलामनगर में आपश्री पधारे। रतलाम से विहार कर शिवगढ, सलाना, पूनाखडी, पीपलोदा आदि क्षत्रों का स्पश किया। पीपलोदा से सुखडा होते हुए पुन पीपलोदा पधारे। यहा से जावरा की ओर प्रयाण किया। जावरा से नगरी होते हुए आप श्री वर्षावास के निमित्त ठाणा तीन से मदसौर शहर में पधारे।

चातुर्मास-काल म व्याख्यान के समय श्री पन्नवणासूत्र श्री समवायांगसूत्र श्री ज्ञाता धर्मकथा सूत्र तथा श्री उत्तराध्ययनसूत्र के छत्तीसवें अध्ययन का वाचन हुआ। सूत्रों में प्ररूपित विषयों का महाराज श्री अपनी मनोहर शैली में इतन रोचक ढग से विवेचन करते थ कि वे सब के मानस पर अकित हो जाते थे। उस समय

मदसौर में इतने अच्छेअनेक शास्त्रज्ञ श्रावक थे, जिन्होंने संतो के सहवास में रहकर शास्त्रों का अभ्यास कर रखा था। बहुतों के दशवैकालिकसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, उपासकदशांगसूत्र आदि कंठस्थ थे। इस प्रकार प्रतिदिन शास्त्रों का पारायण करने वाले श्रावक आपके मुंह से शास्त्रों की विशद व्याख्याएँ सुनकर अत्यंत संतोष का अनुभव करते थे। कई दिनों से उनके मानस में जो गुत्थियाँ उलझी हुई थी, वे सुलझ गई। शास्त्र-श्रवण के साथ चातुर्मास के दिनों में अनेक प्रकार के व्रत प्रत्याख्यानादि हुए। महाराज श्री के अपूर्व बोधामृत का जैसे जैसे पान करते जाते थे वैसे वैसे उनकी इच्छा अधिक अधिक बढ़ती जाती थी। वे सदैव अतृप्तता का अनुभव करते थे। शास्त्र तथा उपदेश श्रवण की इच्छा निरंतर बनी रहती थी। यहाँ आपश्री का १८ वाँ लोच हुवा।

जब आप चातुर्मास सानंद संपन्न कर वहाँ से विहार करने लगे, तब वहाँ के श्रद्धालु श्रावक लोग हर्षावेग से यही उद्‌गार निकालते रहे कि आगामी चातुर्मास यहीं पर किया जाय, जिससे हम अपनी शास्त्र-श्रवण की अधूरी इच्छा पूरी कर सके। आपके समान पवित्र संत के सहवास से हम अपने जीवन को उचित मार्ग की ओर मोड़ सकेंगे।

इस वर्ष आपके द्वारा लिखे हुए कुछ पन्ने प्राप्त हुए है, वे इस प्रकार है।

१	समकितकी आलोयणा भावना	१,	वैशाख शुक्ल	१४	मलवलगढ़ में
२	पच्चक्खाण के नाम पन्ना	१,	ज्येष्ठ वदि	४	जावरा क्षेत्र में
३	श्री कर्म-प्रकृति विचार पन्ने	४	ज्येष्ठ शुक्ल	३	,, ,,
४	श्री नवतत्त्व का थोकडा पन्ने	५	ज्येष्ठ शुक्ल	७	,, ,,

विक्रम संवत् १९२४ का चातुर्मास मदसौर--औबागजमें,

मदसौर शहर में चातुर्मास का काल सानंद व्यतीत कर श्री तिलोकऋषिजी म० ने ठाणे तीन से प्रतापगढ की ओर विहार किया। विहार में मध्यवर्ती क्षेत्रों का स्पर्श होना स्वाभाविक था। वहाँ से देवलिया होकर आपने धरियावद क्षेत्र को पावन किया। इन क्षेत्रों पर ऋषिसंप्रदायी संतो का बहुत उपकार है। बागड प्रान्त का यह मुख्य केन्द्र है। यहाँ पर अधिकतर भील, मीणे, आदि लोगों की बसति है। पर ऋषिसंप्रदाय के संत-सतियों ने घोर परीषहों और कष्टों को सहन कर इन आदिवासी लोगों में संस्कार के बीज बोये। अनेक लोगों से मद्य मांस छुडाये। बहुतों को व्रत-प्रत्याख्यान देकर धर्म-मार्ग में प्रविष्ट करवाये। अन्य संप्रदाय में इस प्रकार बिना किसी प्रकार की कटुता के बीज बोये धर्म का प्रचार करने में उन्हें जो दिक्कतें उठानी पडी, उनका अनुभव केवल वे ही करते हैं। धरियावद की ओर के वृद्धों द्वारा अभी तक सुना जाता है कि इन क्षेत्रों के

श्रावकों की धर्म की ओर रुचि पैदा करने में ऋषिसम्प्रदायी संत–सतियों का महत्त्व–पूर्ण हाथ है। श्री तिलोकऋषिजी म० ने अपने पूर्व-पुरुषों द्वारा उद्घाटित क्षेत्र में पदार्पण कर अपने बोधामृत से उनकी श्रद्धा को दृढ़तर बनाया। धर्म की ओर भी कई अनेक बातें नयी सिखायी। यहाँ से विहार कर आपने अनेक छोटे २ नये क्षेत्रों में विचरण कर धर्म का बीज बोया। उनके नाम क्रमश ये हैं — सुठो परसोला गामड़ी सावरा, मगाणा भादली भमराणी सैपुर सलुमर, पुन सैपुर भमराणो भादली भादड़ो, पादेड़ी, भैसवाड़ो और गड़ी बोरी भाजणी, भरथुणी डडुको पुन बोरी मीलाड़ो सगवाड़ो सरोदो इस प्रकार लगभग २३ क्षत्रों को आपश्री ने अपनी चरण–रजसे पावन किया।

इस सब क्षत्रों में आपश्री ने उपदेश देकर अनेक लोगों को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। इन क्षेत्रों में जगह २ थोड़ी संख्या में हुबड़ लोग भी बसे हुए हैं। ये लोग दिगम्बर आम्नाय को मानते हैं। इधर बहुत वर्षों से न तो स्थानकवासी साधुओं का संचार हुआ था। और न दिगम्बर साधु ही इधर आते थे। दिगम्बर साधु तो एसे भी संख्या में बहुत कम हैं। इसलिए इन लोगों की धार्मिक भावना मंद हो रही थी। महाराजश्री के आगमन से उनकी जैन धर्म के प्रति जो श्रद्धा थी वह अधिक बलवती हुई और उनमें से कइयोंने जैन स्थानकवासी धर्म को स्वीकार किया। वे लोग आज तक उन पुण्यश्लोक श्री तिलोक-ऋषिजी महाराज का स्मरण करते हैं।

सगेदा पहुँचते २ फाल्गुनी पौर्णिमा निकट आने से फाल्गुनी चातुर्मासी यही बिताई गई और इस स्थान पर पूज्यपाद श्री का उन्नीसवाँ लोच हुआ। सरोदा से आपश्री ने ठाणा तीन से पुन भैसवाड़ो होकर गलोड़ो धाटोल तरवारी, मुगाणो सुठो आदि ग्रामों को स्पर्शते हुये बरियावद में पदार्पण किया। यहाँ से देवलिया होते हुए प्रतापगढ़ की पुण्यभूमि की ओर विहार किया संत तथा भक्त साहित्य में भक्ति के माहात्म्य का वर्णन करते हुए बार २ कहा गया है कि श्रद्धालु भक्त की उत्कट भक्ति देखकर भगवान भी उसके वश होते हैं। ठीक यही बात आपश्री पर घटित होती है। पहले मंदसौर के श्रद्धालु भावुक व्यक्तियों की असीम भक्ति से आकर्षित होकर आपश्री वहाँ पधारे। मंदसौरनिवासी जनता आपको पाकर चिंतामणि रत्न को प्राप्त करने जैसा अनुभव करने लगी। आपके संपर्क मे रहकर लोगों ने शास्त्रीय शंकाओं का समाधान किया। चातुर्मास के निमित्त प्रतापगढ़ से मंदसौर पधार कर आपश्री ने जनकुपुरा में स्थित जीवा गंज के विशाल धर्म स्थानक में आसन जमाया।

चातुर्मास–काल में आपश्री ने छब्बीसवें श्री नंदीसूत्र का वाचन किया। सब शास्त्रों में ज्ञान को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। आत्मा का मुख्य लक्षण ज्ञान ही है। उसी ज्ञान के सब अंगो की नंदीसूत्र में चर्चा है। व्याख्यान में श्रोतागण अनायास ही अपनी रुचि के अनुकूल विषय का श्रवण कर आनंद का अनुभव करते थे।

चातुर्मास–काल में धर्मध्यान तप, प्रत्याख्यान इत्यादि शुभकार्य अच्छे हुए। मंदसौर शहर में इसके पहले एक चातुर्मास हो चुका था। शहर के समीप ही यहाँ (जनकपुरा–जीवागंज में) यह आपका द्वितीय चातुर्मास था। प्रथम चातुर्मास के बाद तुरंत द्वितीय चातुर्मास होने से लोगों की धर्म–भावना में विशेष वृद्धि हुई। संवत्सरी के पूर्व आपश्री का बीसवां लोच यहाँ पर हुआ।

विक्रम संवत् १९२५ का चातुर्मास कोटा शहर में

मंदसौर जीवागंजवर्ती स्थानक में विराजकर चातुर्मास–काल में प० मुनि श्री तिलोकऋषिजी म० ने अपने मृदु स्वभाव, उपदेश तथा पवित्र जीवन द्वारा वहाँ के निवासियों को किस प्रकार संतुष्ट किया, लोगों की धार्मिक श्रद्धा को दृढतर बनाने में उनका सान्निध्य किस प्रकार फलदायी रहा, तथा शास्त्रज्ञ श्रावकों की शंकाओं का आपने किस प्रकार समाधान किया, इन सब का वर्णन ऊपर हो चुका है। इस तरह चातुर्मास काल में वहाँ सबको संतुष्ट करके आपश्री ठाणा तीन के साथ विहार कर, रास्ते में जैन धर्म की ध्वजा को फहराते हुए जावरा पधारे। वहाँ से मालवप्रान्त के मुख्य केंद्र रतलाम में आपका शुभागमन हुआ। वहाँ आपका प्रतिदिन सारगर्भित भाषण होता था। कुछ दिन ठहरकर रतलाम से आपने सैलाना की ओर विहार किया। सैलाना से पुन्याखेडी होते हुए पीपलोदा पधारे। यहाँ पर आपश्री द्वारा लिखित कुछ पन्ने प्राप्त हुए हैं।

संवत् १९२४ माघ वदि अष्टमी को प्रकीर्णक पन्नोंमें से आठवें पन्ने पर आपने निम्नांकित सूत्रों की प्रतिलिपि की। भगवतीसूत्र शतक १८ उद्देशा १ कडजुम्म के बोल संख्या-विषयक, पच्चीस क्रिया की गाथा अर्थसहित लिखी। श्री उववाईसूत्र से चार शरणों के विषय में लिखा। पन्ना ९ पर श्री दलपतरायजी के नवतत्त्वों से बासठ बोल लिखे। आठ बोलों की विसेसाहिया भी लिखी। श्री ठाणांगसूत्र प्रथम ठाणा के सब १४८५ बोल लिखे। उपासकदशासूत्र में वर्णित दस श्रावकों के संबंध में जो वर्णन है, उसे आपश्री ने यंत्ररूप में अंकित किया है। वह इस प्रकार है–

अनुक्रम संख्या श्रावक-नाम, नगर-नाम राजा-नाम गुरु नाम जाति-नाम स्त्रीनाम धन—संख्या के तीन कोठे गोकुल—संख्या, श्रावकपना कितने वर्ष तक पालन किया, किस श्रावक को क्या उपसर्ग हुआ कितने दिन का अनशन आया किस देवलोक में गये विमान-नाम स्थिति मर्यादा कितने भव करके मोक्ष में जायेगे किस क्षेत्र में मोक्ष जायेगे अंतिम मोक्षगति, किस श्रावक का वर्णन किस अध्ययन में है सूत्र नाम आदि का उल्लेख किया है। इन सब बातों को आपने नकशे के द्वारा अच्छी तरह समझाया है।

विहार वर्णन करते २ हमने बीच में महाराजश्रीद्वारा लिखित पन्नों का उल्लेख प्रासंगिक कर दिया है। अब पीपलोदा से सुखेडा कोटडी, भावगढ मालोट, आदि क्षेत्रों को स्पर्श कर मन्दसौर निवासियों के अत्याग्रह से पुनः मन्दसौर शहर में पधारे। मन्दसौर से नारायणगढ मल्हारगढ नीमच जावद और केरी होते हुए आपश्री ने मेवाड की प्रसिद्ध और पवित्रभूमि चित्तौडगढ में प्रवेश किया। भारत वर्ष के इतिहास में इस स्थानक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यही पर पद्मिनी राणा कुंभा, राणा सांगा मीराबाई आदि वीर—शिरोमणि तथा भक्ति—परायणा महान् हुए। इस युग पर देशकी प्रायः सब भाषाओं में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये हैं। देश और विदेश के समस्त लोग इस स्थान की यात्रा कर धन्यता का अनुभव करते हैं।

चित्तौडगढ में विराजकर आपने जिस प्रकार लेखनकार्य किया, वह आपश्री के शब्दों में इस प्रकार है "श्री जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति का गतसलिया विचार का पन्ना इक्कीस तक परिपूर्ण हुआ। संवत १९२४ मिति फाल्गुण शुक्ल ७ रविवार चित्तोड तलटी मध्ये" इसी पन्ना में आनुपूर्वी के बीस कोठे संपूर्ण लिखे हैं। इन्हें अंकित करने में इतनी कम जगह घेरी है कि उसे देखकर आश्चर्य होता है। सवा दो इंच लंबी और दो इंच चौडी जगह में आपने सारी आनुपूर्वी लिखकर उसे चिरकाल तक म्यूजियम में रखने योग्य वस्तु बना दिया है। उसके साथ दोहे भी लिखे हैं। एवं फुटकर प्रश्नोत्तर के ४४ बोलों में से ४० बोल नववे पन्ने में लिखे हैं। एक छोटे से पन्ने में इतनी सब चीजें लिखना अत्यंत साधना का काम है।

चित्तौडगढ से हमीरगढ को स्पर्श कर आप भीलवाडा पधारे। यहाँ आपश्री का फाल्गुनी चातुर्मासी पर इक्कीसवाँ लोच हुआ। भीलवाडा भी एक अच्छा क्षेत्र है। जैन धर्मानुयायी यहाँ ठीक परिमाण में रहते हैं। स्थानीय व्यक्तियों के अत्याग्रह से आपश्री ने यहाँ कुछ दिन विराजकर धर्म का उद्योत किया। भीलवाडा से आपने बनेडा की ओर विहार किया। बनेडा से भिणाय हुरडो दरडी, पुनः भिणाय को स्पर्शकर आपश्री ठाणा दो अजमेर पधारे।

चारो ओर देशी रियासतो के जाल से घिरा हुआ यह नगर मेरवाडा की राजधानी है। यहां अंग्रेजो का शासन था। देशी रियासतो की अपेक्षा यहां के लोगो में अधिक जागृति है। अजमेर भी एक ऐतिहासिक स्थल है। अन्य स्थानों की अपेक्षा यहां मुसलमान अधिक संख्या में रहते है। अजमेर की ख्वाजासाहब की दरगाह बहुत प्रसिद्ध है। प्रति वर्ष यहाँ मुसलमानो का एक बडा मेला लगता है। जिसमें सम्मिलित होने के लिये दूर दूर के लोग आते है। मेले के समय दस पंद्रह दिन तक इतनी भीड रहती है कि आस पास के स्थानो मे जाना-आना कठिन हो जाता है।

देश के स्वतंत्र होने के बाद अब अजमेर की पहले की तरह स्वतंत्र सत्ता नही रही। अब मेरवाडा विशाल राजस्थान में सम्मिलित कर दिया गया है और अजमेर भी मेरवाडा की राजधानी नही रहकर राजस्थान का एक मुख्य नगर रह गया है।

अजमेर में पं० मुनिश्री तिलोकऋषि जी म० द्वारा लिखित काव्य 'चर्चा' वादी मुनि श्री जेठमलजी कृत है। यह चर्चा श्वेतांबर मंदिर में हुई। संवत् १८७८ का वर्ष था। उस समय अहमदाबाद में लगभग २७००, मंदिरमार्गी यतियों और दो हजार संवेगी साधुओं का मेला हुआ था। अंग्रेज सरकार के सामने यह चर्चा हुई। दोनो की चर्चा के निर्णय का भार अंग्रेज गवर्नमेंट को सौंपा गया। इस लिखी हुई चर्चा पर से दूसरी नकल की गई। संवत् १९२४ मिति वैशाख वदि ७ बुधवार अजमेर शहर मध्ये।

चर्चा लिखते समय महाराजश्री ने २५ वे पन्ने से प्रारंभ की है, उसके आगे का छब्बीसवा पन्ना भी है। उसमें भी यही विषय है, परंतु छब्बीसवे के बाद सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस ये तीन पन्ने प्राप्त नही हुए, तीसवे पन्ने में लिखा है, शहर अजमेरमध्ये। तीसवे और इकतीसवे पन्ने पर संवत् १८७८ में अंग्रेजो से चर्चा हुई। मुनि श्री जेठमलजी द्वारा। इसमें अनेक मत-मतान्तरो की मान्यता का उल्लेख किया गया है। उनके मत को समझाने के लिये उदाहरणों का भी प्रचुर मात्रा में उपयोग किया गया है। यह चर्चा पुस्तिका आपश्री द्वारा अजमेर में लिखी गई। संवत् १९२४ वैशाख वदि १० शुक्रवासरे अजमेर में लिखितं ऋषि तिलोकरिख।

इसी समय आपश्री द्वारा लिखा हुआ एक पन्ना मिला है। वह आप की हस्त-कुशलता, लाघवता और चित्रांकन शैली का आदर्श उदाहरण है। उसे अंग्रेजी लिपि को मन में रखकर पढने से एक ओर एम् और दूसरी ओर से देखने पर डब्लू की आकृति प्रतीत होती है। यह सारा पन्ना काव्यमय है। उस पन्ने के

अदर के चारो कोन में स्थित एक रुपये जितनी जगह में पूज्यपाद महाराजश्री ने अपनी चित्रकारिता का जो नमूना पेश किया, उसे देख दांतों तले अगुली दबानी पडती ह। एक ओर एक कोने में एक रुपये जितनी जगह में १५२ हाथी चित्रित करने पर भी कुछ जगह खाली रह गई ह। दूसरी ओर इतनी ही जगह (एक रुपये जितनी जगह) में ११६ हाथियों को चित्रित किय ह। तीसरे कोन म लवण समुद्र सहित जम्बूद्वीप का नकशा खीचा ह। पत्र का चौथा कोना खाली है। पत्र के प्रथम पृष्ठ के आधे भाग में काव्य को नागपाश में चित्रित किया ह, अर्थात् नागपाश काव्यमय लिखा ह। सवत १९२४ वशाख वदि १० लिखि तिलोकरिख।

पत्र के दूसर पृष्ठ म एक लघु अक्षरमय काव्य ह। सब लघु अक्षर ह एक भी दीर्घ नही। साथ में एकतीसा छद भी लिखा ह। ऐसा अनुमान ह कि यह कृति आपश्री न अजमेर में ही लिखी होगी।

अजमेर से आपका ठाणा २ से किसनगढ में पदार्पण हुआ। वहा से फत गढ, सरवाड, अजमरा आदि क्षत्रों को स्पश कर आपन केकडी क्षत्र को पवित्र किया। केकडी से पनवाड आड होते हुए बूदी को अलकृत किया। बूदी से कोटा क्षत्र लगभग चौबीस मील की दूरी पर स्थित ह। बूदी क्षत्र से विहार कर आपश्री न मध्यवर्ती ग्रामो को स्पर्श कर ठाणा दो से कोटा में पधारकर वहाँ के निवासियो को कृतकृत्य किया। कोटा क्षत्र के रामपुरा म मनोहरदासजी के नोहरे म आप विराजमान हुए।

सत–समागम और गुण ग्राहकता

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० के समय में स्थानकवासी समाज की शोभा को बढान वाले जो चारित्रशील क्रियावादी विद्वान सत थ, उनसे जब कभी आपकी भेंट होती तब आपको बहुत प्रसन्नता होती। वे अपने समय का अधिकतर भाग उन्ही के साथ व्यतीत करते। परस्पर अनेक विषयों पर विविध ज्ञानचर्चा होती। अपन से उत्कृष्ट सतों में जो कुछ ग्रहण करन योग्य वस्तु होती उस शिष्य भाव से ग्रहण करते। गुणों की कदर करते। गुणी सन्तों को देखकर उन्हें बहुत प्रमोद होता था। सत्त्वेषु मत्री गुणिषु प्रमोदम को अपने जीवन म ताने-बाने की तरह अपना लिया था। सदैव दूसरो के गुणों का ही दर्शन करते दोषो की ओर प्राय उनकी दृष्टि नही जाती थी। गुणों को ग्रहण करते समय उन्हे कभी सन्तोष नहीं होता था।

वाल्मीकि-रामायण में श्री वसिष्ठ जी रामचन्द्र जी से कहते हैं, हे रामचंद्र !

येषां गुणेष्वसंतोषो, येषां रागः श्रुतं प्रति ।
सत्यव्यसनिनो ये च, ते नराः पशवोऽपरे ।।

गुण ग्रहण करने के विषय में असतोष रखते हैं, शास्त्र का श्रवण या अध्ययन करने में रुचि रखते हैं, और सत्यमय जीवन व्यतीत करना ही जिनका व्यसन है, वे ही इस संसार में मनुष्य हैं, अन्य और सब पशु हैं, । इन तीनों बातों के आप मूर्तिमान् स्वरूप थे ।

पूज्यपाद महाराजश्री का पूज्य श्री रेखराजजी म०, पूज्य श्री धर्मदासजी म० के सम्प्रदाय के पं० श्री ज्ञानचंद्रजी म०, श्री मोखजी स्वामीजी म०, कोटा संप्रदाय के सुप्रसिद्ध विद्वान् पूज्य श्री छगनलालजी म० पंडितवर्य श्री फकीरचदजी म०, पूज्य श्री उदयसागरजी म० इत्यादि महापुरुषों के साथ समागम हुआ । आपमें गभीरता, सरलता, शातता, गुण-ग्राहकता आदि गुण प्रचुर मात्रा में होने से आपश्री सब के प्रेम-पात्र बन गये । जो कोई संत आपके परिचय में आते, वे जीवन-पर्यंत आपको स्मरण करते रहते । उनकी चर्चा चल जाने पर गुणों की प्रशसा करने में सतोष मानते थे ।

ऊपर हमने जिन सतों का उल्लेख किया, उनके अतिरिक्त आपका अन्य अनेक संतों से मिलाप हुआ । पर वह कब और किस स्थान पर, इन सब का स्पष्ट उल्लेख नहीं होने से हमने उनका यहाँ नाम-निर्देश नहीं किया ।

पाली क्षेत्र में शास्त्रज्ञ वयोवृद्ध स्थविर मुनि श्री पूरणमलजी म० (बाबाजी म०) विराजते थे । उस समय श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रमण सघ के प्रधान मत्री पं० रत्न श्री आनदऋषिजी म० आदि ठाणे ४ का सवत् २०१० में वहाँ पधारना हुआ । श्री बाबाजी महाराज अत्यंत गुणग्राही थे । वयोवृद्ध होते हुए भी आपको गायन का बहुत शौक था । आपकी आवाज गभीर और बुलंद थी । कंठ मधुर था और वाणी में मृदुता थी । इसलिये श्रोतृवृन्द में जो कोई आपके भाषण में उपस्थित होता, वह बरबस आपकी ओर आकर्षित हो जाता था । शास्त्रों के सतत अध्ययन, स्वाध्याय तथा थोकडे आदि बोलचाल की ओर आपकी बहुत अभिरुचि थी । बिलकुल निर्भीक वक्ता थे । अपने अंतर की बात सदैव किसी की राय में आये बिना निर्भीक होकर कह देते थे । आप अपने मुखारविंद से किसी को भी उच्च स्वर से यदि कोई बात कहते, तो वह उसका विपरीत अर्थ नहीं लेता था । महाराज साहब के वचनों में श्रद्धा रखकर उनके कथनानुसार चलने का प्रयत्न करता था । आपके वचनों का अद्भुत प्रभाव पडता था । उनके मुंह से निकले हुए वचन व्यर्थ नहीं जाते थे । एक प्रकार से आप

अमोघ वक्ता थ। प्रधानमन्त्रीजी म को बुलाते समय आप उनके नामका उच्चारण नही करक बड प्रम और आदर से "ऋषि मुनि एसा सबोधन कर बुलात थे। आपश्री स प्रासगिक बातचीत करते हुए आपके मुखारविंद स यह बात सुनने में आई।

एक बार चितौडगढ क्षत्र में यथाथनामधय श्री ज्ञानचद्रजी महाराज तथा पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज का समागम हुआ। परस्पर ज्ञानचर्चा करते हुए इतना अधिक समय हो गया कि दोनों को समय का कुछ भी ध्यान नही रहा। सध्याकाल समीप आ चुका था। इसलिये पूज्यपाद महाराजश्री अपने स्थान पर पहुचने के लिय श्री ज्ञानचद्रजी म० साहब से अनुमति लेकर शीघ्रता पूवक निकले। जल्दी जल्दी में आप अपना रजोहरण भूल कर दूसरे का रजोहरण लेकर चल पडे। यह बात जब श्री ज्ञानचद्रजी म० को ज्ञात हुई तब आपने अपन एक शिष्य को पूज्यपाद म० श्री का रजोहरण देकर उसी समय तुरत भेजा। इधर रास्ते में चलते २ म० श्री को भी पता चला कि अरे! म अपना रजोहरण तो वहीं छोड आया हू। अपने रजोहरण के स्थान पर यह किसी दूसरे का रजोहरण उठा लाया हू। अत उसे लौटाकर अपना रजोहरण लानके लिये आपश्री उलट पर लौट। रास्ते में दोनों का सगम हुआ और परस्पर एक दूसरे के परिवर्तित रजोहरण को लेकर अपने २ स्थान पर गय। इस घटना से पाठक समझ सकते ह कि इन दोनों सप्रदायों के पूर्वजों में परस्पर कितना स्नेह, आदर आर घनिष्ठ सबध था।

चातुर्मास के निमित्त कोटा क्षत्र में पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० का ठाणे २ से पधारना हुआ। उस समय असातावेदनीय कर्म के उदय से एकाएक आपके शरीर में व्याधि उत्पन्न हुई। इससे आपका शरीर बहुत अशक्त एव क्षीण हो गया। उस समय पूज्यपाद मुनि श्री ज्ञानचद्रजी म० कोटा मे ही विराजमान थ। आपश्री की शारीरिक व्याधि के समाचार ज्ञात होते ही श्री ज्ञानचद्रजी म० एकदम शीघ्रता से आपके पास आये। सुख-साता पूछकर आपने महाराजश्री को सान्त्वना देते हुए कहा— आप घबराइए मत, हम सब प्रत्येक समय आपकी सेवा के लिय प्रस्तुत हैं। आपको किसी प्रकार के कष्ट तथा अभाव का अनुभव नही होने देंगे। यदि यहाँ पर आपकी परिचर्या ठीक तरह नहीं हुई तो म आपको अपने यहाँ पर ले चल सकता हू। एसा न समझें कि हम परस्पर भिन्न २ सप्रदाय के ह। बाह्य दृष्टि से अलग २ सप्रदायवाले होने पर भी वस्तुत एक ही ह। पूज्यपाद मुनि श्री ज्ञानचद्रजी म० साहब के सान्त्वनापूण इन प्रमल शब्दों को

सुनकर महाराजश्री की आधी बीमारी उसी समय नष्ट हो गई। आपको बहुत धैर्य का अनुभव होने लगा। पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० के पास पूज्यपाद श्री ज्ञानचद्रजी म० के निरतर आते रहने के कारण जो थोडी बहुत व्याधि बच रही थी, वह भी थोडे ही दिनो में शात हो गई और शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया।

संवत् २०१० मे बाबाजी म० और प्रधान मत्रीजी म० का पाली में समागम हुआ। यहाँ पर आप शेषकाल तक विराजे। जब आप दोनो एक ही साथ पाली में कालयापन कर रहे थे, तब बाबाजी म० ने प्रधानमत्रीजी म० के सामने अपने ये उद्गार प्रगट किये "पू० श्री ज्ञानचद्रजी म० और पू० श्री तिलोकऋषिजी म० इन दोनो मे परस्पर इतना अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध था कि सम्प्रदाय अलग होने पर भी ऐसा प्रतिभास होता था कि ये दोनो महापुरुष मानो एक ही सम्प्रदाय के है और दोनो गुरुभाई हैं। दोनो परस्पर एक दूसरे का कार्य कर प्रसन्नता का अनुभव करते थे। इस प्रकार ये दोनो महापुरुष अपनी दीर्घ-दर्शिता और गुण–ग्राहकता के कारण इतने निकट आ गये थे।

तत्पश्चात् बाबाजी म० ने प्रधान मंत्रीजी म० से कहा कि, हे ऋषि मुनि! आप इस ओर ही क्यो विहार कर रहे है? आपके तथा हमारे पूर्वजो ने कितने कष्ट और परीषह सहनकर मालव प्रान्त में जैनधर्म के उद्धारार्थ जो क्षेत्र खोले, अब उधर बहुत समय से मुनिराज नही विचरने के कारण वे नष्ट हो रहे है। आपका कर्तव्य है, उस ओर विहार कर आप उन क्षेत्रो की सुधि ले। आपके पूर्वजो की चरण–रज से पवित्र उन क्षेत्रो का स्पर्श करना आवश्यक है। मेरी बलवती इच्छा है कि मै स्वय उधर जाकर उन क्षेत्रो मे नवीन प्राण का संचार करूँ, पर अब यह शरीर बहुत वृद्ध हो गया है। चलने की शक्ति नही रहने से स्थिरतापूर्वक थोडा २ विहार होता है। इच्छा होने पर भी केवल शारीरिक क्षीणता के कारण मै उसकी पूर्ति नही कर सकता। आपकी तो ऐसी बात नही। आप पूर्णरूप से समर्थ है। शरीर और मन से दृढ है। बुद्धि भी प्रखर है। इसलिए सुदूर दक्षिण से इधर आकर अब एक बार मालव प्रान्त में आपका विहार करना परम कर्तव्य है। यों बाबाजी म० ने अपने मुखारविंद से प्रधान मत्रीजी म० साहब के सामने ऐसे उद्‌गार अनेक बार प्रगट किये।

बाबाजी म० के ये वचन सुनकर प्रधान मत्रीजी म० ने फरमाया कि मेरी भी भावना है कि जिन क्षेत्रो पर अपने पूर्वजो का उपकार है, उन क्षेत्रो की ओर विहार कर उन्हे सभालना अपना कर्तव्य है। परतु अभी तक उसके लिये समय परिपक्व

नहीं हुआ हूं। फिर भी आपश्री के हार्दिक उद्गारों से प्रेरित होकर आपके सामने वचन बद्ध होता हूं कि समय आने पर आपके वचनों को सफल करने के लिये उन क्षेत्रों को स्पर्शन की पूरी-पूरी भावना रखता हूँ। संयोगवश उसके बाद थोड़े ही समय में उन क्षेत्रों को स्पर्शने का योग प्राप्त हो गया।

भीनासर का साधु-सम्मेलन होने के पश्चात संवत २०१३ में श्रमण-संघीय उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी म० ठाणा ४ ने प्रतापगढ क्षेत्र में चातुर्मास किया था। उस समय लघु गुरुबन्धु महात्माजी श्री उत्तमऋषिजी म० का शाजापुर में चातुर्मास था। चातुर्मास काल में ही एकाएक आपका शरीर लकवे से ग्रस्त हो गया। उस लकवे के कारण शारीरिक शक्ति एकाएक नष्ट हो गई। महात्माजी म० के लकवे के समाचार से उपाध्यायजी म० को बहुत आघात लगा। औषधोपचार के लिये शाजापुर श्री संघ की सम्मति से श्री मगनलाल भाई म एवं डा वसंतलालजी जैन ने सहयोगपूर्वक सेवा की। इसी तरह महात्माजी की सेवा में स्थित मुनि श्री शांतिऋषिजी म० ने अंतःकरणपूर्वक सेवा-वैयावृत्य का लाभ किया।

चातुर्मास समाप्त होते ही उपाध्यायजी म० ने शाजापुर में विराजित महात्माजी महाराज से मिलने के लिये प्रतापगढ से विहार कर मंदसौर, सीतामऊ, सुवासरामंडी, चौमेला, सगधार, बड़ोद, हम, चर्यासिंपुर बडोदिया आदि क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए शाजापुर में पदार्पण किया। शाजापुर पहुंचते ही सीधे महात्माजी म० के पास आकर उनकी सुख साता पूछी। वहां कुछ दिन ठहरकर महात्माजी की शारीरिक स्थिति ठीक देखकर उनके साथ सारंगपुर, आकोदिया आदि ग्रामों को विचरते हुए शुजालपुर क्षेत्र को पावन किया। यहाँ महात्माजी को ठाणा २ से रखकर उपाध्यायजी म० ठाणे ४ से विहार कर सीहोर छावनी होते हुए भोपाल पधारे। भोपाल से चलकर सिहोर, इच्छावर और आष्टा आदि स्थानों को अलंकृत किया। आष्टा से पुनः शुजालपुर पधारकर संवत २०१४ का चातुर्मास स्थविरा महासतीजी श्री उमरावकुंवरजी म० की शारीरिक अवस्था के कारण जिन शासन प्रभाविका पंडिता महासतीजी श्री रतनकुंवरजी म० विदुषीसतीजी श्री वल्लभकुंवरजी म० आदि ठाणे १० और उपाध्यायजी म० आदि ठाणे ६ ने साथ ही वहाँ पर व्यतीत किया। चातुर्मास शांतिपूर्वक संपन्न होने पर विहार करने के भाव थे परंतु भवितव्यता बलवती है। अकस्मात् महात्माजी श्री उत्तमऋषिजी म० का स्वास्थ्य अज्ञात होने से मार्गशीर्ष कृष्णा ८ गुरुवार के रोज समाधिपूर्वक सायंकाल के ६।। बजे करीब उनका आयुष्य पूर्ण हुआ। इस

प्रसंग पर सती-शिरोमणि यथार्थनामधेया श्री रत्नकुंवरजी म० की उपस्थिति रहने से उपाध्यायजी म० को विशेष समाधान मिला। शुजालपुर श्रीसंघ ने उत्साहपूर्वक अंतिम क्रिया-संबंधी सेवा का लाभ लिया था।

शुजालपुर से विहार कर उपाध्यायजी म० ने शाजापुर, मोना, नलखेडा, महेंद्रपुर, नागदा, खाचरोद, उन्हेल आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए उज्जैन में पदार्पण किया। यहाँ से देवास क्षेत्र स्पर्शते हुए इंदौर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। इस प्रकार वयोवृद्ध स्थविरपदविभूषित श्री पूरणमलजी म० (बाबाजी म०) के सद्भावना-युक्त हृदयोद्गारों का परिपालन हुआ।

फिर दक्षिण प्रान्तस्थ पाथर्डी क्षेत्र में चातुर्मास की विनति स्वीकृत होने से उपाध्यायजी म० ने ठाणा पाँच से इंदौर से विहार कर सेंधवा, चोपडा, अमलनेर, धुलिया, मालेगाव, मनमाड, येवला, कोपरगाव, श्रीरामपुर, बेलापुर, देवलाली, राहुरी, बाम्बोरी, पिंपलगाव, अहमदनगर, चिचोंडी (शिराल) लोहसर, करजी, तीसगाव, निवडुंगे आदि क्षेत्रों में होते हुए संवत् २०१५ के चातुर्मास-निमित्त पाथर्डी में पदार्पण किया।

हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० जब कोटा पहुँचे, तब एकाएक उन्हें शारीरिक व्याधि हो गई थी। पर पूज्यपाद मुनि श्री ज्ञानचंद्रजी म० के सद्भाव से थोड़े ही समय में उसका परिहार हो गया। कोटा चातुर्मास के समय आपश्री ने श्री आचारांगसूत्र का वाचन विशद व्याख्यापूर्वक किया। आप प्रथम से ही कुशल वक्ता थे। उसके साथ वाणी का माधुर्य तथा शास्त्रों का तलस्पर्शी ज्ञान इतना अच्छा था कि व्याख्यान के समय श्रोतृवृन्द बरबस आपकी ओर आकर्षित हो जाता था। व्याख्यान के समय उनका हृदय-कमल विकसित होकर वह सूर्य की किरणों की तरह आपके उपदेशरूपी ज्ञान के प्रकाश को सर्वात्मभाव से ग्रहण कर अधिकाधिक आनंद का अनुभव करता था। श्रोतागण आपके अमृतोपम उपदेश को सुनने के लिये भ्रमर की तरह सदैव लालायित रहते थे। किंबहुना आपके विहार से मालव आदि प्रान्तों में जैनधर्म की प्रभावना तथा उसके प्रचार की ध्वजा सदैव लहराती रही। कोटा में आपके विराजने से धर्म-ध्यान और तपश्चर्या आदि विपुल परिमाण में हुए। संवत्सरी के पूर्व पूज्यपाद महाराजश्री का २२ वाँ लोच हुआ। इस प्रकार यहाँ का चातुर्मास प्रारंभ में थोड़ीसी व्याधि के बाद अत्यंत सुख-शांति और आनंदपूर्वक व्यतीत हुआ।

विक्रम संवत् १९२६ का चातुर्मास पुण्य-भूमि शुजालपुर में

पूज्यपाद महाराजश्री ठाणे २ ने कोटा क्षेत्र में चातुर्मास-काल पूर्ण करके विहार किया। छोटे २ क्षेत्रों को स्पर्शते हुए ४४ मील की दूरी पर स्थित छावनी पधारे।

यहां से झालरा पाटण की ओर पदार्पण किया। कुछ दिन वहाँ विराजकर पुन विहार के लिये कटिबद्ध होकर रायपुर अमरकोट, सोएत होते हुए बलखडा क्षेत्र में पधारे। फिर बडागाम होते हुए आपश्री ने मोनो क्षेत्र में पदार्पण किया। यहाँ पर आपश्री द्वारा ज्योतिष सबधी एक अद्भुत पत्र लिखा हुआ प्राप्त हुआ ह। उसमें नवग्रहादि यत्र ज्योतिषचक्र जाप-विधिसहित तथा नवग्रहों के चित्र भी अकित किय ह। सवत १९२५ फाल्गुन शुक्ल १५ शुक्रवासरे लिखित तिलोकरिख मोना मध्य। यह कृति इतन सुन्दर ढग से लिखी गई ह कि इसे देखते हुए जी नही अघाता। वह अपनी ओर आकर्षित कर लेती ह। यह कृति श्री रत्न जन पुस्तकालय पाथर्डी के अतगत हस्तलिखित शास्त्र भडार म सुरक्षित रीति से सस्थापित ह।

मोना से सारगपुर होत हुए शुजालपुर पधारना हुआ। महाराजश्री के पदार्पण से यहाँ के जिन श्रावकों के हर्ष की सीमा नही रही। आपश्री को वे लोग चितामणि रत्न के समान समझते थे। इसलिए हाथ म आये हुए इस अमूल्य रत्न को बिना कुछ आत्मिक लाभ प्राप्त किये हाथ से बाहर नही जाने देना चाहिए। एसा विचार कर वहाँ के श्रावकों द्वारा चातुर्मास की विनति की गई। श्रावकों का पहले से ही धम के प्रति उत्कट अनुराग तथा प्रम था। फिर भी सब श्रावकों का इस प्रकार का उत्कृष्ट प्रम और श्रद्धा देखकर श्रीसघ की विनति स्वीकृत की गई। यहाँ पर आपका तईसवाँ लोच हुआ। शुजालपुर से विहार कर छोटे बड क्षेत्रो को स्पशत हुए आपश्री ने शाजापुर में पदार्पण किया और वहाँ के प्रसिद्ध बसेरवाडी स्थानक म विराजे। वह स्थानक विशाल ह। यहाँ से अनेक क्षत्रो को पावन करत हुए छत्तीस मील की दूरी पर स्थित देवास क्षत्र में पधारे। यह क्षत्र भी ऋषि-सम्प्रदायी सतों द्वारा ही खोला गया ह। देवास से आपश्री का ठाणा २ से इन्दौर म पदार्पण हुआ। वहाँ पर कुछ समय तक विराज-कर पुन देवास शाजापुर सारगपुर होते हुए सवत् १९२६ का चातुर्मास करने के लिय आपश्री ठाणा २ से शुजालपुर में पधारे।

यहाँ पर आपश्री द्वारा श्री सूयगडागसूत्र प्रथम श्रुतस्कध के पत्र ४० साथ सुदर लिपि म लिख गय। सवत १९२६ आषाढ शुक्ल ४ लि० तिलोकरिख शुजालपुर मध्ये।

चातुर्मास-काल अत्यत उत्साहपूवक सपन्न हुआ। धर्मोन्नति भी अधिक हुई। व्याख्यान में श्री अनुत्तरोववाई सूत्र तथा श्रीसूत्रकृताग सूत्र का वाचन हुआ। आपश्री का चौबीसवाँ लोच सवत्सरी के पूव में हुआ इस चातुर्मास म आपश्री

के विराजने से धर्मध्यान, तपस्या और व्रत प्रत्याख्यानादि विशेष हुए। धर्म की प्रभावना भी प्रचुर परिमाण में हुई। इस प्रकार शुजालपुर का चातुर्मास-काल हार्दिमय और उत्साहपूर्ण वातावरण में व्यतीत हुआ।

विक्रम संवत् १९२७ का चातुर्मास मालवप्रांतीय मुख्य नगर रतलाम में।

शुजालपुर का चातुर्मास सानंद पूर्ण कर के आपश्री ने पुन सिहोर छावनी की ओर विहार कर भोपाल को पावन किया। यहांपर आपने कुछ दिन तक स्थिरवास किया। यहा से पुनः सिहोर होते हुए शुजालपुर पधारे। तदनंतर छोटे २ क्षेत्रो को स्पर्शते हुए शाजापुर में आपका शुभागमन हुआ। शाजापुर क्षेत्र से देवास स्पर्शकर आपने इदौर में पदार्पण किया। इदौर से रतलाम की ओर विहार किया। बामडदा, हातोद, पालखी, अड़ावदा, गौतमपुरा, बडनगर, खरोदा, बोरा, बराड, आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए धर्मका प्रचार किया। रतलाम पहुचने पर वहा के श्री संघ ने आपसे विनति की कि यह नगर मालव प्रात का केन्द्रस्थान है। यहा समय समय पर श्रेष्ठ सतो का आवागमन होता रहता है। निरंतर सतो की चरण-रज से पवित्र होने के कारण यहा के लोगो की धर्म की ओर विशेष रुचि है। यहा के श्रावक शास्त्रज्ञ एव धर्मज्ञ है। इस रतलाम भूमि ने ही आपश्री सरीखे नर-रत्न को जन्म दिया। और आपने शैशवावस्था में वैराग्य धारण कर के इस ससार को छोडकर प्राणीमात्र के सामने एक आदर्श उदाहरण उपस्थित किया है। दीक्षा लेने के बाद आपने धर्म का जो प्रचार किया, वह किसी से छिपा नही है। इस भूमि में पैदा होने पर भी आपके सदुपदेशों का लाभ अन्य स्थानो की जनता उठा रही है। पर हम उससे वंचित है, अतएव हम पर दया करके आगामी चातुर्मास की हमारी विनति स्वीकृत कर रतलाम नगर में ही वर्षाकाल व्यतीत कीजिए। रतलाम पर ऐसे ही पूज्यपाद महाराजश्री का आकर्षण था। फिर भला वे वहाके निवासियो के आग्रह को कैसे टाल सकते थे? आपने श्री सघ की प्रार्थना को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और विशेष कारण खुला रखकर चातुर्मास करने की स्वीकृति दी।

आपका पच्चीसवा लोच रतलाम मे हुआ। आपका व्याख्यान सुनकर वहा की जनता अत्यंत प्रसन्न होती थी। यहा तक कि उनकी यही इच्छा बनी रहती थी कि व्याख्यान चलता ही रहे। आपकी वाणी इतनी मृदु और मधुर थी कि श्रावक-गण उसे श्रद्धापूर्वक सुनकर गद्गद हो जाते थे। वे व्याख्यान के बाद आपश्री की मुक्तकंठ से भूरि भूरि प्रशंसा करते थे।

रतलाम से विहार कर आपने पाडलिया होते हुए जावरा में पदार्पण किया। तत्पश्चात् यम्मटखेडा कचनारा फत्तगढ केलधीपुरा जनकुपुरा थुप-डका नगरी रणायरा, इगनोद पीपलिया बरडिया खजूरिया और बरडावदा से पुन जावरा पीपलोदा पुन्याखेडी पीपलोदा सलाना वामणोद आदि क्षत्रो को स्पर्शते हुए आपन चातुर्मास के निमित्त रतलाम शहर म पदार्पण किया। वहां आकर रतलाम के मुख्य स्थानक माणक चौक म विराजमान हुए। यह स्थानक अत्यत विशाल ह।

चातुर्मास काल मे व्याख्यान के समय भगवती सूत्रका वाचन होता था। धमप्रमी और शास्त्रज्ञ श्रावक वग प्रतिदिन नियत समय पर व्याख्यान में उप-स्थित होते थे। चातुर्मास-काल में धमध्यान व्याख्यान वाणी तपश्चर्या, व्रत प्रत्याख्यानादि विशेष रूप से हुए। श्रीसघ न जिस उत्साह से महाराजश्री की सेवा म चातुर्मास के लिय विनति की उसी उत्साहपूण भाव से सेवाभक्ति करके और शास्त्र श्रवण का लाभ लेकर चातुर्मास को पूर्ण सफल बनाया। धर्म की भी बहुत प्रभावना हुई। इस चौमासे में आपश्री ठाणा ५ पाच से विराजे थे। आपश्री का यहा सवत्सरी के पूर्व छब्बीसवा लोच हुआ। इस प्रकार यहा का चातुर्मास विशष सुखशाति तथा बहुत उत्साह और हर्षपूण वातावरण में सपन्न हुआ।

इस चातुर्मास मे आपके द्वारा निर्मित श्री मदमाणिकार का चरित्र ह। सवत १९२७ मिति श्रावण शुक्ल २ शनिवार को पूर्ण किया ह।

श्री आगापुर क्षत्र में सवत् १९२८ का चातुर्मास

श्री रतलाम क्षेत्र में चातुर्मास पूण कर के आपश्री ने ठाणा ३ के साथ विहार किया। रतलाम से पुन्याखेडी साकतरी, रायपुर, सालमगढ मागदी बडी साकतरा अरणोद सरोद, आदि क्षत्रों को स्पर्शते हुये आप प्रतापगढ पधारे। यहाँ से अब आपश्री का विहार मेवाड प्रान्त की ओर हुआ। प्रतापगढ से सिद्धपुरा, रठाजणा बरडीया जीरण चित्ताखेडी आदि छोट २ क्षेत्रों को पावन करते हुये छोटी सादडी म पदार्पण किया। यहाँ से विहार होकर आपश्री बडी सादडी पधारे। कुछ दिन यहाँ स्थिरता कर के वोहेडा पराणा कानोड, भीडर कुथवा खरादा, खराण दरोली, डबोक देवारी आदि क्षत्रों को स्पर्शते हुए मेवाड प्रात की राजधानी उदयपुर क्षत्र में सवत १९२७ माघ शुक्ल नवमी के दिन आपका शुभागमन हुआ। आपश्री यहाँ पर बीस दिन विराजमान रहे। आपके पधारने से श्री सघ न नवीन चतन्य का अनुभव किया। चारो ओर उत्साह का वातावरण छा गया और धर्म की बहुत प्रभावना हुई। यहाँ से विहार कर सरोवा वासडा

हिंता, मगलवाड, मोरवण, चकारडा, नकूम, विनीता' वाडी, दारु, धनेरा, छावणी (नीमचकी) और नीमच क्षेत्र को पावन किया । इन छोटे २ क्षेत्रो में पधारने से वहाँ के भावुक प्राणियो को धर्म का नवीन बोध हुआ। जैनधर्म के प्रति उनकी जो श्रद्धा थी उसमें वृद्धि हुई। नीमच से विहार कर आपश्री नारायणगढ़ पधारे। यहाँ पर आपश्री ने अत्यंत श्रम-पूर्वक सुदर अक्षरो में एक पन्ना लिखा है। अक्षर इतने अधिक सुदर, स्पष्ट एव सूक्ष्म है कि दातो-तले अंगुली दबानी पडती है। एक ही पन्ने में श्री दशवैकालिक सूत्र के दसो अध्ययनो की ७५० गाथाएँ ऐसे सुदर ढंग से अंकित की गई है कि बीच में कही काटकूट या छेका-छेकी नही है। दशवैकालिक सूत्र समाप्त होने के बाद दूसरे पृष्ठ में जो कुछ जगह बचकर रह गई थी, उसमे श्री पुच्छिसु ण की २९ गाथाएँ (श्री वीरस्तुति) और २५६ ढगले का थोकडा लिखा हुआ है। सवत् १९२८ चैत्र शुक्ल २ नारायणगढ़ लिखित श्री तिलोकरिख। ऐसे आपश्री द्वारा लिखे हुए पाँच-छह दशवैकालिक सूत्र है। ये पन्ने सत-सतियो के पास है। दशवैकालिक सूत्र की यह हस्तलिखित प्रति विशेषरूप से अवलोकनीय है। इसके दोनो ओर के फोटो खीच कर ब्लाक लिये गये है। युवाचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० का सवत् १९९४ में मुबई स्थित कादावाडी के उपाश्रय में चातुर्मास था, तब दानवीर, सेवाभावी, धर्मप्रेमी, सुश्रावक श्रीमान् मगनलाल भाई (सी पी. दोशी कपनी) ने अपनी माता के स्मरणार्थ इसे प्रकाशित कर श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी को समर्पित किया है। इसका स्पष्टीकरण आगामी प्रकरण में पाठक देख सकते है।

नारायणगढ से आपका विहार जनकुपुरा कुक्षी की ओर हुआ। पुन नारायणगढ़ से लुणावदा होते हुए जनकुपुरा में आपने पदार्पण किया। शारीरिक कारण से यहाँ पर आपका सत्तावीसवा लोच हुआ। वहाँ से अमरावद, आकोदडा, धणी, पालखेडी, कोटडी, लिनोर, पुन्याखेडी आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपश्री रतलाम पधारे। यह क्षेत्र चारो ओर से मध्य में होने से यहाँ सत-सतियो का विशेष रूप से आवागमन होता रहता है। अधिकतर वयोवृद्ध सत-सतियाँ यहाँ स्थिर-वास करती हैं। सत-सतियो की निरतर कृपादृष्टि रहने से यह नगर एक प्रकार से धार्मिक नगर है। यहाँ पर आपने एक कृति की रचना की है। नाम है प्रथम बावनी, यह ग्रथ इद्रवज्रा छद में लिखा गया है। इद्रविजय छंदोबद्ध तिलोक-बावनी सवत् १९२८ वैशाख शुक्ल ९ शनिवार के दिन पूर्ण की है। यहां पर आपने कुछ दिन तक स्थिरता की। फिर रतलाम से विहार कर बड-नगर, गौतमपुरा, बदोदा, फत्तेबाद जवासिया, मेन्दगढ होते हुए उज्जैन पधारे।

वहाँ से काएथो, नामुखडी कणासा होते हुए आपश्री का ठाणा तीन से शाजापुर क्षेत्र में चातुर्मास के निमित्त शुभागमन हुआ। यहाँ पहुच कर आप कसेरवाडी के विशाल स्थानक म विराज।

चातुर्मास—काल में श्रावक-श्राविकाओ का उत्साह दर्शनीय था। धर्मध्यान, तपस्या आदि आपके प्रभाव से विशेष रूप से हुई। यहाँ सवत्सरी के पूव आपश्री का अट्ठावीसवा लोच हुआ। सावत्सरिकपर्व शांतिपूर्वक सानद सपन्न हुआ। यहाँ के चातुर्मास—काल में आपन श्रावण शुक्ल प्रतिपदा के दिन मगल-बत्तीसी की रचना पूण की ह। यह अंतिम पत्र प्राप्त है, परन्तु पूर्व पत्र उपलब्ध नहीं ह। इसी चातुर्मास में आपश्री द्वारा रचित एक और विशिष्ट कृति है। जिस का नाम चित्रालकार काव्य ह। उसे देखकर विद्वान् एव कविलोग आश्चर्य-चकित होते हैं। इसका स्पष्टीकरण आग चलकर पूज्यपाद महाराजश्री की कला कृतियों पर स्पष्टीकरणनामक प्रकरण मे दिया गया ह। पाठक वहाँ से जानकारी प्राप्त कर सकते ह।

आपश्री द्वारा रचित एक महाबल मलया सुदरी की चौपाई पत्र सख्या ३१ भी ह। सवत १९२८ भाद्रपद शुक्ल ९ शुक्रवार, लिपि कृत तिलोक ग्राम शाजा पुरमध्य। यह प्रति ब्यावर जन गुरुकुल में स्व पडिता प्रवर्तिनीजी श्री राज-कुवरजी म० की विदुषी शिष्या प्र श्री उज्ज्वलकुवरजी म० की नेश्राय में रहे हुए शास्त्र भडार सग्रहालय में थी। यह चौपाई सवत २०१२ के साल में प्रधान मत्रीजी म० को श्री धीरजलाल भाई तुरखिया से उपलब्ध हुई। इस चातुर्मास—काल म सवत १९२८ आश्विन कृष्ण ६ के दिन आपने एक ज्योतिषचक्र को लिपिबद्ध किया। यह चक्र अत्यत आकर्षक ढग से लिखा गया है। उसे देखते ही चित्त प्रफुल्लित होता ह। चक्र की प्रत्येक आकृति अनेक प्रकार के रगों से चित्रित ह। अवकहडा चक्र के राशि नक्षत्र आदि बताते हुए अत्यत सुदर शैली से अकन किया गया ह। इस चक्र का विशद स्पष्टीकरण आगामी प्रकरण में करने में आया ह।

पन्ना न० ७ के प्रथम पृष्ठ पर मार्गणा के बोल ९४ से ९८ तक लिख हुए हैं। सवत् १९२८ कार्तिक वदि १२ लि तिलोकरिख। थोकडा बोल सग्रह का पन्ना न ८ में ९९ बोल विषयक सपूण विवरण दिया गया ह। सवत् १९२८ कार्तिक वदि लि तिलोकरिख। पीछ के हिस्से में चक्रवर्ती की ऋद्धि के ९४ बोल तक लिखा हुआ ह।

शाजापुर चातुर्मासमें प्रतिदिन उववाई सूत्र तथा भगवती सूत्रका वाचन नियत समय पर होता था। व्याख्यान के समय आप ऐसी सरल भाषाका प्रयोग

करते थे। कि साधारण व्यक्ति को भी अच्छी तरह समझ में आ जाय। इससे जैन-जैनेतर समाज अधिक संख्या में उपस्थित होकर आपके व्याख्यान का लाभ लेता था। इस चातुर्मास में भी आपकी उपस्थिति से अन्य चातुर्मासो की तरह धर्म-ध्यान तपश्चर्या आदि अधिक परिमाण में हुए। सवत्सरी के पूर्व यहा पर आपश्री का अट्ठाबीसवा लोच हुआ। सवत्सरी पर्व भी विशेष उत्साह एवं शान्ति-पूर्ण वातावरणमें संपन्न हुआ। उस समय अनेक ग्रामोके लोगोने उपस्थित होकर क्षमापना में भाग लिया था। अधिक क्या कहा जाय? श्रीसघ ने जिस उत्साह से सेवा में चातुर्मास के लिये विनति की, उसी उत्साह से तन-मन-धनसे सेवा-भक्ति करके इस चातुर्मास को पूर्ण सफल बनाया।

संवत् १९२९ का चातुर्मास धरियावद क्षेत्रमें,

शाजापुर में शांतिपूर्वक चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री का ठाना तीन से नलखेडाकी ओर विहार हुआ। पहले आप मोना पधारे। मोना से विहार कर पुन आपने नलखेडा को पवित्र किया। फिर से आपका मोना में पदार्पण हुआ। यहा पर आपने एक कृति लिपिबद्ध करके पूर्ण की। कर्म-प्रकृति-विचार सवत् १९२८ मार्गशीर्ष शुक्ल ३ ग्राम मोना मे लिखित तिलोक रिख। यहासे पुन आपने शाजापुर क्षेत्रकी ओर विहार किया। संवत् १९२८ पौष शुक्ल २ को पन्नवणा सूत्र से भाषा के बोल चित्रकारी के रूप मे अंकित कर पूर्ण किये हैं। ये कृति आपने शाजापुर क्षेत्र मे लिपिबद्ध की। यहा से कणासा होकर मध्यवर्ती अनेक छोटे २ क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपने देवास की भूमि को अलकृत किया। कुछ दिन यहा विराजकर आपश्री का इंदौर में शुभागमन हुआ। यहा पर लोगों का आग्रह होने पर भी विशेष नही ठहरकर छोटे २ क्षेत्रो मे धर्मका प्रचार हो, इस उद्देश्य से उन क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपश्री धार की ओर पधारे। दतोदा, महू, धनड, बीटवा, दीवठाण, आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए राजा भोज की सुप्रसिद्ध राजधानी धारा नगरी में पदार्पण किया। जहा पर कि पूज्यश्री धर्मदासजी महाराजश्री ने अपने शिष्य के निमित्त सथारा लेकर अपना जीवन-दान किया है। ऐसे धर्म-वीर की स्मृति के निमित्त अब भी यहापर वह पाट मौजूद है, जिस पर आसीन होकर आपश्री ने अनशन व्रत अंगीकार किया था।

धारा नगरी में आपश्री ने इसबार पहले-पहल आगमन किया था। अत एव यहा की जनता पिछले बहुत वर्षो से आपकी मधुर अमृतमय वाणी को सुनने के लिये लालायित थी। जनता के आग्रह और लालसा से आकर्षित हो आपश्री ने भी कुछ दिन यहा स्थिरता की और अपनी अमृतोपम वाणी द्वारा सदुपदेश

देकर श्रीसंघ के हृदय में स्थित धर्म-भावनारूपी अंकुर को विकसित किया। वहा का श्रीसंघ तथा जनता प्रतिदिन व्याख्यान में अधिक संख्या में उपस्थित होकर श्रवण भक्तिका लाभ लेती थी। धारा नगरी से आपने फिर रतलाम की ओर विहार किया। बीच के मध्यवर्ती स्थान पचलाणा कडोद कोद बखतगढ बदनावर भूसथान सेमलावदा महू आदि ग्रामों को स्पर्शते हुए आप रतलाम पधारे। रतलाम से खिलगढ रतनगढ थांवला खादु वासवाडा, तलवाडा और वहा से आपश्री का मेतवा में पधारना हुआ। वहां पर आपश्री का उनतीसवां लोच हुआ। अपने गुरु श्री अयवन्ताऋषिजी म० की तरह छोटे २ क्षत्रों को स्पर्शकर उनमें धर्मप्रचार करने की आपकी विशेष भावना रहती थी। बागड प्रांत में अधिकतर आदिवासी लोगों की बसती होने से उधर संतों को अनेक परीषहों का सामना करना पडता है। आपकी दृष्टि सदैव ऐसे परीषह प्रधान क्षत्रों की ओर रहती थी। अनेक बार आपने विकट परीषहों को सहन कर ऐसे बीहड प्रांतों में विचरण किया है।

मेतवाडा से विहार कर डडूका करवूना थांवला होते हुए आपने थोरी क्षत्र को अलंकृत किया। यहां पर कुछ स्थिरता कर पुनः सयवाडा, मेतवालो पर सोला खुता आदि स्पर्शकर संवत १९२९ के चातुर्मास निमित्त पूज्यपाद महाराजश्री का ठाणा चार से धरियावद क्षेत्र में शुभागमन हुआ।

चातुर्मास-काल में व्याख्यान के समय श्रीस्थानांगसूत्र तथा उपासकदशांग सूत्रका वाचन होता था। सूत्रों का अर्थ आप इस प्रकार सरल और बहुअर्थगंभा मिली भाषा में करते थे कि साधारण श्रोतागण के हृदय में उसके भाव अंकित हो जाते थे वहांके लोगो की भी यही भावना रहती थी कि हमारे प्रांत में संतों का आगमन विशेष नही होता है। बडे भाग्य से पूज्यपाद म० श्री पधारे हैं। बार बार फिर हमे यह सुअवसर प्राप्त नही होने वाला है, एसा सोचकर वे प्रतिदिन अधिक संख्या में व्याख्यान में उपस्थित होते थे। संवत्सरी के पहले आपका तीसवा लोच हुआ। संवत्सरी पर्व भी अत्यंत उत्साह के साथ धर्मध्यान तप आदि करते हुए मनाया गया। उस समय बागड प्रांत के छोटे २ ग्रामों के श्रावक-श्राविकाएं अधिक संख्या में धर्मध्यान करने के लिए सम्मिलित हुई थी।

धाणापूर चातुर्मासके पश्चात् आपने जिस २ स्थानपर जो ग्रंथ-लेखनका कार्य किया उसका उल्लेख उस स्थानके साथ हो चुका है। चातुर्मास-कालमें आपने जो लेखन कार्य किया वह इस प्रकार है। (१) 'सुदर्शन ढाळका चौढालिया, इसे

आपने सवत् १९२९ श्रावण शुक्ल तृतीया के दिन सपूर्ण किया। यह प्रति स्थविर और सुलेखक मुनि श्री माणक ऋषिजी म के पास है। इस समय स्थविर मुनिजी धुलिया में विराजते है। वहाँ पर आपका स्थिरवास है।

(२)" श्री अर्जुन माली का चौढालिया" यह प्रति पू उपाध्यायजी म के पास है। यह भी इस चातुर्मास में बनाई गई होगी, ऐसा अनुमान किया जाता है। क्योकि उस पर स्थान सवत्, मिति आदि का निर्देश नही है।

३) तीसरी कृति केवल एक पन्ने पर है। इसमें स्वर, व्यंजनादि, मूलाक्षर बडे कलात्मक ढग से चित्रित किये गये है। प्रत्येक स्वर और व्यजन की आकृति अनेक प्रकार के रगो में निकाली गई है। अक्षरो के मोड, उनकी आकृति और सौंदर्य को देखकर लेखक की कुशलता पर मुग्ध हो जाते है। स्वर व्यजन की तरह अक एक से लेकर दस तक की संख्या भी लिखी गई है। अक भी स्वर व्यजन की तरह अनेक वर्णों से युक्त है। पन्ने के अत में लिखा है—सवत् १९२९ लि. तिलोक-रिख। इस पन्ने के विषय में पूज्यपाद म० श्री की कलाकृतियो पर स्पष्टीकरण-नामक प्रकरण से पाठक जानकारी ले सकते है।

चातुर्मास-काल में आपने जो लेखन-कार्य किया, वह संपूर्ण रूप से हमें प्राप्त नही हुआ। पर थोडा—बहुत प्रयत्न करने पर जितना उपलब्ध हो सका उस का विवरण यहाँ दिया है।

श्री नदीषेण मुनि का चौढालिया पाना २ में "संवत् उगणीसे गुणतीस साल धरियावद वरमाल तिलोक कहे सुविशाल" ऐसा उल्लेख है। इस पर से यह ज्ञात होता है कि नंदीषेण मुनि का चौढालिया भी आपने धरियावद में संवत् १९२९ में लिखा है।

संवत् १९३० का चातुर्मास मदसौर—जीवागज में

धरियावद में विविध प्रकार की सत्प्रवृत्तियो में अपना वर्षावास व्यतीत कर आपश्रीने वहा से विहार किया। अपने उद्देश्य के अनुसार भूमणिया, चिकलार, देव-गढ आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपने प्रतापगढ क्षेत्र को पावन किया। यहाँ आपश्री कुछ दिन विराज कर अरणोद क्षेत्र की ओर पधारे। अरणोद से आपका सालमगढ में शुभागमन हुआ। यद्यपि यह क्षेत्र छोटा है, तथापि वहाँ के श्रावक-श्राविकाओ का विशेष भक्ति-भाव होने से आपश्री ने उस क्षेत्र को अपनी चरण-रज से पावन किया। यहाँ पर कुछ दिन तक स्थिरता करके आपश्रीने "श्री अमरकोष प्रथमकाड मूल मात्र ऐसे अक्षरो में लिखा है कि साधारण व्यक्ति भी उसे शीघ्रता से ग्रहण कर सकता है। सवत् १९२९ पौष कृष्ण १४ के दिन पूर्ण किया है।

यहां से आपने रतलाम की ओर विहार किया। विहार में मध्यवर्ती क्षेत्रों को स्पर्श कर धर्मप्रचार करना आपके स्वभाव के साथ जुड़ा हुआ था। रतलाम से जावरा पधारे। वहां पर एकतीसवां लोच हुआ। जावरा से पीपलोदा स्पर्श कर रतलाम में पधारना हुआ। रतलाम से पुन्याखेड़ी, पीपलोदा, सुखेडा कोटड़ी भावगढ़ मालोट आदि क्षेत्रों को स्पर्श कर आप मंदसौर पधारे। जिस दिन आपने मंदसौर में पदार्पण किया, वह दिन संवत् १९३० वैशाख वदि प्रतिपदा का था। पूर्व के प्रकरणों में हम इस बात का निर्देश कर चुके हैं कि पहले पूज्यपाद म० श्री ने मंदसौर में चातुर्मास कर के वहां की जनता में धर्म का बहुत प्रचार किया उनकी सुप्त भावना को जागृत कर धर्म की ओर मोड़ी थी। महाराजश्री ने उनकी रुचि शास्त्रों के स्वाध्याय की ओर पैदा की थी। अतएव मंदसौर का सारा संघ आपश्री का बहुत ऋणी था। इस बार आपके मंदसौर पधारने पर श्रीसंघ ने सोचा पूज्यपाद महाराज श्री का चातुर्मास हुए दो वर्ष हो चुके हैं। इसलिए इस बार का चातुर्मास यहां पर ही कराया जाय तो जनता का बहुत लाभ होगा हमारे धार्मिक ज्ञान में वृद्धि होगी। महाराज साहब के सान्निध्य में अनेक नवीन शास्त्रों का स्वाध्याय कर सकेंगे ऐसा सोचकर श्रीसंघ ने महाराजश्री के सामने आगामी चातुर्मास के लिये अत्यंत आग्रह-पूर्वक विनति की। मंदसौरनिवासी श्रावक-श्राविकाओं की इस प्रकार की उत्कृष्ट श्रद्धा तथा विपुल उत्साह को देखकर आपश्री ने आगामी चातुर्मास मंदसौर जीवागंज में सुख समाधि द्रव्य क्षेत्र काल और भाव का आगार रखकर स्वीकार किया। महाराज साहब की इस स्वीकृति से श्रीसंघ की श्रावक-श्राविकाएं हर्षोत्फुल्ल हो उठीं। पूज्यपाद श्री अब अन्य क्षेत्रों में विशेष विहार नहीं कर यहां पर शहर में ही विराजे और अपना समय स्वयं के स्वाध्याय एवं लेखन-प्रवृत्ति में व्यतीत कर यहां की जनता को धर्मबोध देते रहे क्यों कि अब चातुर्मास का काल भी नजदीक आ गया था। इसलिये अब एक स्थान पर ही विराजने से विशेष लाभ होगा। मंदसौरनिवासियों की इस आग्रह-पूर्ण विनति को लक्ष में लेकर आपश्री वहां पर विराज गये। इस प्रकार आप चातुर्मास के पहले का काल जनकुपुरा आदि स्थानों में व्यतीत कर चातुर्मास के समय अपने निश्चित स्थान मंदसौर में आकर जीवागंज में पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज ने चातुर्मास किया।

चातुर्मास-काल में श्री भगवती सूत्र तथा उत्तराध्ययन सूत्र का वाचन हुआ। व्याख्यान आदि के समय जनता की बहुत उपस्थिति रही और जनधर्मा-

नुकूल धर्मध्यान, व्रत, उपवासादि कर के जनता ने अपनी श्रद्धा को दृढ़ बनाया। श्रीसंघ ने तन-मन-धन से इस चातुर्मास को पूर्ण रूप से सफल बनाने का प्रयत्न किया। यहां पर संवत्सरी के पूर्व आपश्री का बत्तीसवा लोच हुआ।

संवत् १९३० के साल में कार्तिक शुक्ल पौर्णिमा तक आपने जो ग्रन्थ लिखे, उन हस्तलिखित ग्रन्थों में जिन ग्रन्थों का पता लगा, वे निम्नलिखित हैं।

(१) पचवादि काव्य (सवैयाछन्द) यह कृति सैद्धान्तिक दृष्टि से विद्वानों को देखने योग्य है। संवत् १९३० वैशाख वदि १० सोमवार मंदसौरमध्ये। यह काव्य श्रीतिलोक-काव्य-संग्रह में प्रकाशित है।

(२) ज्येष्ठ कृष्ण ९ रविवार को साधु-छंद की रचना की। यह छंद भी तिलोक-छंद-संग्रह में प्रकाशित है।

(३) ज्येष्ठ शुक्ल ३ भृगुवासरे द्वितीय बावनी की रचना की गई। लि. तिलोकरिख, ग्राम मंदसौरमध्ये। यह काव्य भव्यजनों के लिए बोधप्रद होने के साथ चित्त को अत्यंत आकर्षित करनेवाला है। यह बावनी भी श्री तिलोक काव्य संग्रह में प्रकाशित है।

(४) आषाढ शुक्ल ३ शुक्रवार के दिन मंदसौर में रची हुई एक धर्म-जयकुमारकी चौपाई भी उपलब्ध हुई है। यह कृति जिन-शासन-प्रभाविका विदुषी महासतीजी श्री रतनकुंवरजी महाराज के पास है।

(५) आषाढ शुक्ल १३ सोमवार के दिन "ऋषभजिन--स्तवन की पूर्ति की है।

(६) अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालों की चौवीसी की छंदरूप में रचना की गई है।

(७) श्री अरिहन्त जिन-छंद की रचना भी की है।

(८) इसी प्रकार चतुर्विंशति जिन-नाम नमोत्थुण-युक्त छंद भी आपने बनाया है। नंबर ६-७-८ इन तीनों छंदो में संवत् १९३० का निर्देश मिलता है, परन्तु मास, तिथि और स्थान का निर्देश नहीं है। तथापि अनुमान कर सकते हैं कि इनकी रचना इसी चातुर्मास में हुई होगी। ये तीनों छंद श्री तिलोक छंद संग्रह में प्रकाशित हैं। और श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी (अहमदनगर) से प्राप्य है। इस वर्ष आपने और भी अनेक काव्यों की रचना की होगी, पर उनमें से अनेक अनुपलब्ध हैं और कुछ काव्यों पर स्थान संवत् मिति आदि का निर्देश नहीं होने से उनका यहां पर उल्लेख नहीं किया गया।

उपरि निर्दिष्ट काव्यों में से कुछ काव्य सत्यबोध नामक ग्रन्थ में श्री जैनधम प्रसारक सस्था सदर बाजार नागपुर की ओर से प्रकाशित हुए हैं वतमान म उस सस्था का प्रकाशन काय पाथर्डी में चल रहा ह।

इस प्रकार मदसोर-जौवागज म आपका चातुर्मास अत्यत शांति-पूवक ढग से पुण हुआ। चातुर्मास—समाप्ति के दिन निकट आने पर वहां के निवासियों के चित्त उदासीनता से आच्छन्न हो गये क्यो कि अब जल्दी ही ऐसे क्रिया सपत्र महाविद्वान का वियोग होने से धम का लाभ नही मिलेगा। पर सत पुरुष सदव एक स्थान पर नही रह सकते। एक स्थान पर रहने से उस स्थान तथा लोगों के प्रति आसक्ति की समावना हो जाती ह। एक दोहे म कहा भी है ——

पानी तो बहता भला पडा गदेला होय।
साधु तो रमता भला, दाग न लाग कोय ॥१॥

चातुर्मास-काल समाप्त होने पर आपश्री ने मदसौर से अन्य स्थान की ओर विहार किया। श्रीसघ बहुत दूर तक आपको पहुचाने गया। परतु भावी भाव बलवान होता ह। विहार करने के बाद रास्ते में कुछ शारीरिक व्याधि या अन्य किसी कारण के उपस्थित होने से आपको पुन मदसौर लौटना पडा। वापिस आने के बाद आपश्री का मदसौर से मिति फाल्गुन वदि २ के दिन विहार हुआ ह। ऐसा आपश्रीजी ने अपनी हस्तलिखी के एक पत्रे में लिखा ह।

श्री गजसुकुमाल का स्तवन छोटा पता यह काव्य सोलह गाथा का है। इसकी अतिम गाथा इस प्रकार ह। —

सवत उगणीसे तीसका काई माघ पुनम रविवार,।
सेर मदसोर में गाईया जी काइ मुनि गुणमगलाचार ॥ १६॥

स्तवन-सग्रह सत्य-बोधसे पाना ९६ में पद्य वीजु आदीश्वरजी का स्तवन सवत १९३० मिति आषाढ शुक्ल ११ जीमवार शहर मदसौर मध्ये लि तिलोक रिख। यह काव्य आपके द्वारा विरचित है।

सवत् १९३१ एव सवत् १९३२ इन युग्म वर्षोंका चातुर्मास शाजापूर क्षत्रमें

मदसौर क्षेत्र से आपश्री मिति फाल्गुन कृष्ण द्वितीया के दिन विहार कर दस मील की दूरीपर मडग्राम में पधारे। वहांपर आप चार रात्रिपर्यत विराजे। इस स्थानपर आपश्री द्वारा लिखित एक पत्रा प्राप्त हुआ ह। इसके प्रथम पष्ठपर वीर त्थुई (वीरस्तुति) अथसहित तथा दूसरे पृष्ठके अवशिष्ट भाग में प्रकीर्णक गाथा सग्रह लिखा गया ह। सवत् १९३० फाल्गुन वदि ७ लि तिलोकरिख गाम—मडमध्यें। यहां से विहार कर सीतामऊक्षत्र को अलकृत किया। वहांपर भी आपश्री

ने वीरत्थुई का एक पन्ना लिखा है। संवत् १९३० फाल्गुन वदि १० बृहस्पतिवार लि. तिलोकरिख सीतामऊ मध्ये। सीतामऊ से विहार कर तितरोद, दीपाखेडा कुंडला, हीराखेडी आदि स्थानो में धर्मप्रचार करते हुए गगराड (गगाधर) क्षेत्र को पावन किया। वहांपर आपने तीन रात्रि पर्यंत स्थिरता करके डाबला, कचनारा, जवूणा, आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए बडोद में शुभागमन हुआ। यहांपर आपश्रीजी ने "पांच समिति तीन गुप्ति" अर्थात् अष्ट प्रवचन माता की ढाल की रचना की है। संवत् १९३० फाल्गुन शुक्ल ८ भौमवासरे लि तिलोकरिख, शहर बडोद मध्ये श्रीमान् धूलचंदजी की पोषधशालामध्ये। यहाँपर आप तेरह रात्रिपर्यंत विराजे। आपका तैंतीसवा लोच यहीं पर हुआ। यहा से विहारकर आमली क्षेत्र को स्पर्शते हुये आपश्री ने आगर क्षेत्र को पावन किया। यहांपर आपने विशेषरूप से दर्शनीय एक कृति की रचना की है।

पुरुषाकार आकृति में अंगसूत्र, उपांगसूत्र, मूलसूत्र, छेदसूत्र और आवश्यकसूत्र ऐसे ३२ सूत्रो के नाम यथास्थान दिये हुए है। अंत में ऐसा लिखा है। इति सिद्धात कल्प संपूर्ण। संवत् १९३० चैत्र कृष्ण १३ तिथौ चंद्रवासरे, लि तिलोकरिख, शहर आगर-मध्ये सूत्र ग्रंथ गाथाओ की संख्याओ के साथ लिखे है। पन्ने के द्वितीय पृष्ठ में दिगंबर आम्नाय के ४३ ग्रंथो के ना कामो उल्लेख है। पन्ना केवल एक ही है। इस दर्शनीय वस्तु का फोटो निकाला हुआ है। इसे ब्लॉक-सहित इस ग्रंथ मे दे रहे हैं।

आगर से विहार कर पालडा, कानड, चंदणा, दुपाडा आदि स्थानो को स्पर्श कर आपश्री का शाजापुर में शुभागमन हुआ।

कानड में संवत् १९३१ चैत्र शुक्ल ५ चंद्रवासरे, श्री जेठमलजी स्वामीकृत अहमदाबाद मे अंग्रेजो के साथ जो चर्चा हुई, उसका विवरण पन्ना १—२। द्वितीय पन्ने के प्रथम पृष्ठ पर २७ प्रश्न संपूर्ण लि०तिलोकरिख।

श्री शाजापुर से विहार कर छोटे २ क्षेत्रो को पावन करते हुए आपका शुजालपुर क्षेत्र में पधारना हुआ। यहाँ पर शेष काल व्यतीत करके पुन छोटे २ क्षेत्रो को पावन करते हुए चातुर्मास के निमित्त आपश्री ने शाजापुर क्षेत्र में पधारकर कसेरवाडी स्थानक में विराजे और वहाँ के श्रीसंघ को कृतार्थ किया। इस अवधि में आपके द्वारा हस्त-लिखित कार्य निम्न लिखित है।

(१) श्री उववाईसूत्र सार्थ, पन्ने २६ में लिखा है। संवत् १९३१ द्वितीय आषाढ कृष्णा ८ लि० तिलोकरिख, कसेरवाडी स्थानक-मध्ये, (२) श्री तिलोक तृतीय बावनी। संवत् १९३१ श्रावण शुक्ल १३ तिथौ सोमवासरे लि० तिलोक-

रिख, शाजापुर चातुर्मास में । यह बावनी श्री तिलोक-काव्यसग्रह में श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी से प्रकाशित हुई है ।

इस चातुर्मासकाल में और विहार के समय आपश्री ने और भी अनक रचनाए की होंगी पर अन्य कृतियों के उपलब्ध नही होने से देने में असमर्थ है। आपश्री का सवत्सरी के पूव चौतीसवा लोच हुआ ।

इस चातुर्मासकाल म आपश्री न व्याख्यान के समय किन २ सूत्रों का वाचन किया इसका हमारे पास कोई हस्तलिखित प्रमाण उपलब्ध नही ह । आपश्री की हस्तलिखित दिनचर्या में यह उल्लेख ह कि सवत १९३१ और सवत १९३२ के चातुर्मास शाजापुर क्षत्र में ही हुए ह ।

सवत १९३१ के चातुर्मास के बाद आपश्री का विहार हुआ या नही ? यदि हुआ तो वह किन क्षेत्रों में हुआ ? इस सबध में भी हमारे पास कोई लिखित प्रमाण नहीं होने से उसका विवरण यहाँ नही दिया गया ह ।

शाजापुर में आपश्रीद्वारा लिखित या हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुए वे निम्न लिखित ह–

(१) चत्र शुक्ल १ सवत् १९३२ लि० तिलोकरिख शाजापुर मध्ये एक पन्ने में पच्चीस बोलका थोकडा सपूण ।

(२) 'जयमजल अरिहत-स्तवन' सवत् १९३२ ज्यष्ठ कृष्णा द्वितीया शनिवार सिद्धि योग में शाजापुर में रचित, श्री तिलोक छद-सग्रह में प्रकाशित ह ।

(३) 'श्री नमी-चरित्र' भाद्रपद शुक्ल १३ सोमवार के रोज शाजापुर में

(४) भ्रमभजन कुमति कपेटिका (उपनाम प्रश्नोत्तरयुक्त चर्चा माला) सवत १९३२ । यह ग्रथ भी प्रकाशित ह, पर इस म स्थान तथा समय का उल्लेख नही किया गया है।

५) भरत क्षत्र (भरत खड का नकशा) विक्रम सवत १९३२ श्रावण शुक्ल ९ भगुवार (शुक्रवार)के दिन शाजापुर कसेरवाडी धर्मस्थानक पौषधशाला में लिखा ।

सवत १९३१ की तरह सवत् १९ २ के चातुर्मास में व्याख्यान के समय आपश्री ने किस सूत्र का वाचन किया इसका भी लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं ह।

विहार-वणन नही होने से आपश्री का पतीसवा लोच फाल्गुनी, चातुर्मासी पर और छत्तीसवाँ लोच सवत्सरी के पूव में हुआ ह ऐसा आगे के वणन पर से ज्ञात होता ह।

संवत् १९३१ संवत् १९३२ के युग्म चातुर्मास शाजापुर मे व्यतीत कर आपश्री ने मालव प्रांत में ही विहार किया। शाजापुर से मोना होते हुए आपने नलखेडा में पदार्पण किया। नलखेडा से पुन मोना पधारे। मोना से विहार कर आपश्री ने पुन शाजापुर की भूमि को अलंकृत किया। यहाँ पर कुछ दिन ठहर कर "श्रावक धर्म पच्चीसी" की संवत् १९३२ पौष मास की एकादशी के दिन शाजापुर के कसेरवाडी स्थानक में रचना पूर्ण की, और संवत् १९३२ चैत्र कृष्ण ११ शुक्रवार के दिन यहाँ पर स्थानक में ही लिखी है। यहाँ पर आपश्री का सैंतीसवाँ लोच हुआ। यहाँ प्रतिदिन आपका व्याख्यान होता था। यहाँ से विहार कर मार्ग में आने वाले छोटे २ ग्रामो को स्पर्शते हुए आपश्री देवास पधारे। देवास से इंदौर क्षेत्र में आपका शुभागमन हुआ। इंदौर से विहार कर उज्जैन को अलंकृत किया। यहाँ से ५२ मील की दूरी पर स्थित शाजापुर क्षेत्र की ओर आपका विहार हुआ। उज्जैन से शाजापुर पहुँचते समय रास्ते में मध्य-स्थित क्षेत्रो को स्पर्श कर वहा के लोगो को धर्मोपदेश दिया। श्री जंबूद्वीपपट (जंबूद्वीप का संक्षिप्त नकशा) संवत् १९३३ मिति जेष्ठ शुक्ल ८ लि० तिलोक रिख, शाजापुरे, आर्यिका लाडूजी अर्थे।

शाजापुर से चातुर्मास के निमित्त विहार कर रास्ते में अपनी चरण-रज से अनेक ग्रामो को पावन करते हुए आपने शुजालपुर में पदार्पण किया। आपश्री ठाणा पाँच से चातुर्मासार्थ पधारे थे। इस चातुर्मास में भी व्याख्यान के समय आपने किस सूत्र का वाचन किया? इसका दिनचर्या में कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नही है। यहाँ पर आपश्री का अडतीसवाँ लोच हुआ। केवल श्रावण शुक्ल १४ शुक्रवार श्रवण नक्षत्र, प्रीति, ववकरण मकर चद्र मे स्थान शुजालपुर मालवा मे आपने श्री सीता-चरित्र की रचना पूर्ण की है। यह ग्रंथ अप्रकाशित है। इसकी प्रति श्रीरत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी स्थित हस्तलिखित शास्त्र भंडार में मौजूद है।

विक्रम संवत् १९३४ का चातुर्मास रतलाम क्षेत्र में

शुजालपुर का चातुर्मास आनदपूर्वक पूर्ण होने के पश्चात् आपश्री ने शाजापुर की ओर अपना विहार किया। विहार के समय मध्यवर्ती छोटे स्थानों में थोडी देर ही सही, पर आपका सदुपदेश बराबर चलता रहता था। आपके थोडे से सहवास मे लोग अत्यत शांति का अनुभव करते थे। शाजापुर के बाद बीच के क्षेत्रो का स्पर्श करते हुए आपश्री देवास पधारे। वहाँ से इंदौर पदार्पण किया। कुछ समयपर्यंत वहाँ स्थिरवास कर आपश्री ने पुनः रतलाम की ओर अपना

विहार किया। इंदौर से रतलाम साठ मील की दूरी पर स्थित है। रतलाम जाते समय बीच के अनेक छोटे २ क्षेत्रों को अपने वोधामृत से पावन किया। रतलाम से फिर सलाना पुन्यासड़ी पीपलोदा आदि ग्रामों को स्पर्शते हुए आपश्री ने फाल्गुनी चातुर्मास के निमित्त जावरा क्षेत्र में पदार्पण किया। यहाँ पर आपका उन्चालीसवाँ लोच हुआ। शुजालपुर चातुर्मास के बाद आपने जो जो प्रतियाँ लिखी उनमें उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियाँ निम्नांकित हैं ---

(१) संवत् १९३३ मार्गशीर्ष शुक्ल २ के दिन बृहत्कल्पसूत्र के पन्ने १५ पूर्ण किये। लि० तिलोकरिख।

(२) संवत् १९३३ फाल्गुन शुक्ल १ बलोदा नामक क्षेत्रों में श्री भक्तामर स्तोत्र—मूलपाठ एक ही पत्र में संपूर्ण लिखा है। लि० तिलोकरिख।

(३) चित्रकलायुक्त काव्य एक पन्ना। संवत् १९३३ में लिखा हुआ है। नव तथा आठ अंक के संबंध में एक काव्य है। और साथ में एक विचित्र दोहा है। पन्ने की पृष्ठ-पीठिका में नव काव्य हैं उनमें से तीन दोहे गूढ़ार्थक हैं। इसके अतिरिक्त आपने और कितना लेखन कार्य किया वह उपलब्ध नहीं है। बहुत से ऐसे काव्य भी हैं, जिनपर संवत् मिति ग्राम आदि का उल्लेख नहीं होने से उनका यहाँ निर्देश नहीं किया गया है।

जावरा से आपश्री ने पश्चात् विहार किया। वहाँ से भावता कोटड़ी, भावगट नवावता मालोट आदि को स्पर्श कर आप मन्दसौर क्षेत्र में पधारे। मन्दसौर में आपश्री द्वारा लिखित एक कृति उपलब्ध है। श्री पार्श्वनाथजी का छंद संवत् १९३४ वर्षे लि० तिलोकरिख शहर मंदसौर मध्ये।

मंदसौर से बीस मील की दूरी पर स्थित प्रतापगढ़ में आपश्री का पधारना हुआ। प्रतापगढ़ से विहार कर मंदसौर को पावन करते हुए आपने पुनः जावरा में पदार्पण किया। अब यहाँ से चातुर्मास के निमित्त आपश्री का (रत्नपुरी) रतलाम में पधारना हुआ। चातुर्मास के दिनों में व्याख्यान के समय श्री जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति, श्री अंतगडदशा सूत्र श्री निरियावलिका सूत्र का वाचन हुआ।

प्रतिदिन बहुसंख्यक श्रोता-गण उपस्थित होकर आपके व्याख्यान का लाभ लेते थे। यहाँ पर आपश्री का चालीसवाँ लोच हुआ। संवत् १९३४ के प्रारंभ से कार्तिक शुक्ल १५ तक आपने जो लेखन कार्य किया वह इस प्रकार है--

१) 'श्री आचार्य छंद' की रचना संवत् १९३४ वैशाख शुक्ल पौर्णिमा सोमवार के दिन की गई। स्थान निर्देश नहीं है।

२) प्रथम ज्येष्ठ शुक्ल १३ संवत् १९३४ चंडकृत प्राकृत लक्षण व्याकरण

समाप्त। लि० तिलोकरिख, मदसौर मध्ये।

३ श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र सहस्त्र नाम सपूर्ण। सवत् १९३४,। मिति कार्तिक वदि ६ रविवासरे लि० तिलोकरिख, मंदसौर मध्ये।

४ एक छोटा पन्ना। एक इंच चौकोनी जगह में आपश्री ने, १०१ हाथी के चित्र चित्रित किये है। यह कृति दर्शनीय है। संवत् १९३४ लि० तिलोक-रिख रतलाम मध्ये।

पूज्यश्री धर्मदासजी महाराज की संप्रदाय की पडिता महासतीजी श्री सज्जन कुवरजी म० ठाणा १० धुलिया पधारे। उस समय २०१५ के साल में उपाध्यायजी श्री आनंदऋषिजी म० की सेवा में यह पत्र तथा पूज्यपादश्रीजी ने पैरो से कतरा हुआ, एक कागज का चित्र ये दोनो महासतीजी से सादर प्राप्त हुए।

उपलब्ध सामग्री से हम जिन ग्रथो का अवलोकन कर सके उनका नाम-निर्देश ऊपर किया गया है।

पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज का मालवप्रांतीय अंतिम चातुर्मास, संवत् १९३५ का जावरामें,

श्री रतलाम नगर में आपका १९३४ का चातुर्मास विशेष शांति-पूर्वक व्यतीत हुआ। वहापर वैरागी श्री भवानीऋषिजी की दीक्षा 0संवत् १९३४ मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी के दिन हुई। सात दिन पश्चात् उनकी बडी दीक्षा होने पर आपश्री ने वहा से विहार किया। वहा से सैलाना, पुन्याखेडी, पीपलोदा की ओर चंक्रमण किया। पीपलोदा में कुछ दिन विराजकर वहा से सुखेडा को स्पर्श करते हुए पुन. पीपलोदा पधार कर आपश्री ने जावरा में पदार्पण किया। जावरा से रतलाम की ओर विहार कर वहा कुछ दिन स्थिरवास किया। यहा से शिवगढ, सैलाना, सेरपुर, मिनोर, कोटडी, भावगढ, नदावता, कुणी, कल्याण-पुरा, नोगाडा, कणगेटी, जीरण आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपश्री जी नीमच पधारे। यहा से आपका जावद की ओर विहार हुआ।

जावद में आपश्री ने ८४ सिखामण (चौरासी हित-शिक्षाएँ) का एक पन्ना लिखा। संवत् १९३४ माघ शुक्ल ११ शहर जावद मध्ये लि, तिलोकरिख। यह पन्ना शुजालपुर क्षेत्र में विराजित स्थविरा महासतीजी श्री फूलकुंवरजी महाराज से प्राप्त हुआ। सवत् २०१४ में उपाध्यायजी श्री आनंदऋषिजी म० ठाणे ६

0 पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० का एक संक्षिप्त जीवन-चरित्र प० श्री राजधारी त्रिपाठीजी ने लिखा है। इसमें आपके मतानुसार १९३३ में यह दीक्षा हुई थी। पर उपलब्ध सामग्रीके आधार मे यह सिद्ध हो चुका है कि यह दीक्षा शुजालपुर-चातुर्मास के समय न होकर रतलाम के चातुर्मास के बाद स १९३४ में हुई थी।

का चातुर्मास शुजालपुर में था। तब महासतीजी ने आपको सवा में यह पन्ना अर्पण किया था। शिक्षाप्रद एवं जीवनोपयोगी समझकर श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी द्वारा प्रकाशित है। जावद से विहार कर आप पुन नीमच पधारे। नीमच से जामुनिया कचोरी मल्हारगढ पाडलिया, मदसौर रेवास दावडा आदि क्षेत्रों को स्पर्शकर आपश्री मिति फाल्गुन कृष्ण प्रतिपद मगलवार के दिन ठाणा २ से प्रतापगढ पधारे। यहापर आपश्री ने दस रात्रिपर्यत स्थिरवास किया।

यहा से विहार कर आसडी आहार-पानी करके चावाखडी पधारे। यहां से मोवाई होकर कोटडी म पदार्पण किया। फाल्गुनी चातुर्मासी आपने यहा पर ही बिताई और इस स्थानपर आपका इकतालीसवां लोच हुआ। कोटडी से विहार कर मावता की भूमि को अलकृत किया। यहा पर श्री दशवकालिक सूत्र का मूल पाठ दस पत्रों में सपूर्ण किया। सवत् १९३४ चैत्र कृष्ण ५ तिथी शनिवासरे कि तिलोकरिख गाँव मावता मध्य।

मावता से कालु खेडा को स्पर्शकर मम्मटखेडा में पदार्पण किया। यहा मिति चैत्र शुक्ल १२ रविवार सवत् १९३५ के दिन श्री प्याराऋषिजी म० को दीक्षा हुई। इनकी बडी दीक्षा छह महीने बाद हुई, ऐसा दिन चर्या म उल्लेख है। यहा से विहार कर आपने जावरा की भूमि को सुशोभित किया। जावरा के श्रीसघने विनय आग्रहपूर्वक आपश्री से अपने यहा चातुर्मास करने के लिये विनति की। आपश्रीने अवसर देखकर उस प्रार्थना को स्वीकार किया इससे श्रीसघ को आनद की सीमा नही रही। जावरा से लुवारी बाडल्या नामली सेजावता आदि छोटे २ क्षेत्रों को स्पर्श करके आपश्री ने रतलाम में पदार्पण किया। यहा पर पधारकर कुछ दिन स्थिरवास किया। तत्पश्चात पुन छोटे २ क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए उग्र विहार किया।

परसोला पचेड सलाना करिया पुन्याखेडी गुटखेडा मिणोर बुखेडा कोटडी आदि क्षेत्रों को पावन कर मावता ग्राम में पदार्पण किया। यहा पर आपश्री द्वारा लिखित एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। उसका नाम है श्री कृष्ण ब्यावलो। प्रति के पन्ने १४ है। इसे आपने सवत् १९३५ ज्येष्ठ शुक्ल २ रविवार के दिन पूर्ण किया है। तत्पश्चात् चातुर्मास के निमित्त जावरा की ओर विहार किया। रास्ते में कोटडी, बुखेडा पीपलोदा राकोदा पचेवा मम्मटखेडा आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए कविकुल भूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म श्री भवानीऋषिजी म० मुनिश्री प्याराऋषिजी म० आदि ठाणे ३ ने चातुर्मासार्थ जावरा क्षेत्र में पदार्पण किया। आपके शुभागमन से यहा की जनता ने अत्यत हर्षका अनुभव किया उसे शब्दों द्वारा प्रकट नही किया जा सकता।

चातुर्मास-काल में श्री जीवाभिगम सूत्र का वाचन हुआ। जावरा शहर-निवासी श्रावक-श्राविकाएं तथा इतर जनता आपके अमृतोपम उपदेश को सुनकर अत्यंत आनंद का अनुभव कर संतुष्ट होती थी। यहीं आपश्री का सावत्सरिक ४२ वां लोच हुआ। सावत्सरिक पर्व भी बड़े उत्साह तथा शांति-पूर्वक वातावरण में सपन्न हुआ।

इस चातुर्मास में एक विशेष उल्लेखनीय बात हुई। चातुर्मास-समाप्ति के पूर्व पूना जिल्हा के अतर्गत घोडनदीनिवासी सुश्रावक श्री गंभीरमलजी लोढा मालव प्रांत में संत-सतियों के दर्शनार्थ निकले थे। उस समय दक्षिण देश में संत-मुनियों का विहार बहुत ही कम होता था। इसलिये जैनधर्म का पालन करनेवाले अनेक लोगो की अपने धर्म से श्रद्धा कम होती जा रही थी। संत-मुनिराजों का संपर्क नहीं होने के कारण वे अन्य वैष्णव आदि धर्म की ओर आकर्षित हो रहे थे। यह बात वहाँ के अच्छे श्रावकों को बहुत अखर रही थी। उनकी अहर्निश यही भावना रहती थी कि हमारे इधर किसी मुन का विचरण हो तो अच्छा। ऐसे श्रावकों में श्री गंभीरमलजी लोढा अग्रगणनीय थे। श्री गंभीरमलजी लोढा ने पहले इंदौर क्षेत्र में विराजित कोटा सप्रदाय के पूज्य छगनलालजी म० के दर्शन किये और आपश्री की सेवा में दक्षिण देश में पधारने की विनति की। परंतु अपरिचित देश के साथ बहुत दूर होने से आपकी प्रार्थना स्वीकृति नहीं की गई।

तत्पश्चात् लोढाजी अन्य स्थानों में विराजित संत-मुनियों के दर्शन करते हुए जावरा क्षेत्र में उपस्थित होकर आपश्री की सेवा में पहुंचे। पूज्यपाद म० श्री की शांत प्रकृति, गंभीरता तथा सरलता आदि अनेक गुणों से विभूषित महाराज श्री के दर्शन कर श्रीमान् लोढाजी को विशेष संतोष हुआ। तत्पश्चात् पूज्यपाद श्री जी की सेवा में दक्षिण देश में विहार करने की प्रार्थना की। उनकी इस आग्रह-पूर्ण विनति में यह भाव था, अभी दक्षिणदेश मुनिराजों के सचार से रहित होने के कारण अपने धर्म से विमुख होता जा रहा है। आपके इधर पधारने से जैनधर्म पालन करनेवाली जनता के साथ अन्य लोगों का भी बहुत उपकार होगा। लोगों को सद्धर्म का बोध होगा। वे अपने कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय कर सकेंगे। आपके पधारने से विशेष उपकार होगा। ये शब्द लोढाजी ने कुछ ऐसे ढंग से कहे कि उन्होंने पूज्यपाद म० श्री के हृदय में घर कर लिया। विशेष उपकार की भावना से महाराज साहब ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। अवसर देखकर सुखे-समाधे चातुर्मास होने के बाद दक्षिण देश की ओर

विहार करने की महाराजश्री ने भावना व्यक्त की। स्वीकृति-जनक इन वचनों को सुनकर सुश्रावक श्री गंभीरमलजी लोढा को अत्यंत संतोष का अनुभव हुआ। आपश्री के पधारने से अब दक्षिण देश पावन हो जायगा। वहाँ फिर लोग नये रूप से अपने धर्म का ज्ञान प्राप्त कर के धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा दृढ़ बनायेंगे। ऐसा विश्वास प्रगट करते हुए श्री लोढाजी घोडनदी की ओर चले गये।

जावरा चातुर्मास के समय आपने जो लेखन कार्य किया, उसमें जो कृतियाँ उपलब्ध हो सकी वे इस प्रकार हैं —

(१) पाप छत्तीसी सवैया संपूर्ण। संवत १९३५ वर्षे आषाढ शुक्ल १५ रविवासरे।

(२) श्री अध्यात्मस्तुई काव्य ८ में संपूर्ण। पत्ता १ प्रथम पृष्ठ पर संवत १९३५ वर्षे आश्विन शुक्ल २ तिथी लि० तिलोकरिख।

(३) श्री नवतत्व (बड़ी) संपूर्ण पाना ६ साथ। संवत १९३५ वर्षे आश्विन शुक्ल ३ लि० तिलोकरिख शहर जावरा मध्ये।

(४) राजीमती बारहमासा, संवत १९३५ दीपमालिका दिन लि० तिलोकरिख शहर जावरा मध्य।

पूज्यपाद कविकुल भूषण श्री तिलोकऋषि जी म० आदि ठाणे तीन का १९३५ में दक्षिण प्रान्त की ओर विहार

जावरा क्षेत्र में संवत १९३५ का चातुर्मास अत्यंत शांति-पूर्ण ढंग से पूर्ण हुआ। इस चातुर्मास में ही दक्षिण देशस्थ घोडनदीनिवासी सुश्रावक श्री गंभीरमलजी लोढा महाराजश्री से दक्षिण देश में विहार करने की विनंति कर चुके थे। अतएव चातुर्मास समाप्ति के बाद आपकी प्रार्थना को लक्ष्य में रखकर आपश्री ठाणा तीन (पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० श्री भवानीऋषि म० और श्री प्याराऋषिजी म० एवं ठाणा तीन) ने जावरा से दक्षिण देश की ओर विहार किया। पहले लूबारी नामली होते हुए रतलाम पधारना हुआ। यहाँ पर आपश्री आठ दिवसपर्यंत विराजे। रतलाम से पचेड होते हुए पुन्याखेडी पधारे। वहाँ पर चार दिन की स्थिरता की। फिर पुन्याखेडी से बडाएलो को स्पर्श करते हुए जावरा पधारना हुआ। यहाँ आठ रात्रि स्थिरता करके पुनः लूबारी होते हुए अपनी जन्मभूमि रतलाम को अलंकृत किया। वहाँ छह रात्रि विराजकर मार्गशीर्ष शुक्ल ९ मंगलवार के दिन विहार किया। वहाँ से घराड सेलवाडा भूलथान बखतगढ कानवन भावदा सरोद पखी आदि छोटे २ क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए आपश्री का मिति मार्गशीर्ष शुक्ल १५ के दिन धारानगरी में

शुभागमन हुआ। यहा पर आठ दिन तक स्थिरता की। तत्पश्चात् दोवठाण, चमलखडोदा, बेटमा, कलाल्या आदि स्थानो में विचरण करते हुए इंदौर को अलकृत किया। यहाँ आपश्री केवल तीन रात्रिपर्यन्त विराजे। इंदौर से मोरोद होते हुए दतोदा में दो दिन ठहरे। वहा से विहारकर सिमरोड, चोरड, बिलवाडा, नाला आदि क्षेत्रो को पावन किया और इंदौर से ३७ मील की दूरी पर जो नउवाह ग्राम है वहा पदार्पण किया। वहाँ से दो मील पर नर्मदा नदी का जो पुल है, वह ६०० फाट् का है। इंदौर से वह ३९ मील की दूरी पर है। वहा से फिर सेनावद, खेडी, अत्तर, देसी आदि स्थानो मे विचरण कर खडवा पदार्पण किया। यहाँ से पाजरो, कुमटी, बोरगाव, खेराला, मार्गीठाकुर सा० मुकुदराम, भगवान्, बलराज, रामचंद्र किसन तथा दयाचंद, चौकी, आसेरगढ निबोला आदि रास्ते में पडनेवाले छोटे २ ग्रामो को अपनी चरण-रज से पवित्र करते हुए आपश्री ठाणे ३ का बरहानपुर में शुभागमन हुआ। वहाँ पर तीन रात्रिपर्यन्त विराजकर विहार किया। बरहानपुर से रमेटी, वादरपुरा, रसूनपुरा, विउरो होते हुए फैजपुर में पदार्पण किया। यहा आस-पास के गावो में दिगबर आम्नाय के अंतर्गत तारणस्वामी का एक पन्थ चलता है, उसको मानने वाले एक जाति के महाजन वणिक् हैं। वे केवल शास्त्र को मानते हैं और पूजते है। आपश्रीजी ने उपदेश देकर बहुत से लोगो को साधुमार्गी बनाये। महासतीजी श्री हीराजी म० जो कि ससार पक्ष की आपकी भगिनी थी, वह भी दक्षिण देश को पावन करने के लिये आपके पीछे विहार करती २ फैजपुर आ पहुंची थी। यहा पर महासतीजी श्री हीराजी म० के समीप पूज्यपाद महाराजश्री के मुखारविंद से वैराग्यवती श्री भूराजी की दीक्षा हुई और वह आपकी नेश्राय मे की गई अर्थात् दक्षिण देश में पधारते समय श्री हीराजी महासतीजी की नेश्राय में यह प्रथम शिष्या हुई। पूज्यपाद श्री यहा पन्दरह दिवसपर्यन्त विराजे।

फैजपुर से विहार कर आपश्री भालोद होते हुए साकली में सात रात्रि विराजमान रहे। वहां से सिरसाला, यावल आदि स्थानो में विचरण कर फैजपुर पधारे और सात दिन तक यहाँ स्थिरता की। यहाँ से बामणोद होकर भुसावल क्षेत्र में पदार्पण किया। यहाँ आते समय विहार में तापी नदी पर होकर आना पडा। भुसावल से साकेगाँव (वागुर नदी) कडगाँव स्पर्शते हुए जलगाँव मे पदार्पण किया। यहाँ आपश्री द्वारा लिखित एक पन्ना उपलब्ध हुआ है। उस पत्र पर "जोगी का झगडा" "पडिक्कमणे की सज्झाय" और विषापहार स्तोत्र ये तीन चीजें लिखी गई है। सवत् १९३५ फाल्गुन वदि ३० शुक्रवार खानदेश जिला जलगाव मध्ये लि० तिलोकरिख। जलगाव से विहार करते हुये रास्ते में गिरणा

नदी उतरी गई । वहाँ से पालखी पधारे । वहाँ से विहारकर रास्ते में पीपरी और अजला नदी पार कर धरणगाव होते हुए टाकरगाव पधारे । इस भाग में चीरली नदी तथा बोरी नदी भी है । इस प्रकार रास्ते में अनेक क्षेत्रों को पावन करने के साथ कई नदी-नालों को पार कर आपश्री ने अंत में अमलनेर पदार्पण किया ।

अमलनेर से मुकटी, कामणा होते हुए आपश्री का धुलिया (पश्चिम खानदेश) में शुभागमन हुआ । यहाँ से पुर, चिकलवाड पधारे । चिकलवाड पहुँचते २ फाल्गुनी चातुर्मासी आ गई थी । यहा पर आपश्री का सतालीसवां लोच हुआ । चिकलवाड से मालेगाव पधारना हुआ । आप अपने जावरा चातुर्मास के समय दक्षिण देश में विहार करने पर घोडनदी पहले स्पर्श करने का वचन दे चुके थे । अतः आपश्री ने पश्चिमखानदेश में अधिक नहीं रुक कर अपना विहार अनवरत रूप से जारी रखा । परीषहों की चिंता किये बिना एक के बाद एक ग्राम का विचरण करते हुय द्रुतगति से विहार कर रहे थे । मालेगाव से आपने मनमाड में पदार्पण किया । मनमाड से येवला सावरगाव, यसगाव, कोपरगांव, सवत्सर वारी पुणतावा वारी, निंबगांव बेलापुर, भाल मिया टाकली वेसुडी आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए आपश्री का ठाणे ३ से वाम्बोरी में शुभागमन हुआ । यहाँ से विलद मालवणी जामगांव जातेगांव नारायणगांव होते हुए मिति चैत्र कृष्णा नवमी के दिन दक्षिण देशस्थ घोडनदी क्षेत्र में आपश्री के पदार्पण होने से यह क्षेत्र पवित्र हो गया ।

घोडनदीनिवासी श्री गंभीरमलजी लोढा को तो इतनी प्रसन्नता हुई कि उसे शब्द बद्ध नहीं किया जा सकता । अत्यंत प्रसन्नता से उनका रोम रोम खड़ा हो गया । घोडनदी के श्रीसंघ ने भी आपके शुभागमन से उत्साहपूर्वक हर्ष मनाया था । इसे एक प्रकार से महाराज साहब का वरदान ही समझना चाहिये कि दक्षिण देश में पहले-पहल महाराज श्री द्वारा इस क्षेत्र का स्पर्श करने के बाद यह क्षेत्र साधु-सतो की चरण रज से पवित्र होता जा रहा है । यहाँ के निवासियों को शास्त्रों का जितना अच्छा ज्ञान है आस पास के अन्य क्षेत्रों में उतना ज्ञान नहीं है । घोडनदी में अठारह रात्रि पर्यन्त महाराज श्री विराजे ।

जिस समय महाराज श्री घोडनदी में विराजमान थे उस समय अहमदनगर का श्रीसंघ आपश्री के दर्शन करने आया । उसी प्रकार आसपास अन्य क्षेत्रों से झुंड के झुंड लोग आपके दर्शन का लाभ लेने के लिए आते रहे । आपश्री के पधारने से सारे दक्षिण देशमें हर्ष की सीमा नहीं रही । हमारी उस समय के अनेक

वृद्धो से भेंट हुई। बात–चीत के समय उन्होंने हमारे सामने अपने ये उद्गार प्रगट किये है कि श्री तिलोकऋषिजी महाराज सा. के पधारने पर सारे दक्षिण देशमे जो उत्साह और हर्ष छा गया, वह वर्णनातीत है। उनके पधारने मात्र से ही लोगो में अपने धर्म के प्रति नवीन श्रद्धा पैदा हुई। वे अपने उत्साह और बल का अनुभव करने लगे और प्रत्येक व्यक्ति रुचिपूर्वक कुछ न कुछ नवीन धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने लगा। उस समय सब लोगो में यह स्पर्द्धा की भावना थी की महाराज साहब हमारे क्षेत्र को पहले पवित्र करे। परन्तु उन सब में अहमदनगर श्रीसंघ ने पूज्यपाद महाराज श्री का विहार अपनी ओर कराने में पहले सफलता प्राप्त की, महाराजश्री ने घोडनदी से पहले अहमदनगर क्षेत्र को स्पर्शने की स्वीकृति दी, फिर आपश्री ने घोडनदी से विहार कर नारायणगाँव सुपा, चास होते हुए अहमदनगर क्षेत्र में पदार्पण किया। अहमदनगर में उस समय सुविख्यात दृढधर्मी सुश्राविका श्रीमती रभाबाई पितलिया जी रहती थी। श्री तिलोकऋषिजी म० अहमदनगर में पधार रहे हैं, यह समाचार जिस व्यक्ति ने (पूनमचदजी ने) बाईजी को सुनाया उस व्यक्ति को बधाई की खुशी में अपने हाथो से सुवर्ण का कंकण निकाल कर दे दिया। यह बात वहाँ के वृद्ध अनुभवी श्रावको द्वारा सुनी गई है। आपश्री के शुभागमन से अहमदनगर में बडा ही उत्साह बढा। प्रति दिन व्याख्यान होता था। व्याख्यान के समय जैन धर्मी श्रावक-श्राविकाओ के अतिरिक्त इतर जनता काफी सख्या में उपस्थित होती थी। विशाल जगह होते हुए भी खचा-खच भर जाती थी। आपश्री यहा इक्कीस रात्रि पर्यंत बिराजे चातुर्मास के लिये अहमदनगर के श्रीसंघ ने आपसे बहुत प्रार्थना की, परंतु घोडनदीनिवासी सुश्रावक श्री गभीरमल जी लोढा की सब बाते सुनकर आगामी वर्ष के लिये कुछ छाया देकर आपश्री ने अहमदनगर से विहार किया। घोडनदी का श्रीसघ तथा श्री गंभीरमलजी लोढा की अत्यत आग्रहपूर्ण विनति होने से संवत् १९३६ के चातुर्मास की स्वीकृति घोडनदी में करने की दी गई।

सवत् १९३६ का चातुर्मास घोडनदी लश्कर में।

अहमदनगर से नेपती, ढेंठाना, जामगाव, पारनेर, वडझीरा, वाभुलवाडा आदि क्षेत्रो को स्पर्शकर आपश्री आवल कुटी (आळकुटी) पधारे। यहा पर ग्यारह रात्रि पर्यंत स्थिरता की। वहा से रांधो वडगाव, और कान्हूर पठार स्पर्शते हुए गोरेगाव, भालवणी, खाराकरजूना, विलद आदि क्षेत्रो में विचरण कर वाम्बोरी में आपका पदार्पण हुआ। वाबोरी में छह रात्रि पर्यंत शातिपूर्वक विराजे।

याबोरी से पीपलगांव होते हुए अहमदनगर में पधारना हुआ। अहमदनगर से निबुडी चिचोंडी (महादपाटील) पीपला होते हुए पुन: चिचोंडी में छह रात्रि तक विराजे। चिचोंडी से निंबुडी भिंगार (सदरबाजार) में पधारकर आपश्री ने पुन: अहमदनगर में पदार्पण किया। यहां पर आपश्री १७ रात्रि तक विराजे। नगर से विहार कर सुपा होते हुए आपश्री का चातुर्मासार्थ मिति आषाढ कृष्ण १४ के दिन ठाणा तीन से सुख-समाधे घोडनदी पधारना हुआ। उसके बाद आपश्री की संसार पक्ष की ज्येष्ठ भगिनी सती-शिरोमणि श्रीहीराजी म० ने भी मालेगांव से क्रमश: विहार कर ठाणा ३ से घोडनदी में पदार्पण किया। ऐसा सुना जाता है कि उस समय आपके सतत उपदेश से दक्षिण देशका पुनरुद्धार हुआ। अनेक पुण्यशाली व्यक्तियों ने आपके सहवास का लाभ उठाकर अपने जीवन को सफल बनाया। प्रतिदिन आपका सदुपदेश होने लगा।

एक दिन आपश्री ने श्रीमान गंभीरमलजी लोढा से कहा कि लोढाजी! आपने मालव प्रांत में आकर मुझसे कहा था कि दक्षिण देश पधारिये। आपश्री के दक्षिण देश में पधारने से बहुत उपकार होगा। मैं आपके वचन पर ही विश्वास कर इतनी दूर आया हूं। अब आप ही बताइये, यहां आने पर क्या उपकार हुआ है?

इस पर श्रीमान् लोढाजी ने कहा आपश्री के उपदेश में ही महान् शक्ति है, वह धीरे २ अप्रत्यक्ष रूप से सब कार्य करती जा रही है, उसका अभी हमें मूर्तरूप नहीं दिखाई देता पर थोडे ही दिनों में आपके उपदेश से यहां वह कार्य होगा, जिसे देखकर लोग चकित रह जायंगे। दक्षिण में वह एक अभूत-पूर्व घटना होगी।

श्रीमान लोढाजी के कथनानुसार पूज्यपाद म० श्री के उपदेश ने अपना कार्य किया। लोढाजी के एक रामकुंवर नामक सुपुत्री थी वह केवल अठारह मास पर्यंत पति के सुख का अनुभव कर विधवा हो चुकी थी। प्रतिदिन महाराजश्री का व्याख्यान सुनते २ उसे संसार से वैराग्य हो गया। उसके साथ उसकी माता श्री चंपाबाई को भी संसार से विरक्ति होने लगी। होते २ यह विरक्ति यहां तक बढी कि दोनों माता पुत्री संसार छोडकर दीक्षा लेने के लिये कटिबद्ध तैयार हो गई। उस समय माणकदौंडी (जि अहमदनगर) वाले श्रीमान् स्वरूपचंदजी फिरोदिया और उनका एक रतनचंदजी नामक बारह वर्ष का पुत्र ये दोनों घोडनदी में आकर रहे थे। श्रीमान् स्वरूपचंदजी प्रतिदिन पूज्यपाद महाराजश्री का व्याख्यान एकाग्रचित्त होकर सुनते थे। जब आपने माता-पुत्री के

एक साथ दीक्षा लेने के समाचार सुने, तब आपका मन भी उसी दिशा की ओर दौड़ने लगा। प्रतिदिन एकाग्रता से व्याख्यान सुनने पर आपको संसार की अनित्यता का भान हो चुका था। संसार में रहनेवाले प्राणियों को आये दिन कितनी चिंताओं तथा परेशानियों का अनुभव करना पड़ता है? इसका प्रत्यक्ष अनुभव वे बहुत समय से कर रहे थे। उन्होंने सोचा कि मेरे पूर्व पुण्यों से ऐसे महापुरुषों का सुयोग प्राप्त हुआ है, बार-बार ऐसा सुअवसर प्राप्त होनेवाला नहीं। जहाँ जैनधर्म एकदम क्षीण तेज हो रहा था, वहाँ आपश्री ने यहाँ पधार कर उसे प्रदीप्त बनाया। आपके यहाँ से विहार कर देने पर न मालूम ऐसा सुयोग प्राप्त होगा या नहीं? इसलिए जल्दी ही इस संसार को छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण करने में मेरा श्रेय है। श्रेय-कारक कार्य को यथा-सम्भव शीघ्र कर लेना चाहिए। श्रीमान् स्वरूपचदजी ने अपने ये विचार अपने द्वादशवर्षीय पुत्र श्री रतनचदजी सामने प्रकट किये। विनीत पुत्र ने तत्काल उत्तर दिया, जिस कार्य को आप श्रेय समझते हैं, मेरे लिये भी वह श्रेयस्कर है। पर आप अकेले ही दीक्षा लेकर अपना कल्याण नहीं साध सकते। आपके साथ मैं भी प्रव्रज्या ग्रहण करके आपका पदानुसरण करूंगा। दीक्षावस्था में आप की देखरेख में मैं जल्दी ही अपना लक्ष्य सिद्ध कर सकूंगा। अपने विनीत और साधुचरित पुत्र की ये बाते सुनकर श्रीमान् स्वरूपचदजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी यह भावना श्रीसघ के सामने प्रकट की। हम पिता-पुत्र भी ससार से विरक्त हो जाने से ससार को छोड़कर दीक्षा लेना चाहते है। उन के मुह से यह बात निकलते ही वायु-वेग से चारों ओर फैल गई। जिधर देखो उधर इसी की चर्चा होने लगी। लोग कहने लगे महाराजश्री के दक्षिण देश में पधारने से लोगो के हृदय में कैसा परिवर्तन हो रहा है। हमारे घोड़नदी क्षेत्र से ही एक साथ चार व्यक्ति दीक्षित हो रहे हैं। फिर तो सब लोग बड़े उत्साह से दीक्षा-महोत्सव की तैयारी में जुट गये। उन में श्रीमान् लोढाजी अगुवा थे। दीक्षा-महोत्सव के खर्च आदि की सारी जिम्मेवारी उन्होंने अपने सिर पर ही ले ली।

आषाढ शुक्ल नवमी शनिवार के शुभ दिन का उदय हुआ। घोड़नदी में बड़े उत्साह-पूर्वक दीक्षा-महोत्सव मनाया गया। इस मंगलकार्य में सम्मिलित होकर अपने को कृतार्थ करने के लिये आस-पास के ग्रामों के हजारों लोग सम्मिलित हुए। सब अपने हर्षोद्गार प्रकट कर रहे थे। इस क्षेत्र में इस के पहले

इतने लोग कभी इकट्ठे नहीं हुए थे। बड़े समारोह के साथ वैरागी व्यक्ति दीक्षा महोत्सव के स्थान पर पहुंचे। वहां कविकुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० ने अपने मुखारविंद से "करेमि भंते" का पाठ सुनाया और चारों वैरागी आत्माओं को दीक्षित किया।

पिता-पुत्र श्री स्वरूपचंदजी और रत्नचंदजी इन दोनों को महाराजश्री ने अपनी नेश्राय में शिष्य बनाये और दीक्षा लेने के बाद उनके नामों को बदलकर श्री स्वरूपऋषिजी म० तथा श्री रत्नऋषिजी म० इस प्रकार रखा गया। दीक्षा लेने के समय श्री रत्नऋषिजी म० की अवस्था केवल बारह वर्ष की थी। दूसरी ओर माता और पुत्री श्री चंपाबाई और श्री रामकुंवर ये दोनों सती शिरोमणि श्री हीराजी म० की नेश्राय में शिष्याएं हुई। इनका भी नाम-करण क्रमशः श्री चंपाजी म० तथा श्री रामकुंवरजी म० इस प्रकार किया गया।

इस प्रकार लश्कर घोडनदी क्षेत्र में एक ही साथ एक ही रोज चार दीक्षाएं हुई। यह पिता-पुत्र तथा माता-पुत्री की जोड़ी थी। बड़े पुण्य से सैकड़ों वर्षों से कभी ऐसा सुयोग प्राप्त होता है। स्वयं श्रीतिलोकऋषिजी म० के जीवन में ऐसी घटना घटी थी। उन्होंने भी अपने शिरच्छत्र पितृतुल्य ज्येष्ठ सहोदर के साथ दीक्षा ली थी और उनकी ज्येष्ठ भगिनी तो अपनी मातेश्वरी के साथ दीक्षित हुई थी। लश्कर घोडनदी में पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० आदि ठाणे ५ तथा महासतीजी श्री हीराजी म० आदि ठाणे ५ कुल मिलाकर दस ठाणों का चातुर्मास हुआ। चातुर्मास-काल में श्री समवायांग सूत्र का वाचन हुआ। यहां पर आपका ४४ वां लोच हुआ।

दक्षिण देश में घोडनदी क्षेत्र में महाराजश्री का यह प्रथम चातुर्मास था। इसलिये वहां पर लोगों की बहुत चहल-पहल रही। महाराजश्री का दर्शन करने प्रति दिन बाहर के गावों से अनेक लोग आने लगे। धर्म ध्यान, व्रत-पच्चक्खाण आदि की नवीन परंपरा प्रारंभ हुई। प्रतिदिन व्याख्यान के समय महाराजश्री के सदुपदेश को सुनकर लोग अंतर्मुख होकर विचार करने लगे। संवत्सरी के दिन तो इतने लोग इकट्ठे हुए कि कहा नहीं जा सकता। फिर भी यह महापर्व अत्यंत शांति-पूर्वक और बड़े उत्साह से मनाया गया। इस प्रकार दक्षिण देश में यह प्रथम चातुर्मास विशेष सफलता-पूर्वक संपन्न हुआ।

सवत् १९३६ के सालमे चातुर्मास की अवधि-पर्यंत आपश्री ने जिन ग्रंथो का निर्माण किया, उनमें से उपलब्ध ग्रथो की सूची निम्न प्रकार है।—

१ आवश्यक सूत्रमूल पाना १९	संवत् १९३६	भाद्र शुक्ल ८	घोडनदी
२ व्याख्यान-मडल सवैया पाना १	,,	आश्विन शु १२	,,
३ सतियाकी सज्झाय	,,	चातुर्मास	,,
४ गणधरकी ,,	,,	,,	,,
५ सामायिक के दोषोका पन्ना १	,,	,,	,,
६ समकित-छत्तीसी	,,	,,	,,
७ गजसुकुमारकी लावणी पन्ने २	,,	,,	,,

सवत् १९३७ का चातुर्मास अहमदनगर क्षेत्रमें

घोडनदी का चातुर्मास विशेष उत्साह तथा शाति-पूर्वक वातावरण में सपन्न हुआ। चातुर्मास के बाद आपश्री विहार करनेवाले थे। इतने ही में यहा के श्रीसघ ने उपस्थित होकर आपश्री से विनति की। यहापर अभी वैराग्यवती श्रीरभाबाईजी की दीक्षा लेन की उत्कट इच्छा है। उनकी ससार से एकदम विरक्ति हो गई है। वैराग्यवती बाई तथा यहा के श्रीसघ की यह इच्छा है कि यह दीक्षाविधि आपके द्वारा ही सपन्न हो। इसलिये श्रीरंभाबाई की दीक्षा हो तब तक आप यहा विराजमान रहने की कृपा करे। पूज्यपाद महाराजश्री ने सोचा कि श्रावक-गणका कहना समुचित है। तथा यह शुभ कार्य है। इस मगलमय कार्यको संपन्न करने के लिये मेरा यहाँ रहना समयोचित है।

फिर सवत् १९३६ मार्गशीर्ष कृष्णा १३ गुरुवार के दिन वैरागवती श्री रभाबाई को अत्यंत समारोह के साथ दीक्षा दी गई। वह महासतीजी श्री हीराजी म० की नेश्राय में शिष्या हुई। दीक्षा के सात दिन बाद उन्हे बडी दीक्षा देकर मार्गशीर्ष शुक्ल ५ शुक्रवार के दिन आपश्री ने वहाँ से विहार किया। विहार कही दूर नही कर केवल स्थान-परिवर्तन मात्र किया गया। क्यो कि रभाबाई की दीक्षा के समय एक बहिन की ओर दीक्षा लेने की इच्छा हो गई। इस समारोह को सपन्न करना आपका कर्तव्य था। फिर वैराग्यवती श्री गोकुलजी की दीक्षा सवत् १९३६ पोष शुक्ल ६ शनिवार के दिन आपश्री की उपस्थिति में हुई। वह भी सती-शिरोमणि श्री हीराजी म० की नेश्राय में शिष्या हुई। नव दीक्षिता महासतीजी को पौष शुक्ल द्वादशी के दिन बडी दीक्षा देकर आपश्री ने घोडनदी से विहार किया। रास्ते में छोटे २ क्षेत्रो को स्पर्शते हुए वाबोरी (अहमदनगर) में आपका शुभागमन हुआ। यहा पर वैराग्यवती श्री छोटाजी की संवत् १९३६

माघ कृष्ण १ बुधवार के रोज दीक्षा हुई। ये भी महासतीजी श्री हीराजी म० की नश्राय म शिष्या की गई।

वाबोरी से विहार कर ब्राह्मणी, खरडा, करजगांव आदि क्षत्रों को पावन करते हुए सोनई क्षत्र में पदार्पण किया। यहाँ पर ग्यारह रात्रि पर्यंत स्थिरता की। यहाँ पर रहकर एषणा समिति" का चोढालिया सपूर्ण किया। सवत १९३६ गाँव सोनई मध्य। विहार-वर्णन से पता चलता ह कि यह ग्रंथ माघ वदि पचमी शनिवार के दिन पूण किया होगा। एषणा समिति का यह चौढालिया 'सत्य बोध' नामक बडी पुस्तक में प्रकाशित ह। सोनई से विहार कर ब्राह्मणी उमरा दाकली, लाख, बकापुर कोल्हार (भगवती) लूणी गोगलगाव ओझर, वडझीरा तलेगाँव, सिरला ओकनी तथा निवगाव होते हुए आपश्री न फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष म सांइखेडा (नासिक) में पदार्पण किया। यहाँ पर आपश्री छह रात्रि पयत विराजे। यहाँ के स्थिरवास के समय मिति फाल्गुन कृष्ण १० शनिवार के दिन ओळप छत्तीसी नामक ग्रथ की रचना पूर्ण की। यहाँ से विहार करत समय रास्ते में गगानदी (गोदावरी नदी) उतरनी पडी। नदी को पार करने के बाद आपश्री ने चांदोरी लासलगाँव ओका आदि स्थानो को स्पश करते हुए नाशिकनगर में पदार्पण किया। नाशिक म गोदावरी नदी बहती ह। वहा पर आप तिवकेश्वर दरवाजे भावसी के उपाश्रय में उतरे। यहाँ पर भी आपने दो रात्रि पयन्त स्थिरता की। नाशिक से विहार कर आडगाँव में आहार-पानी किया। वहां से ओझर, तरसगाव कादवा नदी पत्थर पर से उतरे। वहा से वसतपापलगाँव में आपश्री का शुभागमन हुआ। यहा फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी को अमरकुमार-चरित्र नामक काव्य सवत १९३६ म पूण किया गया है। यहा पर आपश्री तीन रात्रि पर्यंत विराजे। पीपलगाव से विहार कर कारसूल कुदेवाडी सुकिना आदि क्षेत्रों को स्पशत हुए निफाड पहुच कर वहा तीन रात्रि पयत स्थिरवास किया। यहा आपश्री का ४५ वा लोच हुआ। वहा से विहार कर पुन कोठरा चादोरी होत हुए साइखडा क्षत्र में चत्र कृष्ण ३ के दिन पदार्पण किया। यहा पर वैराग्यवती श्री नदूबाई की दीक्षा सवत् १९३६ चत्र कृष्णा १३ बुधवार के दिन हुई। यहा कुछ दिन स्थिरवास कर वशाख कृष्ण प्रतिपद के दिन आपने यहा से विहार किया। रास्ते में चांदुरी, पीपलास निफाड तथा नादूर्डी होते हुए आपने लासलगाँव में पदार्पण किया। यहाँ पर चार रात्रि विराजकर विंचूर देशमानव होते हुए मुखेड पहुच कर आहार-पानी किया। वहां से पुन आहारगाँव को स्पर्श कर कोपरगाव में आपका पधारना हुआ। वहाँ स मोजडा में आहार-पानी करके धारी जाकर तीन रात्रिपयत विराजे। वहाँ से पुन-

तावा, खेरी निबगाव होते हुए बेलापुर पधारे। फिर लाख स्पर्श कर टाकली में आहार-पानी किया। टाकली से देमूंडी होते हुए वाबोरी में पदार्पण किया। वाबोरी में दो रात्रि स्थिरता की। तत्पश्चात् ब्राह्मणी में आहार-पानी करके सोनई, खरवडी आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए हीवडा मानस मे पधारना हुआ। यहा पर आपने छह रात्रि पर्यन्त स्थिरवास किया। यहा पर आपश्री ने वैशाख कृष्ण त्रयोदशी के दिन "विनय-आराधना का चौढालिया" की रचना पूर्ण की तथा अक्षयतृतीया के दिन "श्री उपदेश-लावणी" की रचना इसी गाव में की।

फिर मानस हिवरा से विहार कर कुकाना क्षेत्र में पधारे। यहा दो दिन विराजे। यहाँ से देवगाव होते हुए चादा मे कुछ विराजकर सोनई मे आपका पदार्पण हुआ। यहापर तीन रात्रि विराजे। वहासे ब्राह्मणी होते हुए वाबोरी क्षेत्रको अलकृत किया। वाबोरी श्रीसघके विशेष आग्रह से आपश्री यहा १८ रात्रि पर्यंत विराजे। इन सब क्षेत्रो पर महाराज श्री की असीम कृपा थी। जहा कही पर आपश्री की अधिक स्थिरता होती, वहा आस-पासके ग्रामो से दर्शनार्थियो का ताता लगता रहता था। उन सब स्थानो का श्री सघ भी इतना उदार तथा उत्साही था कि अपने यहा महाराज श्री के दर्शनार्थ आनेवाले व्यक्तियो का तन-मन-धन से आतिथ्य-सत्कार करने के लिये सदैव तत्पर रहता था।

इस बात का हम पहले ही उल्लेख कर चुके है कि घोडनदी क्षेत्र मे ही अहमदनगर चातुर्मास करने की महाराजश्री ने स्वीकृति दे दी थी, अब चातुर्मास के दिन भी निकट आगये थे, अत चातुर्मास के निमित्त आपश्री ने ठाणा ४ से विहार किया। वाबोरी से विहार कर देवगढ, डोगरगढ, होते हुए पीपलगाव मालवी में आपश्री ने पदार्पण किया। पूज्यपाद महाराज श्री दक्षिण देश में पधारे, उस समय से ही अहमदनगर का श्रीसघ आपश्री का चातुर्मास कराने के लिये, लालायित था। इसके लिये उसने अपने प्रयत्न मे कुछ कमी नही रखी, परतु श्रीमान लोढाजी और घोडनदी के श्रीसंघ के आगे उसे झुकना पडा। पर अब नगर के श्रीसघ की भावना सफल हुई। इस से नगर-निवासियो के हर्ष की सीमा न रही। उन्होने सोचा अब ऐसे महापुरुषो का चातुर्मास कितनी लवी अवधि तक समागम रहने वाला है, इससे बढकर हमारे लिये और क्या सुवर्णावसर हो सकता है? पूज्यपाद म० श्री अब चातुर्मास के निमित्त अहमदनगर के पास पधार गये है। ऐसा जान कर नगर का श्रीसघ आपके स्वागतार्थ बहुत दूर तक पहुचा। सैकडो व्यक्ति जय-घोष की ध्वनि से आकाश को गुजायमान कर रहे थे। ऐसे लोगो के समूह के साथ आपश्री का अहमदनगर में शुभागमन हुआ। महाराजश्री के साथ जुलूस का यह दृश्य दर्शनीय था। ऐसा वृद्धो के मुखो से सुना जाता है। अहमदनगर में पदार्पण

पर श्रीमान ‍ के विशाल धर्म-स्थानक में आप विराजमान हुए। उस समय महासतीजी श्री हमरूजी महाराज भी ठाणा ३ से चातुर्मास के निमित्त अहमदनगर पधार गईं। इस प्रकार अहमदनगर में कुल ठाणा सात का चातुर्मास हुआ। इस समय अहमदनगर में श्रीमान किसनदास जी मुथा श्रीमान चंदनमलजी पीतलिया श्रीमान् हुसेतामलजी कोठारी जैसे शास्त्रज्ञ मुख्य श्रावक विद्यमान थे। चातुर्मास प्रारम्भ होने पर प्रतिदिन व्याख्यान होने लगा। व्याख्यान में उत्तरोत्तर संख्या बढ़ने लगी धीरे २ लोग इतने अधिक आने लगे कि स्थानक खचाखच भर जाता था। व्याख्यान में श्री आचारांग सूत्र तथा श्री सूयगडांगसूत्र का वाचन होता था। आपश्री के मधुर अमृतोपम उपदेश को श्रवण कर श्रोता गण पुनः पुनः उसे सुनने के लिये इतने अधिक लालायित रहते थे कि उन्हें कभी तृप्ति नहीं होती थी। स्थानीय श्रावक श्राविकाओं के अतिरिक्त दूर दूर से अनेक लोग व्याख्यान सुनने के लिए आते थे। पर्युषण तथा सांवत्सरिक महापर्व भी विशेष उत्साह तथा शांतिपूर्ण ढंग से संपन्न हुआ। यहां आपश्री का ४६ वां लोच हुआ। श्रीसंघ ने धर्मध्यान तथा व्याख्यान वाणी का प्रचुर परिमाण में लाभ उठाया। चातुर्मास के समय पूज्यपाद महाराज श्री के दर्शनार्थ आनेवाले व्यक्तियों का श्रीसंघ ने तन—मन—धन से आतिथ्य सत्कार किया। इस प्रकार चातुर्मास-काल आनंद-पूर्वक संपन्न हुआ।

चातुर्मास-काल में आपश्री ने जिन जिन ग्रंथों की रचना की उनमें से उपलब्ध ग्रंथों की सूची निम्न प्रकार है—

१) भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशी शुक्रवार शिव योग में ' श्री वर्द्धमान वर्णोदम, नामक काव्य बनाया यह सत्य बोध नामक बड़ी पुस्तक में प्रकाशित है।

२) आश्विन कृष्ण ४ बुधवार भरणी नक्षत्र हर्षण योग, अहमदनगर नवीपेठ धर्मस्थानक में श्रीचन्द्र केवली चरित्र की रचना परिपूर्ण की। ढाल ६७ तथा ४५०० गाथा परिमाण यह ग्रंथ है और अप्रकाशित है।

३) आश्विन कृष्ण ७ मदवासरे नमिपव्वज्जा, (उत्तराध्ययन सूत्रका नौवां अध्ययन) एक पत्र में लिखा। यह मयूर एवं प्रासाद को विचित्र आकृति में अंकित किया गया है। इसकी लेखनशैली दर्शनीय है और यह पत्र अप्रकाशित है।

४) आश्विन कृष्ण १४ बुधवार को द्वितीय चौवीस जिन-स्तवन ' की रचना सपूर्ण हुई। यह सत्यबोधनामक बड़ी पुस्तक में प्रकाशित है।

५) आश्विन शुक्ल १० विजया दशमी के रोज ' पंच परमेष्ठि स्तवन तथा वीर रस प्रधान श्री महावीर स्वामी का पंच ढालिया, इन दो ग्रंथों की रचना परिपूर्ण की गई। यह अप्रकाशित है।

६) कार्तिक कृष्ण ३० दीपमालिका के रोज "श्री वर्द्धमान स्वामी का चोढ़ालिया" नामक ग्रंथ की रचना की गई अहमदनगर मध्ये। यह ग्रंथ सत्यबोध नामक बड़ी पुस्तक में प्रकाशित है।

संवत् १९३८ का चातुर्मास घोड़नदी में

श्री अहमदनगर का चातुर्मास सानंद सम्पन्न होने के बाद आपश्री का मार्गशीर्ष कृष्ण २ गुरुवार के दिन नगर के बाहर धर्मशाला में विहार हुआ। यहां से केडगाव, कामरगाव, सुपा, हिंगा, पारनेर, कान्हूर पठार, पाडली, आभुलवाड़ा आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए आपश्री ने ठाणा चार से आलकुटी में पदार्पण किया। यहां पर आठ रात्रि पर्यन्त विराजे। आल्कुटी से विहार कर लुणी, निघोज, जवला आदि क्षेत्रों का स्पर्श कर घोडनदी पधारे। यहां पर आपश्री ने चौदह रात्रि तक स्थिरवास किया। संवत् १९३७ मिति मार्गशीर्ष शुक्ल १२ के दिन आपश्रीजी ने ज्ञानकुंजर तैयार किया। यह ज्ञानकुंजर आध्यात्मिक दृष्टि से गद्य तथा पद्यमय शैली में लिखा गया है। इस में अंबारीसहित एक बृहत् हाथी की अक्षरमय आकृति है।। सूंड से प्रारंभ कर पढ़ते जाइये क्रमशः धीरे २ हाथी की आकृति तैयार हो जायगी। इस बृहत् हाथी की आकृति में एक चवन्नी भर जगह में सब अवयवोंसहित ६५ हाथियों की आकृतियाँ चित्रित की गई हैं। इस दर्शनीय और अमूल्य वस्तु की श्री जैनधर्म प्रसारक संस्था सदर बाजार, नागपुर ने हजारों प्रतियाँ प्रकाशित की हैं। परन्तु साधारण जनता इसे देखकर इसका भाव नहीं समझ सकती। सामान्य लोग भी इसमें निहित भाव को हृदयंगम कर सकें, इसके लिये "श्री ज्ञानकुंजर दीपिका" नामक एक पुस्तिका नाथद्वारा निवासी पं० श्री राधाकृष्ण शर्मा एम् ए द्वारा लिखित श्री रत्न जैन पुस्तकालय, पाथर्डी (जि. अहमदनगर) से प्रकाशित की गई है।

इस पुस्तक में ज्ञानकुंजर (ज्ञान का हाथी) के विभिन्न अवयवों को अलग २ देकर उनमें लिखे हुए अक्षरों का भावार्थ समझाया गया है। सूंड से लेकर पूंछ तक थोड़े में महाराज साहब ने कितने गहरे तत्त्वों को लिपिबद्ध किया है, उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। बड़े-बड़े विद्वान् भी इस कृति को देखने के पश्चात् विस्मय विमुग्ध हो जाते हैं। इसके बारे में विशेष जानकारी "श्री ज्ञानकुंजर-दीपिका" से प्राप्त कर सकते हैं। इसकी हस्तलिखित मूल प्रति पूज्य उपाध्यायजी श्री आनंदऋषिजी महाराज के पास है।

घोडनदी से विहार कर दैंठणा, ढवलगाव, कोंडेगव्हाण, निंबी, पीपलगाव पीसा, घोलगाव कोंढ़यल, ढोरजा, मानगाव, देवलगाव आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए आपश्री ने श्रीगोंदा में पदार्पण किया। यहाँ नव रात्रि पर्यन्त स्थिरता

की। अपने स्थिरवास के समय पौष शुक्ल ८ शुक्रवार के दिन आपश्री ने "जीवरक्षा की लावणी" तथा "श्रावक ऊपर लावणी" इन दो काव्यों की रचना की। ये दोनों काव्य सत्यबोध में प्रकाशित है।

श्रीगोंदा से विहार कर देवलगाव, मानगांव खांडगाव कातराबाद, मांव वगण हई लोणी आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए चिचोंडी (महादपटल) में आपका शुभागमन हुआ। यहां पर आपश्री चौदह रात्रि पर्यन्त विराजे। यहां पर "मुनि मगल गुणमाला" की रचना मिति माघ वदि ८ के दिन की गई। इस काव्य की रचना इतने सुन्दर ढंग से की गई है कि इसमें निहित शास्त्रोक्त ज्ञान को साधारण से साधारण व्यक्ति भी समझ सकता है। भाषा भी इसकी अत्यन्त सरल है। यह सत्य बोध नामक बड़ी पुस्तक में प्रकाशित है।

चिचोंडी से विहार कर पीपला आकर चार रात्रि पर्यंत विराजे। यहां पर श्रीमान् कोंडीरामजी बोरा आपश्री से प्रभावित होकर आपके पूर्ण भक्त बन गये। वहां से फिर बोरादो लिबगाव चूमरी मिरजगाव पाटगाव निंबगाव चापडगाव आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए माघ मास के शुक्ल पक्ष में करमाला क्षेत्र को अलकृत किया। यहां पर छह दिन तक स्थिरता की। यहां पर माघ शुक्ल दशमी भौमवार के दिन 'श्रावक छत्तीसी' की रचना की गई और माघ शुक्ल तेरस को 'नरक दुःख वर्णन' की रचना कर के उपदेश आश्रय पद्य बीजु, की रचना भी यहीं पर की गई। ये तीनों काव्य सत्यबोध में प्रकाशित है।

करमाला से विहार कर रायगाव कोरेगाव कजत विकसल आदि ग्रामो को स्पर्शते हुए मिरजगाव में पदार्पण किया। यहां पर चार रात्रि पर्यन्त विश्रांति की। विश्रांति के समय फाल्गुन कृष्ण द्वितीया बुधवार को "अध्यात्म फाग स्वाध्याय" की रचना की। यहां से वाकी सिराल होते हुए कडा पधारे। यहां फाल्गुन कृष्ण एकादशी को "सोलह स्वप्न की लावणी" रचना की। इस लावणी पर 'सम्राट चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न' नामक पुस्तक पंडित राधाकृष्णजी शर्मा एम० ए० द्वारा विवेचन सहित लिखी गई है और श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी (अहमदनगर) से प्रकाशित की गई है। पुस्तक का विषय बोधप्रद रोचक एवं मननीय है।

कडा से डोमरगण दादेगाव, देवलाली पानोली आलणवाडी सावरगाव घाटसिरस करजी कोडगांव सदर भिंगार होते हुए फाल्गुन शुक्ल सप्तमी के दिन अहमदनगर में पदार्पण किया। यहां पर चातुर्मासी का सत्ताविसवा लोच हुआ। नगर में आपश्री ने लगभग सत्ताईस दिन पर्यन्त स्थिरता की। अहमदनगर में आपश्री द्वारा लिखित कार्य निम्न प्रकार हुआ।

(१) चैत्र वदि द्वितीया गुरुवासरे श्री दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययन मूलपाठ पाना, २ अहमदनगर नवीपेठ में।

(२) चैत्र वदि सप्तमी के दिन "शीला सप्तमी स्वाध्याय" की रचना की गई। यह सत्यबोध में प्रकाशित है।

(३) चैत्र शुक्ल पंचमी रविवार के दिन अहमदनगर स्थानक से विहार कर सिद्धेश्वर बाग में पधारे। रात्रि में वहाँ निवास किया और उसी रोज आपश्री ने "श्री अध्यात्म बाग„ की रचना की। यह काव्य भी सत्यबोध में प्रकाशित है।

सिद्धेश्वर बाग से विहार कर पीपलगाव स्पर्शते हुए आपश्री ने पुन बाम्बोरी को पावन किया। यहा पर आपने दस दिन तक स्थिरता की। यहाँ आपश्री ने जिन २ काव्यो की रचना की, उनकी सूची —

(१) चैत्र शुक्ल एकादशी सोमवार के दिन "काल की लावणी" बनाई,
(२) चैत्र शुक्ल पौर्णिमा को "सात वार अध्यात्म स्वाध्याय" की रचना की,
(३) चैत्र शुक्ल पौर्णिमा को "पदर तिथि अध्यात्म स्वाध्याय" को बनाया
(४) चैत्र „ „ "बारह मास अध्यात्म स्वाध्याय" की रचना की,
(५) „ „ „ "अध्यात्म गितगोर" की रचना की।

इस प्रकार बाम्बोरी मे विराजते हुए आपश्री ने इतने काव्यो की रचना की। उपरि लिखित पाचो काव्य सत्यबोध में प्रकाशित है।

बाम्बोरी से आपश्री ने ठाणा चार से विहार किया। ब्राह्मणी होकर सोनई क्षेत्र को पावन किया। यहा तेरह दिन तक स्थिरवास किया। यहा से विहार कर घोडेगाव को स्पर्श कर मिरि में पदार्पण किया।

वैशाख शुक्ल तृतीया को "अक्षय तृतीया की अध्यात्म स्वाध्याय" की रचना की गई। वैशाख शुक्ल षष्ठी के दिन "करमपच्चीसी की लावणी" रची। तथा वैशाख शुक्ल द्वादशी बुधवार के रोज "कक्का बत्तीसी„ की रचना की गई। ये तीनो काव्य सत्यबोध नामक बडी पुस्तक में प्रकाशित है। यहा आठ रात्रि स्थिरता रही। मिरि से विहार कर बडुला में पाच रात्रि पर्यन्त विराजे वहा से कुडगाव दो दिन ठहर कर देवटाकली पधारे। यहा ज्येष्ठ वदि तृतीया सोमवार के दिन "पंचम आरा की लावणी" की रचना की गई और "काल की लावणी" भी यही लिखी गई। यहा से विहार कर कुकाना जाकर ग्यारह रात्रि तक स्थिरवास किया। यहा पर ज्येष्ठ वदि नवमी के दिन "श्री चोवीस जिनवर की स्तुति" की रचना की गई। कुकाना से विहार कर मीडा में आहार-पानी करके हिवडा (भानस) में जाकर चार दिन स्थिरता की। फिर चिचोरा से रस्तापुर पधारे।

यहा उपदेश आमयी पद" की रचना ज्यष्ठ शुक्ल षष्ठी को की। रस्तापुर से सरडी पधारे। यहा ज्यष्ठ शुक्ल सप्तमी को उपदेश छत्तीसी की पूर्ति की। सरडी से विहार कर कामोणी होते हुए घोडेगाव में जाकर आहार-पानी किया। यहां से जऊर साढ आठ मील ह। जेऊर में आहार-पानी करके आपश्री अहमदनगर क्षत्र में ज्यष्ठ शुक्ल एकादशी के दिन पधारे। यहां आषाढ शुक्ल प्रतिपदा को श्री लछमाजी की दीक्षा हुई। सातवे दिन बडी दीक्षा का काय भी शाति-पूण सपन्न हुआ। आषाढ शुक्ल नवमी के रोज अहमदनगर से विहार किया और परवोडी डूगरगण पीपलगाव आदि ग्रामो को स्पर्शते हुए चातुर्मास के लिये पूज्य-पाद महाराजश्री आदि ठाणे चार का याम्बोरी में पधारना हुआ। इस समय सती शिरोमणि श्री हीराजी महाराज न भी ठाणा दस से इसी क्षत्र में चातुर्मास के लिये पदापण किया। इस प्रकार कुल मिलाकर ठाण १४ का याम्बोरी क्षत्र म चातुर्मास हुआ।

(१) सावत्सरिक पर्युषण पव म श्री पयषण पव अध्यात्म स्वाध्याय की रचना की। इस समय आपश्री का अडतालीसवा लोच हुआ। सावत्सरिक पव पर धम ध्यान करन के लिय अनक ग्रामों से श्रावक श्राविकाए आइ। यह महापव त्रत-प्रत्यख्याण तथा तपश्चर्या के साथ विशेष शांतिपूवक मनाया गया।

(२) भाद्रपद शुक्ल ११ के दिन 'श्री शीलरथ' की रचना की।

शीलरथ की गाथा इस प्रकार ह।

जे न करंति मणसा निज्जिअ आहार सन्ना सोयविए।
पुढवी कायारभ खतिजुआ ते मुणी वदे ॥१॥

इस शील रथ की रचना भी दशनीय ह।

(३ ४) आश्विन शुक्ल १० विजया दशमी के रोज श्री चौवीस जिन स्तवन, तथा अध्यात्म पव दशहरा स्वाध्याय, नामक दो कृतियो की रचना पूण की। नाथद्वारानिवासी प राधाकृष्णजी शर्मा एम ए द्वारा अध्यात्म पर्व दश-हरा नामक पुस्तक विवेचन-पूवक लिखी गई ह और वह श्री रत्न जन पुस्तकालय पाथर्डी (अ नगर) से प्रकाशित है। पुस्तक मननीय है।

(५) कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी के दिन ' धनतेरस अध्यात्म स्वाध्याय" की रचना करन में आई।

(६) कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को 'रूपचतुदशी अध्यात्म स्वाध्याय' रूप-काव्य बनाने में आया।

(७-८) कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन "दीप मालिका अध्यात्म स्वाध्याय" तथा "मंगलमय पर्व दीपावली" काव्य की रचना की।

(९) "श्री इग्यारह गणधर की चतुर्थ सज्झाय" ये सभी काव्य सत्य-बोध नामक बडी पुस्तक में प्रकाशित हैं।

इस प्रकार चातुर्मास-काल में आपने इतने ग्रंथों की रचना की तथा वावोरी चातुर्मास का समय भी बहुत शांति एवं उत्साहमय वातावरण में सपन्न हुआ।

संवत् १९३९ का चातुर्मास घोडनदी क्षेत्र में,

वावोरी क्षेत्र में शांतिपूर्वक चातुर्मास पूर्ण होने के बाद मार्गशीर्ष वदि द्वितीया को वहाँ से विहार किया और डोंगरगण होते हुए पीपलगांव में दो दिन ठहर कर आपश्री ठाणा चार से अहमदनगर पधारे। यहाँपर पंदरह दिन पर्यंत स्थिरवास किया। यहाँ से विहार कर मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थी के रोज केडगांव पधारे। संवत् १९३८ मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को "श्री गौतम स्वामीका रास" नामक ग्रंथ की रचना की। विहार के तिथि-क्रमसे इस ग्रंथ की रचना कामरगाव में हुई होगी। तदनंतर क्रमशः विहार कर हिंगा मसणा, पारनेर, वडझीरा आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए आपश्री का आलकुटी में पदार्पण हुआ। यहाँपर दस दिन तक स्थिरता की। आलकुटी से विहार कर तासकरवाडी, निघोज, गुणोरा होते हुए घोडनदी को अलकृत किया। यहाँपर ग्यारह रात्रि ठहरकर यहाँ से जवला, पावल होते हुए दीक्षा देने के निमित्त पूज्यपाद श्री ठाणा चार से आलकुटी पधारे। यहाँ पर सोलह रात्रि स्थिरता की। संवत् १९३८ पौष शुक्ल १२ रविवार को साय-काल के समय श्री क्षमकुजी और सोनाजी इन दोनों बाइयों की दीक्षा हुई। बडी दीक्षा सातवें दिन हुई। संवत् १९३८ माघ कृष्ण तृतीया शनिवार के दिन "चौवीस जिन स्तवन" तथा चौवीसी में पाँचवे पद्य की रचना की गई। माघ कृष्ण चतुर्थी रविवार के दिन तीन प्रकार का "उपदेशी फटका" तथा आठ प्रकार के "चौवीस जिन स्तवन" की रचना पूर्ण की। ये सभी काव्य सत्य बोध में प्रकाशित हैं। फिर माघ कृष्ण पंचमी को आलकुटी से विहार किया। तत्पश्चात् निघोज धनगर टाकली, मलठण होते हुए शिरूर से घोडनदी पधारे। यहाँपर दस रात्रि पर्यंत विराजे। संवत् १९३८ (तिथिवार का उल्लेख नहीं है) में "चेतन की अदालत लावणी" की रचना घोडनदी में की गई है। यह काव्य भी सत्यबोध नामक बडी पुस्तक में प्रकाशित है।

घोडनदी से विहार कर नारायण गव्हाण, सुपा कामरगाव, चास आदि क्षत्रों को स्पशते हुए अहमदनगर क्षत्र में पधारना हुआ। यहांपर पूज्यपाद महाराज श्री ने बीस दिनतक स्थिरता रखी। माघ शुक्ल पचमी को ' वसत पचमी अध्यात्म स्तवन की रचना की। यह काव्य भी सत्यबोध मे प्रकाशित ह।

अब यहाँ से विहार कर पूज्यपाद महाराजश्री ने औरगाबाद, जालना की ओर विहार किया। फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को विहार कर खोडी चौकी जऊर घोडगाव सोनई, तामसवाडी नेवासा प्रवरासगम भीडला, दहीगांव और वालुज आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए औरगाबाद छावनी निवासी श्रीमान रतनचदजी सेठ राजीबाई के बगले में दो रात्रि रहकर औरगाबाद पधारे। वहाँ से विहार कर कई में दो रात्रि निवास किया। फिर चिकल ठाणा करमाड, सेकटा बदनापुर सेलगाव आदि गावो को स्पर्शते हुए जालना (निजामस्टेट) में पदापण किया। यहाँ आपश्री ने दस दिन तक स्थिरता की। तथा फाल्गुनी चातुर्मासिक ४९ उनचासवाँ लोच यहीपर हुआ। तत्पश्चात जूना जालना स्पर्शकर वहाँ से विहार किया। पुन: सेलगाव कडचोगाव (यहाँ आहार-पानी किया) गोलटगाव करमाड सेंदूरी आदि क्षत्रो को स्पर्शते हुए औरगाबाद में पदापण किया। यहाँ आपश्री आठ रात्रि विराज और तीन रात्रि बगलेपर। वहा से विहार कर वालुज भीडाला प्रवरासगम जडका हिवडा, चिचोरा सबडी सोनई आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए जाबोरी पदापण कर चत्र शुक्ल १० और ११ के दिन श्री धन्नाजी की लावणी की रचना की। यह सत्य बोधमें प्रकाशित है।

तत्पश्चात वहाँ से विहार कर पीपलगाव होते हुए अहमदनगर क्षत्र में चत्र शुक्ल द्वादशी शुक्रवार के दिन आपश्री का शुभागमन हुआ। यहांपर ४४ चौवालीस दिन तक स्थिरवास किया। यहांपर रहते समय वशाख शुक्ल चतुदशी के दिन मगलवार को हस केशव चरित्र की रचना पूण की। तथा मिति ज्यष्ठ कृष्णा चतुर्थी रविवार के दिन श्री धमबुद्धि पापबुद्धि चरित्र ' की रचना परिपूर्ण की। ये दोनों चरित्र अप्रकाशित है। तत्पश्चात सवत १९३९ ज्यष्ठ कृष्ण नवमी गुरुवार के दिन बड़ समारोह से महासतीजी श्री हीराजी महाराज के सान्निध्य में दो दीक्षाए हुइ। उनके दीक्षित नाम ह १ श्री हरियाजी म० और २ श्री जमनाजी म० १ दीक्षा का काय सपन्न कर ज्यष्ठ कृष्ण द्वादशी रविवार के दिन अहमदनगर से विहार किया और केडगाव सोवनवाडी अकोलनर सारोला राजणगाव से कडस ढठणा को स्पर्श कर आपश्री घोडनदी पधारे। यहा पर केवल चार दिन की स्थिरता की। यहाँ ज्यष्ठ शुक्ल द्वितीया को श्री खदक मुनि का चौढालिया पूण किया। यह सत्यबोध में प्रकाशित ह।

घोड़नदी से विहार कर कारेगाव, राजनगाव, गणेगाव, धामोरी, पीपला आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए फुलगाव में पदार्पण कर दो रात्रि स्थिरता की। वहा से मरकल, चारोली, लोहगाव आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए पूना क्षेत्र को अलंकृत किया। यहां नानापेठ में सात दिन स्थिरवास किया। अवकाश के समय आषाढ कृष्ण प्रतिपदा के रोज "श्री मेतारज मुनि का चोढालिया" तैयार किया और आषाढ कृष्ण चतुर्थी को "तेरह काठिया की स्वाध्याय" नामक काव्य की रचना की। ये दानो काव्य सत्यबोध में प्रकाशित हैं।

पूना से फिर घोड़नदी की ओर विहार हुआ। पूना से लोहगाव होते हुए फुलगाव में तीन रात्रि ठहर कर वाडी जाकर आहार-पानी किया। वहा से फिर तलेगाव पावन कर राजणगाव (गणपति) कारेगाव, वुरली आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए घोड़नदी में पधारना हुआ और केवल तीन रात्रि विराज कर यहा से विहार कर दिया। वहा से करडा जाकर दो रात्रि पर्यन्त रहे। फिर वमला होते हुए न्हावरा जाकर आहार-पानी किया। वहा से आलेगाव में पदार्पण कर चार रात्रि स्थिरता की। यहा निर्वी आमला, करडा आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए चातुर्मास के निमित्त पुन घोड़नदी क्षेत्र में आषाढ शुक्ल एकादशी के दिन पधारे। घोड़नदी का श्रीसघ आपश्री के स्वागतार्थ सैकडो की सख्या में बहुत दूर तक गया। बड़े उत्साह के साथ जय-ध्वनि के वातावरण के बीच आपश्री का शुभागमन हुआ। उस समय सती-शिरोमणि श्री हीराजी महाराज भी अपनी शिष्याओं के साथ १४ ठाणा से चातुर्मासार्थ पधारी थी। इस प्रकार घोड़नदी क्षेत्र में कुल १८ सत-सतियो का चातुर्मास हुआ।

घोड़नदी क्षेत्र में चातुर्मास के समय व्याख्यान में श्री स्थानागसूत्र का वाचन तथा श्री चद्रकेवलि का रास एवं श्री श्रेणिक-चरित्र के उपदेशामृत की अखडधारा सतत बहती रहती थी। यहीपर आपश्री का पचासवा लोच हुआ। सावत्सरिक पर्व के दिन आस-पास के गावो से हजारो आदमी उस महान् पर्व में सम्मिलित होने के लिये आये और धर्मध्यान, तपश्चर्या, व्रत-प्रत्याख्यान आदि सत्क्रिया करते हुए सावत्सरिक क्षमापना की गई। आपश्री के प्रभावोत्पादक प्रतिबोध से व्रत-नियम भी पर्याप्त सख्या में हुए।

इस चातुर्मास में विशेष उल्लेखनीय बात यह हुई कि आपश्री के उपदेश से प्रभावित होकर श्रीमान् कुदनमलजी बाफना ने पाँचवे अणुव्रत परिग्रह-परिमाण की मर्यादा की। श्रीमान् बाफनाजी ने यह पच्चक्खाण किया कि लगभग ६१ हजार की पूंजी हो जाने पर मैं अपना व्यवसायादि बद कर दूंगा। पूज्यपाद

महाराजश्री के वचनों पर बाफनाजी की बहुत श्रद्धा थी। थोड़े ही समय में निश्चित रकम एकत्रित हो जाने पर आपने परिग्रह परिमाण की दृष्टि से अपना व्यवसाय बंद कर दिया। फिर भी खर्च करने के बाद जब आय बढ़ने लगी तब अधिक रकम आप जीवदया परोपकार आदि सत्कार्यों में लगा देते थे। अपनी मर्यादा से आपने कभी अधिक संग्रह नहीं किया। इस नियम का आपने जीवनपर्यंत पालन किया। वर्तमान में आजकल उनकी तीसरी पीढ़ी में श्रीमान सोभागचंदजी बाफना विद्यमान हैं। वे भी अच्छी स्थिति में हैं।

महासतीजी श्री छिगमाजी महाराज जिनकी दीक्षा हुए अभी कुल एक वर्ष दो महीने नौ दिन हुए थे उन्होंने आपश्री के मुखारविंद से घोड़नदी क्षेत्र में भाद्रपद सुदि दशमी के दिन संथारा लिया अर्थात् अशनादि का यावज्जीव प्रत्याख्यान किया। संथारा में अंतिम समय तक शांतिपूर्वक नामस्मरण के साथ कालक्रमण करते हुए इह लोक की यात्रा पूर्ण कर आपश्री दिवंगत हुईं। महासतीजी को साढ़े चार प्रहर का संथारा आया था।

घोड़नदी क्षेत्र में चातुर्मास के समय आपश्री ने जो लेखन एवं काव्य रचना की वह निम्न लिखित है।

(१) श्री दशवैकालिकसूत्र का प्रथम अध्ययन संपूर्ण। संवत १९३९ भाद्रपद कृष्ण दशमी के दिन।

(२) 'श्री श्रेणिक चरित्र' संवत् १९३९ आश्विन सुदि प्रतिपदा शुक्रवार अमृतवेला तुला लग्न में इस चरित्र की पूर्णता की गई। यह श्रेणिक चरित्र धूलिया से तथा मारवाड़ से प्रकाशित है।

इस प्रकार घोड़नदी क्षेत्र में चातुर्मास-परीक्षा शीर्ष-काल बहुत ही शांतिमय वातावरण में संपन्न हुआ। श्रीसंघ ने भी संत-सतियों की सेवा भक्ति के साथ तन मन धन से आतिथ्य-सत्कार कर अपूर्व लाभ उठाया।

चातुर्मास पूर्ण होने के बाद पूज्यपाद महाराजश्री का विहार

चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् आपश्री तुरंत विहार करने वाले थे, परंतु एक विरक्त आत्मा वैराग्यवती बाईजी की दीक्षा होने वाली थी इससे आपने कुछ समय तक स्थिरवास किया। संवत १९३९ मार्गशीर्ष कृष्ण पंचमी बुधवार के दिन श्री रंगूजी की दीक्षा हुई। दीक्षित नामकरण रंगूजी महासतीजी किया गया। दीक्षा-महोत्सव सानंद संपन्न होने के पश्चात् आपश्री ने मार्गशीर्ष कृष्ण षष्ठी गुरुवार के दिन वहाँ से विहार किया। रांजणगांव के बाहर मंदिर में निवास कर कारेगांव में पदार्पण करके दो रात्रि पर्यंत विराजे। वहाँ से रांजणगांव (गण-

पति) पधारे । यहाँ से कोडापुरी होते हुए पीपला जगताप का स्पर्श कर पीनलगांव को अलकृत किया । यहाँ भी दो रात्रि विराजे । वहाँ से वारोली को स्पर्श कर आपश्री का पूना में शुभागमन हुआ । यहाँ भी दो दिन स्थिरता की पूना से सतारा की ओर विहार हुआ । कात्रज, शिंदावाडी, कामथडी, किकवी, म्हावी, खंडाला, एलू होते हुये सुरूर में आहार-पानी कर उडतारा में रात्रि-भर निवास किया । वहाँ से सतारा क्षेत्र में पूज्यपाद महाराज श्री ठाणे ४ चार का पधारना हुआ । वहा भवानी पेठ में तेरह रात्रि पर्यन्त स्थिरता की गई ।

यहाँ पर मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी सोमवार के दिन दो "उपदेशी स्तवन" की रचना की तथा मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी के दिन "उपदेशी स्तवन" (फटका) चतुर्थ पद बनाया गया । तत्पश्चात् पौष कृष्ण तृतीया बुधवार के दिन "श्री आनन्दजी श्रावक का चौढालिया" और पौष कृष्ण चतुर्थी गुरुवार के दिन "श्री कामदेवजी श्रावक का चौढालिया" इन दोनो ग्रथों की रचना की गई । सतारा में की हुई सभी रचना सत्य बोधमें प्रकाशित हैं ।

सतारा क्षेत्रमें पूज्यपाद महाराज श्री का यह प्रथम ही पधारना हुआ था । आपश्री के शुभागमन के पूर्व ही सारे दक्षिण देश में आपकी कीर्ति व्याप्त हो चुकी थी । जहा कहीं आपश्री का शुभागमन होता, लोग अपने आपको कृतार्थ समझते थे । अनेक जन्मो के पुण्यसे ऐसे संतो के सहवास का सुअवसर जीवन में यह प्रथम बार हुआ था । इस लिये आपश्री के व्याख्यान का प्रत्येक व्यक्ति रुचि-पूर्वक लाभ लेता था । प्रतिदिन व्याख्यान के समय बोधामृत का पान करने से वहा के श्रावक-श्राविकाओ की धार्मिक-भावना में विशेष वृद्धि हुई ।

आपके प्रवचन सुनते २ वहा के मुख्य श्रावक श्रीमान् बालमुकनजी मुथाजी के हृदय म यह भावना जागृत हुई कि ऐसे त्यागी और ज्ञानी सत के पास मे कुछ शास्त्राभ्यास करना चाहिये । ऐसा विचार कर उन्होंने अपनी इच्छा महाराज श्री के सामने व्यक्त की ।

वे प्रतिदिन अपनी लालसा महाराज श्री के आगे प्रदर्शित करते थे, पर "अवसर होगा तब देखा जायगा,, ऐसा कहकर महाराज श्री टाल देते थे । होते२ अंत में विहार का समय निकट आ पहुँचा । उन श्रावकजी के मन में आया" कहीं महाराज श्री के विहार कर देने पर मेरी यह इच्छा अधूरी न रह जाय,,पर जब विहार करने का अवसर आया तब पूज्यपाद महाराज श्री ने श्रीमान् बालमुकनजी मुथा से फरमाया "मथाजी ! आप अपने साथ में कुछ शास्त्र रखने का उपयोग रखें,, ऐसा कह आपश्री सतारा से विहार कर शहर से बाहर निकल गये । साथ में श्रावक-श्राविकाएँ पर्याप्त सख्या में थी, उन्हें मांगलिक सुनाया । मांगलिक सुनने के बाद

अनेक श्रावक-श्राविकाएं अपने २ स्थानपर चली गई। बादमें आपने श्रीमान् मुथाजी से पूछा मुथाजी! क्या आप अपने साथ कोई शास्त्र लाए है? तब मुथाजी ने कहा हाँ, मेरे पास दशवकालिक सूत्र है। तब आपश्री जी ने उन्हें कहा आप को शास्त्र की वाचना लेनी है न? हाँ इस प्रकार वार्तालाप हो कर पास ही वट-वृक्ष के नीचे आपश्री और मुथाजी बैठ गये। पूज्यपाद महाराज श्री ने अपने मुखारविंद से शुभ समय में श्री दशवकालिक-सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा —

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो
देवा वि तं नमसंति जस्स धम्मे सया मणो ॥

का उच्चारण कर विवेचन किया और तुरंत वहाँ से विहार किया। महापुरुष के मुखारविंद से लिया हुआ यह शास्त्र का ज्ञान बुद्धि में तैल बिंदु के समान फला और थोडे ही समय में वे शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता हो गये।

वहाँ से विहार कर आपश्री पूना की ओर पधारे। रास्ते में सडतारा होते हुए मूइज में आहार-पानी किया। फिर वहाँ से शिरूर, वडाला, फिकवी, शिवापुर बाग, कात्रज आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए पूना में पदार्पण किया। वहाँपर दश रात्रि तक स्थिरता की। वहाँपर पौष सुदि पंचमी शनिवार के दिन श्री अमभय संक्रांति स्वाध्याय और श्री भृगु पुरोहित पंच ढालिया (पूना शहर माना पेठ में) संपूर्ण लिखा। यह अप्रकाशित है। पौष सुदि पंचमी शनिवार को 'दीप मालिका द्वितीय अध्यात्म स्वाध्याय' की रचना भी पूना में की गई। दोनों अध्यात्म स्तवन सत्यबोध में प्रकाशित है।

पूना से चारोली स्पर्शकर सेल पीपलगांव में पधारना हुआ। यहाँ सात रात्रि स्थिरता की। अपने स्थिरवास के समय पौष सुदि अष्टमी को 'सुधर्मा स्वामी की स्वाध्याय' की रचना की। पीपलगांव से दावडी पधारे। वहाँपर पौष सुदि १४ के दिन चावीसी स्तवन में पंचम पद की रचना की। दावडी से खेड पदार्पण कर तीन दिन तक विराजे। वहाँ से फिर रेटवडी हो कर खेड पधारने पर दो रात्रि स्थिरता की। पुनः रेटवडी से दावडी स्पर्श कर सेल पीपलगाव में दीक्षा के निमित्त पदार्पण किया। तेरह रात्रि पर्यंत यहाँ स्थिरता की गई। संवत् १९२९ माघ सुदि पंचमी (वसंत पंचमी) के दिन श्रीकंचन ऋषिजी महाराज की दीक्षा हुई। यहां संवत १९२९ माघ सुदि द्वितीया के दिन नमि—पव्वज्जा नवम अज्झयण (श्री उत्तराध्ययन—) सूत्र का नवमाँ अध्ययन एक पत्र में संपूर्ण लिखा है।

दीक्षा होने के पश्चात् आपश्री ने विहार कर सेलगाव में आकर दो दिन निवास किया। फिर भोमगाव, खेड, तथा पेठ को स्पर्शते हुए मचर में पदार्पण कर दो दिन स्थिरता रखी। यहाँ पर माघ शुक्ल त्रयोदशी के दिन श्री कर्म-विपाक-माला ग्रन्थानुसार एक सो बत्तीस बोल की रचना की। यह काव्य अत्यंत उपदेशप्रद है और यह सत्यबोध में प्रकाशित है।

मचर से कलंब को स्पर्श कर नारायण गाव में तीन रात्रि विराजे। वहाँ से विहार कर जुन्नर क्षेत्र में चार दिन स्थिरता की। फिर सावरगाव, वडगाव, पीपलगाव, अर्वी, नारायणगाव पुन वडगाव, सिरोली, ताकुरी, पाडली, आदि क्षेत्रो को स्पर्श कर आवलकुटी में पधारना हुवा। यहा पर पाँच रात्रि विराजे। यहाँ से वडझीरा, पारनेर, आमगाव, देवठाण, नेप्ती आदि क्षेत्रो को धर्मोपदेश का लाभ देते हुए आपश्री ने ठाणा पाँच से फाल्गुन सुक्ल षष्ठी के दिन अहमद-नगर में पदार्पण किया और उसी दिन "चौदह नियम की सज्झाय" की रचना परिपूर्ण की। यह उल्लेख दिनचर्या के पत्र पर से किया गया है। यह सत्यबोध में प्रकाशित है। यहाँ पर आपश्री का ५१ वा लोच हुआ।

चैत्र सुदि द्वितीया के दिन श्री दशवैकालिक सूत्र के दस अध्ययनो का पद्य-बद्ध भाषांतर किया, जो कि मुमुक्षु साधक के लिये मननीय है। चैत्र सुदि तृतीया के दिन "श्री शालीभद्रजी का चरित्र" रचना पूर्ण की। तत्पश्चात् चैत्र शुक्ल पचमी के रोज "एक सौ पच्चीस बोल तीर्थंकरो का लेखा" छप्पय नामक छंद मे काव्यात्मक शैली से संपूर्ण लिखा। इस प्रकार आपश्री ने यहा साधुओ के लिये कल्पता काल अर्थात् उनतीस दिन तक ग्रन्थ-निर्माण आदि शुभ प्रवृत्तियो में व्यतीत कर वाम्बोरी की ओर विहार किया।

अहमदनगर से पीपलगाव, डुगरगण होते हुए आपश्री ने वाम्बोरी क्षेत्र में पदार्पण किया। अहमदनगर से वाम्बोरी करीब पद्रह मील की दूरी पर स्थित है। वाम्बोरी में वैशाख कृष्ण त्रयोदशी के दिन "एक सो पच्चीस बोल लेखा-गर्भित महास्तवन" पन्ना १८ से २७ तक में संपूर्ण किया है। 'स्वपठनार्थ' ऐसा उस पर आपश्री द्वारा उल्लेख किया गया है। आपश्री के हस्ताक्षर से लिपिबद्ध किये हुए पन्ने श्री रत्न जैन पुस्तकालय के हस्त-लिखित भंडार में विद्यमान है। यह काव्य भी सत्यबोध में प्रकाशित है।

यहा पर आपश्री करीब कल्पते काल तक विराजे होगे, ऐसा अनुमान किया जाता है। यहाँ से विहार कर ब्राह्मणी क्षेत्र को स्पर्श कर खेडला (पर-मानद) में पधारना हुवा। यहा वैशाख शुक्ल पौर्णिमा के दिन "श्री परमेष्ठी स्तवन" की रचना की। खेडला से विहार कर करजगाव को स्पर्श कर सोनई,

ब्राह्मणी होकर पुन वाम्बोरी पधारे होंगे। क्यों कि स्वर्गीय गुरुवर्य श्री १००८ श्री रत्नऋषिजी महाराज के मुखारविंद से ऐसा सुना गया है कि संवत १९४० के चातुर्मासार्थ वाम्बोरी से अहमदनगर पधारना हुआ था। 'श्री समरादित्य केवलि-चरित्र' की रचना आपश्री ने माघ सुदि प्रतिपदा के दिन प्रारंभ की और आषाढ सुदि पंचमी चन्द्रवासरे, पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र वरियान-योगे, अमृत वेलायां उसे समाप्त किया है। ऐसा उस ग्रंथ पर आपश्री द्वारा अंकित है। पर संवत का निर्देश नहीं किया गया है। यह बृहत् ग्रंथ संभवत आपश्री द्वारा अंतिम रचित ग्रन्थ है, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसके अतिरिक्त आपश्री द्वारा लिखित काव्य, ज्योतिष विषयक विचार तात्त्विक बोल, चर्चा विषयक नियम थोकडों आदि का संग्रह नय विषयक विवेचन आदि अनेक विषयों की सामग्री, प्रकीर्णक पत्रों में प्राप्त हुई है। यह मालव प्रान्त में श्रीसंघ द्वारा अर्थात प्रतापगढ, शाजापुर शाजापुर बडोद आदि क्षेत्रों से तथा संत—सतियों के द्वारा भी प्राप्त हुई है। पर इन पत्रों पर संवत मिति, ग्राम नामादि का उल्लेख नहीं है। फिर भी अक्षरों की लिखावट से हम इसी निर्णय पर पहुँचे है कि ये पत्र पूज्यपाद महाराजश्री द्वारा लिखित है। उनका निर्देश हमने स्वतंत्र रूप से किया है।

उनकी दैनंदिनी से जितने दिन की चर्या ज्ञात हुई तथा किस २ स्थान पर आपने *किस २ ग्रन्थ का निर्माण किया उसकी साधार नोंध इस चरित्र में दी गई है।* इसके अतिरिक्त भी आपश्री द्वारा निर्मित विपुल साहित्य होगा पर उसका पता नहीं लगने से हम उसे देने में असमर्थ है।

वांबोरी रहते समय अहमदनगर श्रीसंघ के आग्रह से आपश्री ने संवत् १९४० का चातुर्मास अहमदनगर में करने की स्वीकृति दे दी थी। अतएव आपश्रीजी ने चातुर्मास निमित्त वांबोरी से अहमदनगर की ओर विहार करने का निश्चय कर रात्रि में शयन किया। निद्रावस्था में रात्रि के चतुर्थ प्रहर में आपने स्वप्न देखा कि मैं पहाड़ के उपरिभाग से नीचे गिर पडा हूं। स्वप्न देखते ही महाराजश्री एकाएक निद्रा से जागृत हुए। उठकर ध्यान, स्वाध्याय प्रतिक्रमण आदि प्रातःकालीन क्रिया पूर्ण की और सूर्योदय होने के पश्चात् विहार करने के लिये कमर बांधकर स्थानक के बाहर निकले तब एक कोयले की टोपली दिख पड़ी। आगे चलकर देखा तो सामने एक भैंसा आ रहा है। इन सब अपशकुनों को देखकर आपश्री ने पास में ही एक बगीचे में रात्रि निवास किया। दूसरे दिन आषाढ सुदि पंचमी के दिन ठाणा पांच से विहार कर डोंगरगण में पदार्पण किया। आषाढ सुदि षष्ठी के दिन पीपलगांव पधारे। वहाँ एक वृक्ष के नीचे ध्यान करने के लिये खड़े हुए, इतने में ही आपश्री के शरीर में भयंकर शिरो वेदना होनी

प्रारंभ हुई। अहमदनगर श्रीसंघ के पास ये समाचार वायु की गति से उसी समय पहुँच गये। महाराजश्री की व्याधि का पता चलते ही वहाँ के श्रीसंघ के अनेक अगुआ लोग नगर के मुख्य चिकित्सकों को लेकर तत्काल आपश्री की सेवा में पहुंच गये। अनेक प्रकार का औषधोपचार किया गया, पर तीव्र वेदना शांत होने के बजाय उत्तरोत्तर बढती ही गई। व्याधि के समाचार फैलते ही आस-पास के अनेक श्रावक-श्राविकाएं इकट्ठी हो गई।

एक शिरोवेदना तो पहले से ही थी, उसपर भी रात्रि को आठ बजने के बाद पूज्यपाद महाराज श्री पर भयंकर ज्वर ने अपना अधिकार जमा लिया। तीन दिन तक पीपलगाव मे महाराज श्री के पास सब श्रावक जमा रहे। इस बीच डॉक्टरों ने भी म० श्री को स्वस्थ करने के अनेक उपाय किये, पर ज्वर किसी भी प्रकार कम नही हुआ। श्रद्धालु श्रावक वर्ग के लिये यह बात अत्यंत असह्य थी कि ऐसे छोटे से सुविधा-विहीन स्थान मे पूज्यपाद महाराज श्री ज्वरावस्था मे इस प्रकार पड़े रहें। सब एकमन से मन ही मन यही प्रार्थना कर रहे थे कि पूज्यपाद श्री किसी भी अवस्था में अहमदनगर पहुंच जांय, परन्तु उन्हे कुछ भी भी रास्ता नही दिखाई दे रहा था। सब किंकर्तव्य-विमूढ थे। अहमदनगर महाराज श्री किस प्रकार जल्दी पहुँचे, यह रास्ता उन्हे सूझ नही रहा था। समय-सूचक पूज्यपाद म० श्री ने अपने धर्म-प्रेमी सुश्रावकों की इस चिंता का अनुभव किया, और अपनी वेदना तथा भयंकर ज्वर की परवाह किये बिना शरीर विशेष क्षीण होने पर भी केवल आत्म बलसे विहार कर आषाढ सुदि नवमी के दिन ठाणा पांच से अहमदनगर में पदार्पण किया।

अहमदनगर मे पधारने पर अनेक वैद्य तथा डॉक्टरों की चिकित्सा निरवच्छिन्न रूप से चलने लगी। सब चिकित्सक इसी प्रयत्न मे थे कि किसी प्रकार महाराजश्री रोग-मुक्त हो जांय, परन्तु डॉक्टरों का वह अथक प्रयत्न फलदायी न हो सका। अवस्था सुधरने के बजाय उत्तरोत्तर बिगड़ती ही गई। अहमदनगर में पदार्पण करने के पूर्व ही महाराज श्री तीव्र शिरो-वेदना तथा भयंकर व्याधिसे पीडित थे, ऐसी अवस्था मे कोई भी व्यक्ति एक कदम तक नही चल सकता, फिर भी आपश्री केवल अपने मनो-बल से असहायावस्था मे इतनी दूर तक विहार कर आये थे। इस श्रम का भी आपके शरीरपर विपरीत प्रभाव हुआ। उस समय तक आपका सुयश और कीर्ति चारो ओर व्याप्त हो चुकी थी। आपने अपने सत्प्रवृत्तिमय जीवन से सबके हृदय मे अक्षुण्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। विकराल काल आपकी इस सुकीर्ति को सहन नही कर सका और देखते २ अंत में श्रावण कृष्ण द्वितीया रविवार के दिन वह बाल-ब्रह्मचारी ऋषिकुल-भूषण पूज्यपाद श्री श्री

१००८ श्री तिलोकऋषिजी महाराज को हम सबसे छीन कर ले गया। उनके चले जाने से स्थानकवासी जन समाज का मानो तिलोक-व्यापी सूर्य अस्त हो गया। आप अपने इस पांचभौतिक पार्थिव देह को छोड दिवंगत हो गये। यह दुःसंवाद वायुवेग से चारों ओर फैल गया। जिस किसी ने यह खेद-कारक समाचार सुना वह हृदय थाम कर रह गया। सब के हृदय पर तीव्र आघात लगा। अभी महा-राज श्री की अवस्था ही क्या थी? पूरे चालीस वर्ष के भी नहीं हुये थे। अभी जीवन के मध्याह्न में ही पहुंचे थे। पर इतनी छोटी अवस्था में आपने वह काम किया जिसे देख दांतों-तले अंगुली दबानी पडती है। अभी आप से समाज को बहुत आशाएं थी। उनके चले जाने से सबकी आशाओं पर तुषारापात हुआ। मालव तथा मेवाड में तो यह समाचार शीघ्र फैल गये। इन दोनों प्रांतवासियों को जो दुःख हुआ वह वर्णनातीत है।

मालव प्रांत के मुख्य क्षेत्र रतलाम शहर में जब आपश्री के स्वर्गवास के समाचार पहुंचे उस समय वहां पर पूज्य श्री हुकमीचंदजी म० की सम्प्रदाय के तत्कालीन पूज्य श्री उदय सागरजी म० विराजमान थे। वे भी पहले एकाएक आपके समाचार सुनकर स्तब्ध रह गये। पहले तो उन्हें इस बात पर विश्वास ही नहीं हुआ। फिर इस घटना के आघात से कुछ देरतक चुप रहे। बाद में रतलाम नगर के श्रीसंघ के सामने आपश्री ने भावप्रवण अत्यंत मार्मिक शब्दों में अपने ये उद्‌गार प्रकट किये "श्री तिलोकऋषिजी के चले जाने से आज स्था० जन समाज का एक सूर्य अस्त हो गया"

उस समय महाराज श्री का शरीर ही जन समाज की आंखों से ओझल नहीं हुआ किंतु सारा समाज ही प्राण-विहीन सा हो गया। जैन भारती आश्रय रहित हो गई। सारे समाज में गाढ़-कालीन अंधकार छा गया। सुनते हैं उस समय अत्यंत कठोर वज्र-हृदय व्यक्ति भी इस दारुण समाचार को सुनकर विचलित हो उठा था। उस करुण प्रसंग को लिपिबद्ध करना अशक्य है। उसका अनुभव भुक्त भोगी ही कर सकते थे।

जिस अमर आत्माका शास्त्र देह आज भी हम सबके बीच उपस्थित है उनके पांचभौतिक शरीर के वियोग-काल में सारे समाज की क्या दशा हुई होगी? उनके इस यश शरीर से हम अनुमान कर सकते हैं कि उस समय समाज में ऐसा कोई व्यक्ति न होगा जिसने कि यह समाचार सुनकर विरह दुःख का अनुभव नहीं किया हो।

शोक की भी सीमा होती है। किसी की मृत्यु के बाद केवल सिरपर हाथ रखकर अश्रु बहाते रहने से कुछ लाभ नहीं होता इसलिये किसी की मृत्युके बाद

उसके द्वारा जारी किये हुए कार्य की रक्षा करना ही उसकी आत्मशांति का सबसे श्रेष्ठ साधन है। ऐसा करके ही अनुयायी वर्ग अपने गुरुके ऋणसे उऋण हो सकता है।

समाजने भी सोचा-पूज्यपाद महाराजश्री के स्वर्गवास के बाद अब अश्रु-पात करने से क्या लाभ है ? उनकी वह मूर्ति तो हमारी आँखो से ओझल हो गई। सदैव संचरण-शील उनका वह पाँचभौतिक देह भी हमारे बीच न रहा। संसार की स्थिति विचित्र है। सुख-दुःख, हर्ष-शोक के ग्रास्य में फँसा हुआ प्राणी क्षण २ में विपरीत अनुभवो को करता रहता है, ये सब क्षणिक हैं। कोई आत्मा के सहज धर्म नहीं। शरीर की इस नश्वरता का अनुभव कर दक्षिण देशवासी समाज की आँखें खुल गईं। वे अब महाराजश्री के शाश्वत यश शरीर की रक्षा के लिये सन्नद्ध हो गये। सब लोगों ने एक सम्मति से यह निश्चय किया कि जब तक पूज्यपाद महाराज श्री विराजमान थे, तब तक हम लोगो ने उनके सान्निध्य में रहकर अपने २ पुण्य तथा शक्ति के अनुसार लाभ उठाया था। अब तो हमारे बीच केवल उनका यशरूपी साक्षर देह ही विद्यमान है, अतएव प्राणो की बाजी लगाकर भी इस देह की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० के स्वर्गवास होने पर चातुर्मास के पश्चात् जब उनके पट्ट शिष्य पूज्यपाद श्री रत्नऋषिजी म० और सती-शिरोमणि श्री हीराजी म० मालवा की ओर विहार कर चले गये। तत्पश्चात् अहमदनगर श्रीसंघ ने सोचा, हमारे यहां ही महाराजश्री ने पाचभौतिक देह छोडा है। आपश्री ने इसके पूर्व सारे दक्षिण में विहार कर लुप्तप्राय जैन धर्म को पुनरुज्जीवित किया। अतएव उन पुण्यश्लोक दिवंगत महात्मा की सुन्दर काव्य-कृतियों का प्रकाशन कर क्यो न उनके नाम को अमर किया जाय ? अहमदनगर श्रीसंघ की यह योजना आस पास के सब क्षेत्रनिवासियो को पसंद आई और तत्काल राहुता, ससारा, बाबोरी, धूलिया, चिचोंडी पटेल, हीवरा, खान, गुलेजगढ, नादूर, शारागाव आदि गावों के श्रावको ने उसका स्वागत किया। फलस्वरूप महाराजश्री की छोटी-बडी प्राप्त सब काव्य-कृतियाँ एकत्रित की गईं और उनमें से चुनकर सत्य-बोध नामक पुस्तक सार्थ प्रतिक्रमणसहित विक्रम संवत् १९४७ में प्रकाशित की गई। अध्यात्मयोगी श्री तिलोकऋषिजी म० के पवित्र विचारो के अनुरूप यह ग्रंथ पाठको के विकास में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। यह ग्रंथ धर्म-कर्म और गुण के समुदाय को बताने वाला है। प्राणी को निम्न दिशा की ओर ले जाने वाले मान, मोह, मद और भार का मर्दन करनेवाला है, अज्ञानी जीवो के अज्ञान-रूपी अंधकार का अपहरण करने वाला है और अपने 'सत्यबोध' नाम के अनु-रूप प्राणी मात्र को सत्य का मार्ग बताकर अपने नाम को चरितार्थ करनेवाला

है। यह ग्रन्थ सब साधारण के लिये अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ। आपश्री के स्वर्गवास के बाद इसका परायण कर लोग अपना कल्याण साधने लगे। देखते इसकी सब प्रतियाँ समाप्त हो गई और लोगों की विशेष माग को देखकर इस२ सत्यबोध नामक पुस्तक की द्वितीय आवृत्ति 'श्री जैनधर्म प्रसारक संस्था सदर बाजार नागपुर से प्रकाशित की गई।

पूज्यपाद महाराजश्री का स्थायी स्मारक बनाने के लिये समाज का निश्चय था। इसके पीछे अनेक संत-सतियों की साधना तथा तपश्चर्या थी। जिसके फलस्वरूप दक्षिणदेशवासी स्था० जैन समाज ने उन दिवंगत आत्मा के स्मारक रूप में दो कार्य ऐसे कर दिखाये जो आज सारे जैन-समाज का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। उनमें एक श्री तिलोक जैन विद्यालय और दूसरा है श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड। ये दोनों संस्थाएं पाथर्डी (अहमद नगर) में स्थापित हैं। श्री तिलोक जैन विद्यालय में हाईस्कूल तक का अभ्यास कराया जाता है। विद्यालय के साथ एक छात्रालय भी संलग्न है। इसमें जैन समाज के छात्रों के अध्ययन की दृष्टि से रहने तथा खान-पान की अच्छी सुविधा है। छात्रालय में रहनेवाले समय-असमय छात्रों को बोर्ड द्वारा निश्चित धार्मिक अभ्यास कराया जाता है। इस प्रकार इस विद्यालय में पढनेवाले छात्र व्यावहारिक तथा धार्मिक दोनों ज्ञान से युक्त होते हैं।

स्वनाम धन्य स्वर्गीय श्री तिलोकऋषिजी म० सा० के नाम से संस्थापित श्री ति० र० स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड का सारे जैन समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी परीक्षाएं सारे भारत में व्याप्त हैं। ठेठ उत्तर भारत से लेकर दक्षिण तक के छात्र बोर्ड की परीक्षाओं में सम्मिलित होकर अपने ज्ञान की वृद्धि करते हैं। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसके द्वारा संत-सतियों के धार्मिक ज्ञान की वृद्धि में भी बहुत सहायता पहुंच रही है। साधु साध्वी श्रावक श्राविका संघ के ये चारों तीर्थ बिना किसी भेदभाव के परीक्षाओं में सम्मिलित होकर अपने ज्ञान को परिपक्व करते रहते हैं। इस परीक्षा बोर्ड का ही परिणाम है आज स्थानकवासी जैन समाज में अनेक संत-सतियाँ जैन-दर्शन की आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करके अपने ज्ञान को निरंतर आगे बढाती हुई ग्रन्थ निर्माण, संशोधन आदि कार्यों में लगी हुई हैं।

इसी प्रकार परीक्षा बोर्ड से संलग्न श्री रत्न जैन पुस्तकालय भी अपनी एक विशेषता रखता है। इसमें प्रायः सभी जैन ग्रन्थों का संग्रह है। इसके अतिरिक्त भी भारतीय दर्शन के विशेष महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का किसी भेदभाव के बिना संग्रह किया गया है। केवल मुद्रित पुस्तकों का ही यहाँ पर संग्रह नहीं है अमुद्रित हस्तलिखित

प्राचीन प्रतियो का भी यहा एक अद्भुत संग्रह है। उनमें पूज्यपाद श्री तिलोक-ऋषिजी महाराज की हस्तलिखित प्रतियो को संग्रह करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। जिस किसी भडार व्यक्ति या सत-मुनिराज के पास उनकी कोई कृति दिखाई दी, उसे बडे प्रयत्न-पूर्वक यहा लाया गया है। इतना प्रयत्न करने पर भी उनकी बहुत-सी कृतियाँ अब भी अनेक व्यक्तियो के पास गुप्त रूप में पडी हुई है। ऐसे सब व्यक्तियो से हमारा नम्र निवेदन है कि वे श्री पूज्यपाद महाराजश्री की कृतिया हमारे पास पहुँचा दे जिससे उनकी प्रतिलिपि करवा कर पुन सुरक्षित रूप से भेजनेवालो की सेवा में पहुँचाकर सर्व साधारण समान रूप से उनके अमूल्य साहित्य से लाभ उठा सकें।

प्रातः-स्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० के स्मारक रूप से सस्थापित इन संस्थाओ का विस्तृत परिचय में इसी अभिनदन ग्रन्थ में अलग दे रहा हूँ। पाठक विशेष जानकारी उस स्थान पर ही प्राप्त करे। इस प्रकार दक्षिण के स्थानकवासी जैन समाज ने महाराजश्री के विरगत होने के पश्चात् उनके शाश्वत यश-शरीर की रक्षा करने में अपने अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। ये संस्थाएँ उत्तरोत्तर प्रगति करती हुई दिनदूनी रातचौगुनी बढती जा रही हैं। इनका सदर्शन कर प्रत्येक व्यक्ति अपने हर्षोद्‌गार प्रकट करता है। केवल जैन समाज के व्यक्ति ही इनसे विद्यालाभ प्राप्त कर अपना कल्याण नहीं साध रहे है, समाज के बाहर के बहुत से जैनेतर लोग भी यहाँ अभ्यास कर अपने जीवन को सुधार रहे हैं। इस प्रकार महाराजश्री का स्वर्गवास होने के बाद भी आज वे इतर रूप से जनता का कल्याण कर रहे है। उसके पीछे कारण है उनका यश शरीर।

महाराजश्री के जीवन की सब से बडी विशेषता है, दक्षिण देश मे सर्व प्रथम विहार। दक्षिण प्रात मे मारवाड से आ कर अनेक जैन भाई अपना व्यवसाय कर रहे थे, उनकी अपने धर्म के प्रति श्रद्धा थी, पर इधर सत-सतियो का सचार नही होने से धीरे २ उनकी धार्मिक श्रद्धा लुप्त होती जा रही थी। बहुत से व्यक्ति अन्य सप्रदायो की क्रिया करने में रुचि लेने लग गये थे। वे अपने धर्म के रहे-सहे थोडे से ज्ञान से भी विमुख होते जा रहे थे। ऐसा कोई उपाय नही था, जिस से राजस्थान, मध्यभारत या पंजाब गुजरात आदि में विहार करने-वाले सत इधर आते, विकट रास्ता होने से कोई इधर आने का साहस नही करता था। महाराजश्री ने ही सर्वप्रथम इधर पधार कर केवल नामधारी जैन-जनता में धर्म के नवीन प्राण फूंके। उन्हें धर्म का प्रतिबोध दिया। लोगो की विचलित श्रद्धा को अडिग बनाया। दक्षिण प्रात में जहाँ सत-सतियो की परपरा लुप्तसी

हो चुकी थी उसे पुनरुज्जीवित किया। अनेक विरक्त मुमुक्षु आत्माओं को दीक्षित अवस्था में प्रविष्ट करवाया। यह सब उन्ही का प्रताप है कि आज दक्षिण प्रदेश अपने धर्म-गुरुओं के विहार तथा उपदेश से वंचित नही है। आज तो उनकी परम्परा इतना विस्तृत रूप धारण कर लिया है कि देखकर आश्चर्य होता है। अधिक क्या कहे? यदि महाराजश्री इधर नही पधारते तो यहाँ के लोग स्थानकवासी धर्म के चिन्हस्वरूप मुहपर मुहपत्ती बांधना तक भूल जाते।

उपसंहार

प्रिय सज्जन पाठक वृन्द! प्रातः-स्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की अलौकिक उपयुक्त गुणसंपत्ति यथामति यथाशक्ति तथा जितने प्रमाण उपलब्ध हुए तदनुसार लिखा गया है। नही तो समाज विख्यात ऐसे प्रधान पुरुष के गुणों का वर्णन कवीश्वरों द्वारा जितना किया जाय उतना थोडा ही है। अब उपसंहाररूप में महाराजश्री के गुण समूह से सार खींच कर आप लोगों के सामने उपस्थित करता हूं। सद्गुणालंकृत श्री तिलोकऋषिजी महाराज ३६ वर्ष २९ दिन की अवस्था में इस पांचभौतिक शरीर को त्याग दिये जिस में २५ वर्ष ६ माह एक दिन का संयम पालन कर इस अल्प काल में ही चन्द्रवत् मिथ्यात्वरूपी अंधकार का नाश कर जैनधर्माभिलाषी भव्य पुरुषों को कुमुदवत विकास करने के लिये शास्त्रानुसार साठ सत्तर हजार गाथा की संख्या में बड़े-बड़े ग्रंथों को रचकर जैन समाज के ऊपर उपकारों का कतार बोझ दिया है।

स्वभाव

महाराज साहब का स्वभाव चन्द्रमा के समान शीतल समुद्र-समान गंभीर था। आबाल वृद्ध ब्रह्मचर्य शिष्ट मित भाषण, विशिष्ट कवित्वशक्ति वाक्यचातुर्य, समयसूचकता जैन शास्त्र तथा पर शास्त्र नामित्व वगैरह अनेक गुण आप में अधिक प्रशंसनीय थे।

चारित्र-शुद्धि

महाराजश्री का चारित्र इतना शुद्ध था कि उसका वर्णन उस तत्त्व के वेत्ता ही पुरुष कर सकते है। परपक्षीय लोग भी आजतक मुक्तकंठसे उनकी प्रशंसा करते हैं। यह उनके चारित्र शुद्धि की ही सबूत है, क्यों कि चारित्र-हीन पुरुष का गण-समूह धूलिम मिल जाता है। प्राणी मात्र में विशेषत साधु पुरुषों का चारित्र ही एक अमूल्य रत्न है, उसीकी रक्षा से वह विश्वपर अपनी सत्ता जमा सकता है।

वाग्मिता

पूज्यपाद की वाणी जो निकलती थी वह अक्षरशः सनातन जैन धर्म के अनकूल ही निकलती थी। आपके प्राय हर एक वाक्य में हित शिक्षा का भाव-

पूर्ण भरा हुआ निकलता था। यहा तक कि दक्षिण देश के कुछ गावो के नाम दो सवैयो में आपने लिखे है, उनमें व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक उपदेश इतना उच्च कोटि का भरा हुआ है कि शायद हो कही दूसरे कवियो के मुख से ये भाव निकले हो और जिन्हो ने ऐसे उत्कृष्ट कवियो के काव्यो का परिशीलन किया होगा वे ही इसके अतरग भाव को पा सकते है। देखिये पूज्यपाद महाराज-विरचित सत्यबोध नामक बडी पुस्तक के पृष्ठ २२३ मे "अहमदनगर पाई" इत्यादि।

निर्ममत्व,

महाराजश्री इतने बडे प्रधान पुरुष होकर भी ऐसे विनम्र भाव से रहते थे कि जिसकी हद नही है। अहकार ने उनके पास स्थान ही नही पाया। ऐसे उच्च आदर्श कवि होते हुए भी अपने काव्यो में "मिच्छामि दुक्कडं" शब्द देते गये है।

ज्ञानबल तथा शास्त्रीय ज्ञान,

पूज्यपाद का ज्ञान बल भी बहुत प्रबल था, वृद्ध लोग कहते है कि यदि महाराजश्री के सामने कोई किसी प्रकार का प्रश्न करता था, तो उनका उत्तर अनेक शास्त्रो के प्रमाणों द्वारा देकर प्रश्नकर्त्ता के हृदय को आह्लादित कर देते थे। बहुत से व्यक्तियो में यह देखा जाता है कि वे पृच्छक के प्रश्नो को सुनकर आवेश में आ जाते है। परतु पूज्यपाद के सामने जिज्ञासु या श्रुत-श्रोता अथवा परीक्षक तथा अन्य किसी प्रकार से जो प्रश्न करते थे, उन सब लोगो को प्रेम भाव से उत्तर देते थे, प्राणीमात्र से यह गुण अनुकरणीय है। बस, पूज्यपाद के चरित्र-विषयिणी लेखनी को यही विश्राम देता हूं। कारण कि पूज्यपाद महाराजश्री के काव्यो द्वारा तथा तत्कालीन वृद्धो द्वारा उनके जीवन में पद-पद पर रहस्य प्रकट होता है, उन सब बातो को लिखने के लिये मेरी शक्ति नही है। दूसरा यह कि जो विशेषज्ञ है, उनसे कोई बात छिपी नही है और जो उनसे अपरिचित है, वे लेखक के साथ-साथ पूज्यपाद के विषय में भी संदेह करेंगे। अत प्रेमभाव से प्रार्थना है कि गुणग्राही सज्जन आदरपूर्वक इसका पठन करेंगे तथा पूज्यपाद के गुणो का अनुकरण कर इस परिश्रम का सदुपयोग करेंगे।

ॐ शांति! शांति!! शांति!!!

अथ श्री तिलोकाष्टकम्

सवित्री नानू मा जननवसती रत्लनगरी ।
दुलीच स्तात प्रवरगुणवान यस्य विदित ॥
कलेन-श्रीयुक्तो व्रतनियम-निर्वासितमलो ।
गुण शुभ्रधन्यो जयतु स तिलोको मुनिवर ॥१॥

भावार्थ—रतलाम नगरी में माता नानूबाई प्रसिद्ध गुणवान पिता दुलीचदजी सुराणा के यहां उत्पन्न होकर रमणीय और श्रेष्ठ कलाओं से युक्त तथा व्रतनियमों से पापो को हटानवाले उज्ज्वल गुणों से प्रशसनीय पवित्रात्मा श्री तिलोकऋषिजी महाराज अपन यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजमान होवें ॥१॥

महद्दिव्य ज्ञान समधिगतमेतेन तपसा ।
कथ स्वल्पे काले तदिह विदुषां मोहजननम् ॥
पर यद्ग्र थौघान् विरचयति तन्मोहविगताम् ।
गुण शुभ्रधन्यो जयतु स तिलोको मुनिवर ॥२॥

भावार्थ—तपोबल से थोडे ही काल में जो आपने दिव्यज्ञान उपार्जन कर लिया क्या यह विद्वानों को भी आश्चर्यकारी नही है ? उससे भी अधिक आश्चर्यकारी मोह को हटानवाले आपसे रचे गये ग्र थसमूह है । उज्ज्वल गुणों से युक्त ऐसे पवित्रात्मा श्री तिलोकऋषिजी महाराज अपन यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवें ॥२॥

यश पुज यस्य चरितसमरादित्यप्रमतौ ।
सुपद्यविस्तीर्णैरयुतरससस्य सुविमलम् ॥
जना मार्गभ्रष्टान् प्रतिदिशति निश्रेयसपदम् ।
गुण शुभ्रधन्यो जयतु स तिलोको मुनिवर ॥३॥

भावार्थ—साठ हजार गाथा सख्या से रचे गये हुए समरादित्य केवली चरित्रादिकों में जिनका निर्मल यशपुज विस्तीर्णता को प्राप्त होकर मार्ग से बिछुडे हुए प्राणियों को कल्याणमार्ग का उपदेश कर रहा है, ऐसे उज्ज्वल गुणों से युक्त पवित्रात्मा श्री तिलोकऋषिजी महाराज अपने यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवें ॥३॥

बृहच्छास्त्र पुच्छीसुणमिह लिखित्वैकदलके ।
परा काष्ठा नीतां विदशप्रवरां लेखनकलाम् ॥
विजेतुं स्पर्द्धन्तो जगति रमते चित्रणकला ।
गुणैः शुभ्रैर्धन्यो जयतु स तिलोको मुनिवरः ॥४॥

भावार्थ—एक पन्ने के ऊपर दशवैकालिक सूत्र सपूर्ण तथा श्रीसूयगडाग-सूत्र का वीरस्तुति नामक छठा अध्ययन पुच्छीसु णं लिखकर अति निर्मल उच्च कोटि की जो लेखनकला प्राप्त की, उसको भी जीतने के लिये जिनकी चित्रकला स्पर्द्धा (इच्छा) कर रही है, ऐसे उज्ज्वल गुणो से युक्त पवित्रात्मा श्री तिलोक-ऋषिजी महाराज अपने यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवे ॥ ४ ॥

महाराष्ट्रे देशे यदपि बहुला जैनजनता ।
न गम्य किंत्वासीदतिगहनमार्गो हि मुनिना ॥
महत्रानाकष्ट तदपि विधियोगादुपगतो ।
गुणै शुभ्रैर्धन्यो जयतु स तिलोको मुनिवर ॥५॥

भावार्थ—यद्यपि दक्षिण देश मे जैनजनसमूह अधिक है, तथापि अति कठिन मार्ग होने से मुनिराजो का सचार कम था, परंच आप अनेक कष्टो को सहन करते हुए कर्त्तव्यबल से वहा आकर प्राप्त हो गए, ऐसे उज्ज्वल गुणो से युक्त पवित्रात्मा श्री तिलोकऋषिजी महाराज अपने यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवे ॥ ५ ॥

प्रभुर्य श्रीरत्नप्रभृति-निजशिष्यै परिवृतोऽ-
चतुर्थे विश्रामेऽहमद नगरे पूज्यचरण ।
गतः कायोत्सर्ग सुरपुरमगात् कीर्तिविशदो ।
गुणैः शुभ्रैर्धन्यो जयतु स तिलोको मुनिवर ॥६॥

भावार्थ—दक्षिण देश में पांचवे चातुर्मास के लिए महाराज श्री रत्नऋषिजी वगैरह शिष्यो के साथ अहमदनगर में पधारे वहाँ पर ही इस नश्वर शरीर को छोडकर विमल कीर्ति के साथ सुरपुर सिधारे, ऐसे उज्ज्वल गुणो से युक्त पवित्रात्मा श्री तिलोकऋषिजी महाराज अपने यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवे ॥६॥

समुद्योगाद्यस्य धनदवसतिर्वं यमदिशा ।।
शरण्यं शावाढ्य शरणमुपयाता जिनमतम् ।।
मुनीनां जनानां निवसतिरियं साख्यजननी ।
गुणं शुभ्रर्धन्यो जयतु स तिलोको मुनिवर ।।७।।

भावार्थ—जिस महात्मा के समुचित उद्योग से यमदिशा धनद वसति — कुबेर के नगर समान हो गई अर्थात् जिस दक्षिण देश में मुनिलोग आने में संकोच रखते थे उस देश को आपने मालवा मारवाड़ सदृश मुनिराजों का सुखकर निवास्थान बना दिया और शरण को चाहनेवाला जिनमत शांतिस्थल पा गया ऐसे उज्ज्वल गुणों से युक्त पवित्रात्मा श्री तिलोकऋषिजी महाराज अपने यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवे ।।७।

प्रसादाद्यस्येम हरितभरितं धर्मविटपम् ।
मुनीन्द्र श्रीरत्न प्रवरविदुषानन्दमुनिना ।।
सुशिष्येणोपेतो वचनपयसा सिंचतितराम् ।
गुणं शुभधन्यो जयतु स तिलोको मुनिवर ।।८।।

भावार्थ–जिस महात्मा के प्रसाद से यह धर्मरूपी वृक्ष हराभरा दिख रहा है और उस वृक्ष को आपके पाटवी शिष्य श्रीरत्नऋषिजी महाराज ने अपने सुशिष्य प्रवर विद्वान श्रीआनन्दऋषिजी के साथ वचनरूपी जल से सिंचन कर रहे है ऐसे उज्ज्वल गुणों से युक्त पवित्रात्मा श्रीतिलोकऋषिजी महाराज अपने यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवे ।।८।।

इति श्रीरामस्वरूपशास्त्रि–प्रणीत श्रीतिलोकाष्टक सम्पूर्णम्



स्व. शास्त्र विशारद पंडित रत्न श्री अमीऋषिजी म० प्रणित

श्री तिलोकाष्टक

उत्तम व्रत धारे, दूर पातिक हरण हारे,
विपत्ति विदारे, आप अमृत के प्यारे थे।
ज्ञान संयम मतवारे, दान करुणा सतवारे,
चित्त उज्ज्वल हितवारे, पक दूषणतें न्यारे थे ।।
तत्त्व मारक उच्चारे, किए कुमति से किनारे,
होन शिव के दुलारे, सुमति के प्राण प्यारे थे।
वचन अमृत उच्चारें, अमर धाम को पधारे,
वे तिलोक रिख स्वामी, जग जीव रखवारे थे ।।१।।
मात नानू के जाने, नहीं रहे जग छान,
विश्वमाहि प्रगटाने, जास महिमा वरवाने हैं।
सुधा-वचन सुन काने, बने जीव हरखाने,
दया भाव उर आने, जैन तत्त्व को पिछाने हैं।।
क्रिया दान देत दाने, मोक्ष मारग बताने,
जिनराज, गुण गाने, नहीं नेक अरसाने हैं।
आज अमृत गुण जाने, वे तिलोक रिख दाने
हाय! छिन में विलाने, मेघ इन्द्र ज्यों छिपाने हैं।।२।।
मनमें वैराग्य धार, त्याग के सन्सार शिव
मार्ग चित्त लाग, सब पातक तें न्यारे थे।
जबे बटभागे जैनागम अनुरागे सागे,
आपके प्रताप आगे, मिथ्यामति हारे थे ।।
बडे बडे पण्डितके, खंडित किये हैं मान,
अमृत बखाने धर्म-दीपक उजारे थे।
महा गुण धारे ज्ञान क्रिया धन वारे,
वे तिलोकरिख स्वामी जगजीव रखवारे थे ।।३।।
सकल संसार सुख, जान के अनित्य चित्त,
त्याग, भावधरो हितकारी शुभ सत है।
आश्रव प्रमाद टार, रागद्वेषादि विदार,
विषय कषाय लाय ठारी उपसत है ।।
धारे जिनकेन मोक्षपंथ सुख देन ऐन,

देखत दीवार भव्य हिय हुलसत है ।
अमीरिख कहे पास संजम विशुद्ध चित्त,
स्वामीजी तिलोक सुरधाममें बसत है ॥४॥
व्हे गयो जगत जाल पातक तें दूर शूर
धर्मदया मूल भव रसनातें के गयो ।
के गयो अनेक मत आगमके भेद भार
अमत जिनवच वद आननतें चे गयो ॥
घने भ य जीवन को ज्ञान दान दे गयो ।
चे गयो अमर धाम आतम आराम काम,
दे गयो सुमत चित्त अमत अखंड सो
तिलोकरिख स्वामी गुण नामी एक व्हे गयो॥५॥
॥ गीता छंद ॥
कुमति तिमीर दल दलन स्वामी धम दीपक सम हुए ।
शुद्धर्जन आगम भेद अमत सार रसनातें चये ॥
भवि जीवको दरसाय शिवमग जैन मत भारी किये ।
उपकारी भव्य तिलोक रिख गुरु आप सुरवासी भये ॥६॥
दयाके निधान भव्य जीवन के प्राण औ
सुजान ज्ञान ध्यान में निमग्न गुणधामी थे ।
बाल ब्रह्मचारी महासुकर आचारी सार
काव्य कला धारी हितकारी विसरामीथे
सुधा समवाणी मधु सवनके ज्ञाता ज्ञानी
देय उपदेश जीव तारवेके कामी थे।
अमृत रटत नाम लेत ही कटत पाप
ऐसे ही प्रतापी श्री तिलोकरिख स्वामी थे ।७॥
॥ सवया तेवीसा ॥
तिलोक के नाथ की आन गहे उर, सजम ले चित्त होय विशोक ।
विशोक हिये तप चारित पालत टालत पाप अनत्य विलोक ॥
विलोक लिये जिन वेण भली विध, वसत भव्य सदा वेद धोक ।
धोक पियूष दिए तिहु काल कृपाल, कृपाकर स्वामि तिलोक ॥ ८ ॥
(प श्री सूय मुनि महाराज से प्राप्त)

श्रद्धांजली -- प्रकरण



दिवंगत पूज्यपाद महाराज श्री के प्रति
चतुर्विध श्रीसंघ की

卐 श्रद्धांजलियाँ 卐



साधना के अमर उपासक

(आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज, लुधियाना)

मनुष्य जन्म लेता है और तुरंत मृत्यु की ओर यात्रा प्रारंभ कर देता है। जन्म के दूसरे क्षण से ही मृत्यु उसे दबोचना शुरू कर देती है और एक दिन वह उसे पूरी तरह निगल जाती है। परन्तु यह नितांत सत्य है कि मृत्यु का असर केवल शरीर पर पड़ता है वह आत्मा का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। यही कारण है कि संत जीवन पर मृत्यु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनके शरीर का नाश हो जाने पर भी उनका जीवन प्रवाह अजस्र रूप से प्रवहमान रहता है। भगवान् ऋषभदेव राम, महावीर आदि महापुरुषों को काल के गाल में पहुँचे हजारों लाखों एवं करोड़ों वर्ष हो गये फिर भी उनका जीवन समाप्त नहीं हुआ। शरीर से मर कर भी वे आज जीवित हैं। इस से स्पष्ट है कि संत-जीवन सदा जीवित रहता है।

स्वर्गीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० आज हमारे सामने नहीं हैं। उनकी दीक्षा को सौ वर्ष से भी अधिक हो गया और स्वर्गस्थ हुए भी ७७ वर्ष के लगभग बीत चुके हैं। इतने लम्बे काल के बाद भी उनका जीवन-प्रवाह सूखा नहीं है।

समाज के जिन साधु साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं ने उनके दर्शन नहीं किये, उनके सामने भी वे आज जीवित हैं। प्रतिदिन प्रतिक्रमण करनेवाले साधकों के सामने उनकी प्राणवंत साधना दिन रात में दो बार साकार हो उठती है। भाववंदन के समय पद्यपदों की स्तुतियाँ पढ़ते हुए मन आनंद विभोर हो उठता है,। इसके अतिरिक्त आपश्री द्वारा रचित अन्य साहित्य जिनमें से कुछ पुस्तकें उपाध्याय श्री आनंदऋषिजी के प्रयत्न से प्रकाशित हो चुकी हैं और १९ पुस्तकें अभी उपाध्यायजी के पास सुरक्षित हैं, उनसे भी जनता को प्रेरणाप्रद सामग्री मिलती है। आपके द्वारा चित्रित सीकरबंध नागकुंवर एवं चित्रालंकार काव्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। यह साहित्य आपकी जीवन-साधना का प्रतीक है।

आपने दस वर्ष की अवस्था में साधना के पथ पर कदम रखा और जीवन के अंतिम सांस तक उस पर अनवरत बढ़ते रहे। आपकी साधना का स्रोत महाराष्ट्र में अधिक रहा। आपने अथक प्रयत्न के द्वारा वहाँ की सुषुप्त जनता को जगाकर धर्म का दिव्य संदेश सुनाकर उनके जीवन को धर्म के सन्मुख करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। यही आपके जीवित व्यक्तित्व का प्रतीक है। या यों भी कह सकते हैं, कि ये कार्य ही जीवित स्मारक हैं जो हमारे जीवन को आगे बढ़ाने के लिये प्रेरित करते हैं।

बस, केवल इसी आकांक्षा के साथ कि संत-जीवन की मधुर सुवास हमारे मन-मस्तिष्क में सदा धर्म की, साधना की ताजगी बनाए रखें। मैं अपनी हार्दिक श्रद्धा स्व० पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० के चरणों में अर्पण करता हूँ।

उपाचार्य श्री गणेशलालजी महाराज के अभिप्राय से—

ले०-पं० लालचंदजी मुणोत, उदयपुर

श्रद्धांजली

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० अच्छे त्यागी महात्मा थे। इनका जीवन स्थानकवासी समाज में आदर्श महा संतो के रूप में रहा है। उनकी कविताएँ प्राय कई स्थलों पर बडे भाव से गाई जाती है। उनकी ज्ञानकुंजर आदि की रचनाएँ कला-दृष्टि को सुशोभित करती हुई संसार के सामने है। अतः ऐसे महापुरुष अपने चारित्र व कलाकृतियो से संसार को प्रेरणा देनेवाले हैं।

कवि-कुल-भूषण श्री तिलोकऋषिजी महाराज

पं० रत्न उपाध्याय श्री हस्तिमलजी म० के अभिप्राय से पं० शशिकांत झा,

बीसवी सदी के अनेक विशिष्ट संतोमें कवि-कुलभूषण श्री तिलोक ऋषिजी महाराज का नाम कभी भुलाया नही जा सकता। आपका शुभ जन्म १९०४ को मालव वसुन्धरा के प्रसिद्ध नगर रतलाम में हुआ। दश वर्ष की छोटी आयु में ही आपने ज्येष्ठ बन्धु माता और भगिनी के साथ जैन मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली और प० रत्न श्री अयवन्ता ऋषिजी म० के शिष्य रूप में प्रसिद्ध हुए।

आपकी प्रतिभा विलक्षण और स्मरण शक्ति अतिशय तीव्र थी। फलत गुरुदेव की असीम कृपा और अपनी प्रखर बुद्धि के कारण थोडे ही समय में आपने जैनागम का एव अन्य दर्शनो का विधिवत् अध्ययन किया था।

सं १९३५ में घोडनदी के तत्कालीन प्रमुख श्रावक गंभीरमलजी लोढा की प्रार्थना से आप महाराष्ट्र (दक्षिण) पधारे। जैन सन्त के रूप में आपके प्रथम पदार्पण से वहां जैन धर्म की बडी प्रभावना हुई। धर्म–विमुख लोगो में भी आपके सहज सरस उपदेश से धर्म के प्रति गहरी श्रद्धा और भक्ति बढी तथा जिन शासन की मन्द और फीकी पडी धर्म लौ आपके प्रवचन सहकार से पुन प्रज्वलित एव प्रदीप्त हो उठी। चार पाच वर्ष की छोटी अवधि में आपने महाराष्ट्र में जो धर्मोपकार किया, वह वास्तव में श्लाघनीय है।

नीतिकारों की वाणी है कि——

नरत्व दुर्लभ लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा ।
कवित्व दुर्लभ तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ।

अर्थात प्रथम तो मानव जीवन मिलना ही कठिन है और उसके मिलने पर विद्या की प्राप्ति और भी कठिन है विद्वान बन जाने पर भी कवित्व प्रतिभा की प्राप्ति सर्वथा असंभव और फिर सत्व सपन्न होना तो और भी कठिन है। कविकुल भूषण इस नीतिमयी वाणीके ज्वलन्तमान प्रतीक थे। एक व्यक्ति में इन सब गुणों का समावेश निश्चय में चमत्कारिता नहीं तो और क्या है?

आपकी कविता ओज माधुर्य और गांभीर्य से परिपूर्ण होते हुए भी सर्व बोध गम्य हुआ करती थी। विविध विषयों पर आपने हजारों कविताएं लिखी। जिनमें सरसता, सरलता, और सुस्वरता की त्रिवेणी प्रवाहमान है। जटिल से जटिल विषयों को भी हृदयंगम कराने में आपकी कविता को कमाल हासिल है। फड़कती भाषा और झूमते शब्दो के द्वारा आप श्रोताओं की हृत्तंत्री झनझना देते और अनजाने एवं अनबूझे विषय की ओर भी जन मानसको बरबस आकृष्ट कर लेते थे।

यों तो आपके काव्य-कानन कमनीय-कुसुमों की सुषमा और सुरभी से ओत प्रोत है, फिर भी बानगी के रूप में आप की ये कुछ सरस पक्तियां सर्वथा दृष्टव्य है

स्वभाव वादी कथन

कहत स्वभाव वादी कहा करे सके काल
बिन ही स्वभाव कोई वस्तु नहीं जगमें ।
महिला के मूछनहीं बांझ न जणत बाल
रोमनहीं करतल हाकनहीं रगमें ।।
जात जात दरखत पानफूल भांतभांत
जलचर थलचर पक्षी उड़े खग में ।
एक जिनमत नय जाण बिना जगजीव,
कहततिलोकरिख भूले पग पग में ।।

कांटा बोर बंबूल का कौनकरे तीक्षणता,
हसको सरलभाव कपटाई बगमें ॥
बिन ही स्वभाव मोर-पंखकुण चितरत,
कोकिलाको कंठ वर स्वर-मंग कागमें ॥
विषधर शिर-मणि जहर हरे ततकाल,
विषको स्वभाव निज कहीजे उरगमें ।
एक जिनमत नय जाणे बिना जगजीव,
कहत तिलोकरिख भूले पगपगमें ॥

वस्तुतः उपरोक्त पंक्तियाँ सर्व-सुलभ होते हुए भी अंत सार गर्भित और काव्य-सौष्ठव से परिपूर्ण है ।

कर्मवादी-कथन.

नियति स्वभाव काल तीनो झूंठे निराताल,
कर्म को अबंध ख्याल कर्म बलवान है ।
कर्महीसे बुद्धिवंत कर्मही से ऋद्धिवंत,
कर्म ही से निरधन मूरख अजान है ॥
कोई महासुंदर अनूप रूप तेजवान,
कोई कुष्ठी कुबडो लो कुरूपो कुसान है
एक जिनमत नय जाणे बिना जगजीव,
कहत तिलोकरिख भ्रमत अजान है ॥

इस तरह आपकी सारी कविताएँ सरल, सरस और सहज भावों से श्रोताओं को आनंदानुभूति प्रतीत कराती है ।

आज भी आपके प्रशिष्य श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रमण संघ के उपाध्याय श्री आनंदऋषिजी महाराज की सन्निध्य में आपके कतिपय अप्रकाशित चरित्र काव्य विद्यमान है, जो अदूर भविष्य में प्रकाशित होने पर श्रोतृवृंद के आनंदज्ञान संवर्द्धन में सहायक होंगे ।

इस तरह लेखन, पाठन और काव्य निर्माण से आपका साधु जीवन कितना अप्रमत्त, अनुशासित और सुव्यवस्थित बना हुआ था। यह सहज प्रतीत होता है। वस्तुत आपका अमित उपकार और वर्चस्व भरा काव्यमय विचार जैन जगत के लिये सतत उपहार तुल्य साबित होगा।

आपकी पुण्य-स्मृति में श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड (पाथर्डी) समाज के धर्मज्ञानाभिलाषी जनों में ज्ञान के संग धर्म भावों की अभिवृद्धि कर रहा है। अन्य भी कतिपय संस्थाएँ महाराष्ट्र जैनधर्म प्रचारक मिशन के रूप में काम कर रही है। जिनके मूल में आपकी प्ररणा ही बलवती है।

ज्ञान क्रिया के सतत उपासक और काव्य कला कोविद ऐसे संत युग २ में उत्पन्न हों और जिन शासन को उज्ज्वल प्रभा को भास्कर की तरह शत सहस्र गुण प्रद्योतित करें यही कामना है।

हम विनम्र भावों से इस युग वरेण्य संत की सेवा में समस्त हार्दिक सद्भावनाओं के संग श्रद्धाञ्जली समर्पित करते हैं और विश्वास करते हैं कि आपके प्रशिष्य उपाध्याय श्री आनंदऋषिजी महाराज आपकी श्रुत सेवा को अक्षुण्ण रख कर प्रेरणाभरी कुछ अमूल्य कृतियाँ जनजगत के सन्मुख प्रस्तुत कर धर्म और समाज के गौरव की श्री वृद्धि करेंगे।

शास्त्र विशारद व्याख्यान-वाचस्पति श्री मदनलालजी म०

कविकुल भूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज स्थानकवासी श्रमणों की परंपरा में जाज्वल्यमान होकर चमकते रहे है। उनके त्याग वैराग्य का परिचय हमें उनकी कविता से मिलता रहा है। उनका जीवन चाहे हम से कितना ही दूरस्थ रहा हो पर समाज के अन्त-प्रस्थणा में वह भक्ति और विराग का एक उत्साह सा भरता रहा है। श्रद्धेय आनंदऋषिजी महाराज उनके उत्तराधिकार को जनता-जनार्दन में बांटने की उदारता कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है। इन प्रकाश-स्तंभों से हम जितना प्रकाश ले सकें, लेते रहें, यह मेरी भावना है।

वयोवृद्ध प० रत्न मंत्री मुनि श्री पन्नालालजी म०

जैन संस्कृति व्यक्ति-पूजा की अपेक्षा गुण-पूजा में विश्वास रखती है, आत्म गुणों का साधक एवं मोक्ष मार्ग का पथिक ही यहां श्लाघनीय होता है। ज्ञान ज्योति से जगमगाता तप पूत जीवन ही वस्तुत जन मानस में अपना विशिष्ट स्थान बनाता है।

निरंतर तत्त्वचिंतन सतत मनन, ज्ञानाराधन एवं आत्म-गुणों में रमण ही साधक-जीवन का ध्रुव ध्येय है। श्रद्धेय श्री तिलोकऋषिजी म० का जीवन भी इन्हीं दिव्य गुणों से अलंकृत रहा है।

ह। आपकी नन्ही २ कविताओं के अंदर जो विशिष्ट ज्ञान भरा हुआ है उसके लिए यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नही होगी कि आपने बिंदु में सिंधु भर दिया है या गागर म सागर समा दिया ह।

देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण न चौदह पूर्व के सार रूप ज्ञान का संग्रह किया, परन्तु उतना ज्ञान भी आज क विज्ञान क जडवादी युग म साहित्य क समुद्र समान मानवों को प्रतीत होन लगा तब पूज्यपाद न देवर्द्धि क्षमा श्रमण का अनुकरण करक लोक भाषा म श्री दशवकालिक सूत्र और श्री उपासक दशा सूत्र का सरल सरस सुबोध भाषानुवाद किया इसी तरह सब शास्त्रों का दोहन कर सार रूप संक्षिप्त में वैराग्यमय काव्यों की रचना की। जो रचना अब और भजन के लिये स्वाध्यायार्थ परम उपयोगी है।

जैसे अन्य धर्मावलंबी लोग गीता कुरान पुराण एवं बाइबल को अपना सब श्रेष्ठ ग्रंथ मानते ह। उससे भी सरल और सुबोध पूज्यपाद म० श्री का काव्य संग्रह ह। जिस को भी बचका बालक और ९० वर्षों का उसका दादा भी सरलता से समझ सकता ह। इतना लोकभोग्य यह साहित्य ह।

जैन तत्त्व ज्ञान का इतनी सरल और सरस भाषा में साहित्य निर्माण करने की कला पूज्यपाद श्री में स्वाभाविक थी। छत्तीस वर्ष की अल्पवय में पूज्यपाद महाराज श्री की जीवन लीला समाप्त हो गई। अन्यथा दशवकालिक और उपासक दशा सूत्र के जैसे अनेक आगमों का भाषानुवाद पूज्यपाद म० श्री कर सकते थे। कितनी समाज के भाग्योदय की न्यूनता ? सो यह काय अपूर्ण रह गया।

एक शताब्दी जितना समय व्यतीत हो जाने पर भी पूज्यपाद के जसा लोक भोग्य साहित्य के लिय आज तक किसी ने सम्यक प्रयत्न किया हो यह अनुभव मे नही आया। इतनी पूज्यपाद की अपूवता का परिचय प्रत्यक्ष रूप से हो रहा ह और जन तत्त्व ज्ञान के सागर को गागर में काव्य कलामय दृष्टि से सुंदरता के साथ समावेश किया है, यह पूज्यपाद का नैसर्गिक काव्य-कला का अपूर्व नमूना ह।

जसे विश्व की सब संपत्ति का समावेश एक छोटे से कोहिनूर हीरे में हो गया है उसी प्रकार श्री पूज्यपाद म० ने जन तत्त्व-ज्ञान को अपन काव्य कोहिनूरों में समावेश किया ह। आज के विज्ञान के युग म दिन प्रतिदिन दिन दूने और रात चौगुने के जैसे हजारों रोग बढते जा रहे ह और उन रोगों को मिटान के लिए लाखों दवाइयों का अविष्कार हो रहा है। परन्तु आयो वेदिक पद्धतिवालों ने इन लाखों दवाइयों की उलझन में से लोगो को बचाने के लिए उन लाखो दवाइयों के

सार रूप बारह क्षारों की शोध की है। सिर्फ उन बारह ही क्षारों के द्वारा वे लोग हजारों रोगों की चिकित्सा करते है। इसी प्रकार संसार में अनादि-काल से जन्म, जरा, मरण वगैरह अनेक रोगों से जीव पीडित है। उस दुःख-रूपी रोग से जीव को मुक्त करने के लिये श्री पूज्यपाद महाराज श्री ने अति संक्षिप्त में आगमों का दोहन कर के चारों तीर्थ की अपूर्व सेवा की है। जिससे कि अल्प बुद्धिवाले सामान्य जीव विशेष उलझन में न पड़ें। यह उनका चारों तीर्थों के ऊपर महान उपकार है।

कविकुल-शिरोमणि पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि जी महाराज का काव्य संग्रह भाव, भावना, सहृदयता और वैराग्य से ओत-प्रोत होने से पाठकों के लिये यह साहित्य परम प्रेरणा देकर के जीवन को उन्नत बनाने में सुप्त मानस को जागृत करता है।

आशा है कि भविष्य की प्रजा पूज्यपाद की भाव-वाहिनी काव्य-माला का लाभ लेकर के इस जड़वाद के युग में अध्यात्म-रस का पान कर अपने जीवन को धन्य और सफल बनायेगी, यही मंगल कामना है।



छंद-छप्पय

मरुधर केसरी पं. मंत्री मुनि श्री मिश्रीमल्लजी महाराज

साहित्य ज्ञान समुद्र, कला कोविद मृदुभाषी।
ज्ञान दर्श चारित्र, रत्नत्रय दिये उजासी॥
कविकुल भूषण, ललित लेखिनी, चित्रकार थे।
सम-दम समसे कलित, फलित शुभ सहकार थे॥
तीन लोक के सकल गुण, ढूंढत क्यों इत उत फिरो?
सघन एक स्थल थे यदि, श्री तिलोक पायो करो॥१॥
रत्नपुरी में रत्न प्रगट भये दुलीचंद घर।
नाम जन्मा लाल, संवत् उन्नीसे चउवर॥
चैत्र कृष्ण की तीज, वार आदित्य सुखाकर।
सोच सुगणा मात वर्ष दस की भई ऊमर॥
अयवन्ता कविराज के, शिष्य पारखी मानिये।
धनिया शाली भये प्रगट, अनहद आनंद जानिये॥२॥

कुंडलिया

प्रथम गुनकर में चतुर, चलन लेखिनी लहर।
वस्तु अवधारी चित्रवतर, मान शारदा महर॥
मात! शारदा महर, शहर के पुर वो पट्टन।

चिंकरी पे उपदेश तिमिर मिथ्या कुल दट्टन।
दट्टन घिसुरिको उमंग भलमक ज्यों ज्योति फहर।
त्यों तिलोक तनसे निकर, ज्ञान—गंग उमठी लहर ।३॥

सवैया २४ सा,

तनतेज महारवि-सो लखरो, इसको फंद आर न नैनपन्यो।
वय माप अष्टा छत्तीस लही, कही आलस वा नहीं अभभऱ्यो॥
मदमोह हटाय मिटा ममता समता शुभ भूषण देहधर्यो।
जस गंध सुगंध भरी इलपं पसराय तिलोक सुधान बन्यो ॥४॥

—दोहा—

उपाध्यायमान पुष्कर दीक्ष शताब्दी मय।
भेंट कियो मन आपसे श्री अभिनन्दन ग्रंथ ॥५॥
श्रद्धांजली हित प्रेरणा मिश्रीमचि मिलराय।
प्रेमसहित अर्पण करे श्री तिलोक चरणाय ॥६॥

श्रद्धांजली

लेखक—प रत्न मंत्री मुनि श्री प्रेमचन्दजी महाराज पंजाबी

यह सिद्धांत सर्वसामान्य है कि इस भूतल पर जितने भी जड़ और चेतन सूक्ष्म और स्थूल पदार्थ हैं वे सबके सब पर्यायापेक्षा से परिवर्तनशील हैं। समय समय पर उनकी अन्तरात्मा में परिवर्तन होता रहता है। कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं, जिसमें परिवर्तन न होता हो। बीज से फूल, फूल से धूल, सुगंध से दुर्गन्ध, और दुर्गन्ध से सुगंध सुकोमल से कठोर और कठोर से सुकोमल। सुन्दर से असुन्दर और असुन्दर से सुन्दर। स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से स्थूल। मतलब यह है कि प्रकृतिनटी का अनन्तकाल से यही कुतूहलमय स्वभाव चला आता है। यह किसी भी पदार्थ की परिवर्तनशीलता से अछूता नहीं छोड़ती।

प्रत्यक्षरूप से देखने में आता है जहाँ प्रावट ऋतु में मेदिनी अनेक प्रकार के फल-फूल लताएँ तथा रंग बिरंगी मनोरम हरियाली से सुशोभित होती है उसके विरोध में ग्रीष्मऋतु अपनी संतापना से प्रावृट्ऋतु प्रदत्त मेदिनी के सौंदर्य को नष्ट-भ्रष्ट कर उसे सौन्दर्य विहीन बना देती है। जहाँ वर्षाकाल में भूतल की नदियाँ जलरूप अतुल निधि प्राप्त कर फूली नहीं समातीं, वहाँ ग्रीष्म काल में संपत्ति विहीन हो संतप्त नजर आती है। यदि जन्म की खुशी है तो मृत्यु से रोता है। जवानी के पीछे बुढ़ापा है। जीवन के पीछे मृत्यु है। खुशी के पीछे गमी है। दिन के पीछे रात्रि है।

साराश यह है कि कोई भी भौतिक पदार्थ ऐसा नही है, जो सदैव एक रूप रहता हो। भला है कोई इस भूतल पर ऐसा कुसुमोद्यान ? जिसके सुदर पुष्प खिलते हो और धूल में न मिलते हो ? एक उर्दू के कवि ने ठीक ही कहा है।

कुछ गुल तो दिखला के बहार अपनी हे जाते,
कुछ सूख के काँटो की तरह है नजर आते।
कुछ गुल है कि फूले न जामे में समाते,
गुचे बहुत ऐसे जो बद किसमत कि खिलने भी न पाते ॥१॥
दूर न हो कोई कमी, वह उपाय है कौन ?
यही प्रश्न है विश्व में, यहाँ विश्व है मौन ॥२॥

सच पूछो तो इस उलझी हुई पहेली का उत्तर किसी के भी पास नही है। इस विनश्वर भौतिक स्थूल जीवन का क्या भरोसा ? किस समय आत्मा का साथ छोड जाय। वास्तव में उन्ही भव्यात्माओ के पवित्र जीवन का मूल्य आका जाता है, जो अपने जीवन के क्षणो में स्वपर का कल्याण कर जाती है। ससार उन्ही की पुण्य कृतियो को सस्मरण कर उन्हे याद करता है। कहा भी है—

जिंदगी ऐसी बना जिंदा रहे दिल शाद तू।
जब न हो दुनियाँ में तो दुनियाँ को आवे याद तू ॥१॥
मुबारिक है जो दिल में दूसरो का दर्द रखते है।
आंखो में आसू लब पे आहे सर्द रखते है ॥२॥

मैं इस विनश्वर ससार की अनित्यता की खोज में मस्त होकर कुछ दूर निकल गया हूँ। हाँ तो मैं जिस स्वर्गीय कविकुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० के चरणारविंदो में सादर अपनी श्रद्धाजली समर्पित करने जा रहा हूँ, उनका जीवन एक आदर्श जीवन था। वह जीवन अधेरी गलियो में भटकने वाला नही था। उस पावन जीवन के पीछे कुछ लक्ष्य था, ध्येय था, प्रकाश था, आत्मसाधना और मोक्ष-प्राप्ति का पवित्र उद्देश्य था।

हे ज्ञानार्णव! तेरा विशाल ज्ञान समुद्र की भाँति अथाह था, मेरे जैसे तुच्छ बुद्धिशील के लिये उसका पार पाना कठिन है। हे चारित्रचूडामणे! तेरा पवित्र चारित्रमय जीवन मानव संसार के लिए एक प्रकाश-स्तंभ था, जिससे प्रकाश लेकर अनेक भव्य आत्माओ ने अपने जीवन को प्रकाशित किया, मिथ्यात्व और अज्ञानमय कुपथ का परित्याग कर सत्यानुगामी बनी।

हे मार्गदर्शक! आपने अनेक भूले-भटके प्राणियों को मोक्षमार्ग का पथिक बनाया।

हे जिन-शासन प्रभावक ! आपने अपनी तीव्र बुद्धि और वाक्पटुता से अनेक प्रकार की आत्मबोधक कवितारूप साहित्य का सृजन कर जो मानव-संसार पर उपकार किया है वह चिरस्मरणीय रहेगा । जिस प्रकार अंधेरी निशा में दीपक ठीक मार्गदर्शन कराता है ठीक इसी तरह आपका रचित साहित्य भी मार्गदर्शन कराता रहेगा ।

हे कविकुलभूषण ! प्रकृति चित्रकला के निष्णात कलाकार ! तेरी शान कुंजर जैसी आध्यात्मिक चित्रकला ने चित्रकलाभिमानी संसार को विस्मित एवं चकाचौंध कर दिया है ।

हे परोपकारी पुनीत महात्मन ! तेरी गुण-गाथाओं का जितना भी वर्णन किया जाय उतना थोड़ा ही है । आपके जीवन के विषय में जो ये कतिपय पंक्तियाँ लिखी गई हैं यह एक प्रकार का दुःसाहस और धृष्टतासूचक ही कार्य है । अतः स्वर्गीय आत्मा के प्रति मेरी हार्दिक कामना है कि उत्तरोत्तर सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की प्राप्ति होती रहे जिससे आपको शीघ्रातिशीघ्र शाश्वत निर्वाण पद की प्राप्ति हो ।

कला का कीर्ति-स्तंभ

—प० प्रवर मंत्री मुनि श्री पुष्कर मुनिजी महाराज

कला के क्षेत्र में काव्य-कला का महत्त्वपूर्ण स्थान है । अनुभूति की अभिव्यक्ति का इससे बढ़कर अन्य कोई सुन्दर साधन नहीं है । यह कला अपने आप में इतनी परिपूर्ण और चित्ताकर्षक है कि तुतलाते बचपन से लेकर जीवन की सन्ध्यावस्था तक सभी का दिल मोह लेती है । जो काव्यकला बिजली के सजीव तार की भाँति हृदय को धक्का न दे सके अथवा जिससे पाठकों को कुछ भी प्रेरणा प्राप्त न हो सके, उसे मैं असफल काव्य मानता हूँ । निरुद्देश्य कार्य से तो कागज, स्याही और समय का अपव्यय ही है ।

सन्त-साहित्य की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है कि उसका काव्य निरुद्देश्य नहीं होता । पाश्चात्य विचारकों की तरह उसके काव्य का लक्ष्य 'कला कला के लिए है' यह नहीं, अपितु कला जीवन के लिए है यह है । यही कारण है कि सन्त-साहित्य में स्वान्त सुखाय के साथ ही बहुजनहिताय और बहुजन-सुखाय को महत्त्व दिया गया है । जिससे उसका काव्य हिमालय से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक समान रूप से जन-जन के मन का हृदयहार बना और भूले-भटके जीवन राहियों के लिए पथ प्रदर्शक । सुप्रसिद्ध विचारक विलियम जेम्स ने एक स्थान पर सत्य ही लिखा है कि "जब हमें मदद की जरूरत होती है, उस समय हम संत की सहायता पर जितना भरोसा कर सकते हैं, उतना किसी दूसरे पर नहीं

महान् कलाकार पंडितप्रवर श्रद्धेय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज ऐसे ही महान् संत-रत्न थे। जिन्होंने करीब नौ वर्ष की लघु वय में संयम-साधना, तप-आराधना के कठोर कंटकाकीर्ण महामार्ग पर बढ़कर और सद्गुरु के श्री चरणों में रहकर आगम-साहित्य का गहन अध्ययन कर अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया।

उनके काव्य-कला के निखार में आगमिक साहित्य का प्रतिबिंब स्पष्ट रूप से झलक रहा है। दो दर्जन से भी अधिक कलाकृतियाँ आज भी विज्ञों के दिल को लुभा रही हैं। सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता निरभिमानता और स्वाभाविकता का ऐसा जबरदस्त पुट उनके काव्य में विद्यमान है, जिससे साहित्य की वह चिरस्थायी संपत्ति हो गई है।

स्थानकवासी जैन समाज में अनेक संत कवि हुए हैं, जो अपनी प्रतापपूर्ण प्रतिभा की तेजस्विता के कारण आज भी साहित्याकाश में नक्षत्र की भाँति चमक रहे हैं। उनका काव्य भाव,भाषा और शैली सभी दृष्टि से प्राञ्जल एवं प्रौढ़ है, पर उनकी वे अमर-रचनाएँ पंडितप्रवर कविकुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की तरह न इतनी लोकप्रिय ही बन सकी हैं और न प्रतिक्रमण सूत्र में उन्होंने स्थान ही प्राप्त किया है। पूज्यपाद द्वारा विर्मित नमस्कार मंत्र पर 'नमू श्री अरिहंत, करमा को कियो अंत' आदि पद इतने अधिक लोकप्रिय बने हैं कि राजस्थान, मध्यभारत, पंजाब, यू. पी. दक्षिण खानदेश और गुजरात सर्वत्र उसकी सुरीली स्वर-लहरी प्रात और सायं प्रतिक्रमण में सुनने को मिलती है। यह है कलाकार की कविता का चमत्कार।

उपाध्याय पंडितरत्न श्री आनन्दऋषिजी महाराज की प्रबल प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर स्थानकवासी जैन समाज की और से उस महान् कलाकार के चरणारविंदों में श्रद्धा के सुन्दर सुमन समर्पित करने का जो आयोजन किया है, वह स्तुत्य है। कलाकार संत के चरणकमलों में श्रद्धाञ्जली समर्पित करने का अवसर आनेपर यदि मौन रहा जाता है, तो वह गीर्वाणगिराके यशस्वी कवि के शब्दों में वाणी का शल्य है। महापुरुषों के सद्गुणों का उत्कीर्तन करना जीवनोत्कर्ष के लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। श्रद्धेय श्री तिलोकऋषिजी महाराज के प्रति सही श्रद्धांजली यही होगी कि हम उनके काव्य का अधिक से अधिक रसास्वादन कर जीवन को आचार और विचार की दृष्टि से उन्नत बनावें।



श्री पूज्यपाद का पुनीत पदार्पण

आत्मार्थी मुनि श्री मोहनऋषिजी महाराज अहमदनगर

भारत की संस्कृति अहिंसा दया करुणा और अनुकम्पा के रंग से रंगी हुई थी। तदपि समय ने पलटा खाया और यह भूमि अहिंसा के स्थानपर हिंसक भूमि बन गयी थी। दया करुणा व अनुकम्पा के स्थानपर निर्ममता क्रूरता और कठोरता ने स्थान ग्रहण किया था। और यज्ञ के लिये लाखों पशु निर्दयता से धर्म के नाम पर काटे जाते थे और पवित्र भूमि रक्त की नदी के समान बन गयी थी। विषमता और अज्ञानता का भी साम्राज्य व्यापक रूप से था। स्त्रीसमाज और सेवक-समाज की पशु के तुल्य गणना की जाती थी। रास्ते में चलते समय उनके कानों में यदि भूल से भी वेदके शब्द पड जाते तो उनको असभ्य अपराधी मानकर कठोर दंड दिया जाता था। ऐसे विषम युग में भगवान् महावीर का जन्म हुआ और उन्होंने अहिंसा का और स्त्री पुरुष समान है मानव मानव समान है इसका व्यापक प्रचार किया और सम्यक ज्ञान दर्शन और चारित्र का प्रचार किया। वैसे ही दक्षिण प्रान्त में जैन व्यापारी वर्ग आर्थिक दृष्टि से आये थे। किन्तु सद्गुरु के अभाव से हजारो की संख्या में वे अजैन जैसा जीवन व्यतीत करते थे। जू, लिख खटमल, मच्छर, सर्प और बिच्छू आदि जीवों के प्रति उनकी करुणा कृत्रिम क्रूरता का रूप धारण किया था। उसी समय में पूज्यपाद ने इस प्रांत में पदार्पण किया और सत्य धर्म का प्रसार किया। जिसके फलस्वरूप जैसे वटबीज में से विशाल वट वृक्ष बन जाता है। वैसे पूज्यपाद की परम्परा ने विस्तृत विराट रूप धारण किया। आज ये पंक्तियाँ अहमदनगर क्षेत्र में लिखी जा रही हैं कि जो प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद की शाखा–प्रशाखा के रूप में श्रमण संघ के शिरोमणि उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म० ठा ८ और २९ सतियाँ विराजमान हैं। इतना विशाल समुदाय इस एक क्षेत्र में ही विद्यमान और धर्मप्रचार का क्षेत्र–विस्तार भी पूज्यपाद की प्रबल भावना के अनुसार महाराष्ट्र, मैसूर वरार, खानदेश और मध्यप्रदेश बैंगलोर कर्नाटक, सम्पूर्ण मालवा मेवाड, मारवाड पंजाब, सौराष्ट्र, गुजरात तक उनके शिष्य और शिष्याओं ने धर्म–प्रसार किया है और कर रहे हैं। यह सब श्रेय पूज्यपाद को अर्पण है।



ऋषि वरेण्य

प० मुनि श्री ओमल्लजी महाराज पूना,

मानव-समाज में आज यदि सुसंस्कारिता है, नैतिकता है, धार्मिकता है, तो उसका सारा श्रेय विभिन्न युगों में उत्पन्न होनेवाले उन महान् सन्तों को है, जिन्होंने मानव-जाति के उत्थान के लिए अपना जीवन अर्पित किया है। अपने संयमी जीवन द्वारा, सत्य-पूत उपदेशों द्वारा एवं सत्साहित्य द्वारा जिन्होंने मनुष्य के समक्ष महान् आदर्श उपस्थित किया है और मानव जाति को सुसंस्कृत बनाकर संसारपर महान् उपकार किया है। ऐसे महान् उपकारक सन्तों में पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज अपना अनोखा स्थान रखते हैं।

पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० बीसवीं सदी के प्रारंभ में इस धरती पर आये और केवल छत्तीस वर्ष का छोटासा समय इस दुनिया में व्यतीत करके अन्तर्धान हो गये। महान् विभूतियाँ अल्प काल में ही अपने प्रकाशसे धरा को आलोकित और समाज को चमत्कृत कर देती हैं।

श्री ऋषिजी म० अपने समय में एक महामुनि थे, महर्षि थे, जितने उच्च कोटि के वे साधक थे—उतने ही उच्च कोटि के कवि भी थे। जैनागम एवं जैन कथा-ग्रंथों में इतस्तत बिखरे हुए विभिन्न आख्यानों को उन्होंने कविता की भाषा में प्रस्तुत किया और समाज को नवजीवन का सन्देश दिया। लगभग ७० हजार पद्यों की रचना उन्होंने अपने छोटे से जीवन-काल में की है।

वास्तव में देखा जाय तो कविता का सम्बन्ध बाह्य वस्तुओं के साथ उतना नहीं है। जितना कवि के हृदय की अनुभूति के साथ है। हृदय की अनुभूति बढ़कर जब संगीतमय होकर बाहर निकलने लगती है तो उसका नाम कविता हो जाता है।

पूज्यपादश्री में अनुभूति की प्रबलता थी। महापुरुषों में अनुभूति का होना आवश्यक है। धर्माचार्य, कवि, राष्ट्रनायक, समाज-सुधारक, दार्शनिक, साहित्यकार आदि सबमें यही अनुभूति काम करती है और भिन्न-भिन्न रूप धारण कर के प्रकट होती है।

कवि में यह कविता बन जाती है। धर्माचार्य में संयम, त्याग और तपस्या का रूप धारण करती है। राष्ट्रनेता में वाणी तथा बलिदान के रूप में प्रकट होती है। दार्शनिक में वह गंभीरता का रूप धारण करती है और साहित्यकार में कला के उदगम का स्रोत बन जाती है। हमारे पूज्यपाद महाराजश्री में यह कविता,

संयम वाणी एवं तपस्या आदि अनेक रूप में प्रकट हुई है। उनकी कविताओं का समूह उन्हीं के प्रशिष्य उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म० के समीप आज भी उपलब्ध है।

श्री तिलोकऋषिजी महाराज स्वाध्यायप्रिय संत थे। अपने अप्रमत्त भाव को सुस्थिर बनाने के लिए वे स्वाध्याय में रत रहते थे। शास्त्रों में स्वाध्याय को नंदनवन के सदृश माना है। अकुशल निमित्त के कारण जब मनुष्य व्यग्र हो जाता है, तब वह व्यग्रता दूर करने के लिए सुंदर बगीचे का आश्रय लेता है। इसी प्रकार संयमी साधक भी प्रमत्त भाव के निमित्त से जब उसका मन व्यग्र हो जाता है तब वह स्वाध्याय रूप नंदनवन का आश्रय लेता है। स्वाध्याय के द्वारा वह नवीन-नवीन ज्ञान प्राप्त करता रहता है और अपने जीवन में उस ज्ञान का उपयोग करता जाता है। सामान्य व्यक्ति पुस्तकों में लिखी बातों को अपने मस्तिष्क में ठूंस लेता है और समय आने पर उन्हें उगल भी देता है परन्तु अपने जीवन में नहीं उतारता। संतपुरुष ऐसा नहीं करते। वे स्वाध्याय से जो सीखते हैं। उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करते रहते हैं। इस प्रकार के स्वाध्याय से जीवन संस्कारसंपन्न और पवित्र बनता है। प्रमादजन्य व्यग्रता नष्ट होकर अप्रमत्त भाव में स्थिरता आती है और अकुतोभय (निर्भय) बनने लगता है। सव्वओ अप्पमत्तस्स नत्थि भयं अप्रमत्त को कहीं भी भय नहीं है। इस स्थिति को स्वाध्याय द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

हमारे वंदनीय महर्षि इसी निर्भय अवस्था को स्वाध्याय के द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। स्वाध्याय के लिये जिन आगमों की आवश्यकता होती थी जिन ग्रन्थों की उन्हें उपयोगिता मालूम होती थी, उन्हें वे स्वयं ही लिखते थे।

साधु अपना सामान स्वयं ढोते हैं। प्रवास-काल में अधिक सामान न ढोना पड़े और स्वाध्याय के लिए आवश्यक ग्रन्थ भी उपलब्ध हो जाय, इसी दृष्टि से जैन साधु सूक्ष्म सुंदर कलात्मक ढंग से लिखते थे। लिखने की कला में ये महामुनि बहुत ही प्रवीण थे। उन्होंने अनेक शास्त्र स्वयं लिखे हैं उनके द्वारा लिखित जैनागमों एवं कई ग्रन्थों की प्रतियाँ वर्तमान में भी प्राप्य हैं। वे लिखने में इतने कुशल थे कि न केवल उनका दायाँ हाथ बल्कि बाँया हाथ भी चलता था।

स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान और क्रिया का सुंदर समन्वय ऋषिजी म० अपने जीवन में ला रहे थे। ज्यों ज्यों विचार और आचार की शुद्धता उनके जीवन में प्रकट होती थी त्यों त्यों, भगवान् महावीर के तत्त्वज्ञान एवं आचारपद्धति पर

उनकी निष्ठा स्थिर होती जाती थी, और "समीजीवकरू क्षामनरमी" यह भावना बल पकडती जा रही थी। अपनी इस भावना को सफल बनाने के लिये ऋषिजी म० ने उग्र विहार प्रारंभ किया था।

श्रमण संस्कृति में पदयात्रा को अधिक महत्त्व प्राप्त है। उग्रविहारी होना श्रमण का कर्तव्य बताया गया है। चातुर्मास के अतिरिक्त किसी भी स्थान पर २९ उनतीस दिन से अधिक ठहरना साधु के लिये निषिद्ध है। पदयात्रा का सब से बड़ा लाभ आध्यात्मिक विकास है। पैदल यात्रा से ज्ञानवृद्धि में भी बहुत सहायता मिलती है। पदयात्रा से प्राप्त लाभ का वर्णन करते हुये संत विनोबा लिखते हैं कि—

"मेरी उम्र पैंसठ वर्ष की है, इस समय भी मैं बारह मील चलने के बाद कोई थकान महसूस नहीं करता हूँ। यह मेरे स्वास्थ्य का लक्षण है। मैंने भारत-माता के मन्दिर की प्रदक्षिणा (पदयात्रा) का प्रारम्भ जबसे किया है, तबसे मेरा शारीरिक स्वास्थ्य तो सुधरा ही है, साथ ही मानसिक स्वास्थ्य भी सुधरा है। मेरी स्मरण शक्ति भी तेज हुई है। पहले एक श्लोक कंठस्थ करने में मुझे दस मिनट लगते थे। आज कल दो मिनट में ही याद कर लेता हूँ।"

इस प्रकार पद-यात्रा में अनेक लाभ है। चारित्र-रक्षा की दृष्टि से भी एक नियत स्थान पर न टिककर पैदल भ्रमण करना साधु के लिये आवश्यक है। अधिक समय तक एक स्थान पर टिके रहने से मोह की जागृति एवं वृद्धि होने का भय रहता है। इस दृष्टि से जैन शास्त्रों में साधु के लिये विहार आवश्यक माना गया है।

मानव-स्वभाव का परिचय प्राप्त करने के लिये पैदल भ्रमण अत्यंत उपयोगी है। विभिन्न भाषाएँ, बोलियाँ और संस्कृतियाँ समझने के लिए भी इसकी आवश्यकता है।

प्रचार की दृष्टि से तो पैदल-भ्रमण अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है। भगवान् महावीर, महात्मा बुद्ध जैसे महान् पुरुषों ने भी पैदल भ्रमण करके ही जनता में धर्म-जागृति उत्पन्न की और युग-युग से चली आई रूढ़ियों के स्थान पर वास्तविक धर्म की स्थापना की थी। आज की तरह पूर्व काल में यातायात के इतने तेज साधन नहीं थे और न इतने प्रचार के बाह्य साधन ही थे। फिर भी उन महान् संतों ने पद-यात्रा के द्वारा ही इस विशाल विश्व में घूम-घूम कर धर्म का प्रचार तथा प्रसार किया। जनजीवन को धर्म से ओतप्रोत बनाया था। आज के इस वैज्ञानिक युग में भी पद-यात्रा के द्वारा ही जैन श्रमण जन-जीवन को जागृत करने का प्रयत्न करता है, यह उनकी एक विशेषता है।

हाँ, तो हमारे पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज उग्रविहारी थे। उन्होंने गाव गाव और नगर नगर घूम घूम कर जनता तक मानवता का संदेश पहुंचाया। छोटे २ देहातों में भगवान महावीर के संदेश को सुनाने में उन्हें बहुत संतोष होता था। वे ही महान मुनिवर थे जिन्होंने सर्वप्रथम महाराष्ट्र की धरती पर पदार्पण किया। महाराष्ट्र की जैन जनता उन्हें अपने बीच पाकर कृतकृत्य हो गई। जो लोग जैन संस्कारों को भूले जा रहे थे उन लोगों में फिर से जैनत्व जागृत करने की बलवती साधना उन्होंने प्रारंभ की। सिर्फ बड़े बड़े नगर में ही उन्होंने पदार्पण नहीं किया बल्कि छोटे छोटे देहातों में भी पहुँचकर कष्टों को झेलते हुए परीषहों को सहन करते हुए उन्होंने धार्मिक क्रांति का शखनाद फूंका।

वे एक सच्चे संत थे। संत पुरुष संसार के अकारण बंधु होते है। निःस्पृह सेवक होते है। मनुष्य की आकृति में मनुष्यता का बीज बोनेवाले कुशल माली होते है। नीति और धर्म के महान शिक्षक होते है। संसार के कल्याण के लिए वे रत रहते है। भयंकर से भयंकर कष्ट भी जगत के उद्धार के लिये वे सहन करने को तत्पर रहते है। मनुष्य का निर्माता कोई भी हो परंतु मनुष्यता का निर्माता तो संत ही होते है। इस प्रकार संसार का अपार उपकार करनेवाले संतो में पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० का स्थान अक्षुण्ण है।

संतो का जीवन एक ऐसा सागर है जिसमें असंख्य मोती भरे रहते है। जो जितना गहरा गोता लगाता है वह उतने ही अनमोल मोती प्राप्त कर सकता है। ऋषिजी म० के जीवनसागर में भी अनेक सद्गुणरूपी मोती बिखरे हुए है।

उनके जीवन का गहरा अध्ययन करके उन सद्गुणों को अपने जीवन में अपनाने का प्रयत्न करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजली हो सकती है।

संसार में रोज कितने प्राणी जन्म लेते है और मरते है। जन्म और मरण का यह सिलसिला अनवरत अबाध गति से बहता रहता है, चलता रहता है। पर संसार के पटल पर कुछ एसे ही व्यक्तियों के नाम अंकित होते है जो स्वपरहित–साधना में मानवता की सेवा में अपना सर्वस्व लगा देते है। एसे ही महापुरुषों के बलिदान की गाथाओं से इतिहास गौरवान्वित होता है। संत पुरुष ही संसार के चक्र की धुरी है। जिस पर यह सारा चक्र घूम रहा है। एसे महामहिम संत को हम नतमस्तक होकर अपनी भावांजलियाँ अर्पित करें यह स्वाभाविक ही है। हम महापुरुषो के विचार–प्रवाह को अनवरत गतिशील रहने दें। उसे किसी घेरे में परकोटे में या परस्त्री में बांधकर न रखें वह प्रवाह जहाँ भी जायगा पवित्रता शांति और आनंद का संचार करेगा।

हम श्री तिलोकऋषिजी महाराज को श्रद्धांजली अर्पित करते समय इस बात का स्मरण रखे कि-कहीं हमारे स्वार्थ का पोषण करनेवाली भावनाएँ प्रकट न हो जायें। पंथ-सम्प्रदाय इत्यादि के बंधनों से ऊपर उठकर जो परम सत्य है, जो ऊंचा आदर्श है, उसे स्वीकार करके उसके अनुरूप अपने जीवन को चलाने का प्रयत्न करे। इससे बढकर ऋषिजी म० के अभिनंदन में और क्या किया जा सकता है?

मंत्री मुनिजी हजारीमलजी म० के शिष्य
प मुनि-मिश्रीमल्ल (मधुकर) जी म, मेड़ता

जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु अवश्यंभाविनी है। परन्तु मृत्यु के बाद भी स्मरण उसीका किया जाता है, जिसने संसार को किंचिदपि प्रकाश दिया हो।

स्वर्गीय पूज्यपाद प्रवर पंडित श्री तिलोकऋषिजी महाराज एक ऐसे ही संसार को प्रकाश देनेवाले महात्मा पुरुष थे। अपने अल्पतम जीवन-काल में जो उन्होंने साधना की, उसका आभास उनकी रचनाओं से मिलता है।

सिर्फ ३६ वर्षका उनका जीवन-काल था। करीब १० वर्ष की आयु में उन्होने संयम ग्रहण किया था और वे अपनी दीक्षा के २६ वे वर्ष के आसपास अपनी इस देह से विमुक्त भी हो गये थे।

इतनी अल्प अवस्था में स्व-निर्मित उनकी रचना और कलाकृतियों को देखने से ऐसा लगता है कि वे सदा जागरूक रहनेवाले पुरुष थे।

साधना का जीवन ऐसा ही तो होना चाहिये। उठते-बैठते बातचीत करते और विश्राम के समय भी कुछ नया सीखने की और नया लिखने की सतत प्रवृत्ति बनाये रखना ही तो सत-जीवन की जागृत अवस्था है।

स्वर्गीय पूज्यपाद म० श्री जी का स्थूल शरीर तो आज नहीं है, परन्तु उनका यश शरीर आज भी उन लोगों के स्मरण-पट से कभी दूर नहीं हो सकता, जिन्होंने उनकी रचनाओं का अमृत-पान किया है।

वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण-संघके उपाध्याय श्री श्रद्धेय आनन्द-ऋषिजी महाराज उनकी शिष्य-परम्परा में हैं। वे श्री तिलोकऋषिजी महाराज की दीक्षा-शताब्दी के अवसर पर उनके स्मृति-ग्रन्थ की योजना कर रहे हैं। मैं उनके इस प्रयास के अवसर पर स्वर्गीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के चरण कमलों में अपनी श्रद्धांजली समर्पित करता हूँ।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज।
और उनका काव्य-कौशल।

लेखक — व्या० वा० मुनि श्री मदनलालजी म० के सुशिष्य
प मुनि श्री रामप्रसादजी महाराज

अपने आठ वर्ष के बचपन से ही जिस जन कवि से मेरा परिचय है, वे हैं श्री तिलोकऋषिजी महाराज और वह परिचय भी किसी अन्य माध्यम से नहीं है प्रत्युत उनकी कविता ही उनकी एकमात्र परिचायिका रही है। जिस प्रकार सूर्य अपनी सहस्र-सहस्र किरणों के द्वारा यत्र तत्र सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। उसी प्रकार कवि भी अपनी कविता के द्वारा जन जन में व्याप्त हो जाता है। "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः" के अनुसार कवि वह है जो मनो-वेग से दौड़ लगाता हो जग-जग के प्रत्येक विषय पर परितोभावेन छा जाता हो तथा स्वयं अपनी अस्तित्व का प्रसार करनेवाला हो।

स्थानकवासी समाज में सहस्रों ही नहीं लाखों भक्त जन ऐसे होंगे जिन्हें प्रतिदिन के नित्य-कृत्यों के बीच कविता के माध्यम से प्रस्तुत कवि का पुनीत सम्पर्क प्राप्त होता होगा। पचपद-वंदना लिखकर कवि ने अपना इतना सबल परिचय दिया है कि और कोई परिचय जानने का कौतूहल शेष नहीं रह जाता। उनके सात्विक चरित्र का चित्र न मुझे खींचना है न मैं खींच सकता हूं और न मैं ऐसा करना आवश्यक ही समझता हूं। उसके बाबत तो अभिनन्दन ग्रन्थ के अन्यान्य पृष्ठों पर यत्र तत्र बिखरे विवरणों में स्वतः सुलभ है। पर मुझे उनका आध्यात्मिक जीवन एक विचित्र संवेग से भरा-पूरा सा लगा है। जिसने उन्हें एक प्रकृति सिद्ध कवि का रूप दे डाला है। कवि जो कुछ स्वयं होता है, वही अपनी कृति में प्रतिबिंबित हो जाता है। उर्दू साहित्य के एक तलस्पर्शी लेखक का कहना है कि "खुद मुसब्बिर बोलता है बैठकर तस्वीर में, चित्रकार स्वयं चित्र में बैठकर बोलता है। यह सब मेरे उपर्युक्त कथन का शब्दांतर या अनुवाद मात्र है। प्रस्तुत कवि के काव्य में पद-पद पर वे अनुभूतियां देखने को मिलती हैं, जिनसे हमें यह मानने को बाध्य होना पड़ता है कि वे एक विरक्त रागहीन तथा सहज भाव के संत थे। जीवन की सारी शक्तियाँ मात्र स्व-पर-कल्याण में लगाना ही किसी मानव को महामानव या अतिमानव बना देता है। उनका काव्य-प्रणयन इसी दिशा में हुआ है।

कवि की कसौटी कविता है तथा कविता की कसौटी है उसके उद्देश्य। उद्देश्य क्या हों इस बात पर सभी विचारक एकमत हों, ऐसा नहीं है पाश्चात्य

लेखकों या आलोचकों में से कुछ का कहना है कि Art for Art अर्थात् कला केवल कला के लिए है, पर भारतीय साहित्यकारों ने इस विचार का स्वागत नहीं किया। उनके मतानुसार काव्य, कविता अथवा साहित्य के उद्देश्य आचार्य मम्मट के निम्नोक्त शब्दों में निहित हैं —

काव्य यशसेऽर्थकृते, व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य परनिर्वृतये, कांता-समततयोपदेशयुज ॥१॥

अर्थात् काव्य के उद्देश्य हैं, यश, अर्थलाभ, व्यवहारज्ञान, पापक्षय, स्वपर आनंद तथा माधुर्यपूर्ण उपदेश। इन उद्देश्यों में अर्थलाभ तो जैन साधुओं के लिये अनुद्देश्य ही है। शेष सभी उद्देश्य प्रस्तुत कवि की लेखनी से प्रस्फुटित कविता परिपूर्ण कर रही है। यश की कहानी तो मैं पहले ही कह चुका हूँ। स्व पर आनंद का जहां तक संबध है, वहां कवि श्री जो एक प्रकार के प्रवाह में बहने की दुर्बलता से सदा बचते रहे हैं। क्यों कि कविता के क्षेत्र में स्वपर आनंद के नाम पर कुत्सित तथा अमर्याद अश्लीलता की एक बाढ़सी आती रही है। जिसे देखकर दुःखितमना उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर मौलाना हाली को कहना पड़ा कि "गुनाहगार वाँ छूट जायेंगे सारे जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे" अर्थात् कविता के साथ दुर्विचारों का विष भर कर जो अन्याय कवियों के हाथों हुआ है, उसे मौलाना अत्यंत घृणित दृष्टि से देखते हैं।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज सदा इस बाढ़ से बचकर रहे हैं। उन्होंने जो कुछ लिखा, उसमें स्व-पर आनंद तो था ही, पर साथ २ "शिवेतर क्षतये" का भी उस में पूरा पूरा ध्यान रखा गया है। मैं तो यहां तक कह सकता हूँ कि उनका काव्य भक्ति-काव्य की सुदीर्घ परंपरा में कलश चढ़ाने के समान रहा है। भले ही जैन कवि होने के कारण हिंदी साहित्य समीक्षकों ने इस ओर ध्यान न दिया हो। पर इस से उनका काव्य महत्व-हीन नहीं हो जाता। उनके रचना-कौशल को देखकर कोई भी सहृदय कवि उल्लसित हुए बिना न रहेगा। एक दो नमूने देखिये —

यह संसार स्वपन सो है जन, जैसो है बीजलीरो झबकारो।
जीरन पत्र कान गजको फुनि, बादल छाय संध्यासे उजारो॥
इंद्र-धनुष्य ध्वजा जिम चंचल, अंबूको लेर प्रपोट विचारो।
कहत तिलोक यो रीत खलक की, धार सुपंथ को आतम तारो॥१॥

वैराग्य भावना से ओत-प्रोत इस पद्य में कितनी स्वाभाविकता तथा सम-रसता है। इसी प्रकार एकत्व-भावना का विश्लेषण करते हुए कवि कहते हैं कि

एकलो ही आयो अरु एकलो ही जासी जीव,
आयो मुट्ठी बांध के पसारे हाथ जायगो।
महल अटारी पट सारी तात मात नारी
धन धान आदि कछु साथ नहीं आयगो ॥
स्वारथ सगाई जग बल समय कौन तेरो
धरम आराध भाई सकट पुलायगो।
भावना एकत्व ऐसी भाई नमिराज ऋषि
कहत तिलोक भावे सो ही सुख पायगो ॥

इस प्रकार की कविताओ से जो भाव विशुद्धि होती है उसी से चितवर—क्षतय अर्थात पापोका क्षय हो सकता है और बड़े २ कवियों की कविता में यह उद्देश्य तिरोहित सा ही दिखता है। कला की दृष्टि से भी हमारे कवि पीछे नहीं रहे हैं। अभिव्यक्ति कला के साथ साथ उनका रचना कौशल भी द्रष्टव्य है। प्रस्तुत काव्यकी अनुप्रास छटा तो देखिये

तीन लोक इन्द्र तुम्ही अर्हमिन्द्र जगदीश
सिव सुख कंद अरविंद के समान हो।
शीतल जो चंद पुण्य सदन् सुगंध स्वास
त्रिशला के नंद चंद आनंद के स्थान हो ॥
छोड सब छंद फंद करम निकंद किये
वंदत नरेंद्र सुर इन्द्र जग भान हो।
मे तो मतिमंद पर छंद माही बंध रह्यो।
तिलोक जो अखिल अमरंद भगवान हो ॥

कवि तथा कविता दोनों की महानता इन पद्यो से स्पष्ट हो रही है। जैन शास्त्रों में धर्म प्रभावना के कई प्रकार है। उन में कविता भी एक है अर्थात् धार्मिक प्रेरणा देनवाली कविता लिखकर कोई साधक साधक होने के साथ साथ प्रभावक भी हो सकता है। जिस प्रभावना के द्वारा परोत्कर्ष की तरह आत्मोत्कर्ष भी पूर्णरूपेण सध सकता है। इस प्रकार कविता के सर्वोच्च उद्देश्य की सिद्धि करने वाले संयमी कवि के बारे में आज जो अभिनंदन ग्रंथ उपनिबद्ध किया जा रहा है यह एक अभिनंदनीय कार्य है। हम इस की हृदय से सफलता चाहते है।

जीवन के कलाकार की स्मृति में

पं श्री नगीनचंद्रजी म० श्री विनयचंद्रजी म०

सत, जीवन का सच्चा कलाकार है। जीवन और जगत् को परखने की उसके पास नई दृष्टि है। दुनिया में जो अशिव है कुरूप है, उसे मिटाकर उसमें शिवत्व स्थापित करना, संत का काम है। वह भविष्य-द्रष्टा है। मानव के अन्दर जो शिवत्व सोया पड़ा है, सत की अतर्दृष्टि उसे देखती है। बाहर की कुरूपता की अवहेलना कर वह उसके शिवत्व को जगाता है। इस लिए सत सच्चे अर्थों में युगद्रष्टा और युग-निर्माता होता है।

विद्वद्रत्न, कवि श्री तिलोक ऋषिजी म० भी एक प्रतिभावान् सत थे। उनमें जीवन और जगत् को परखने की क्षमता थी। एक सच्चे श्रमणोचित तप और त्याग की आप प्रतिमूर्ति थे। आज उस महापुरुष को दीक्षा लिए शताब्दी पूरी हो रही है, इस लिये उपाध्याय प० श्री आनद ऋषिजी म० के तत्त्वधान में ऋषीश्वर का स्मृति-ग्रथ प्रकाशित हो रहा है। यह प्रयत्न सुन्दर है। किंतु कोई भी महापुरुष स्मृति-ग्रथो पर जीवित नही रहते, उनके कार्य स्वय स्मृति-ग्रथ है।

हम देखते है, ऋषीश्वर की प्रतिभा आज जीवित है। आप की काव्यशक्ति आज भी जनता के कठ में बसी हुई है और इसी लिए भावुक श्रावक-गण प्रति-क्रमण के समय पच पदो की वन्दना मे ऋषीश्वर द्वारा निर्मित स्तुतिपरक काव्यो का पाठ प्रतिदिन करते है। सभी स्तुति करने वाले पाच पदो की स्तुति में भीग उठते है, यह उनकी प्रतिभा का परिचायक है।

शताब्दी गुजरी, पर जनता ऋषीश्वर को भूल न सकी। प्रतिदिन स्तुति करते समय उस महापुरुष को भी स्मृति-पथ में ले आती है।

इसके अतिरिक्त ऋषीश्वर द्वारा निर्मित चित्रकाव्य शीलरथ, ज्ञान कुजर आदि उनकी प्रतिभा का परिचय देते है। ऐसे प्रतिभाशाली महापुरुष की शताब्दी-स्मृति में मैं भी अपनी श्रद्धाजली अर्पित करताहूँ।

शास्त्रज्ञ, तिथि-निर्णायक समिति के सदस्य वयोवृद्ध प० रत्न मुनि श्री कस्तूरचदजी म०

पिबंति नद्यः स्वयमेव नाम्भः, स्वयं न खादंति फलानि वृक्षाः।
नादंति शस्यं खलुवारिवाहा परोपकाराय सतां विभूतयः।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज का जन्म सवत् १९०४ चैत्र कृष्ण ३ को रतलाम में हुआ था। आपकी शुरू से ही धर्म की प्रबल भावना थी।

आपकी मातुश्री नानूबाई का लक्ष्य भी इस तरफ था। मातुश्री की दीक्षा लेने की भावना होने पर आपने तथा आपकी भगिनी हीराबाई ने एवं आपके ज्येष्ठ बंधु श्री कुवरमलजी ने भी संवत् १९१४ माघ कृष्ण प्रतिपदा के रोज प० रत्न स्वामीजी श्री अयवंताऋषिजी म० के समीप रतलाम में दीक्षा अंगीकार की। आपश्री प्रखर बुद्धिमान् थे। अठारह वर्ष की उम्रमें आपश्री शास्त्र–पारंगत हो गये थे। आप अक्षर चित्रकारी कला में पूर्ण निपुण थे। ग्राम ग्राम में विहार एवं चातुर्मास करके जनता को सद्धर्म का मार्ग दिखाया और अच्छी तरह जैनधर्म का प्रचार किया। आपकी विद्वत्ता एवं कवित्वशक्ति अनोखी थी। आपके बनाए हुए कितने ही ग्रन्थ समाज के लिए एक निधि के रूप में मौजूद हैं। प्रतिक्रमणसूत्र में आपके छंद (काव्य) नित्य चिंतन मनन में आते हैं।

आपका संवत १९४० श्रावण कृष्ण द्वितीया के रोज अहमदनगर में स्वर्गवास होने से समाज को बडी भारी क्षति पहुंची। ऐसे आदर्श त्यागी पूज्यपाद मुनिराज की दीक्षा शताब्दी पर मैं श्रद्धांजली अर्पित करता हूं और समस्त संघ से निवेदन करता हूं कि पूज्यपाद महाराज के बताये हुए सच्चे रास्ते पर चलकर धर्मोद्योत करें। पूज्य श्री हुकमचंदजी म० के तत्कालीन पट्टधर पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज ने भी अपने मुख से आपकी बहुत तारीफ की थी।

॥ ऋषिपुंगव ॥

गुरुदेवस्याज्ञया रचयिता जैन मुनि वल्लभेंदु प्राज्ञ किंकर.

श्री— ऋषिसंप्रदाये'स्मिन संजाता बहवोबुधाः
तेषु सुप्रसिद्धोऽभूदयवन्ताऋषिपुंगवः ॥

त्रि— लोकस्तस्य चवासीत् सुशिष्यो भव्यवल्लभः ।
लो—— क बाल्यवयस्येव त्यक्त्वा सुश्रमणोऽभवत् ॥
क—— विश्रेष्ठ पुनश्चित्रे चित्रकोत्तमलेखकः ।
कोविदः सर्वशास्त्रेषु त्रिलोको ऋषिवल्लभः ॥

ऋषि— सर्वगुणयुक्तो, नास्ति सप्रति सन्मुखे ।
जी—वितस्सोऽपि देहेन यशसा विद्यते भुवि ॥

त्रिलोकर्पितं ज्ञानं लभेयुरिति कामये।
एतच्छ्रद्धांजली भक्त्या समर्पयामि नम्रतः ॥

शम भवतु ।

बिंदु में सिंधु

प मुनि श्री हस्तिमलजी महाराज, कनकपुर

गु— ल ज्यों लुटाई गंध,
ण— गरी रतनपुरी ।
सा— ता युगमें पितु–मा,
गा— थं गाता ज्ञानसे ।
र— जत सम उज्ज्वल,
पू— ण्य आपका असंख्य,
ज— स फैला चहुँ दिशि,
पा— ली वृत्ति ध्यानसे ॥
व— क्षिणी समाज पर,
श्री— मान्का उपकार,
ति— रण साधन खूब,
लो— लाभ अवालमे ।
क— यें कहांतक "हस्ती"
ऋ— णी हूं जैन समाज,
षि— ण भी न भूल सके,
जी— त होगा गानमे ॥१॥

जय तेजस्वी तिलोक

रचयिता–श्री उमेश मुनिजी म॰ "अणु"

महि-मण्डलमें पावन, भारत के मानस–सा मालव प्रान्त,
धर्म-धाम था रतलाम कभी, नर-पुंगव क्रीडा–स्थल कान्त ।
जिसकी गलियों में खेला था, किलक तिलोक चंद्र शिशु शान्त,
अयवन्ताऋषि से सुनवाणी, वही हुये थे लघुऋषि दान्त ॥१॥

नानू मां हो शिव-अभिलाषी, साथ हुई पुत्री तज सदन,
छोड सगाई कटि बांधी जब–'तिलोक' ने विलम उठा बचपन ।
मध्यम भ्राता कुँवरमल्ल भी, आमन्त्रित–से झट करे गमन,
वेद चन्द्र निधि भू हायनमें, माघ कृष्णा प्रतिपद् दुःखदमन ॥२॥

बालकऋषि थे आगम–धुनमें, सतरह सूत्र किये कण्ठस्थ,
अर्थ रमा रग–रगमें जिनके, सुंदर भाव हुए अंतस्थ ।
कायोत्सर्ग स्थित हो त्रिकालमें, दो घटिका तक अंतर्लीन,
प्राप्त ज्ञानमें रमते मुनिवर, ज्यों गज कज वन में तल्लीन" ॥३॥

उनके कवि ने ली अंगडाई, शुभ मन का करने सन्धान,
मत लेखनी कर पकडाई करके उत्तम भाव–विधान ।
सर्जन–लेखन–चित्रण को कर, निज साधन का सुंदर दोल,
आत्म–रमण में झूला करते, होकर नव–नव हर्ष–विभोर ॥४॥

तप–संयम से भावित आतम अभय लांघते विपिन पहाड़,
विचरे विस्तृत भूपर दक्षिण, मारवाड़ मालव मेवाड़ ।
अमृत सी मधु-वाणी सुनकर नाचे जन–जनके मन मोर
गाव–गाव में नगर–नगर में लाते थे शुभ भाव–हिलोर ॥५॥
रेखराज ज्ञानचंद्र 'मोखम छगन' 'उदय' पूज्यों का प्यार
विचरण करते दर्शन करके पाया उनसे मोद अपार ।
पूज्य–भक्ति में, शिष्य–प्रीति में परम कुशल थे बड़े उदार
ज्ञानी, ध्यानी शिक्षा-दानी, मौनी का था जीवन-सार ॥६॥
गगन वेद निधि शशि सम्वतमें पाया अशुभ स्वप्न–संकेत
'वांबोरी' से चले नगर को पथ में रमते ध्यान–निकेत ।
शिरो–वेदना प्रगटी न मिटी हाय ! विध चले पावन प्राण
बुझा दीप कर अक्षर ज्योतित करने पूर्ण अनंत प्रयाण ॥७॥
जय जय ऋषिवर ज्योति–घन ! जिन श्रुत के नव ओक !
जिनवर–पथ–प्रकाशकर ! कवि–कुल–तिलक तिलोक ॥८॥

श्रद्धा–सुमन–सप्तक

मुनिश्रीछगनलालजी सुशिष्य मुनि रूपचन्द्र जैन

दोहा

सम्यक शासक ज्ञान के, लभ्य परम प्रतिबोध ।
सुगतदेव आज्ञा व्रती, तिलोकऋषि अविरोध ॥ १ ॥

छप्पय

श्री–श्रुतदर्शनज्ञान भान सो प्रकाश्यो भारी ।
ति–रस्कार ना उर मान कविकुल–भूषण बहारी ॥
लो–मित सुगत पथ-कस व कवित कला के ।
क–र पट्ट पै कमनीय-सदन थ सुमत शलाके ॥
ऋ–म पदेसुय चूनाथवा रूप चूप उर ठान वर ।
षि–म हर ना जग दिया दियो लाभ भल ऋषिवर ॥२॥

मनहर छंद

ईश अवराधक जू साधक सुसत्यता के,
बाधक असत्यबोध-मादक महान् के ।
विद्या अनुरागी ठागी भेद-भाव त्यागी ऐसे,
विज्ञ बडभागी जो विरागी मिथ्या ज्ञान के ।।
सुधारु सुचारु रति देश प्रति गति मति,
अति दत्त-चित्त हित-चिंतक जहान के ।
कविकुल-कमल-अमल ग्रंथ रचकर,
रवि रूप बन ऋषि गये सुर धाम के ।। ३ ।।

दोहा

गच्छ स्वच्छ 'लव' ऋषिजी को, तिन में तिलक समान ।
उपाध्याय आनन्द का दादागुरु दिल ठान ।। ४ ।।
भू-आपे तिय-माल-भल-वर शोभा को धाम ।
'रूप' रटो भल भाव से, नामी जग वो नाम ।। ५ ।।
जन्म चार-चवदे सयम, स्वर्गरोह चालीस ।
तरुणपने ही तिर गये, सरब आयु छत्तीस ।। ६ ।।
उपाध्याय आनदऋषि, ग्रथ रच्यो अभिनद ।
श्रद्धा सुमन सप्तक जडू, आनी मन आनद ।। ७ ।।

(३)

जिन आगम को अति-जटिल *चतुरनुयोग विचार।
कर्यो सरल कविता करी, धन तिलोक अनगार ॥

(४)

श्वेत पीत दिक्पट नमहि जन तिलोक कहाय।
ऋषि तिलोक कविता वसी, सब ही के मुख माय ॥

(५)

गुण ठाण छट्ठे कियो, यदपि आप रहवास।
तो भी नहीं आन दियो प्रमाद न निजपास ॥

(६)

लेखन कथन पाठन पठन कर्यो अप्रतिम आप।
दे प्रतिबोध साधू-सती प्रगट तास प्रताप ॥

(७)

दीक्षा वय* छवीस में †छवीस सो शुभ काम।
साधि समय की सफलता, कियो अर्थयुत नाम ॥

(८)

भक्तों को अच्छे लगे, हर समय ही आप।
स्वर्णिम मलय बधाइ दे धमप्रेम प्रताप ॥

(९)

उगणीसे नौके जनम, चालीसे दिविवास।
रहे आप छतीस ईसम संसार से उदास ॥

(१०)

अहमदनगर श्रावण असित वार रवि तिथि बीज।
तन औदारिक तजकरी, अमर देह की रीझ ॥

(११)

अति भुवन त्रलोक्य को उनयों रतन एवेस।
आनंद करे अहर्निश जो ध्रमु करे प्रशस ॥

---

*द्रव्यानयोग चरण करणानुयोग धर्मकथानुयोग गणितानुयोग ये चारो अनुयोग
† छवीस वर्ष दीक्षा पाली १ सम=बराबर अर्थात ६ के अंक जैसे। सम= वर्ष [illegible] जिये।

(१२)
उपाध्याय आनद की, शिरोधार्य कर आण ।
परिचय पूर्व प्रमाण बलि, दो हजार सतराण ॥
(१३)
अमरावती चौमास में, स्वामि "चाद सुपसाय ।
रची "तिलोक त्रयोदशी" श्रमण "लाल" मुखपाय ॥

श्रमण-सस्कृति का सजग नेता

□ श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री, "साहित्य रत्न"

श्रमण सस्कृति त्याग, वैराग्य और तपप्रधान है। जो विकारो का विनाश कर विचारो का विकास करती है, राग को नष्ट कर त्याग को बढाती है, विकृति को हटाकर सस्कृति को उद्बुद्ध करती है। इस सस्कृति के मूल में भोग नही योग है, राग नही त्याग है, ममता नही समता है, वासना नही साधना है, भौतिकता नही आध्यात्मिकता है। जिन सत सत्पुरुषो ने इस महान् संस्कृति की संरक्षा की है, उनमें प्रतिभामूर्ति पडित प्रवर श्री तिलोक ऋषिजी म का नाम अत्यत निष्ठा के साथ लिया जाता है। यह एक ऐसी तेजस्वी मूर्ति थी, जिसे भुलाने पर भी भुलाया नही जा सकता।

जिनके जीवन के कण-कण में मन के अणु-अणु मे ऋजुता और निष्कपटता थी। ज्ञान और कृति मे आचार और विचार में द्वैत नही था। जो भी था, सहज था, स्पष्ट था। गीर्वाण-गिरा के यशस्वी कवि ने महात्मा का परिचय देते हुए क्या ही सुदर कहा है –

"मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्" पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म का जीवन एक सच्चे महात्मा का जीवन था। जहा न छल न था, न कपट था, न माया था और न किसी प्रकार का दुराव छुपाव ही था। उनमें ज्ञान था, पर ज्ञानका अहकार नही था। त्याग था, पर त्याग का दर्प नहीं था।

बाल्यावस्था मे ही जिस अतर्मन में त्याग और वैराग्य की एक लहर जगी और उस वैराग्य-रस मे आप्लावित तन-मन को लेकर सद्गुरुवर्य के चरणार-विदो में पहुचे और आगार ने अनगार बनाने की प्रार्थना की मनो-भावो के सुदर चितेरे मन ने कहा-वत्स! अनगार बनना हँसी का खेल नही है, यह असिधारा

पर चलना ह । बलत अवार्गों पर बढना ह और अभी तुम कुसुम से कोमल हो । पर बालक का वराग्य रग कच्चा नहीं था सच्चा था । वह साधना की शूलों से भयभीत होनेवाला नहीं था । गुरुदेव ने परीक्षा की कसौटी पर कसने के पश्चात जैनन्द्री दीक्षा दी ।

योग्य गुरु के योग्य शिष्य ने जनागमो का गहरा अध्ययन प्रारभ किया और अल्प काल में ही अध्ययनशील वत्ति स गभीर अध्ययन कर अपनी प्रतापपूर्ण प्रतिभा का परिचय दिया ।

साधना क कठोर मागपर बढने के पश्चात अनेक विघ्न आम बाधाए आइ अवानी का तूफान आया पर जिनका जीवन विघ्न और बाधाओं से घबराया नहीं भयभीत नहीं हुआ विचलित नही हुआ किंतु एक वीर सनिक की भाँति निरतर आग बढता रहा । अपन लक्ष्य की ओर चल चलो यही जीवन का मूल मत्र था ।

काव्य कला के प्रति उनकी स्वाभाविक अभिरुचि थी । जिससे उन्होंने अनेक काव्यग्रथों का प्रणयन किया । जिसमें शातरस की शीतल मदाकिनी प्रवाहित हा रही ह । भावुक भक्त आज भी अवगाहन कर बाग-बाग हो जाते ह । पच पर-मेष्ठि पदोपर निर्मित कविता इतने अधिक लोकप्रिय बन ग कि उन्होंन प्रति श्रमण में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया ह ।

भाषण-कला व चित्रकला में भी आपन अत्यत निपुणता प्राप्त को थी । अपन ओजस्वी और तजस्वी भाषणो के बलपर महाराष्ट्र में जन सस्कृति का महान प्रचार किया । आज महाराष्ट्र म जो श्रमण सस्कृति की ज्योति जग-मगा रही ह उस में आपन जो सहयोग दिया वह विस्मत नही किया जा सकता उपाध्याय पडित प्रवर श्रद्धय श्री आनदऋषिजी म की प्ररणा न उस सत रत्न के चरणकमलो म श्रम क पुष्प समर्पित करन का जो आयोजन किया ह वह व्यक्ति-पूजा का नहीं अपितु गुण-पूजा का प्रतीक ह । गुणों के उत्कीर्तन स स्वय का जीवन भी विराट बनता ह । जीवन महान् बने और इस महापुरुष से प्ररणा लेकर सयम साधना में अग्रसर हो इसी भव्य भावना के साथ म श्रद्धा के सुमन समर्पित करता हूं ।

आदर्श जीवन-दर्शन

"प मुनि श्री भानुऋषिजी म० जन सिद्धान्ताचार्य

प्रकृति के नियम के अनुसार समय समय पर इस जगती-तल पर अनक ऐसे महापुरुषों का प्रादुर्भाव हुआ जो अपनी प्रतिभा के प्रताप तथा चित्त और चरित्र की देवोपम चमत्कृतियों से ससार को आश्चर्यान्वित करत हुए उसके पाप

और तापो का समूल नाश कर ससारी विषयासक्त जीवो के कल्याण की स्थापना में दत्त-चित्त होते रहे हैं वे अपनी सत्यनिष्ठा, आदर्श-चारित्र्य, दूरदर्शिता, इन्द्रिय-निग्रहता, धार्मिकता आदि स्वर्गोपम गुणो से मण्डित हो जिस देश, काल और समाज में उत्पन्न होते है,उसे प्रशस्त तथा परिमार्जित कर जाते हैं। हमारे चरित-नायक पूज्यपाद कविकुल–भूषण श्री तिलोकऋषिजी म० सा भी ऐसे ही एक अद्वितीय पुरुष थे।

आपश्री के जीवन का सर्वोत्तम और अधिकाश मार्ग अहिंसा, निर्वाण और वासना–हनन की उलझनो को सुलझाने तथा उनका दक्षिण देश में प्रचार करने मे बीता था। दक्षिण देश में सर्वप्रथम आपश्री का पदार्पण हुआ था। यहा यह कहने की आवश्यकता नही कि आपश्री जी ने जहाँ कही अपने चरण रखे हैं, वहाँ के प्राय सभी नर-नारियो ने आपके सदुपदेशो से लाभान्वित हो कर दुःख-दर्दो में सदैव शान्ति का अनुभव किया है।

बस! ऐसे ही आपके अनेक गुणो से मुग्ध होकर और यह सोच कर कि ऐसे महामुनि की जीवनी यदि जनता के कर-कमलो मे पहुँचे तो धार्मिकता के साथ देश का उत्थान भी हो सकता है।

पूज्यपाद कविकुलभूषण श्री तिलोकऋषिजी म० सा का जन्म रतलाम शहर में स १९०४ चैत्र वदि ३ बुधवार को हुआ था। सचमुच रत्नपुरी में आप एक अलौकिक रत्नरूप में पैदा हुए। आप ओसवालवंशीय, सुराणागोत्रीय थे। आप के पिता श्री का नाम श्री दुलीचदजी एव माता श्री का नाम श्री नानूबाई था। १० वर्ष की अल्पायु में सवत् १९१४ को आपने रत्नत्रय को ग्रहण किया। पूज्यपाद अनेक गुणालंकृत श्री अयवताऋषिजी म० सा के सुशिष्य बने।

आपश्री ने तपोबल से अल्पावस्था में दिव्य ज्ञान उपार्जन कर लिया था। आपश्री के अन्दर बड़ी जबरदस्त कवित्व–शक्ति थी। आशुकवि के नाम से वे प्रसिद्ध थे। आपने अनेक सवैयो की रचना की है। समस्त स्था जैन समाज में बिना भेद-भाव से आपके द्वारा रचित प्रतिक्रमण के सवैये बोले जाते हैं।

आपश्री की चित्रकला को देखकर आर्टिस्ट भी चकित हो जाते हैं। ये प्रसिद्ध चित्र हैं:—(१) शीलरथ (२) ज्ञानकुजर (३) चित्रालकार काव्य। इनमे आपने सूक्ष्म चित्रकारी का काम किया है।

आपश्री ने सतत शुभ प्रवृत्ति में संलग्न रहकर अपना जीवन सार्थक बना लिया और ससार में सुयश की सुगन्धी फैला दी। दीक्षा–पर्याय में सयममय प्रवृत्तियो की अच्छी तरह से आराधना की। धन्य है उन के संयममय जीवन को।

स्वर्गस्थ आत्मा को शान्ति मिले यही श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

—ज्ञान की महत्ता—

मुनि श्री कल्याणऋषिजी महाराज सिद्धांत (नासिक)

आहार–निद्रा–भय–मैथुनं च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

यह "श्लोक" काफी प्रसिद्ध है और अर्थ भी इसका इतना स्पष्ट है कि लिखने की आवश्यकता नहीं। इसमें बताया गया है कि पशु और मनुष्यों में कोई खास अन्तर नहीं है। क्यों कि पशु और मनुष्य दोनों की आहार भय मैथुन आदि सहज प्रवृत्तियाँ एक समान होती है। हाँ मनुष्य में पशु की अपेक्षा धर्म विशेष होता है। इसलिए शास्त्रकारों की दृष्टि से धर्म विहीन मनुष्य पशु के ही समान है। इस श्लोक द्वारा महाकवि भर्तृहरि ने मनुष्यों को धार्मिक बनने की प्रेरणा दी है। फिर भी जब धर्म की दृष्टि से विचार कर देखा जाय तो धर्म के साथ मनुष्य में एक विशेषता और रहती है वह है उसका विवेकयुक्त ज्ञान। यहाँ यह खुलासा कर देना जरूरी है कि 'ज्ञान' शब्द से मेरा आशय है—विचारशक्ति अथवा तर्क।

भगवान महावीर ने—

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं ॥

इस गाथा के द्वारा जो मोक्ष के चार मार्ग बताये हैं, उनमें ज्ञान को ही सब से पहले गिनाया है। जीवन में ज्ञान का ठीक उतना ही महत्त्व है जितना शरीर में आँखों का। ज्ञान के साथ आचरण भी आवश्यक है। ज्ञान के बिना आचरण करनेवाला पछताता है। भगवान महावीर ने भी साधकों के लिए स्पष्ट रूप से यह घोषणा कर दी है—

नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ॥

—उत्तराध्ययन २८।३०

ज्ञान के बिना चरित्र के गुण नहीं हो सकते अर्थात् आचरण का फल प्राप्त नहीं हो सकता। ज्ञान के बिना होनेवाला आचरण अंधानुकरण मात्र है। दश-वैकालिक सूत्र में कहा गया है—

"पढम नाणं तओ दया ॥" दशवै० ४।१०

पहले ज्ञान चाहिए, फिर दया। पहले सत्य चाहिये, फिर अहिंसा। पहले तर्क चाहिये, फिर श्रद्धा। पहले विचार चाहिये, फिर आचार।

उत्तम विचारों की जानकारी हमें शास्त्रों में ही हो सकती है। जैसा कि कहा गया है —

"तम्हा सुयमहिट्ठिज्जा, उत्तमट्ठगवेसए ॥" —उत्तरा० ११।३२

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय स्व. श्री तिलोकऋषिजी महाराज ने दीक्षा के बाद कुछ ही समय में सत्तरह सूत्र कण्ठस्थ कर लिये थे। दीक्षा भी आपने ९ वर्ष १० मास की छोटी-सी अवस्था में ग्रहण कर ली थी। बचपन से ही आपकी ज्ञान की आराधना के प्रति रुचि थी।

शास्त्रों के अध्ययन-मनन और चिन्तन के द्वारा आपने जो कुछ लोकोपयोगी अथवा जीवनोपयोगी ज्ञान प्राप्त किया, उसे साहित्य-रचना के द्वारा जन समाज में वितरित करते रहे। आपने अनेक रसपूर्ण चरित्र और काव्य ग्रन्थ लिखे थे। आपके द्वारा विरचित "श्रेणिक-चरित्र" सबसे विशाल ग्रन्थ है, जो ८८ ढालों अर्थात ३२५० गाथाओं में लिखा गया है।

प्रतिक्रमण में पाँच पदों की भाव-वन्दना के अन्तर्गत "कहत तिलोकरिख" इस छाप में जो छन्द बोले जाते हैं, वे आप ही के रचे हुए हैं, इसलिए आपका नाम स्थानकवासी जैन समाज के प्रायः सभी श्रावक-श्राविकाओं की जिह्वा पर नाचा करता है।

ऐसे परम उपकारी की पुण्यस्मृति में जिस "तिलोक शताब्दी महोत्सव" का आयोजन किया जा रहा है और "अभिनन्दन ग्रन्थ" तैयार कर के जनता के हाथों में सौंपा जा रहा है, वह इसलिए कि उनके जीवन से सब लोग ज्ञानाराधना की प्रेरणा प्राप्त करें। जैसे उन्हों ने शास्त्रों का अध्ययन-मनन कर के अपने जीवन को समुन्नत और यशस्वी बनाया था, वैसे ही हम लोग भी शास्त्रों का अध्ययन-मनन कर के अपने जीवन को समुन्नत बनाने की कोशिश करें।

इस पवित्र आयोजन के उपलक्ष में आयोजन-कर्ताओं को धन्यवाद दे कर मैं पूज्यपाद ऋषिराज के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजली समर्पित कर आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ, इसे मेरा अन्तःकरण ही जान सकता है।

जहां तक मै समझता हू 'तिलोक शताब्दी महोत्सव' के इस विराट आयोजन का एक ही लक्ष्य है—पशुओं की अपेक्षा मनुष्य मे जो विशेषता है, उसकी प्राप्ति ! दूसरे शब्दों मे ज्ञान की जो महत्ता है उसकी स्वीकृति ।

— तिलोक गुरु-गीता —

प० मुनि श्री हरिऋषिजी महाराज

(तर्ज—मन डोले मेरा तन डोले)

सुन श्रोता गुरु गुण-गीता' तुम गावो सब नर नार रे ॥
यह मन की बाजे बाँसुरियाँ ॥टेर॥

दुलाचंद के नन्द दुलारे नानु माँ के प्यारे गुरुजी
तिलोक ऋषिजी नाम तुम्हारा पूज्य पाद हमारे गुरुजी
गुरु ज्ञानी आतम ध्यानी, करते पर उपकार रे ॥१॥ यह

जगत मोहिनी कनक कामिनी तजकर सयम धारे 'गुरुजी
सिंह वृत्ति से पच महाव्रत, निर्मल पालन हारे गुरुजी
तीनों गुप्ति पाँचों समिति जीवन का ह सार रे ॥२॥ यह

मालव प्रांत से विचरत आय दक्षिण देश सिधारे 'गुरुजी
नगर पूना और घोडनदी के तार दिए जन सारे 'गुरुने
भया प्यारी सबकी तारी, जो आया शरण मझार रे ॥३॥ यह

घोडनदी में रतनचंद औ रामकुँवर को तारी ' गुरुने
माँ बेटी और पिता पुत्र ये चारों दीक्षा धारी गुरुसे
ममता त्यागी महा वैरागी भय तीर सभी ससार रे ॥४॥ यह

चित्रालकार कला तुम्हारी ज्ञान कुजर थी भारी गुरुकी
कवि कुल भूषण शुद्धाचारी अनत महिमा धारी 'गुरुजी
पंडित ज्ञानी तप जप करनी ऋषि-कुल के हृ शृंगार रे ॥५॥ यह

सूर्य जसा प्रखर तेजस्वी शीतल जसा चदा गुरुजी
मिथ्या तिमिर को दूर नशाया काटा भव भव फन्दा 'गुरुने
नर नारी समकितधारी सब करते जय जयकार रे ॥६॥ यह

चौदह्नी भर जगह में केवल, पैंसठ हाथी निकाले "गुरुने
श्लोक सात सौ एक पत्र में, उन को भी लिख डाले "गुरुने
अष्टो धानी युगपद ज्ञानी, महाकला भंडार रे ॥७॥
भेद विज्ञान के ज्ञाता गुरुवर, देही व देह पिछाने "गुरुजी
कथनी करनी एक समानी, ज्ञानक्रिया सम ठानें गुरुजी
सम्यक् ज्ञानी सम्यक् करनी, करते हैं हुरवार रे ॥८॥
सर्व कला में धर्म कला यह, प्रभुने श्रेष्ठ बताई "गुरुवर
नर देह का सार समझ यह, मन वच तन अपनाई "गुरुने
सिंह-सम गाजे पाखंड लाजे, तप त्याग लखी अणगार रे ॥९॥
संवत् उन्नीसे चालीस का था, नगर चौमासा ठाया "गुरुने
पूज्यपादने धर्म-ध्यान का, खूब ही ठाठ लगाया "गुरुने
श्रावण आया स्वर्ग सिधाया, ये भक्त गले का हार रे ॥१०॥
प्रशिष्य का मैं दयालु, अल्पबुद्धि गुण गाया "गुरुका
गुरु-प्रेरना कृपा समझकर, दिल में आनन्द छाया, गुरुजी
मन हर्षाया हृदय उमाया, जाय हरिऋषि बलिहार रे ॥११॥

दीप्तिमान जैन भास्कर

शास्त्रज्ञ पं मुनि श्री अम्बालालजी म०

विक्रमाब्द की १९ वी शताब्दी के दीप्तिमान जैन भास्करों की जब गणना की जायगी, तब महामना श्री तिलोकऋषि जी महाराज का नाम भी सादर ग्रहण किया जायगा। उसके बिना वह गणना अधूरी ही रहेगी, यह मेरा दृढ मन्तव्य है।

शैशवावस्था में जब विश्व के शिशु अपनी वात्सल्यमयी माताओं से विविध प्रकार के खिलौने, सुस्वादिष्ट भोजन, रम्य वस्त्र और मनोरमालंकार की याचना करते हुए पाये जाते हैं। वहाँ शैशव काल में ही इस वैराग्यवती रतलाम निवासी दुलीचन्द के नन्दन ने, नानूदेवी के लाडले लाला ने अपनी पूज्या जननी से संसार से उपरत होकर आत्म-साधना के पथ का पथिक बनने की अभ्यर्थना की और अन्त में इस महापुरुष ने उस समय के उत्कृष्ट सन्त श्री अयवन्ता ऋषि जी महाराज के सान्निध्य में भागवती दीक्षा स्वीकार करके अष्टमास अन्त रनातर्गन अबवन्त मुनि की दीक्षा का साक्षात् सदुदाहरण संसार के सामने प्रस्तुत कर दिखाया।

शिवमार्ग के पथिकों का अनिवार्य कर्त्तव्य है "ज्ञानार्जन करते हुए निर-तिचार रूप से सदाचार का सतत पालन करना" इस महामहिम मुनिपुंगव ने इन दोनों शर्तों का परिवहन ठीक ठीक अपने जीवन में कर दिखलाया।

ज्ञानार्जन के रूप में आपने अनुमानतः १० शास्त्र कण्ठस्थ किये थे। श्रोत समुदाय के बीच में जब आप की मधुरलय-समन्वित कोकिल स्वर लहरी का गुंजन होता था तब वह स्वर-लहरी केवल जनमन को आह्लादित करने तक ही सीमित नहीं रहती थी किन्तु जन-समुदाय को, धार्मिक व्यवहारों को अपनाने के लिए भी अबाध्यरूप से बाध्य करने की क्षमता रखती थी।

केवल वाणी द्वारा ही वे जन-कल्याणकर उपरत न होगये वरन् सुन्दरतम शुद्ध साहित्य भी अपनी लेखनी द्वारा लिखकर उन्होंने जनता को दिया है जो आज भी प्रकाशित और अप्रकाशित रूप में उपलब्ध हो रहा है। इनके द्वारा निर्मित साहित्य अधिकतर पद्यमय है। इस मौलिक साहित्य को समाज ने सद्भाव से अपनाया है।

समाज का मन्द भाग्य कहूं या दुर्भाग्य कहूं, जो कि जैन समाज के ज्योतिर्मान सुनक्षत्र अधिक समय तक इस भौतिक शरीर में नहीं रह पाये और ३६ वर्ष की अल्पवय में ही स्वर्ग सिधार गये।

यदि यह मनस्वी मुनी सन्त-सम्राट समाज में अधिक दिन रह पाता तो देश में शान्ति की नैतिकता की सत्य की और धर्म की सलिलाएँ बहा देता जिसकी कि आज पूर्ण आवश्यकता समझी जारही है।

अन्त में मैं उस परम पुनीत आत्मा का सादर अभिनन्दन करता हुआ कामना करता हूं कि ऐसी भव्य विभूतियां समाज में प्रतिदिन समुत्पन्न होकर जैन धर्म की शुभ्र ज्योति को संसार में प्रसारित करती रहें।

उज्ज्वल ज्योति

पं० मुनि श्री तिलोक मुनि महाराज

जीवन-चरित्र भी साहित्य का एक साकार व जीवित रूप है। उसके अध्ययन से चरित्र नायक के व्यक्तित्व का सुन्दर ढंग से परिचय मिलता है। उनके सद्विचारों तथा निर्मल भावों का दिग्दर्शन ही उनके व्यक्तित्व का पर्याय परिचय है। जिससे आत्मा के पवित्र गुण उनके जीवन-चरित्र से हमें ज्ञात होते हैं। वर्तमान व भावी जनता चरित्र नायक के जीवन की घटनाओं तथा उनके

अनुभवो द्वारा सुगमता से लाभ उठाती हैं और स्वपर जीवन-की उलझी हुई समस्याओ को सुलझाने तथा अपने कर्तव्य का यथातथ्य पालन करने और विकट से विकट संकटो को हल करने के विशुद्ध उपाय सहज ही उनके जीवन से मिल जाते हैं। सयमशील महापुरुषो के जीवन-चरित्र का पठन-पाठन करने से प्राणी बहुत से दुष्कर्तव्यो को त्याग सत्कर्तव्य या सन्मार्ग अपना कर अपने जीवन का कल्याण करते हैं।

शेर

अय फूल ! दुःख तज दे, मिटने का गम न कर तू ॥
कर्तव्य जो था तेरा, पूरा वह कर चला तू ॥ १ ॥

परम श्रद्धेय, पूज्यपाद, परम प्रतापी, प्रातः स्मरणीय, स्वर्गीय श्री तिलोक-ऋषिजी म० के परम पुनीत श्रीचरण-कमलो में श्रद्धाजली के रूप में क्या २ लिखूं ? यह केवल लिपि-बद्ध करने की चीज नही, अपितु हृदय में अनुभव करने की ही चीज है।

श्री चरित्र-नायक का जीवन एक महान् उज्ज्वल प्रकाशमान दिव्य प्रतीक है। पूज्यपाद म० ने स्वजीवन को ज्ञान व क्रिया के द्वारा भूमडल को देदीप्यमान करके साधुत्व का महान् आदर्श समुपस्थित किया है। अथवा यूँ भी कहना अनुचित न होगा कि वे महापुरुष उस युग में अपनी उपमा वे स्वय ही थे। जैसा कि स्वयंप्रभगणि ने आचार्य की उपमा में कहा है।

जहा ससी कोमुइ-जोग-जुत्तो, नक्खत्त तारागण-परिवुडप्पा।
खे सोहइ विमले अब्भमुक्के, एव गणी सोहइ भिक्खु मज्झे ॥
दशवै अ ९ उ. १ का १५

यथा शरद्-पूर्णिमा की निशा में निर्मल नभ पर चाँद तथा अनेक तारा-गणो से परिवृत नक्षत्र महाशोभास्पद होता है, इसी प्रकार गणि भी मुनिवृन्द के मध्य में विराजमान होता हुआ महाशोभा को धारण करता है।

स्वनामधन्य ! तिलोकऋषिजी म० मानो त्रिलोकविजयी ही थे। जिन-के प्रौढ शास्त्रीयज्ञान, धारणाशक्ति, परम वैराग्य व त्यागमय जीवन से ज्ञात होता है कि सम्यक्त्व की ८ प्रभावना व आठो ही प्रभावक अग आपश्री में विद्यमान थे। आपश्रीजी की कवितागैली भी पूर्ण वैराग्य-रंग से परिपूरित है। चतुर्विध संघ की अपूर्व सेवा कर आपश्री ने अपना जीवन आदर्श रूप बनाया। आप का महान् उपकार श्रीसघ कदापि विस्मृत नही कर सकता।

आपश्री जी के अनेकानेक अलौकिक महान् उपकारों का हृदय से आभार मानता हुआ मैं अपनी ओर से उनके पवित्र श्रीचरण कमलों में श्रद्धांजली समर्पित करता हूं।

कला का देवता

श्री गणेश मुनि शास्त्री साहित्य रत्न

सन्त विश्व की एक महान विभूति है। वे गुमराहियों के लिए प्रदर्शक है। विषमता में समता का सुमधुर संगीत सुनानेवाले अमर गायक हैं। वे परमात्मा के सगुण रूप हैं धर्म के सन्देश-वाहक है। और सत्य, अहिंसा तथा प्रेम तथा करुणा आदि भव्य भव्य भावनाओं के मूर्त आदर्श हैं, उनकी प्रतापपूर्ण प्रतिभा से संपूर्ण विश्व आलोकित है।

परम श्रद्धेय पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० अपने युग के सन्तों में एक अनुपम तथा विशिष्ट सन्तरत्न थे। आपका ओजस्वी व्यक्तित्व जैन समाज के लिए भी गौरव का विषय था। ज्ञान और चरित्र का आपके जीवन में पूर्ण सामञ्जस्य था। कथनी और करणी में एकता थी।

श्रद्धेय श्री तिलोक ऋषिजी म० का जीवन इन दोनों तत्त्वों से अभिन्न था। इसीके फलस्वरूप आप को जन समाज गौरवान्वित दृष्टि से देखता चला आ रहा है। आप अपने विशिष्ट चारित्र के बल से ही जन-जन के मन मन पर अपना प्रभाव पूर्ण प्रभाव छोड गये है।

आप जैन सूत्रों के गहरे अभ्यासी तथा गूढ तत्त्वज्ञ थे। आपका प्रबल पाण्डित्य कला के साथ को पाकर निखर उठा। चित्रकला, लेखनकला काव्य कला आदि सभी पर आपका पूर्ण अधिकार था। आपके तेजस्वी व्यक्तित्व से उपरोक्त सभी कलाएं चमक उठी और धन्य धन्य उनमें अधिक प्राञ्जलता आती गई।

चित्रकला—भारतीय ललित कलाओं में चित्रकला अपना प्रमुखतम स्थान रखती है। श्रद्धेय ऋषिजी म० चित्रकला में अत्यंत प्रवीण तथा सिद्धहस्त थे। आपके चित्रों में अद्भुत आकर्षण है। हृदय के अभूतभावों को चित्र के माध्यम से मूर्त रूप प्रदान करना सक्षम कलाकार की विशेषता है। चित्र विशिष्ट व्यक्तित्व के पुनीत प्रतीक है। आपके द्वारा निर्मित चित्र आज इतिहास की एक महान संपत्ति है जो भारतीय कला के महत्त्व को प्रदर्शित करते है। कलाकारने धार्मिक सामाजिक एतिहासिक और आगमिक पात्रों को चित्रों में चित्रित कर अपनी मेधा का सुन्दर परिचय दिया है।

जो कार्य उपदेश के द्वारा सहज नहीं होता वह चित्र--अकन के माध्यम से सहज हो जाता है। जनता की भावना को एक नया मोड देने में चित्रकला भी एक प्रखर वक्ता का काम करती है। इसी भव्य भावना से अभिप्रेरित होकर ऋषिजी म० ने चित्रकला को अपने जीवन में स्थान दिया।

'काव्य--कला' आप के जीवन का प्रमुख क्षेत्र था। कविता करना आपका परम रुचिकर विषय था। कविता के माध्यम से व्यक्ति और समाज का सास्कृतिक विकास करना आपकी आस्था का मूल केन्द्र--बिन्दु रहा है। कविता--शैली में एक प्रकार निखार तथा एक विशिष्ट प्रकार की प्राञ्जलता है। कविता--शैली के वैशिष्ट्य के कारण ही आप अपना विशिष्ट प्रकार का जैन समाज में स्थान बनाने में समर्थ हो सके है।

अलकारो की भरमार न होते हुए भी आपकी कविता में मधुरता, सरसता प्रासादिकता है। आज आप की कविता को जैन समाज अत्यन्त श्रद्धा के साथ तथा भाव--विभोर होकर गाता हुआ एक अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है।

इस प्रकार कवि-कुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। स्थानकवासी जैन समाज का साहित्य कोष--आपके साहित्य से भी समृद्ध है। युग-युग तक आनेवाली पीढी को आपका साहित्य आलोकित करता रहेगा, ऐसी मगल कामना।



प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद का साक्षात्कार,

विदुषी महासतीजी श्री उज्ज्वलकुवरजी महाराज अ नगर

रशियन प्रजा को अपनी वैज्ञानिक शक्ति पर गर्व है, तो अमेरिका के लोगो को अपने वैभव पर। अंग्रेज प्रजा को अपनी जल-शक्ति पर गर्व है तो फ्रान्स अपनी विलासिता तथा चमक--दमक पर फूला नही समाता है। परंतु हम भारतवासियों को सब से अधिक गर्व है अपनी सतपरपरा पर। सत भारतीय सस्कृति के प्राण व आत्मा कहे जायें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भगवान् ऋषभदेव से लगाकर आज तक अपनी इस पवित्र भूमि में भिन्न २ जाति तथा भिन्न २ पथो में अनेक सत पुरुष पैदा हुए हैं। इस ही सत-परपरा में जैन समाज के एक सत--रत्न हैं-पूज्यपाद, प्रात.स्मरणीय, कविवर्य, वैराग्य-विभूति श्री तिलोक-ऋषिजी महाराज।

आपश्री जी के अनकानेक अलौकिक महान् उपकारों का हृदय से आभार मानता हुआ मैं अपनी ओर से उनके पवित्र श्रीचरण कमलों में श्रद्धांजली समर्पित करता हूं।

कला का देवता

श्री गणेश मुनि शास्त्री साहित्य रत्न

सन्त विश्व की एक महान विभूति है। वे गुमराहियों के लिए प्रदर्शक है। विषमता में समता का सुमधुर संगीत सुनानेवाले अमर गायक है। वे परमात्मा के सगुण रूप है, धर्म के सन्देश वाहक है। और सत्य अहिंसा दया प्रेम तथा करुणा आदि भव्य भव्य भावनाओं के मूर्त आदर्श है, उनकी प्रतापपूर्ण प्रतिभा से संपूर्ण विश्व आलोकित है।

परम श्रद्धेय पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० अपने युग के सन्तों में एक अनुपम तथा विशिष्ट सन्तरत्न थे। आपका ओजस्वी व्यक्तित्व जैन समाज के लिए भी गौरव का विषय था। ज्ञान और चरित्र का आपके जीवन में पूर्ण सामञ्जस्य था। कथनी और करणी में एकता थी।

श्रद्धेय श्री तिलोक ऋषिजी म० का जीवन इन दोनों तत्त्वों से अभिन्न था। उसीके फलस्वरूप आप को जन समाज गौरवान्वित दृष्टि से देखता चला आ रहा है। आप अपने विशिष्ट चरित्र के बल से ही जन-जन के मन मन पर अपना प्रभाव पूर्ण प्रभाव छोड गये है।

आप जैन सूत्रों के गहरे अभ्यासी तथा गूढ तत्त्वज्ञ थे। आपका प्रबल पाण्डित्य कला के क्षेत्र को पाकर निखर उठा। चित्रकला, लेखनकला काव्य कला आदि सभी पर आपका पूर्ण अधिकार था। आपके तेजस्वी व्यक्तित्व से उपरोक्त सभी कलाएं चमक उठी और दिन दिन उनमें अधिक प्राञ्जलता आती गई।

चित्रकला—भारतीय ललित कलाओं में चित्रकला अपना प्रमुखतम स्थान रखती है। श्रद्धेय ऋषिजी म० चित्रकला में अत्यंत प्रवीण तथा सिद्धहस्त थे। आपके चित्रों में अद्भुत आकर्षण है। हृदय के अमूर्तभावों को चित्र के माध्यम से मूर्त रूप प्रदान करना सक्षम कलाकार की विशेषता है। चित्र विशिष्ट व्यक्तित्व के पुनीत प्रतीक है। आपके द्वारा निर्मित चित्र आज इतिहास की एक महान संपत्ति है जो भारतीय कला के महत्त्व को प्रदर्शित करते है। कलाकारने धार्मिक सामाजिक एतिहासिक और आगमिक पात्रों को चित्रों में चित्रित कर अपनी मेधा का सुन्दर परिचय दिया है।

जो कार्य उपदेश के द्वारा सहज नहीं होता वह चित्र-अकन के माध्यम से सहज हो जाता है। जनता की भावना को एक नया मोड देने में चित्रकला भी एक प्रखर वक्ता का काम करती है। इसी भव्य भावना से अभिप्रेरित होकर ऋषिजी म० ने चित्रकला को अपने जीवन में स्थान दिया।

'काव्य-कला' आप के जीवन का प्रमुख क्षेत्र था। कविता करना आपका परम रुचिकर विषय था। कविता के माध्यम से व्यक्ति और समाज का सास्कृतिक विकास करना आपकी आस्था का मूल केन्द्र-बिन्दु रहा है। कविता-शैली में एक प्रकार निखार तथा एक विशिष्ट प्रकार की प्राञ्जलता है। कविता-शैली के वैशिष्ट्य के कारण ही आप अपना विशिष्ट प्रकार का जैन समाज में स्थान बनाने में समर्थ हो सके है।

अलकारो की भरमार न होते हुए भी आपकी कविता में मधुरता, सरसता प्रासादिकता है। आज आप की कविता को जैन समाज अत्यन्त श्रद्धा के साथ तथा भाव-विभोर होकर गाता हुआ एक अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है।

इस प्रकार कवि-कुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। स्थानकवासी जैन समाज का साहित्य कोष-आपके साहित्य से भी समृद्ध है। युग-युग तक आनेवाली पीढी को आपका साहित्य आप्लेडित करता रहेगा, ऐसी मगल कामना।

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद का साक्षात्कार,
विदुषी महासतीजी श्री उज्ज्वलकुंवरजी महाराज अ नगर

रशियन प्रजा को अपनी वैज्ञानिक शक्ति पर गर्व है, तो अमेरिका के लोगो को अपने वैभव पर। अंग्रेज प्रजा को अपनी जल-शक्ति पर गर्व है तो फ्रान्स अपनी विलासिता तथा चमक-दमक पर फूला नही समाता है। परतु हम भारतवासियों को सब से अधिक गर्व है अपनी सतपरपरा पर। सत भारतीय सस्कृति के प्राण व आत्मा कहे जायें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भगवान् ऋषभदेव से लेकर आज तक अपनी इस पवित्र भूमि में भिन्न २ जाति तथा भिन्न २ पथो में अनेक सत पुरुष पैदा हुए हैं। इस ही सत-परपरा में जैन समाज के एक मत-रत्न हैं-पूज्यपाद, प्रात स्मरणीय, कविवर्य, वैराग्य-विभूति श्री तिलोक-ऋषिजी महाराज।

विश्व पर सत्पुरुषों के अनंत उपकार हैं। सत्पुरुष विश्व पर अमृत-वर्षा करने आते हैं। अपने संपर्क में आनेवाली प्रत्येक व्यक्ति को वे अमृत-पान करा कर के अमर बना देते हैं। विष को भी कर वे अमृत बांटते हैं। इस प्रकार संतों का संसार पर महान उपकार है। मनुष्य अपने तीन-चार पीढी पहले के मातृपक्ष और पितृपक्ष के दादा-दादी नाना-नानी वगैरह उपकारी पुरुषों के नाम भूल जाता है, उसमें कोई शरम की बात नहीं है। परन्तु तीर्थंकर गणधर वगैरह धर्म संस्थापक एवं प्रचारक जो कि हजारों वर्ष के पहले हो गये हैं उनके नाम लोगों को याद है और यदि कोई भूल जाय तो यह उसके लिए शरम की बात है क्यों कि वे लोकोत्तर पुरुष हैं और उनका विश्व के ऊपर महान् उपकार है। जिससे उनका नाम प्राय जन्मजात जन को गर्भवास में ही श्रवण करने को मिलता है। प्राय प्रातःस्मरण में शांतिनाथ प्रभु, महावीर प्रभु आदि के नाम लेकर अपने जीवन को धन्य माना जाता है। वर्तमान युग में ऐसे लोकोत्तर महापुरुष प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज का नाम इतना सुप्रसिद्ध और सन्मान्य है। इस बात का प्रमाण एक बात में दिया जाता है। इस समय जन समाज में अनेकविध विवादास्पद प्रश्न हैं। जैसे एक प्रश्न है छह कोटी और आठ कोटी सामायिक का। दूसरा प्रश्न है-श्रमणसूत्र और श्रावकसूत्र का। तीसरा प्रश्न है-४और ४० लोगस्स के ध्यान का। चौथा प्रश्न है-संवत्सरी भाद्रपद की या श्रावण की। यह भी बडी उलझन का प्रश्न हो गया है। चतुर्थी और पंचमी की संवत्सरी के सम्बन्ध से भी जन समाज में विवाद चल रहा है। पांचवां प्रश्न है-चौदस का पालन करना या पक्खी का पालन करना इत्यादि भेद भाव की क्लेशवर्द्धक दिवालें खडी की गई हैं। ऐसी विवादास्पद विषम परिस्थिति के अंदर भी प्राय सब प्रान्त के भिन्न २ मान्यतावाले साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका प्रातःकालीन और सायंकालीन प्रतिक्रमण के समय पूज्यपाद रचित पंचपरमेष्ठी की स्तुति के काव्य मधुर स्वर से गा कर के अपने मन और वाणी को पवित्र बनाते हैं तथा उस मधुर काव्यामृत के पान में तल्लीन हो जाते हैं।

कितने ही आधुनिक विद्वान कविवर्य मुनिराजों ने पूज्यपाद म० के समान पंच परमेष्ठी के यशोगान के काव्य बनाये हैं और पूज्यपाद के काव्यों के स्थान पर अपने काव्यों का प्रचार बढा रहे हैं तथापि उनको सफलता नहीं मिल रही है। व्याकरण पिंगल व विद्वत्ता की दृष्टि से उनके काव्य योग्य होने पर भी आंतरिक हृदय की भावमय सुंदरता की दृष्टि से स्था० समाज ने पूज्यपाद के

काव्यो को ही अपनाये है। प्रतिक्रमण के समय, व्याख्यान के समय इन भावग्राही काव्यो को ही श्रेष्ठ माना गया हैं। यही पूज्यपाद की सर्वमान्यता का प्रमाण है।

श्री पूज्यपाद म० के दीक्षापर्याय के समय को एक शताब्दी जितना दीर्घ समय हो जाने पर भी उनकी काव्य-कला की कुशलता से पंचपरमेष्ठी के गुण-गान के साथ प्राय प्रत्येक सप्रदायी चारो तीर्थ प्रात समय और संध्यासमय में उनके पवित्र नाम का स्मरण भी कर लेते हैं। उनके वे काव्य इतने भाव-पूर्ण हैं कि यदि उनका स्थिर चित्त से स्वाध्याय किया जाय तो वे इतने रस को पैदा करते है, कि उससे तीर्थंकरनामकर्गोत्र की प्राप्ति भी हो सकती है। आज वे द्रव्य शरीर से विद्यमान नही हैं, फिर भी अपने काव्यमय भाव शरीर से वे अजर-अमर बन गये है और आज इस शताब्दी के प्रसंग पर भी उनके काव्यमय देह के द्वारा उनका साक्षात्कार हो रहा है। मानव-समाज हमेशा उनके काव्यामृत का पान कर के अजर-अमर बने, यही मगल कामना है।

यशस्वी संयमी जीवन

विदुषी महासतीजी श्री सुमतिकुँवरजी महाराज

गगन में सूर्य चमकता है, धरातल दमक उठती है। उद्यान में वृक्ष पर पुष्प विकसित होते हैं, आस-पास का वातावरण महक उठता है। मानव-समाज के विशाल प्रागण में ऐसे यशस्वी नर-रत्नो का आविर्भाव होता है, तो जाति, समाज और राष्ट्र का दारिद्रय समाप्त हो जाता है।

आर्यावर्त के इतिहास को इन्ही नर-रत्नो पर विश्वास है और इन्ही पर गर्व है। ऐसी महान् विभूतियो के द्वारा ही आर्य-संस्कृति को पोषण मिलता रहा है। उसकी सफलता के पद-चिन्ह यही सूचित करते है कि जब-जब आपत्तियो में विकट स्थितियो का निर्माण हुआ है-लोगो का मानस अशात हुआ है, ऐसे भयंकर दु:खप्रद समय में उन पर प्रभुत्व पाने का साहसी कदम उठाया हो तो इसी सयममय विचार से और साधुता के उच्चादर्श से ही।

एक ओर भौतिकता का ताण्डव-नृत्य हो रहा है, आकर्षक प्रलोभन के साधन प्रचुर मात्रा में प्रगति कर रहे है, विनाश के तूफानी प्रयोग कोलाहल पैदा कर रहे हैं तो दूसरी ओर भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियो की सरल किन्तु जीवनस्पर्शी एव हृदयस्पर्शी तथा सुबोध पवित्र व्यावहारिक वाणी अविरत रूप से प्रवाहित है। उसके पिछे क्या भावनाएँ छिपी हुई है? स्वार्थत्याग की पवित्र

दृष्टि और क्षुद्र व्यक्तिगत जीवन का उपहास, जिस के परिणाम में हमारा सामाजिक धार्मिक, तथा राष्ट्रीय जीवन शांति का प्रतिनिधित्व कर सका है और भविष्य में भी कर सकेगा।

अपने स्वार्थ में दूसरे का अनय तथा व्यक्तिगतहित में अन्य के हित की होली की विकारपूर्ण दुष्ट मनोवृत्ति का नाश न हो तब तक व्यक्ति सामूहिक श्रेष्ठ आदर्श जीवन व्यतीत करने का साकार स्वप्न नहीं ले सकता। इसी विशुद्ध भावना से प्रेरित होकर भारत में अनेक व्यक्ति हो चुके हैं। जिनके मंगलमय जीवन के क्षण स्वयं प्रकाशित हैं और दूसरों को भी प्रकाश दे सके हैं ऐसे प्रबुद्ध व्यक्तियों की श्रेणि में हमारे परम श्रद्धेय कविकुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० का भी श्रेष्ठ स्थान है। जिनके जीवन की मीमांसा करते हुए गर्व होता है। वे दृढ अभ्यासी थे। समाज की स्थिति का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। तितिक्षा और प्रेम उनके जीवन का गुरुमंत्र था। प्रतिभासंपन्न काव्यों में उनकी पवित्र भावुवृत्ति का तेज आज भी स्पष्ट निखर रहा है। किंतु खेद है कि वह अपार काव्यराशि जनता के सामने संपूर्णरूप से प्रकाशित होकर नहीं आ सकी है। पूज्यपाद महाराजश्री के इस शताब्दी-महोत्सव के पवित्र प्रसंग पर उनका अप्रकाशित साहित्य जन-कल्याण की उच्च भावना से प्रकाशित होकर सामने आवे और उसको हम अपनाए तथा उसका सन्मान करे यही उस आदर्श विभूति को हमारी अंतःकरण पूर्वक श्रद्धांजली होगी।

दुनिया में अनेक प्राणी जन्म लेते हैं और अंत में कुछ दिन जीवन-यापन कर इस लोक से प्रस्थान कर देते हैं किंतु उन्हीं का जीवन श्रेष्ठ होता है जो दूसरों को जीने की कला सिखा सके हैं। अभिनंदन भी उनका ही किया जा सकता है जिन्होंने जन-जन के जीवन में आदर्श और आदरणीय स्थान प्राप्त किया है ऐसे महापुरुषों में हमारे चरित्र नायक पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म. का स्थान आता है अतएव उनके चरणों में अपनी श्रद्धांजली समर्पित कर धन्यता का अनुभव करती हूँ। कवि की भाषा में यह विश्व---

यह संसार महासागर है हम मानव हैं तिनके।
इधर-उधर से बहकर आये कौन यहाँ पर किन के? ॥१॥

उस वंदनीय पुनीत चरणों में समर्पित की हुई श्रद्धांजली स्वयं धन्यता का अनुभव करती है और भारतमाता ऐसे आदर्श पुत्रों को प्राप्त कर गौरवान्वित होती है। ऐसे महान पुरुषों ने ही उसे यशस्वी बनाया है।



एक महान् विभूति
विदुषी महासतीजी श्री शीलकुँवरजी महाराज
चातुर्मास स्थल—नाथद्वारा

भारतीय संस्कृति में संत-जीवन एक महान् आदर्श के रूप में माना जाता है। सयम और संस्कृति की धाराओ में प्रवहमान सत-जीवन व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिये वरदान-रूप सिद्ध होता है। आर्य-भूमि भारतवर्ष का इतिहास ऋषि-मुनियो की जीवन-गाथाओ से भरा पडा है। अनेक सत महापुरुषो ने इसी भूमिपर जन्म लेकर अपने जीवन के साधना के पथ पर अग्रसर किया, वहाँ समाज और धर्म को भी अपनी चेतना, आध्यात्मिक प्रतिभा एवं अलौकिक ज्ञान का उन्होने प्रकाश दिया है।

स्थानकवासी समाज का इतिहास ऐसे ही एक दो नही, सैकडो संतो के स्तुत्य जीवन और उनके ज्ञान की अलौकिक प्रभा से भरा पडा है। उन्ही महापुरुषो में से जिन्हे हुए एक शताब्दी पूर्ण हो गई है, वे है "पूज्यपाद कविकुल-भूषण परम श्रद्धेय आदरणीय श्री तिलोकऋषिजी महाराज"

सत स्वय अपने लिये ही नही जीते, किंतु जब तक जीते है, तब तक अपने अलौकिक ज्ञान के प्रकाश से भव्यात्माओ के अज्ञान-तिमिरको नष्ट करते है और जब इस नश्वर देह को छोड देते है, तब उनके ज्ञान की अमूल्य निधि ही मानव को आध्यात्मिक वृत्तिओ की ओर प्रेरित करती है।

परम श्रद्धेय श्री तिलोकऋषिजी म० ने दस वर्ष की अल्प वय में दीक्षित बनकर थोडे ही काल में जो अध्ययन किया, वह उनकी अद्‌भुत प्रतिभा का स्पष्ट प्रमाण है। अल्प समय में ही विशाल ज्ञान—राशि का सचय कर उन्होने जैन साहित्य की जो सेवा की है, वह प्रशसनीय है। सिर्फ २६ वर्ष के दीक्षा-काल में आपने जो पद्य-रचनाएँ की है, उनका भाव, भाषा, शैली और वर्णन की दृष्टि से तो महत्त्व है ही, किंतु जो गूढ भाव उन में भरे है और जीवन के आध्यात्मिक उत्थान के निमित्त सरल एव सुबोध भाषा में काव्य रचना कर जो भव्य जीवो को आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित किया है, यह उस महान् कवि की महानता का स्पष्ट परिचायक है।

कवि मुनिश्रीजी ने संसार के प्रचलित त्यौहार, रीति-रिवाज, शब्दावली आदि हर विषय पर अध्यात्म-विवेचन कर लोगो को ससार की असारता का उपदेश दिया है। उनके एक एक काव्य पर जितना लिखा जाय कम है। क्या ही अच्छा होता? अगर कविकुल-चूडामणि, समाज-भूषण, परम श्रद्धेय, आध्यात्मिक

जगत के महान तत्त्वज्ञ अपनी वृद्धावस्था के दिनों तक जीवित रहकर समाज और धर्म को अपने ज्ञान का प्रकाश प्रदान करते तो साहित्य के क्षेत्र में एक बहुत बड़ा सर्जन का कार्य होता। फिर भी छोटी उम्र में उन्होंने जो साहित्य-सर्जन किया वह कम नहीं है। आवश्यकता है उसके अन्वेषण चिंतन मनन और निदिध्यासन की। आज वे हमारे चर्म चक्षुओं के समक्ष नहीं हैं किंतु उनका तप और त्याग का उज्ज्वल प्रकाश शताब्दी-काल बीत जाने पर भी उनकी अलौकिक ज्ञान-प्रतिभा का प्रकाश उनकी साहित्य सेवा से प्राप्त हो रहा है। उनकी स्मृति युग २ तक संयमी जीवन के लिये मंगलमय प्रेरणा देती रहेगी।

उस महान आत्मा की शताब्दी के इस सुअवसर पर हम भावपूर्ण श्रद्धा व्यक्त किये बिना नहीं रह सकते। लेकिन सच्ची श्रद्धा के पुष्प तो हम उनके गुणों को अपने में धारण करके ही चढ़ा सकते हैं। मेरी इस अवसर पर यही कामना है कि उस महापुरुष के उपदेशों को हम अपने में प्रत्यक्ष देखें। इसी भावना से मैं श्रद्धा के मधुर क्षणों में उस विराट आत्मा के प्रति अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजली अर्पित करती हूं।

महासती श्री इन्द्रकुँवर जी म०

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न वने वने॥

यह उक्ति उन दुर्लभ वस्तुओं के लिए है, जिनका मूल्य समाज और संसार में सर्वाधिक है।

अहिंसा, संयम और तप से अभिभूत व्यक्ति मानवता का देवता होता है। वह साधक अथवा साधु कहलाता है। उसके जीवन का प्रत्येक पहलू सत्य के संशोधन के लिये होता है।

हमारे चरित्र-नायक पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० सा० का जीवन अहिंसा संयम और तप का प्रतीक है। त्रिलोक—तीन लोक की आसक्ति से विजय पाने की कामनावाले यथा नाम तथा गुण संपन्न—

उनके जीवन के बारे में लिखते समय संत तुलसीदासजी का यह पद्य सहज ही स्मरण हो आता है कि—

साधु चरित शुभ सरिस कपासू॥

पूज्यपादश्री जी का जीवन अत्यंत पवित्र था। उनका व्यवहार सरल एवं हृदय शुद्ध था। उनके जीवन की सफलता का रहस्य था—उनका उदात्त और निश्छल व्यक्तित्व।

बीसवीं सदी के प्रारंभ में इस संसार में आए ९ वर्ष ही हुए थे कि उन्हें अद्भुत वैराग्य की अनुभूति हुई। परिवर्तनशील संसार के उद्यान में एक सुवासित गुलाब का फूल बनकर उन्होंने वातावरण को सौरभान्वित किया।

माताजी के धार्मिक एवं आध्यात्मिक संस्कारों के अभिरस का सिंचन उन्हें बाल्यावस्था में ही मिलता रहा। पति–वियोग होने पर भी वह धार्मिक संस्कार के कारण अपने चार संतानों की प्रति-पालना करती हुई संसार की क्षणिकता का–असारता का ज्ञान अपने आत्मजों को दिया करती थी।

अथवता मुनिश्री के सदुपदेश से पति–वियोग से आर्तरौद्र ध्यान न करते हुए वह ज्ञानार्जन में तत्पर रहती थी।

माताजी के इस त्याग का प्रभाव पूज्य श्री जी के हृदय में घर कर गया। उनके धार्मिक संस्कार जागृत हो उठे, जिससे छोटी-सी उम्र में वे गृहत्याग के लिये विवश हुए। घरवालों द्वारा घर में रखने की जितनी कोशिशें की जा सकती थी, उतनी कोशिशें की गई, संसार के प्रलोभन दिखाये गए, विवाह का आकर्षण बताया गया, संसार की विशेषताएँ भी समझाई, पर ऋषिजी म० सा० पर कुछ भी असर नहीं हुआ।

उन्होंने अपनी धार्मिक प्रवृत्तियों से घर–घर में वैराग्य का निर्झर बहा दिया। इससे उनकी माता–बहन–भाई संसार की नश्वरता समझकर एक दिन दीक्षित होने के लिये निकल पड़े।

१० वर्ष की छोटी-सी उम्रमें उन्होंने संयम के मार्ग पर कदम रखा। उनकी अलौकिक प्रतिभा का यह एक जीवन्त प्रमाण है। उनकी हार्दिक वैराग्य–भावना का यह एक अद्भुत उदाहरण है।

उनका जन्म संवत् १९०४ चैत्र वदि तृतीया रविवार के दिन हुआ और संवत्१९१४ में वे दीक्षित हो गये।

दीक्षितों पर सत्य की साधना के लिये विवेक के पथ को आलोकित रखने का गुरुतर उत्तरदायित्व रहता है। श्री ऋषिजी म ने अपनी बाल्यावस्था में ही इस उत्तरदायित्व को निभाने की क्षमता अर्जित कर ली थी। उनके रोम–रोम में वैराग्य का रंग इस प्रकार ढल गया था, कि जिसका उल्लेख शब्दों में नहीं किया जा सकता, परंतु वैराग्य-रस से परिपूर्ण उनकी कविताओं का अध्ययन करने से ही उनका अनुभव किया जा सकता है। **"वैराग्य समस्त श्रेय का मूल है"** वह ज्ञान और क्रिया से अभिषिक्त होता है। जिसने वैराग्य का संबल पा लिया उसके लिये सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश है।

पूज्यपाद श्री एक महान संत थे। संत-पुरुष अपने जीवन को पारिवारिक दायरे से निकालकर विश्व के व्यापक एवं असीम क्षेत्र में ले आते हैं। सारे विश्व को ही अपना परिवार बना लेते हैं।

पूज्यपादश्री सब से पहले जैन मुनि हैं जिन्होंने अपने जीवन में गुरुसेवा, आत्मसेवा समाजसेवा को अपने जीवन का ध्येय समझकर मार्ग के कष्ट—उपसर्ग के पहाड़ों का उल्लंघन करके मालवा से महाराष्ट्र में सर्वप्रथम प्रवेश किया। और जनता को महावीर का संदेश सुनाया। आपश्री के प्रयत्न से महाराष्ट्र की जनता में धर्म—चेतना का संचार हुआ। जैसे—हिमालय के ऊँचे शिखरों से पड़ता हुआ गंगा का प्रवाह शुष्क मैदान में पहुँचकर वहाँ की भूमि को शस्य—श्यामला बनाता है और तमाम प्राणियों को जीवन—दान देता है। उसी प्रकार आपके पदार्पण से युग से सोये पड़े लोग जाग उठे और अपने जीवन को धर्ममय बनाने का प्रयत्न करने लगे। आपने अनवरत प्रयत्न करके जनता को साधना का मार्ग दिखाया। अनेकों व्यक्तियों के जीवन को बदलने का उन्हें ऊपर उठाने का श्रेय आपको है।

आपने विद्यार्थी जीवन में १७ शास्त्र कंठस्थ कर के जीवन त्यागमय बनाकर जन-जन में त्याग मार्ग का बीजारोपण किया।

एक बार वे महा महिम पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० ग्रामानुग्राम विहार करते हुये 'कुडगाव' नाम के छोटे से ग्राम में पधारे। सर्वप्रथम उस महा मुनि को देखकर ग्रामनिवासियों को एकबार तो कुतूहल सा हुआ। परन्तु ग्रामीण जनता ज्यों ज्यों उस महापुरुष के सत्संग का लाभ लेने लगी त्यों त्यों उसका आकर्षण बढ़ने लगा। सिर्फ राजस्थानी कुटुंब ही नहीं बल्कि सारा गाँव का गाँव पूज्यश्री का भक्त हो गया।

पूज्यश्री के उपदेश का एवं त्याग का प्रभाव वहाँ के बुधमलजी एवं उनके परिवार के ऊपर अधिक रूप से हुआ। सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम सत्संगति और सत्साहित्य ही मनुष्य को ऊँचा मार्गदर्शन करा सकता है। इससे ही मनुष्य महान बन सकता है। उन महापुरुषों के उपदेश एवं सत्संगति से उनके सारे के सारे परिवार ने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

हम देख चुके हैं कि पूज्य श्री तिलोकऋषिजी म० ने संत जीवन की उज्ज्वल ज्योति प्रज्वलित की थी, एक संत की तरह उन्होंने अपना जीवन समाज के जीवन को बदलने, उन्नत बनाने एवं सुसंस्कारी बनाने में लगा दिया। आपने भूले—भटके मानवों को रास्ता दिखाने में कभी प्रमाद नहीं किया। आपश्री के सत्प्रयत्नों का

हीं मूकफल है। महाराष्ट्र में लोगों का जीवन धर्म से संस्कारित है। लोगों का जैन धर्म के प्रति आदर एवं सम्मान है, जैनेतर समाज भी जैन धर्म से काफी प्रभावित है। वह जैन संतों के परिचय में आता रहता है और उनके उपदेशों का लाभ भी उठाता रहता है। जैन मुनि भी अब इस प्रांत में विचरने लगे हैं। लोगों को उनका संपर्क होता रहता है। महाराष्ट्र में जैन संतों के आगमन का रास्ता खोलने एवं सुगम बनाने का श्रेय आपको दूं तो अनुचित नहीं होगा।

हाँ, तो इस महामहिम संत पुरुष ने अपनी साधना की ज्योति से जैन जीवन को सही मार्ग दिखलाया है और आज भी उनकी साधना हमारे लिये प्रकाश-स्तंभ है। जिसकी रोशनी में हम भली भाँति अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच सकते हैं।

इस महापुरुष की साधना—दीक्षा को सौ वर्ष अर्थात् एक शताब्दी पूरी हो चुकी है और आज शताब्दी-दिवस पर उनके त्याग, तप एवं आदर्श जीवन का स्मरण करती हुई इस महापुरुष-संत पुरुष के चरणों में अपनी श्रद्धांजली अर्पण करती हूं।

विदुषी महासतीजी श्री अमृत कुंवरजी महाराज

संत भारतीय उद्यान के विकसित पुष्प हैं, जो संसाररूपी उपवन में अपनी सद्वृत्ति-सत्साहित्य-सद्वाणीरूप पराग से अनेक भव्य प्राणीरूप भ्रमरों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और अपना तन-मन-ज्ञानधन को जगज्जीवों के लिए वितरण कर अनंत उपकार करते हैं। उनमें से आज अनेक संत इस संसार में नहीं हैं, किन्तु उनकी यशरूपी सुरभि आज भी विद्यमान है।

खेद की बात है कि इस उपवन का पुष्प खिला ही था और अपनी कोमल पांखुड़ियों तथा सुमधुर पराग से भ्रमरों को अपनी ओर आकर्षित कर ही रहा था, कि वह कोमल पुष्प सूर्य के प्रचंड ताप से अल्प समय में ही मुरझा गया। लेकिन उसने विकासोन्मुख अपनी जीवन-सुरभि से दिगदिगंत को सुरभित किया और वह भी अल्प काल के लिए नहीं, अपितु कल्पान्त काल तक। यही अपूर्व अद्वितीय पुष्प हमारे चरित्र-नायक, कवि-कुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज हैं। इन्होंने अपने साहित्य-सौरभ को प्राणी-मात्र के लिए वितरण कर थोड़े ही समय में स्वर्ग लोक की यात्रा की।

पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० एक प्रतिभा-संपन्न संत थे। इन्होंने खेल कूद के समय से ही संयम-मार्ग की ओर प्रयाण किया और थोड़े ही समय में अनेक शास्त्रों में पारंगत बन अपनी भावों से परिपूर्ण सुधामय वाणी से जगत् के जीवों को साधना-मार्ग की ओर प्रेरित किया। आपकी कवित्व—शक्ति कितनी अपूर्व थी,

यह आपके काव्य को पढने से ही अनुमान लग जाता है कि आपका ज्ञान केवल ऊपरी बातों तक ही सीमित नही था अपितु आपने ज्ञान-सागर में पूर्णरूप में डुबकी लगाकर अंदर में रहे हुए रत्नों को प्राप्त किया और उसी रत्न को काव्य चित्र कला में जड देने से उनकी सुन्दर छटा अधिक बढ गई। आप के काव्य आगमानुसार-वैराग्य रस से ओत प्रोत है। भाषा इतनी सरल, मधुर और गंभीर भावों से भरी हुई है कि जिस की रचना शैली देखकर जिज्ञासु विद्वद्गण दांतों तले अंगुली दबाते है। काव्यों को पढते हुए पाठक तथा श्रोता दोनों उसमें तन्मय हो जाते है।

पूज्यपाद महाराज श्री द्वारा रचित अगाध काव्य साहित्य हमारे जीवन को नूतन ज्योति प्रदान करता है और हमारे मन और आत्मबल को वैराग्यमय रसायन से दृढ और बलिष्ठ करता है। आपके गुणों का या अद्भुत कलाओं का वर्णन करना मेरी बुद्धि या शक्ति के बाहर है। इस महाराष्ट्र प्रांत में भी धार्मिक प्रचार की दृष्टि से आपका ही प्रथम उपकार है। जिस तरह समुद्र में रहे हुए रत्नों की कीमत बढ जाती है उसी तरह पूज्यपाद महाराज श्री का दक्षिण देश में पदार्पण होने से उनकी प्रतिष्ठा और प्रतिभा और भी अधिक हो गई और पूज्य गुरुदेव श्री उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महा० जैसे जौहरी मिल जाने पर तो उनकी अमूल्यता की बात ही क्या पूछी जाय? ऐसे अनन्त उपकारी कविकुल भूषण पूज्यपाद महाराज श्री के पद-पंकजो में मेरी श्रद्धांजली समर्पित करती हूं।

साहित्य और आदित्य

स्थविरा विदुषी महासती श्री हेमकुंवरजी म०

दुनिया में साहित्य का महत्व अधिक है या आदित्य का?

इस प्रश्न का उत्तर देने से पहिले मैं इन दोनों शब्दों का अर्थ स्पष्ट कर देना उचित समझती हूँ।

'साहित्य' शब्द का अर्थ है — किसी विषय कवि या लेखक से संबंध रखनेवाले सभी ग्रंथों और लेखो आदि का समूह। जैसे सूर साहित्य' तुलसी साहित्य आदि।

आदित्य' शब्द के भी कोष में देवता 'इंद्र' वामन आदि ग्यारह अर्थ मिलते है परंतु मुझ सिर्फ एक ही अर्थ अभीष्ट है वह अर्थ है-सूर्य।

इन में 'साहित्य' बना है सहित शब्द से जिस का अर्थ है हित युक्त, हितकारी भलाई करने वाला। जिन लेखों या कविताओं से दुनिया की भलाई

हो-कल्याण का मार्ग दिखाई देता हो, सब पाठकों में सब लोगों का भला करने की भावना जागृत होती हो, वही पूरे अर्थों में 'साहित्य' है। इसी प्रकार यहाँ आदित्य का सीधा अर्थ 'सूर्य' ही समझना चाहिये। अन्य अर्थ नहीं।

आदित्य का प्रकाश स्थूल अन्धकार को नष्ट करता है तो साहित्य का प्रकाश सूक्ष्म अन्धकार (अज्ञान) को। आदित्य मर्यादित समय तक प्रकाश फैलाता है तो साहित्य निरन्तर। आदित्य का प्रभाव तन पर होता है तो साहित्य का मन पर। साहित्यका प्रकाश सुसह्य होता है, इसलिये सभी साक्षर उसका अवलोकन कर सकते हैं, लेकिन आदित्य का प्रकाश प्रचण्ड होता है, असह्य होता है, उसका अवलोकन सबके लिये असम्भव-सा है, फिर भले ही कोई साक्षर हो या निरक्षर।

आदित्य सुशोभित होता है ऊपर के आकाश में और साहित्य सुशोभित होता है-शहरों के ग्रंथालयों में या पाठकों के हाथों में।

आदित्य सरोवर के कमलों को विकसित करता है और साहित्य मानव-समाज के हृदयों को। आदित्य अपने प्रकाश के द्वारा चोर डाकू आदि अन्यायियों को रोकता है दुष्प्रवृत्ति से, साहित्य भी अपने प्रभाव के द्वारा ऐसा ही करता है, फिर भी दोनों में अंतर यह है कि आदित्य का कार्य अस्थायी है और साहित्य का स्थायी।

आदित्य का जन्म होता है-पूर्व दिशा में, किन्तु साहित्य का जन्म होता है-साहित्यकार की अपूर्व दशा (उत्कृष्ट भावना) में।

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि आदित्य की अपेक्षा साहित्य कितना श्रेष्ठ है।

साहित्यकार अपने साहित्य के बल पर अमर हो जाता है। अमर होने के दो ही उपाय किसी पाश्चात्य विचारक ने बताये हैं। लिखा है – यदि तुम चाहते हो कि मरते ही भुला न दिये जाओ तो पढने लायक लिखो या लिखने लायक करो।"

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय श्री तिलोकऋषिजी महाराज दोनों उपायों के अवलम्बन से यशस्वी बने हैं। उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह पढने लायक है-आश्चर्यजनक प्रतिभा और कलात्मक लेखन-शैली का परिचायक है। "श्री सत्यबोध" नामक ग्रंथ के पृष्ठ १४ पर छपा है, कि आप दोनों हाथों तथा दोनों पैरों से लिख सकते थे। आपकी कुल रचनाओं की गाथा-संख्या ७५ हजार के लगभग बताई जाती है। आपने २५ वर्ष ■ महीने और १ दिन संयमी-जीवन बिताया

था किन्तु इसमें संयमी जीवन का अधिकांश समय साहित्य की रचना में लगा दिया था।

इसके अतिरिक्त आपका जीवन भी संयत पवित्र और आदर्श था। ज्ञान का प्रचार करने के लिये आप भारत के कई प्रान्तों में विचरे (घूमे) थे। आप बाल्यब्रह्मचारी थे। आपका उपदेश बड़ा ही प्रभावशाली होता था। आपकी वाणी बहुत कोमल थी और स्वभाव काफी सरल।

आपके गुणों का विस्तार से परिचय देना तो केवल समर्थ विद्वान् और पूज्यपाद की जीवन घटना जाननेवालों का ही काम है। मैं अल्पज्ञा उनके विषय में भला क्या लिख सकती हूँ?

शास्त्र विशारद सुकवि पं मुनि श्री अमीऋषिजी म सा का बनाया हुआ एक छन्द लिखकर मैं अपनी लेखनी को विश्रान्ति दूँगी —

दया के निधान भव्य जीवन के प्राण औ
सुजान ज्ञान ध्यान में निमग्न गुणधामी थे।
बालब्रह्मचारी महादुष्कर आचारी-धार
काव्य-कलाधारी हितकारी विसरामी थे।
सुधा-सम वाणी मृदु सबन के साता दानी
देय उपदेश जीव तारवे के कामी थे।
"अमृत" रटत नाम लेत ही कटत पाप,
ऐसे ही प्रतापी श्री तिलोक रिख स्वामी थे॥

कहने का सारांश यह है कि दुनिया में आदित्य की अपेक्षा साहित्य का महत्त्व विशेष अधिक है। किन्तु साहित्य से भी साहित्य निर्माता का महत्त्व विशेष अधिक है। "तिलोक दीक्षा-शताब्दी महोत्सव" के रूप में एक ऐसे ही साहित्य निर्माता का अभिनन्दन किया जा रहा है जिनका शुभ नाम था प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज। अपने शिष्या-परिवार के साथ मैं भी उन्हें हार्दिक श्रद्धांजली समर्पित करती हूँ।



ऋषि तिलोक

पं० मुनि श्री फूलचंदजी 'श्रमण' (पंजाबी)

तिलोक ऋषि शब्द की व्याख्या

पंजाब संप्रदाय और ऋषि संप्रदाय इन दोनों का मूलस्रोत एक होने से आज तिलोक शताब्दी-अभिनंदन ग्रंथ के लिए अपनी यह श्रद्धांजली भेजकर प्रसन्नता का अनुभव करता हूं। इस अवसर पर मैं उन स्वर्गीय तिलोकऋषिजी महाराज के नाम की व्युत्पत्ति की सार्थकता के रूप में अपने निम्नांकित विचार प्रकट करता हूं।

ऋ गतौ धातु से ऋषि शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है सतत शुभाध्यवसायों में प्रवृत्ति करना, आयुका कोई भी क्षण निष्फल या अशुभ में न प्रवर्ताना ही ऋषि शब्द का विशेष अर्थ है।

दूसरा अर्थ ज्ञानपरक होता है। जैसे कि ज्ञानाराधना में निरंतर अभ्यास करना, वाचना, पृच्छना, पठित विषय का पुनः २ आवृत्ति करना, धर्मकथा करना, अनुप्रेक्षा करना, जिसे वेदांत-भाषा में निदिध्यासन कहते हैं। पाँच प्रकार की स्वाध्याय चरमान्त श्वास तक करना, सदैव ज्ञान के प्रकाश में रहना इस प्रकार की प्रवृत्ति करनेवाले साधु को ऋषि कहते है।

ऋषि का तीसरा अर्थ प्रकाश होता है-जैसे हमारे नेत्र बाह्य प्रकाश की अपेक्षा रखते हैं वैसे ही सम्यक्त्व के प्रकाश में रहकर ही सच्चारित्र की आराधना हो सकती है। सम्यक्त्व आत्मा में प्रकाश देता है, ज्ञान आत्मा में गुण अवगुण बताता है। अवगुणों को दूर हटाने के लिए जो क्रिया की जाती है वह ही सच्चारित्र है। क्षायिक सम्यक्त्व ही सदैव आत्मा में प्रकाश करता है। उस प्रकाश में रहने वाले मुमुक्षु को ऋषि कहते है। ये तीनों अर्थ जिस में घटित हो उसे ऋषि कहते हैं। जब हम ऋषि शब्द को तिलोक शब्दके साथ जोडते है तब उसका अर्थ और भी विलक्षण हो जाता है जैसे कि---

१ अधोलोक उर्ध्वलोक एवं मध्यलोक जो तीनों लोक में अनासक्त हैं।
२ जो लोकैषणा पुत्रैषणा, और वित्तैषणा इन तीनों का त्यागी है।
३ जो जर-जोरू-जमीन इन तीनों का त्यागी है।
४ जो मन-वचन और काय गुप्ति से गुप्त है।
५ जो भक्तियोग कर्मयोग और ज्ञानयोग इन तीनों योगों का आराधक है।

जो दम दया दान, इन तीनों में प्रवृत्ति करनेवाला है।

७ जो अहिंसा अनेकान्तवाद और अपरिग्रह इन तीनों का उपासक है।

८ जो निष्कामत्व निर्लोभत्व निर्वैरत्व का आराधक है।

९ जो हेय से निवृत्ति ज्ञेय में वृत्ति उपादेय में प्रवृत्ति करने वाला है।

१० जो उत्पाद व्यय और ध्रौव्य से ओतप्रोत की मान्यता रखता है।

११ जो आधि व्याधि उपाधि से सर्वथा मुक्त होने के लिये साधना करता है।

१२ जो आधिभौतिक आधिदैविक आध्यात्मिक कष्टों में समता रखता है।

१३ जो ज्ञानपूर्वक इच्छा को नियन्त्रित करता है।

१४ जो साधक, साध्य साधन और साधना विशुद्ध त्रिपुटी का आचरण करता है।

१५ जो तीन कदमों में ही कल्याण करता है जैसे कि पहला कदम धर्म श्रवण दूसरा कदम सम्यक्त्व लाभ और तीसरा कदम चारित्र पालन।

१६ जो मनुष्य देवता तिर्यंच तीनों का पूज्य है उसे तिलोकऋषि कहते हैं।

इस प्रकार आपके नाम ने ऋषि शब्द को और भी चार चांद लगा दिये आपने संयम तप की साधना के साथ २ ज्ञानसाधना भी बहुत विलक्षण की है। कवित्व शक्ति के प्रभाव से समकितसार समरादित्य केवली कथा श्रेणिक चरित्र इत्यादि लगभग छोटे बड़े १७ से भी अधिक ग्रन्थों के आप रचयिता हुए हैं। आप की कविता सरस, मधुर और अलंकार-पूर्ण होती है। पढ़ने और सुननेवालों के अन्तःकरण में आनन्द के साथ २ श्रद्धा और वैराग्य शान्तरस की वृद्धि होती है।

आपने आगमों का अध्ययन मनन चिन्तन निदिध्यासन पूर्वक किया है थोड़े काल में इतनी उच्च कोटि की विद्वत्ता यह सिद्ध करती है कि सरस्वती की ओर से आपको सहज वरदान प्राप्त था। आपके बनाए हुए ये ग्रन्थ सदियां तक प्रकाशस्तम्भ बनकर जनता को सन्मार्ग प्रदर्शित करते रहेंगे।

जब तक रवि शशि तारे तब तक गीत तुम्हारे विश्व रहेगा गाता।



श्री तिलोक-द्वात्रिंशिका

साहित्याचार्य प० श्री माधवानन्दजी शास्त्री

श्री—शोभा वा रमा सा श्रुतजनविभवा तद्द्वया मेदुराणो ।
याभ्यां येनातिरम्यं जगदिदमखिलं शोभितं बोधितञ्च ॥
एका मा यस्य पार्श्वे भवति च चपला पूज्यते कैर्न भोऽत्र ।
ज्ञानश्री सूरिमूर्तिर्जयतु च भुवने त्रि पुरालोकर्षि ॥ १ ॥
क—ब्रह्मा ब्रह्मरूपो निजपर—समयज्ञानबोधात्मनिष्ठ ।
संसारासारदर्शी पर-हित—निरतो ब्रह्मतेजोऽभिरामः ।
अज्ञानध्वान्तहेलि श्रुतसरससुधापानपुष्टाङ्गयष्टि—
र्जीयात्श्रीसौम्यदृष्टि प्रवरगुरुवरस्त्रि पुरालोकर्षि ॥ २ ॥
वि—सर्वस्मिन् यस्य विश्वे प्रविलसति यश पूर्णचन्द्राभमच्छम् ।
यातेऽपि स्वर्गधाम्नि प्रतिजनहृदये राजमानोऽधुनाऽपि ॥
चन्द्र क्षीण कलङ्की जगति गुरुरसौ सर्वदा भासमान—,
स्तस्मात्तं लोकसिद्ध गुरुवरमहक सादर भावु वन्दे ॥ ३ ॥
कु—क्षोणि क्षोणिजातैरखिलजनचयै स्तूयमानोऽथ वन्द्य ।
मद्ग्रन्थाभ्यासचेता यमनियमरतो लेखनाध्वप्रवीण ।
दक्षो बोधेऽखिलाना प्रशमरसतया भावयन्नेकवृत्तिम्,
पश्यन् सर्वं निजाभंजयतु गतमल सद्गुरु श्रेयसेऽत्र ॥ ४ ॥
लग्नो यो नित्यमार्यं श्रुतरसविषये येन निर्वाणलब्धि-
स्तत्प्राप्तौ यत्नशाली सुविजितखगणो यो महारातिवर्ग ।
तत्सत्ता यावदास्ते ध्रुव इह विजयी जायते ना हि-कोऽत्र,
जित्वा तान् यो मुनीशो जगति सुविदितश्चर्षिसंज्ञा मुलेभे ॥ ५ ॥
भू सत्ताबाधको यो विलसति धरणौ सर्वसत्त्वावधर्मी,
सत्त्वाना पालको यस्तदवनविषये बोधयन् प्राणिवृन्दम् ।
संसारेऽस्मिन् विशाले पदविहृतितया चङ्क्रमाणो महात्मा ।
सत्ताधारी व्यराजत् त्रिककरणतया तम्भजे नित्यमन्त ॥ ६ ॥
षण्णा योऽभाच्च लोके विमलगुणगणै सम्वेजेता रिपूणाम्,
नञ्जेत्रा येन भूम्ना विशदमतितया सहतान्ते कषाया ।
निर्दोषी दिव्यशक्तिर्जिन-वचनसुधापायिनो यत्त्वनेकान्,
चक्रे त नौमि पूज्य सुरनरमहित सद्गुरु शुद्धबोधम् ॥ ७ ॥

धन्य प्रालंकारकार्ये जगति गुरुरसौ सर्वजीवाभिलाषी
यद्वाणीदिव्यभूषासुपुष्पितमनुजा प्राभवन सर्वदिक्षु ।
बिम्बालंकारमेनं नमत भुवि जना श्रेयसे साधुभावा ।
त्लोकानां भूषणं वै सततमहमिह स्वात्मकोषे करोमि ॥ ८ ॥

पूर्णस्त्वं पूर्णबोधस्तत इह विदितं लौकिकं सर्वमेतद्
हेयाहेयप्रयोग सुविशदमतिना पूर्णताऽदर्शि सम्यक् ।
सम्पूर्णानन्दसिन्धूत्तमकललहरीकेलिमग्नान्तरात्मा
पूर्ण स्या योगिराज त्वमिह नु भुवन सर्ववाञ्छाऽभिपूर्त्यै ॥९॥

ज्यायान् य साधुवृन्दे समभवदतुल सयमे तात्त्विकी सन
धर्मोद्धारो प्रबोधी प्रवचनकुशलो यत्र लोका क्रियन्त ।
हिंसामार्गाभिरुद्धा जिनभणितपथ योजितास्तोषितास्च ।
तामवध्यौ ज्ञानिन तं नमत भुवि सदा क्लेशमुक्ता भवन्तु ॥१०॥

यस्ता ध्याता महर्षिर्य इह समभवच्छास्त्रज्ञानध्यानलग्न ।
यद्वाणीमत्र्यलोको जिनपतिचरण स्वात्मभाव व्यधत्त ।
सद्धर्मासेवनेन क्षपितभवभय शुद्धवृत्तिप्रभूत
सर्वाभारो महात्मा सुकृतगणमयी भावतो श्रेयसे न ॥११॥

यत्तो येनात्र्यभक्ति कातरमहिममहा मोह भूपाय सम्यग
दुर्जेय यत्र जित्वा व्यकसदतिबलो मानवराज्यराज्य ।
यद्राज्य सर्वजीवा शिवसदनगता व्यस्मरन भवदौस्थ्य
ज्ञानी त्यागी महर्षिर्भवतु च भवता स्वस्तये सर्वदाऽत्र ॥१२॥

श्री मातृ-श्रीभावजता क्षणिकफलप्रदा सत्यमेते समग्रता ।
यो वेते तीवनाया रससकलमहाराज्यमत्ता विहाय ।
स्वीचक्रुस्त्यागमार्गं त्वरित विमलधिया यो ह्यलो दिव्यदीक्षाम् ।
दिव्यात्मा दिव्यशक्ति प्रभवतु च सदा श्रेयसे प्राणिराज ॥१३

त्रिगुप्तिगुप्तिपालो धृतपञ्चमहाव्रतश्चाष्टसेवी प्रभावी ।
षीत्रायोद्घोषवाग्मी सुप्रभुजिनवचोवत्मचारी प्रचारी ।
क्लोवध्वस्त-रविदविचितमवभय स्वयमायो मनोज ।
सर्वेऽप्यपा यस्य प्राभूत् सक इह जयतात् श्री पूज्य लोकनाथ ॥१४॥

लोभो य मोहभीत स्पृशति नच कदा तज्जकोप कुन स्यात्
शान्तात्मा शान्तचेता स्वपरजनसम सिद्धविद्या तवेत्ता ।

छेत्ता य संशयानां गुणिगणसमितौ सर्वधर्मैकभावो ।
जीयाद्दीर्घमनस्वी सकलजनतते श्रेयसे नौमि चेहे ॥ १५ ॥

कः कोऽस्या तादृशोऽस्ति प्रवरगुरुमिम नैव जानाति विज्ञम् ।
यस्मिन् कस्मिंश्च शास्त्रे प्रगतिरिह गुरो प्राभवद्वर्णनीया ।
शास्त्रज्ञानार्कदीप्त्या प्रहृतजनमनोऽज्ञान-नैशं हि येन ।
सोऽयं श्री भव्यबोधी भवतु च सततं श्रेयसे विश्वभाजाम् ॥ १६ ॥

ऋद्धिर्यस्यास्ति दिव्या प्रविलसतितमामक्षयाऽमेयसख्या ।
ग्राहं ग्राहं कियन्तोऽतिविपुलं धनितं प्राभवन् सा तथाऽपि ।
तेनेदं येन विश्वं प्रकटितविभव छिन्नदारिद्र्यमूलम् ।
चक्रे त ज्ञानवन्त भुवि दिवि विदितं सम्भजेऽज्ञानहृत्यै ॥१७॥

शिक्षा दीक्षा यदीया विबुधमतिपरा चित्रकाव्यावलोकात् ।
सर्वज्ञेशागमज्ञस्तदभिमतदिशा घोरससारसिन्धौ ।
धृत्वा पाऽनेकान् दयालु पतत इह जनाञ्चक्रिवास्तीरभाज-
स्तस्मै मे दिव्यकालं त्रिककरणतया स्यान्नमो मौलिपाणे ॥ १८ ॥

जीयाज्जीर्णाक्षवृत्तिर्विगतकलिमलः सिद्धबोधद्विराय ।
चान्द्री कान्तिञ्जयन्त्या दिशि दिशि स गुरुर्यीयमानेद्धकीर्त्या ।
यत्कीर्त्या नष्टतापा प्रमुदितहृदया भान्ति चाद्यापि मर्त्या-
स्तादृक्ष विश्वबन्धु क इह नु मनुजो नो भजेत्तं यजेऽहम् ॥ १९ ॥

मन्ये यस्यावतारः समजनि भुवने चित्रकाव्यावनाय ।
चारव्या तेनास्य जाता त्रिजगति विदिता त्रि पुरालोककर्षि ।
आसन् यस्मिन् गुणास्ते हिमकरविमला द्योतयन्तोऽभिधानम् ।
तादृक्षानन्तधाम्नो नतिरतिप्रणता पादयोस्तस्य मेऽस्तु ॥ २० ॥

हत्वा कर्मानुबन्धं भवभयजनिदं स्वल्पकर्माभवन् सन् ।
दिव्यात्मालोक-पूज्यो भवभवननिधि ज्ञाननावा वितीर्य ॥
दुष्प्राप्यध्यानयोगाद् धृतहृदयजिनं सद्गुणि यो विलेभे ।
सोऽयं भूयान्महात्मा सकलजनिजपा श्रेयसे पारदृश्वा ॥ २१ ॥

रामाकामाभिलाषा न च मनसि कदा यस्य भूम्न प्रजाता ।
मुक्तीरामाविशुद्धा यमयत मुखदा नित्यसंगाभिशोभा ।
यत्संगाग्नैव भूयो जनिमरणभयं लभ्यते मा च कैश्चि
दाजन्याद् ब्रह्मदीप्तं गुरुवरमहकं नौमि नित्यं त्रिमन्त्रम् ॥ २२

जन्मेदं मानवं यं बहुसुकृततया लभ्यते बोधहेतु ।
प्राप्येदं ज्ञानमार्गं त्वय सुकृतपथे साधुसया मनीषा ॥
केषांचित्पुण्यभाजां जगति प्रसरति त्रिपुरालोकयोगी ।
तादृक्षो येन बोधात्स्वविषयकरतिर्नो कृता तेन धन्य ॥२३॥
सानंदं बक्षमाणुघनहृदयतमं संहरन् ज्ञानकोशं
सन्मार्गे योजयन्वं स्वकमनुभजनि साधयन् सन्तपोभिः ।
आत्मा चैकं सुदर्शी मतविनिगमकाद् बोधयन् प्राणिवर्गम्
रेजे यो दोषमुक्तः स च भवतु सदा सद्गुरुभूतयेऽस्य ॥ २४ ॥
हृत्वा देहस्थमरिव्रजमतिबलमं शान्तिजकगनं पूर्व
निर्वाणनिमयात्मा क्षितितलमखिलं चक्रमाणः समन्तात् ।
जमी वाणी पवित्रा प्रतिजननिवहे द्योतयन् युक्तियुक्ताम्
रेजे यो दोषमुक्तः स च भवतु सदा सद्गुरुभूतयेऽस्य ॥२५ ॥
च–न्द्रा योऽभूव आसीत् निजपरसमयज्ञान विज्ञानवेदी
यस्मादो यदीये वचसि तु विमले क्वापि नाभूदणीयान् ।
येनाध्यात्मभवनस्य सुरभितकुसुमे चञ्चरीका इवायन्
सोऽयं श्रीसमयोगी विलसतु भुवने नौमि तं मालिपाणिं ॥ २६ ॥
का–न्तिश्चका चिरस्था न बत ! तनरिय पञ्चभूताभिताऽपि
सा नो यस्यास्ति भव्य तकयनिष्कला निष्कलका यदीया ।
तुर्याशा कोपमाऽङ्क भुवकुमुदचयं द्योतयन्ती विभाति
सोऽयं सत्कीर्तिशाली विलसतु च चिरं प्राणिनां सर्वदेव ॥ २७ ॥
ज–न्म यत तद्दिनाद्धि प्रथितमिदमहो तेन य म मिताऽपे,
यद्येन क्वापि जाते तकअशमकृतोऽकारि गोपायचिन्ता ॥
प्राभूदधीरस्वभावी मदविषयहरः धममेव सुमेने
धमध्रमी सुधावाद मुनिरिह सततं लोकनामाऽस्तु भूत्य ॥ २८ ॥
म–न्नो यस्यार्भवाद्वात्समजनि विपुलो ज्ञानपायोधिजात्वै ।
लब्ध्वा चिन्तामणिं या बहुसुकृतवशात् कीदृशी लोष्ठकाम्या ॥
पीत्वा ज्ञानामृतं यो भवति भवमहो क्षारनीरेऽस्य लिप्सा ।
ज्ञानानन्दी मुनीनां निखिलसुखप्रदं ज्ञामना दोषमोठ ॥ २९ ॥
हो–रक्षाकापकारी क्षणमपि मनयो नात्यवाहि प्रमादात् ।
द्रव्याग्निसनबोधाम्बनुरमुनिजनर्लौकिक भावगम्भ

कार्यां वृत्तिर्जिनोक्तिं स्वविमलहृदये धारयन् यस्तथाऽभात् ।
सोऽत्र मन्काव्यकारी जयतु पृथुयशाः काव्यदाक्षिण्यवेत्ता ॥३०॥
सच्छीलस्यन्दनेऽयो विशदमतितया कौशलं येन दिव्य ।
चित्रालंकारकाव्ये विबुधमतिपरे ज्ञानमातंगकेऽपि ।
प्रादर्शि श्रीतरीत्याऽखिल–निगमशिरोमूलमन्त्र–प्रकाशे ।
स्याद्वित्वि व्यक्तभावः कविकमलरवि सद्गुरुश्चैव जीयात् ॥३१॥
अष्टाभ्रकेऽन्दुवर्षे धवलहरिदिने पौरवाम्बोरिमध्ये ।
कर्माऽभ्रकेन्दुकाब्दे रमशुचिपदकंग्राम साधाऽभिधाने ।
नन्दाभ्रकेन्दुवर्षे लघुतमवयसा येन चैते निबन्धा
बुद्ध्वा यान् वीक्ष्य विज्ञा स्ववदनविवरे तर्जनीमानयंते ॥३२॥

॥ इति द्वात्रिंशिका ॥

॥ अथ फल श्रुतिः ॥

निर्लोकसूरिराजस्य सद्गुणाख्यानपावनाम् ।
द्वात्रिंशिकामिमां भक्त्या यः पठेत्सोऽस्तु सश्रम ॥३३॥
आनन्दर्षि–महायोगि–वचनाऽमृतपायिना ।
रचितेयं यथाशक्ति–द्वात्रिंशा चित्तमोदिनी ॥३४॥

॥ ॐ शान्तिः ३ ॥

वि. सं. २०१७ नभोमासे बाहुल्यपक्षे मंदामावास्यायां ।
महाराष्ट्रदेशान्तर्गतबाम्बोरीनगरे–समाप्तिमगीगमत् ॥

बद्रिकाश्रमान्तर्गतमनोडा ग्रामवास्तव्य सा. आ. प. माधवानन्द शास्त्रिणः श्रद्धांजलि

अयि सज्जनाः ! पाठकवृन्दाः ! प्राक्तनापूर्वसंस्कारवशतोऽहं परीक्षामहोदधि समुत्तीर्य अदृष्टाश्रुतपूर्वश्रीजैनधर्मावलम्बिसच्चारित्रशालि श्रीवीतरागपथाभि–दर्शिजैनमुनीन्–अध्यापयितु–मर्बुदारण्यपार्श्ववर्तिन्याः सीरोहीनगर्याः समीपे शोभायमानमुण्डारानामग्राममधिश्रियम् । तद्दिनादारभ्याद्यावधि तैरेव सह मरुधर–गुर्जरमालवमेदपाटगोमान्तकमहाराष्ट्रादिप्रसिद्ध–पत्तननगरग्रामादिषु पादचारी वा यानादिविहारी सन् नानेव–पाठयामि । ऐषमे हायने दक्षिणाशाविराजमानरामेश्वर कन्याकुमारीमीनाक्षीसुन्दरमहादेवादितिमण्डपावनतीर्थानां यात्रां विधाय विधि–प्रेरित इव वीरमति भिक्षामहरमुनिसम्मेलने ईप्सितरचितानां–शान्तदान्ततितिक्षु–

दयोदधिनिखिलागमतत्त्वपारगामिना सवत्र सवदा सर्वेषु समानवर्तीनां स्वपर जनसमवायकचित्तानाम सदानन्दप्रफुल्लवदनकमलानाम अविश्रान्तचेतसाम सुधा-मुधाकारिसदुपदेशानव भव्यप्राणिप्रतिबोधचातुरीसंमूषीविभ्राजमानानाम पूर्वमाचाय पदसमलङ्कृतानाम तदनु समाजोत्थानहेतुतत्पदपरित्यागेऽपि विकसितमुखारविन्दानाम पुन सर्वमुनिराजसम्मत्या प्रधानमन्त्रिपदविभूषितानाम, पुनरपि बृहत्साधुसम्मेलनप रामर्शेनैव साम्प्रतमुपाध्यायपदविदितानाम, चतुर्दिग्विहरणपवित्रीकृतधरामण्डलानाम महाराष्ट्रकेसरिणाम प्रकाण्डविदुषाम श्री १००८ श्रीमदुपाध्यायानन्दऋषिमहाभा-गानाम सविध अहमदनगरोपकण्ठे वाम्बोरीनामविख्यातग्रामे बाम्बोरीनगरे आजीगमम्। तत्र प्रकृतिसरलाना सेवा सौजन्यन वशीभूत इव तच्छिष्यवर्ग पाठयन लेखनकार्यञ्च विदधत् सुखन प्रातिष्ठम । तत्रव चातुर्मासप्रसगे श्रीमदुपाध्यायमहाभागानाम् अति गवषणया महता परिश्रमेण एकत्रीकृतानाम श्री १००८ श्री आगमोद्धार-शासनो द्धार-प्रतिप्राणिसमुत्थानकारिणाम श्रीतिलोकऋषिपावननामसमलङ्कृतानाम् श्रीति लोकऋषिवरनिर्मितविविधचित्रविचित्रका यस दोहाना पश्यन् इव वय महान् व-सागर माघवो मज्जनोन्मज्जनमकार्षीत । तथापि ग्रामकुञ्जरचित्रालङ्कारकाव्योचित लेखनचली अतिरमणीयलिपिर्यासां स्वल्प वयसि अतिमात्रपरिश्रमञ्च अखिल श्रीकृत्य कस्यसहृदयस्य विदुषश्चेतश्चौतानि न चमत्कुर्वन्ति ?

अत पुण्यपत्तन (पूना) पार्श्ववर्ति मनोहरघोडनदीनामपुरवरे जनवरीमा सस्य द्वितीयतारिकायां २-१-६१ महता महोत्सवेन भाविनि शताब्दीमहोत्सवे स्वर्गीयजनानन्ददायिना-भूमण्डले च कीर्तिमयकायशरीरेण विराजमानानां श्रीतिलो-कर्षिमहाभागानां प्रीतये सादर सविनय श्रद्धाञ्जलि सत्करकमलयोरर्प्यते ।

मुहूर्त ज्वलित श्रेयो न च धूमायित चिरम

लेख—भाऊसाहब श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया (अहमदनगर)

प्रात स्मरणीय पुण्यश्लोक पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के दीक्षा-शताब्दी का महोत्सव मनाया जा रहा है। इस शुभ अवसर पर आपके चरणों म श्रद्धाञ्जली अपण करन का मौका मझे मिल रहा है। यह मेरा बडा भाग्य है, एसा म मानता हूँ। पूज्यपाद म०श्री को मन देखा नही,उनकी पवित्र वाणी श्रवण करन का मझे प्रत्यक्ष लाभ मिला नही कारण मेरा जन्म होन के दो वष पूर्व ही आपश्री की जीवन यात्रा पूण हो चुकी थी।

तथापि अहमदनगरवासी पुरखाओ से और विशेषत मेरे पिता श्री से आपके बारे म मन जो कुछ सुना और आपके ग्रंथ तथा इतर साहित्य कुछ मने देखा, उस जो श्रद्धा भाव मेरे मन में पैदा हुए उनकी ही यह श्रद्धाजली प्रतीक है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० को दीर्घ-आयुष्य प्राप्त नहीं हुआ। आपका ३६ वर्ष में ही देहात हो गया। आपके जीवन का दस वर्ष का काल बाल्यावस्था में गया। दसवें वर्ष संवत् १९१४ में आपने दीक्षा ग्रहण की। आपके गुरु महाराज का भी आपको आठ वर्ष ही समागम मिला। आपने बाल्य-काल में विशेष शिक्षा पाई हो ऐसा मालूम नहीं होता। आपमें पूर्वजन्म के संस्कार थे, उससे आपने दीक्षा लेने के बाद आठ वर्ष १९२२ तक गुरुजी के सान्निध्य में जो शास्त्रों का अभ्यास किया वही आपका शिक्षा-काल कहा जायगा। परन्तु इतने अल्प समय में आपने जैन तत्त्वज्ञान को पूरा हासिल कर लिया। इसमें आपके पूर्व जन्म के संस्कार ही बहुतांश में कारण हो, ऐसा प्रतीत होता है। आप जैन शास्त्रों के पूरे जानकार, तत्त्वज्ञान के अभ्यासी, कवि, चित्रकार और स्थानकवासी जैन समाज के अग्रगण्य-साधु थे। आपने अल्पजीवन में जो साहित्य-निर्माण किया, उससे अनेक भव्य-जीव गत सौ वर्षों से प्रभावित होकर अपना जीवन शुद्ध बनाने का प्रयत्न कर रहे है।

दक्षिण देशमें पधारनेवाले आप ही स्थानकवासी प्रथम साधु है। आप इस दक्षिण देश में नहीं पधारते और इधर के भविक लोगों को स्थानकवासी जैन धर्म के तत्त्व नहीं बतलाते तो स्थानकवासी जैन धर्म इधर पनपता कि नहीं इसमें संदेह है। आपके उपदेश से दक्षिण देश के अनेक स्त्री-पुरुषों ने स्थानकवासी जैन दीक्षा धारण की। गत सौ वर्षों में जो स्थानकवासी जैन साधु हुए, उनमें आपका स्थान बड़ा ऊँचा है।

आपके हस्ताक्षर बड़े सुंदर थे। जिस काल में मुद्रण-कला इस देश में प्रकट नहीं हुई थी उस काल में आपने जो लेखन किया है वह आज भी लोगों के दिल में आश्चर्य और आह्लाद पैदा करता है।

आपने एक पन्ने पर श्री दशवैकालिक सूत्र पूरा सुंदर अक्षरों में लिखा है, वह आपकी कलाकृति है। वैसे ही चित्रकला का अभ्यास नहीं होते हुए भी आपने स्वयं अक्षरमय ज्ञानकुंजर, शीलरथ, स्वस्तिक वगैरह चित्र लोगों को धर्म का उपदेश देने निमित्त बनाये, वह देखने का मुझे लाभ मिला। मैं यह सब देखकर आश्चर्य चकित हुआ हूँ। आपकी बहुत-सी कला-कृतियाँ पूज्य उपाध्याय श्री आनन्द-ऋषिजी महाराज के पास है। उनकी अच्छी तरह से सार-संभाल होना भविष्य काल के लिये जरूरी है। ये सब चीजें अजायब खाने में रखने लायक है।

इसके अलावा आपकी अपनी दैनंदिनी स्व-हस्ताक्षर से लिखी हुई आज भी मौजूद है। यह तो सच्चा इतिहास ही उस काल का हो सकता है। ऐसी

दलदिनी (डायरी) हमारे सब मुनिराज रखेंगे तो वह इतिहास को बड़ी सहायता करेगी।

अंत में यही भावना करता हूं कि हमारे स्थानकवासी साधु-साध्वी पूज्यपाद के जीवन से उदाहरण लेंगे और उन्होंने अल्प-आयुष्य में जीवन की जो ज्योति प्रकट की उससे मार्गदर्शन पाकर समाज का कल्याण करेंगे।



कवि-कुल-भूषण

पंडित श्री शोभाचंद्रजी भारिल्ल, ब्यावर

संत विश्व की सर्वोत्तम निधि हैं, अमूल्य संपत्ति हैं। इस निस्सार संसार को स-सार अर्थात् सारवान बनाने का श्रेय यदि किसी को है तो वह संत पुरुष को ही है। संत जगत की इस मरुस्थली में नंदन-कानन हैं। अज्ञान के अंधकार में ठोकरें खानेवाले प्राणियों के लिए प्रकाश स्तंभ हैं। वही त्रिविध ताप से संतप्त जगत के लिए त्रिपथगा हैं।

जब कभी ध्यान जाता है और सोचने लगता हूं कि यदि संसार में संत जनों का आविर्भाव न होता तो इसकी कैसी दयनीय दशा होती? मगर नहीं, अगणित अभिशापों से अभितप्त विश्व को संत के रूप में एक महान वरदान भी मिलता है, जिसे पाकर विश्व अपने समस्त दुर्भाग्य को सौभाग्य के रूप में परिणत कर सकता है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज इसी कोटि के संत थे। भारत के हृदय के समान मालव प्रदेश में जन्म लेकर उन्होंने दूर-दूर तक विचरण किया और आत्म-कल्याण के साथ जन-कल्याण में भी वे पीछे न रहे।

पू. श्री तिलोकऋषिजी महाराज 'कवि-कुलभूषण' के विश्रुत विरुद से विभूषित थे। छत्तीस वर्ष जितने अल्प जीवन काल में ही आपने विपुल साहित्य का सृजन किया। लगभग ७० हजार पद्यों की रचना की। आपकी कवित्व प्रतिभा अनूठी थी। अध्यात्म एवं वैराग्य रस की पावनी सरिता प्रवाहित करनेवाली उनकी रचनाएं पू. श्री अमोलकऋषिजी म० की रचनाओं को छोड दें तो स्थानकवासी परंपरा में बेजोड हैं। इन रचनाओं में से बहुत थोडी ही या ब पंडितरत्न उपाध्याय श्री आनंदऋषिजी म० के द्वारा संपादित होकर प्रकाश में आई हैं। अधिकांश अप्रकाशित ही पडी हैं। वास्तव में समाज की यह उपेक्षा अक्षम्य है आपने अपनी विशिष्ट कवित्व-शक्ति से समाज का अविस्मरणीय उपकार किया है।

आपकी कुछ रचनाएँ तो इतनी जन-प्रिय और बहु-प्रचलित है कि जन-जन की जीभ पर नाचती है। "कहत तिलोक" की निसर्ग सुंदर ध्वनि स्थानकवासी परंपरा के प्रत्येक धर्म-स्थान में प्रतिदिन कर्ण-गोचर होती है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० अपने युग के एक असाधारण मनीषी, वाग्मी, निस्पृह मुमुक्षु महापुरुष थे। उनके जीवन का ज्यो ज्यो परिचय प्राप्त होता है, त्यो त्यो उनके उच्च महान् व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा और आदर का भाव ही उन्नत होता है। आपने अपने अल्प जीवन-काल में विविध प्रकार के जो विराट् और महत्त्वपूर्ण कार्य किये है, उन्हे देखकर विस्मय हुए बिना नही रहता और लगता है कि यह यौगिक शक्ति का ही एक अद्भुत चमत्कार था।

कविकुल-भूषण म० का क्षर देह आज विद्यमान नही है, तथापि उनका अक्षर देह युग-युग तक विद्यमान रहेगा। और धर्म-प्रेमी जनता को पवित्र प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

इस महान् सत की रचनाएँ जिस दिन अविकल रूप मे प्रकाशित होकर जनता के समक्ष आएँगी, उसी दिन उनकी वास्तविक महिमा का मूल्याकन होगा, उसी दिन समाज उनके गुरुत्तर ऋण से आशिक मुक्ति प्राप्त कर सकेगा। मै उस महान् आत्मा को हार्दिक प्रणामाजलि अर्पित करता हूँ।

श्रद्धेय-वन्दनीय ऋषि-प्रवर

(सूरजचंद सत्यप्रेमी डांगीजी)

सिद्धि-स्थिति हमारा मुकाम है और साधु-जीवन हमारा मार्ग, यह शाश्वत सत्य है। इसका पूर्ण साक्षात्कार करनेवाले ही सर्वज्ञ, सर्वदर्शी परम पुरुषोत्तम कहलाते है। उन्ही की वाणी निर्ग्रन्थ प्रवचन के नाम से विख्यात है। उस वाणी के जो महान् द्रष्टा ज्ञाता और अधिष्ठाता होते है वे आचार्य कहलाते है और लव-द्रष्टा होते है उन्हे ऋषि कहते है। इसी साधुमार्ग और सिद्धि-स्थिति के लव द्रष्टा एक लवजीऋषि हुए, जिनकी परपरा में हमारे श्रद्धेय वन्दनीय ऋषि-प्रवर त्रिलोकऋषिजी की दीक्षा हुई। उनके प्रति श्रद्धाजलि प्रदान करने के लिये परम पूज्य उपाध्याय श्री आनदऋषिजी प्रभृति ऋषि-गणो की मगल प्रेरणा से समस्त श्रावक समाज इस ग्रथ के रूप में शताब्दी-अभिनदन समर्पण कर रहा है।

दीक्षा का अभिनंदन सब जीवो के रक्षण का अनुमोदन है। जिससे बडा पुण्य और कोई नही, यह निर्विवाद सत्य है।

सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियं

भगवत निर्ग्रन्थ–प्रभु के प्रवचन संपूर्ण जीवों के रक्षण रूप दया के लिये ही प्रकट होते है। जिनकी माता समिति-गुप्ति अष्टप्रवचनमाता कहलाती है, जो केवल दया पर ही आश्रित है। तीन तीन भवों से लगातार सब जीवों के रक्षण की तीव्र भावना से ही तीर्थकर का परम पद प्राप्त होता है। जो भगवती दीक्षा का जनक है। उसका अभिनंदन संपूर्ण विश्व और विश्वंभर के अभिनंदन से भी अधिक कल्याण–कारी है। व्यष्टि का समष्टि के लिये बलिदान ही दीक्षा है और समष्टि में से उत्तम परमेष्ठि-पद प्राप्त करना ही सिद्धि है। स्वयम अव्यय को ॐ अव्यय के लिये देना दीक्षा है और 'ॐ अव्यय का अहम' अव्यय बन जाना ही साध्य की उपलब्धि है। इस उपलब्धि को जिसने सम्यक् प्रकार से देख लिया उस द्रष्टा के अभिनंदन में अनुमोदन करने के लिये मैं सम्मिलित हूं यह इस 'अहम' का भी सामान्य है। यह 'अहम' की दया है।

पूज्यपाद ऋषि प्रवर के स्वर्गवास के समय तत्कालीन संघप आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज ने फर्माया था कि जैन समाज का सूर्य अस्त हो गया। यह यथार्थ है परन्तु परमार्थ यह है कि जहां न पहुंचे 'रवि' वहां पहुंचे कवि। वे कविवर भी थे इसलिये सूर्य से भी अधिक प्रकाशक थे। सूर्य बाहर ही प्रकाश करता है—इन्द्रियों को। पर वे अंदर प्रकाश करने वाले थे मन को और अगर आगे जाकर यह कहूं तो भी अत्युक्ति न होगी कि जहां न पहुंचे कवि' वहां पहुंचे अनुभवी यानी अनुभवी आत्मा को जागृत करते हैं-हमारे ये ऋषि–प्रवर निर्ग्रन्थ मुनिराज होने से अनुभवी भी थे जो जन-जन की आत्मा को आज भी जागृत कर रहे हैं। निश्चित है कि वे आज स्वर्ग में है और हम उनके प्रति यह प्रार्थना करते हैं और प्रार्थना क्या कर ? बिना ही प्रार्थना किये यें प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं कि स्वर्ग में विराजमान होकर भी वे अपने शिष्यों को यह प्रेरणा दे रहे हैं कि वे जन-जन की आत्मा को जागृत करने के लिये शक्ति से अनवरत सेवा करते रहें। हमें लिखते हुए आनंद होता है कि स्वर्गस्थ शिष्य रत्न सबंधी रत्नऋषि रत्नत्रय की परम उपासना करने के लिये जीवन भर ज्ञानदर्शन चारित्र्य की जागृति करते रहे और पीछे एक ऐसे शिष्यरत्न को छोड़ गये जो केवल एक संप्रदाय की आचार्य पदवी का समर्पण करके भी समस्त संप्रदायों की उपाध्याय पदवी ग्रहण करके ज्ञान दर्शन-चारित्र्य का प्रभाव सर्वत्र फैला रहे हैं।

अनेक पद्धतियों से परम-पूज्य उपाध्याय श्री आनंदऋषिजी महाराज आज भी जिन–प्रवचनों का पठन-पाठन कराने का परम पुण्य कार्य संपन्न कर रहे हैं। हम सब उनकी तरफ दृष्टि खुली रख कर उनके प्रकाश को झेलने लायक बन जायं यही बहुत है।

श्रीमान् पं राधाकृष्ण जी शर्मा, एम् ए, (हिंदी-सस्कृत) बी. ए बेसिक, साहित्य रत्न, आयुर्वेदाचार्य, प्रधानाध्यापक गवर्नमेन्ट एस टी सी ट्रेनिंग स्कूल बेदला (उदयपुर-राजस्थान) की ओरसे

श्रद्धांजली

मुझे यह जानकर परम प्रसन्नता हुई है कि अल्पायु में ही दीक्षा ग्रहण कर वैराग्य और त्याग के मार्ग पर चलनेवाले, मिथ्यात्वरूपी अंधकार के लिए चंद्रवत्, महागुणवान्, अध्यात्म से ओत-प्रोत, किंतु व्यावहारिक उपदेशो से श्रावको के अज्ञानाधकार को मिटानेवाले, काव्य कला-निधान, धर्म-दीपक, स्वय और अपनी शिष्यावली से आगे भी जैन-जग को आलोकित करते रहने की परपरा स्थापित करनेवाले, बालब्रह्मचारी, अल्प-काल ही में कल्पनातीत अलौकिक कर्मों का सपादन कर देनेवाले, पूज्यपाद, कविकुल-भूषण श्री तिलोक ऋषिजी महाराज के दीक्षा-शताब्दी-समारोह के उपलक्ष में श्री तिलोक शताब्दी अभिनदन ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है। यह प्रकाशन पूज्यपाद के उपकारो के प्रति प्रकाशक की कृतज्ञता प्रकट करने के साथ साथ धर्म-प्रेमी जिज्ञासुओ को भी प्रकाशित करेगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

इस अवसर पर ऐसे विद्वान्, आचारवान्, दयादक्ष, काव्यकर्ता पूज्यपाद के प्रति मेरी ओर से सादर अपनी श्रद्धाजली समर्पित है।

शुजाल्पुरवाले श्री शांतिलालजी जैन वकील मु० राजगढ

पूज्यपाद प्रात स्मरणीय महात्मा श्री तिलोक ऋषिजी महाराज सा० की सौ वर्ष-पूर्व प्रज्वलित दीप-शिखा जैन समाज के ही नही अपितु सवर्ण-सकुल त्रिताप-पीडित मानव समाज के प्रगति-पथको उत्तरोत्तर आलोकित करती रही है। छत्तीस वर्ष की अल्पायु, जहा साधारण बुद्धि के सामाजिक व्यक्ति को अपने स्वल्प विद्याध्ययन और किंचित् गृहस्थाश्रम के लिये भी पर्याप्त नहीं होती, वहा गूढतम शास्त्रीय अन्वेषण और साठ हजार पद्यो की रचना के साथ नाना प्रदेशो में आगमानुसार उत्कृष्ट क्रियावत साधु-जीवन के सहित विचरण करते हुए सद्धर्मोपदेश द्वारा नाना जीवो को कल्याण-मार्ग में प्रवृत्त करना, पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज श्री की अद्वितीय प्रखर प्रतिभा, उत्कृष्ट साहस और तीव्र मेधा का चमत्कार है।

जिस काल में, आज से सौ वर्ष पूर्व महर्षि ने ज्ञान-प्रसार तथा नाना ग्रंथ-रचना का भीषण कार्य किया, उस समय की कल्पना आज के यत्रबहुल भारत में किया जा सकना दुष्कर है। उस समय न तो राष्ट्रीय-चेतना विकसित हुई थी और

न समाज के विभिन्न वर्गों में सहयोग की प्रवृत्ति ही थी न विचारों के प्रसारण या पारस्परिक संपर्क-साधना के उपकरण ही इतने प्रचुर थे। मुद्रणकला समाचार-पत्र यातायात भारत में अत्यन्त प्रारंभिक स्थिति में थे। राजपथ भी पूर्णतया निर्धारित नहीं थे। ऐसे विषम समय में दुर्गम पर्वतीय मार्गों से उत्तर के मालवा से दक्षिण प्रदेश तक की पद-यात्रा जिस महर्षि ने किसी प्रकार से पूर्ण की उनके अदम्य साहस की तुलना आज कौन कर सकता है? सौ वर्ष के उपरांत उनकी यात्रा की लम्बाई कितने हजार मीलों की रही होगी? उसका गणित लगाकर कौन बता सकता है? सर्वतोमुखी प्रतिभा के द्वारा जिसने कविता चित्रकला वक्तृता वादविवाद तपस्या और क्रियाशील साधु-जीवन को पूर्णतया आच्छादित और आप्लावित किया था आज ढूंढने से भी उसका मिलना दुष्कर है।

स्वर्गवासी महर्षि द्वारा निर्मित काव्यांश आज भी जैन समाज में दैनिक आवश्यक अंग हैं और जन साधारण उनसे अनेक प्रकारकी प्रेरणा लेते हैं। स्थानकवासी जैन समाज पर उनके जो अनंत उपकार हैं उनकी पावन स्मृति स्वरूप यदि उनकी अभिनन्दना की जाय तो यह जैन समाज का स्वयं अपने पर ही उपकार होगा। उनके उपदेशों से प्रेरणा लेकर विगत सौ वर्षों में अनेक भव्यात्माओं ने सन्मार्ग ग्रहणकर कल्याण प्राप्त किया होगा और सौ वर्ष के उपरांत संकलित रूप में उनकी रचनाओं का प्रकाशन सम्भवतः और कई-सौ वर्षों तक ज्ञान पथ को आलोकित करता रहेगा ऐसी आशा किया जाना सर्वथा उपयुक्त होगा।

प्रातःस्मरणीय दिवंगत महर्षि के वचनामृत का पठन-पाठन का सुयोग जो इस प्रयास के द्वारा मिल रहा है वह भी उन स्वर्गस्थ आत्मा की अप्रतिहत जन-कल्याण की कृपामयी भावना का ही सूचक है। संतों के जीवन का क्षण-क्षण मंगलप्रद होता है। आज भी धर्म-कार्यों में विद्यमान तथा कृतियों में साकार महर्षि की दिव्यात्मा अज्ञान का नाश और ज्ञान के प्रसार में सक्षम है और आनेवाली शताब्दियों में भी उसी प्रकार प्रवृत्त रहेगी इस निश्चल विश्वास के साथ ही यह विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज का संक्षिप्त जीवन वृत्त

वालाराम कवि-किंकर, चाँदपोल वाहिर जोधपुर

वीर-छंद,

भव्य भूमि भारत के अंदर, नगर अनूपम है रतलाम,
श्री मालव प्रदेश में जो है, सब से बढ़कर लोक-ललाम
उसी नगर में राजे देखो, सुख-समृद्धि सपन्न सु-धाम
ओस वंश-अवतंस-सुराणा, दुलीचन्द है जिनका नाम ॥१॥
अर्द्धांगिनी अनूपम जिनकी, पति-भक्ता पदमिनी-सी जान,
अभय जनन में शोभा पाई, नानूबाई सद्‌गुण-खान ॥
उसी खानसे प्रकट हुआ, यह धर्मवीर नर-रत्न प्रधान,
करे आज गुन-गान उसी का, बड़े मान से सब मतिमान ॥२॥
वेद व्योम निधि चंद्र वर्ष अरु, ऋतु वसंत है सुखद महान्,
चैत्र कृष्ण तिथि जया तृतीया, रोहिणेय शुभवार पिछान ।
उत्तम योग मिले सब आकर, जन्म लिया जब इसने आन,
सुंदर नाम दिया जोतिषि ने, श्री तिलोक शशधर गुन-खान ॥३॥
बालचंद्र सम नित प्रति बढ़ता, लाल अहा! यह बुद्धि विशाल,
पति-वियोग से व्यथित हुई, माता को रखता ये खुशहाल ।
बड़े भ्रात हैं दो पुनि जिसके, एक बहिन भी है सुकुमाल,
किंतु सभी ये एक छत्र-बिन, रहे उनमने तीनों काल ॥४॥

हरिगीतिका छंद

पति-देव गे पर लोक तब, पत्नी स-गर्भा थी सही
इस हेतु उनके साथ में, जाना उचित समझा नहीं ।
पर हृदय उनके साथ ही, अपना सती ने दे दिया,
संसार से उपराम हो, वैराग्य-रस मन मे पिया ॥५॥

राधेश्याम तर्ज

निज संतति की सेवा करते, नौ वर्ष बीत गे नानू के,
दुष्कर्म सभी जब बीत गये, तब दर्शन भये सु-भानू के ।
शुभ वान मुनी, पुर के वाहिर, अयवंता ऋषिवर आये हैं,
तब संघ जाय सन्मुख बधाय, गुरु को पुर अंदर लाये हैं ॥६॥

है उगते सूरज-समान, गुरु का मुख-मंडल छाज रहा
हृदयांकित-तम मिथ्यात्विन का जिसको निहार कर भग रहा।
कर पाठ तिखुत्ता से वंदन, श्री संघ सामने बैठ गया
मुनि-संयम का सुंदर स्वरूप मन में तिलोक के पैठ गया ।।७।।
गुरु देते यों उपदेश अहा, कंचन-सी नर की काया है
हा काम क्रोध मद-लोभ विवश जिसका हम मूल्य घटाया है।
नर-नारायण की जोड़ी है यह सूक्ति अहो! हम भूल गये।
बन नर के कर्ता स्वयं आप रचते हैं नाटक नित्य नये ।।८।।

वीरछंद

इस नश्वर वैभव को तज के चले गये नर-वीर अनेक,
किंतु साथ में ले न के गये, कच्चो सूत का धागा एक।
जैसी करणी वैसी भरणी सूक्ति अहा! यह कैसी नेक,
केवल-ज्ञानी की है वाणी, रख मेरा की ईश्वर टेक ।।९।।

दोहा

आये मूठी बांध हम जावें हाथ पसार।
जो शुभ करणी ना करे सो वैतरणी त्यार ।।१०।।

नाटक छंद

घन से गिरी तप्त कड़ाहे पै बूंद नाश हो जाती है
वही बूंद कदली पत्ते पर मुक्त रूप दिखाती है।
अगर स्वाति नक्षत्र मध्य वह सीप बीच गिर जाती है
तो कहिये सन्मित्रो ! कैसी नभ में वह लहराती है ।।११।।
यही हाल उपदेश रत्न का जौहरी हो सो पहचान
मलयागिरि-चंदन की सौरभ कीच कीट हा! क्या जाने ?
तहत वाणि अरु 'धणी खमा' के नारे सभी लगाते हैं
पर वे घर जाते अब देखो वस्त्र झटक कर जाते ।।१२।।
सदुपदेश यों सुन सद्गुरु का, नानूबाई हरषाई,
पुनि तिलोक का मुख विलोक यों बोली उसके मन भाई।
अगर हृदय में तेरे पक्का रंग किरमिची छाया
तो गिर जा सद्गुरु-चरणों में है आशा मेरी जाया ।।१३।।

लावणी

पा हुक्म माता का, श्री तिलोक हरषाया,
अविलंब उठकर गुरुको शीश नँवाया ॥ टेर ॥
कर जोर कहे गुरु देव ! अरज सुन लीजे,
दीक्षा की भिक्षा करुणा कर द्रुत दीजे ।
है समय बड़ा अनमोल वृथा ही छीजे,
लख सच्चा शिष्य का प्रेम गुरु मन रीझे,
तब अथवंता जयवंता मत्र सुनाया ॥पा०॥१४॥
दीक्षा की भिक्षा गुरु से ले सुखकारी,
था किया ज्ञान-अभ्यास जिन्होंने भारी ।
जब देते थे उपदेश अहा ! अविकारी,
तब मन-मुग्ध से हो जाते नर-नारी ।
है निर्मल यश दुनिया में जिनका छाया ॥पा०॥१५॥
की भव-भय-भजन हेतु विमल जिन करणी,
पुनि एक लक्ष जिनवर-गुण-गाथा वरणी ।
शुभ चित्रकला भी जिनकी है मन-हरणी,
तम-मिथ्यात्विन का हरने हित ये तरणी ।
गुरु के जीवन का टुक हाल बाल-कवि गाया ॥पा० ॥१६॥

पूज्यपाद श्री की स्मृति में
विजयनगर व गुलाबपुरा श्री संघ की तरफ से सादर एवं सस्नेह समर्पित
कतिपय श्रद्धा-सुमन

हे जैन विभूते ! आज हम विजयनगर व गुलाबपुरा के स्थानकवासी आपकी पावन स्मृति में कतिपय श्रद्धा-सुमन प्रस्तुत करना अपना मुख्य कर्तव्य समझते हैं। वस्तुतः आज हमें उस सादगी व तप-त्याग की मूर्ति की स्मृति हो आती है कि जिसने अपनी अपूर्ण दस वर्ष की अवस्था में ही जीवन-निर्माण का प्रारंभ बाल ब्रह्मचारी पंडितवर्य गुरुवर्य श्री अयवंता ऋषिजी म० के विचारों से किया और एक मूक साधक व सेवी के रूप में अपने व्यक्तित्व को छिपाते हुए लोक-प्रतिष्ठा से दूर रखा। परन्तु हीरे में अंतर्निहित गुणों का प्रकाश लोक-मानस को प्रकाशित एवं प्रभावित किये बिना नहीं रहता। इसी हेतु आपका व्यक्तित्व प्रातःस्मरणीय गुरुजी के सान्निध्य से अधिक तेजोमय और जन-मानस

के आकर्षण का केन्द्रबिंदु बन गया। आपका व्यक्तित्व वह स्वर्ण है जो श्री अमृषता ऋषिजी म० की विचार-ज्वालाओं में तपा और अंत में अपने प्रबल तपस्तेज द्वारा दक्षिण प्रांत में जन ज्योति को जगमगाकर कुंदन बन गया।

सादगी व त्याग की मूर्ति

मालव देश में रतलाम शहर की पावन स्थली में इस महात्मा का जन्म हुआ। आप साक्षात् सादगी व तप त्याग की मूर्ति थे। मुख पर सौम्यता व चतुरता वाणी में वाग्मिता निश्छलतापूर्वक मिष्टभिता–भाषण स्वभाव में चन्द्रमा के समान शीतलता समुद्र–सम गांभीर्य और झुकी हुई पलकों में एक उच्च योगी सी प्रतिमा के समक्ष जो कोई भी दर्शनार्थ आता था तो आप उसे बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे।

सत्य अहिंसा, अपरिग्रहादि वस्त्रों से सुसज्जित आपकी मूर्ति में जन समाज के लिए सेनापति से अधिक अलबेल सैनिक बने रहने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। यही एक मात्र कारण है कि आप सम्यकी साधना एवं गवेषणा पर जैन शास्त्र की दीप पंक्ति के यशस्वी लेखक और अग्रगण्य कलाकार थे।

जैन समाजके सुयोग्य प्रशासक और कर्णधार

मानव प्रज्ञाके शिल्पी जीवन दर्शनके गायक, सच्चे साधक, जैन साहित्य–गगनके देदीप्यमान उज्ज्वल सितारे त्याग–तप के धनी श्री तिलोकऋषिजी म की अध्यक्षता में संवत् १९२२ से संवत् १९४० की दिनचर्या और चातुर्मास को जो बल मिला, वह अत्यंत ही श्लाघनीय एवं प्रशंसनीय है। आपने इस काल में अपनी वाक्य-चातुरी ज्ञान बल तथा शास्त्र नानृत्व एवं मधुर अमृत तुल्य वाणीके द्वारा जन बीजांकुर को पल्लवित और पुष्पित किया वह किसी से छिपा नहीं है। प्रवचन के समय लोगों की मंत्रमुग्धता, एकाग्रता व शांत वातावरण आपके सुयोग्य और सफल प्रशासन का ही सूचक है।

कुशल–लेखक

आप जैन साहित्य के उत्कृष्ट कवि पंडितवर और सुलेखक थे। आप भावी जैन समाज के भाग्य–स्रष्टा ही नहीं, अपितु भव्य प्रासाद थे। जिसपर जैन समाज को गर्व है और आपके पदचिन्हों का अनुकरण कर अपनी यशो विजय-पताका दिग्दिगंत में फहराने का सामर्थ्य है। यह बल एक मात्र आपके ही कारण मिल सका है। आपने अदम्य निष्ठा और वेग से जैन साहित्य का सृजन किया। आप मुनिग्यान ओजस्वी लेखक थे। आपको लेखन–कला से उत्कृष्ट प्रेम था। उसका जीता जागता प्रत्यक्ष उदाहरण स्वरूप आपके हस्त लिखित अनेक ग्रन्थ

पत्र प. मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म. के पास है। आप उत्कृष्ट महामुनि होने के अतिरिक्त उच्चकोटि के अग्रगण्य चित्रकार भी थे। आपका भगवतीजी शास्त्रानुसार कविता मय एवं गद्यमय ज्ञान-कुंजर है। जिसमें अठवीस चार-सहित वृहत् हाथी का आकार है। वह अत्यन्त ही लाभप्रद एवं सफल चित्रकारिता का आदर्श नमूना है।

आपमें सत समागम करने की अभिरुचि थी तथा गुणग्राहकता आपके रोम २ में व्याप्त थी। इसी तरह क्षीर-नीरविवेक के आप पूर्ण ज्ञानी थे। उन्हीं सद्गुणों से सारा जैन समाज आपका आभारी है।

श्री धर्मदास जैन मित्र मंडल रतलाम के मंत्री श्रीमान् लखमीचंद मुणोत की तरफ से श्रद्धांजली

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड (पाथर्डी) की ओर से कविकुल-शिरोमणि पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० सा० का दीक्षा-शताब्दि-समारोह आयोजित किया गया है। यह संदेह से अतीत वास्तविक तथ्य है कि पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० सा० ने अपनी प्रखर कवित्व-प्रतिभा से जैन धर्म के सिद्धान्तों का व्यापक प्रसार एवं प्रचार किया है। गूढतम विषयों को कविता द्वारा सुबोध और सुगम बनाया है।

आपकी कविताओं में प्रसाद और प्रवाह का अनुपम पुट पाया जाता है। प्रतिक्रमण के समय वंदना बोलते हुए आपके रचित सवैये बोले जाते हैं, जो इस बात के प्रमाण हैं कि आपकी रचनाएं कितनी लोकप्रिय हैं। ऐसे शासन-प्रभावक संत-प्रवर का दीक्षा-शताब्दी-समारोह मनाना जैन समाज के गौरव के अनुरूप ही है। हम इस आयोजन की सफलता चाहते हुए कवि-कुल-शिरोमणि के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजली समर्पित करते हैं।

पूज्यपाद श्री की अद्भुत कवि-कल्पना पर प्रकाश

श्री ज्ञानचंदजी मिश्रीमलजी कर्णावट बी ए एल एल बी वकील, अहमदनगर

पूज्यपाद श्री १००८ श्री तिलोकऋषिजी महाराज का जन्म रतलाम मालवा प्रान्त में वीर संवत् १९०४ मिति चैत वद ३ को हुआ। पुण्य कर्म के उदय से पूज्यपाद श्री को बाल्य-काल में वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने संवत् १९१८ मिति माघ वद १ के दिन भागवती दीक्षा अंगीकार की। पूर्व जन्म के सुसंस्कार के कारण आपश्री ने अपनी छोटी अवस्था में ही बहुत से सूत्र कंठस्थ कर लिये थे। बाल्यावस्था से ही आप में अलौकिक शक्ति थी। दैनंदिन कार्यक्रम, पडिलेहना, प्रमार्जन, त्रिकाल काउस्सग्ग, ध्यान, व्याख्यान आदि कार्यों में व्यतीत

समय को छोडकर जो बाप समय पूज्यपाद श्री को मिलता था उसमें आपश्री ग्रंथ की रचना करते थ । आपश्री न लगभग साठ-सत्तर हजार श्लोक प्रमाण ग्रंथ पद्य रूप म निर्मित किये । इसके अलावा आपश्री ने अनेक कलात्मक कृतियों का निर्माण किया । इन सब को देखकर मानव-मति कुंठित-सी हो जाती है । आपश्री के उन ग्रन्थों में से बहुत से ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित हैं-जिन्हे प्रकाशित करने का कार्य पूज्य उपाध्यायजी श्री आनंदऋषिजी महाराज साहब की प्रेरणा से हो रहा ह । यह बड़े सौभाग्य की बात है ।

आपश्री ने जो ग्रन्थ निर्माण किये व सब समाज के लिए आदर्श रूप ह। 'चेतन कर्म का झगडा' कर्म पच्चीसी' अध्यात्मफाग आदि काव्य पढते समय पाठक गण और श्रोतवृन्द तल्लीन हो जाते ह। चेतन कर्म का झगडा इस पद्य में आपश्री न धार्मिक-वृत्ति से धर्म की अदालत म चेतन-कर्म का झगडा पेश किया ह । चेतन के पीछ अनादि काल से कर्म तस्कर लगा हुआ ह, उससे छुटकारा पाने के लिए अनंत ज्ञान-दर्शनधारी जगतपति प्रभु मुनसब के सामने चेतन अपनी अर्जी पेश करता ह । उसकी साक्षी के लिये वह पांच समिति, तीन गुप्ति इन आठ गवाहों को हाजिर करता ह । अदालत में चारों तीर्थ जुट हुए ह । चेतन का बयान सुनकर विवेकरूपी चपरासी को कर्म मुद्दई को पुकारने की आज्ञा होती ह । कर्म अदालत में उपस्थित होकर अपना बयान सुनाता ह और चेतन का कथन असत्य ह यह कहकर उसकी साक्षी के लिये पंच प्रमाद को हाजिर करता ह और चेतन से अपना हरजाना मांगता है । तत्पश्चात् चेतन प्रत्युत्तर देकर कर्म से छुटकारा पाने के लिए इन्साफ चाहता है । अदालत का फैसला जाहिर किया जाता है । कर्म का हर्जाना चुकाने के लिए चेतन को आदेश दिया जाता ह । चेतन तप संयम रूपी नाणा देकर कर्मों का सब हरजाना चुकाकर कर्मों से छुटकारा लेता है और प्रसन्न होकर अपन वतन शिवपुर में चला जाता है । यह सारा आपश्री ने सुंदर, सहज और सुलभ रूप में चित्रित किया ह और बड़े गहन सिद्धांत तत्त्व को अल्प समय में सुलझाया ह। आपश्री के ग्रन्थ पठन से धर्म के प्रति सहज ही में उत्कृष्ट रुचि पैदा होती ह ।

समाज को नवीन रूप से धर्म मार्ग की ओर लानेवाले एसे पूज्यपाद स्व-तिलोकऋषिजी महाराज के चरणों में उनकी दीक्षा-शताब्दी के सुअवसर पर अपनी यह श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ ।

श्री प. पु. मेहेन्दले, प्रधानाध्यापक श्री ति जैन विद्यालय पाथर्डी

यदि मै दावे के साथ कहू कि पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज का नामस्मरण भले ही माला फेरने के रूप में न हो, करनेवाले जीवित व्यक्तियो में मैं ही अग्रगण्य हूँ तो अनुचित नही होगा। इसका कारण यह है कि मुझे तो प्रतिदिन पूज्यपाद श्री का नामोच्चार अनेक वक्त करना पडता है-क्या खत लिखते समय क्या किसी मीटिंग में भाषण देते समय, क्या किसी से स्कूल संबन्धी बातचीत करते समय हरएक चीजपर महाराज श्री का नाम अंकित होने से इस नामोच्चार का अच्छा मौका मिलता है। इसीलिए तो मैंने उपरि-निर्दिष्ट विधान किया।

मेरा और श्री तिलोक जैन विद्यालय का पहले-पहल परिचय आया पनवेलनिवासी श्रीमान् शेठ रतनचंदजी बाँठिया जी के द्वारा। मेरा और उनका घनिष्ठ परिचय होने से उनके आग्रह से मैने श्रीतिलोक जैन विद्यालय के प्रधानाध्यापक के पदपर सन १९४८ में कार्य करना स्वीकार किया। मुझे न तो पाथर्डी का पता था और न श्री तिलोक जैन विद्यालय का। यहाँ कार्य करने की स्वीकृति देने के बाद अहमदनगर में उपाध्याय मुनि श्री आनंद ऋषिजी म. के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्ही की प्रेरणा से मैने पाथर्डी में रहना स्वीकार। किया सन् १९४८ में पहले-पहल मेरे सामने स्वर्गीय श्री तिलोक ऋषिजी महाराज की पुण्य तिथि मनाई गई। अनेक वक्ताओ ने उनके संबंध में भाषण दिये। फिर भी १९५८ तक वैसी जानकारी जो कि हृदय के अन्तस्थल तक पहुँचकर अपना गहरा प्रभाव अंकित कर दे, न हुई थी। ऐसी अनेक बाते होती है जो कि पढने से उतनी नही मालूम होती है जितनी कि सुनने से। उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महाराज साहब का पाथर्डी में चातुर्मास था। मैने उनसे विनति की कि आप हमें श्री तिलोक ऋषिजी महाराज के बारे में समझाइये। हम सब अध्यापक उनके आसपास अर्ध वर्तुलाकार बैठ गये। दो-ढाई घंटे कैसे बीते मालूम नहीं हुआ। पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की चित्र-कला, कवित्व, उनकी दैनदिनी इन सब बातो का मुझपर बहुत बडा असर पडा। वे इतने कुशल चित्रकार थे कि उन्होने एक रुपये जितनी जगह में १५२ हाथी और चवन्नी भरके अवकाश में ६५ हाथी स्पष्ट रूपसे चित्रित किये है। उन्ही का खीचा हुआ शीलरथ उनकी आध्यात्मिकता एव चित्रकारी के मनोरम सगम का जीवित उदाहरण है। महाराज श्री जी के हस्ताक्षर अत्यंत कलात्मक एव सुदर थे। उन्होने सूक्ष्म एव लेखन कला द्वारा एक पन्नेमें ७५०

श्लोकों को लिखने का अद्‌भुत काय किया ह। यह लिखावट इतनी साफ सुथरी ह कि बिना माइक्रोस्काप के पाठक पढ सकता ह। उनके छद उनकी प्रतिमा एव का य शक्ति क अच्छ परिचायक ह उनका चित्रालकार काव्य कूट शली का एक अच्छा नमूना ह। इस तरह पद्य क्षत्र में उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया ह। जिसे देखकर मुझ उनकी तरह बहुत कम आयु प्राप्त होनेपर भी अपने अपन क्षत्रमें कभी न मिटनेवाला नाम छोड देनेवाले श्री ज्ञानदेव, श्री आद्य शकराचार्य मराठी के बाल कवि श्री ठोमरे और अंग्रजी के कवि कीटस इन सब की याद आई। इन सबों म एक समानता थी कि बहुत ही कम आयु में उन्होंने न मिटनेवाला नाम इस जगत पर अंकित कर छोडा है। पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज न भी ३६ वष जसी बहुत ही कम आयु म कितन ही कष्ट उठाकर अपनी महत्ता का अच्छा परिचय अपनी चित्रकारी और कवित्व शक्ति द्वारा दिया ह। विशषत उनकी दनदिनी तो मुझ बहुत ही अच्छी लगी। उस देखकर अंग्रेजी के प्रसिद्ध डायरीकार सॅम्यु-एल पीप्स की याद आयी। बहुतही थोडी जगह में विस्तृत ब्योरेवार लिखन का ढग और लिखी हुई बातें दिल को अपन आप खींच लेती हैं। उसी तरहसे हमें पूज्यपाद महाराज श्री के बारे में बहुत कुछ मालूम होता ह।

मेरे स्कूल के नाम पर बहुत खत आते ह। लोगों को 'तिलोक' नामसे पह चान न होन से सुपरिचित 'तिलक' जी के नामसे या 'त्रिलोक' जिस स अक्सर सब परिचित होते हैं उस नामसे खत आते ह। म ऐसी भूल को जब दुरुस्त म करता तो मुझ लगता कि भूल तो जरूर ह पर क्या श्रीतिलोकऋषिजी महाराज न जन समाज के लिए लोकमा य तिलक जसा काम नहीं किया ह? फिर भूल भी आन-दित कर देती। 'त्रिलोक' में भी एसी ही गुणमुखी पदा करने की क्षमता मुझ महसूस होती थी।

आखिरमें इतना लिखना ही चाहता हूँ कि पू० उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महाराज न जो यह कार्य अपने हाथमें लिया ह इसम उनकी अपन पुरखों क प्रति होनेवाली असीम श्रद्धा और नितांत आदर दिखाई देता ह। श्रद्धा रहित इस बीसवीं शताब्दि क लिय यह ग्रथ और ग्रथ क पूज्य नायक एक चेतना का स्रोत बनेंगे।

जनश्रमणसघ-पुरुष क ललाट पर तिलकवत चमकनेवाले श्रीतिलोकऋषिजी म० कण्ठगत रत्न क समान प्रकाशमान होनेवाले श्रीरत्नऋषिजी म० और इस जन श्रमण सघ पुरुष क हृदय में आनन्द रूप में रहने वाले पूज्य उपाध्याय श्रीआनदऋषिजी महाराज उन सबके चरणोंमें विनीत — प पु मेहेन्दले

कविकुलभूषण पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी महाराजकी जय

श्रीमती सौ. निर्मला मेहेन्दले

कवीनां भूषणं कोऽस्मिन् कव्वास्युत्तमलेखकः ।
विख्यातस्तपसा कश्च त्वाबाल्यात् क्षितिमण्डले ॥ १ ॥
कुशलश्च चित्रकारः कः प्रकृत्या शशिसन्निभः ।
लक्ष्यतत्त्वार्थगंभीरः कश्चाप्यष्टावधानिकः ॥ २ ॥
भूषणं स्वीयवंशस्य भूषणं मुनिमननो ।
पूज्यश्च पूजनीयानां कोऽस्त्यस्मिञ्जगतीतले ॥ ३ ॥
पावक इव प्रदीप्तः तपसो नियमो च कः ।
दमिताचामना केन कश्चास्मिन् शास्त्रदर्शकः ॥ ४ ॥
श्रीमद्दुल्लोन्दुपुत्रोऽसौ त्रिलोक इति नामतः ।
तिलको धीमतां सोऽभूत्सर्वशास्त्रार्थकोविदः
लोकेऽस्मिन् धर्मरक्षार्थं स्वायुर्येनार्पितं चिरम् ।
कविकेसरिणे तस्मै श्रद्धाञ्जलिमहं ददे ॥ ६ ॥
ऋषिराजत्रिलोकर्षिः सर्वांगिमार्गदीपकः ।
जीयाद् दीर्घं गुणास्तस्य जनतुष्टाक्ष्यमलरधी ॥ ७ ॥
जनानां हितरक्षार्थं स्थापिता पाठशालिकाः ।
यद्वाचा ऋषये तस्मै श्रद्धाञ्जलिमहं ददे ॥ ८ ॥

'होनहार बिरवान के होत चिकने पात'

'साहित्यरत्न' प० देवेन्द्रकुमार जैन 'सिद्धांत शास्त्री' वल्लभनगर (राजस्थान)

जिस महापुरुष के मुखस्रोत से निःसृत पुण्यसलिला भगवती भागीरथी के समान अव्याहत गति से धवल धारामृत वाग्मान होती हुई वाग्धारा ने सहस्रों मानवमस्तिष्कों को परम पुनीत किया, अद्यापि जिस महापुरुष की वाग्धारा प्रत्येक के लिये उत्थान एवं निःश्रेयस् की सीढ़ी है, उन परम पूज्यपाद संत-शिरोमणि, कवि-कुल-भूषण, महान् कलाकार चारित्र-चूडामणि १००८ श्री तिलोकऋषिजी म. सा० के संबंध में मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति का कुछ भी लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। तथापि आंतरिक प्रेरणा से प्रेरित हो दो शब्द लिखने के लिये उद्यत हुआ हूँ।

"होनहार बिरवान के होत चिकने पात" इस उक्ति की सार्थकता सिद्ध करते हुए हमारे चरित्र-नायक के हृदय में ९ वर्ष की क्रीडाप्रिय बाल्यावस्था में पूर्व जन्म-संचित वैराग्य उत्पन्न हुआ और इस असार संसार का मोह त्याग, ज्ञान-

दशन—चारित्र की आराधना का कठोर सयमपूर्ण मार्ग अपनाकर आपने भागवती दीक्षा अगीकार की। धार्मिकता, विरक्ति, अनुरक्ति और भक्ति केवल आपमें ही नही अपितु आपके सपूर्ण परिवार में थी। माता बहन बडे भाई एव स्वय इस प्रकार चार विभूतियों का एक साथ दीक्षा ग्रहण करना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण ह।

दीक्षित होनेपर आपने आगमों का गहन अध्ययन चिंतन एव मनन किया। आप आगमों के पारदर्शी वेत्ता एव अध्ययनशील सत थे। सयम में एकनिष्ठ प्रीति एव एकाग्रता रखनेवाले आप इस युग के आदर्श सत थे। अत्यन्त सौजन्य की मूर्ति सरलता की प्रतिमा और नम्रता के भडार थे। आपके सौम्य मुखमडल पर अपूर्व वीतरागता एव अनुपम प्रशम भाव सदव लहराता रहता था। आपकी व्याख्यान—शली बडी ही मधुर आकर्षक एव श्रोताओं के अन्तस्तल को स्पर्श करनेवाली थी। आप जहाँ जहाँ विचरते थ वहाँ अपार जनमेदिनी मेले के समान उमड पडती थी।

कवित्व शक्ति का विकास आपमें अदभुत एव अलौकिक था। आपके द्वारा रचित कविताए सगीतमय भावपूर्ण एव हृदयस्पर्शी ह। उनमें चिरसचित हृदय की गहरी अनुभूति का अनुभव सन्निहित ह। आपने सगीत की मधुर जलधारा प्रवाहित कर जन—जीवन को भक्ति और प्रेम के रस में सराबोर कर दिया। आपके द्वारा लोक—भाषा में रचित काव्यों ने शास्त्रों के मम और धम को जन-सुबोध बनाया। तत्त्वज्ञान और काव्य से ओतप्रोत आपकी सभी रचनाओं में आत्मिक शान्ति क साथ साथ विश्वशान्ति के प्रसार की भावना दृष्टिगोचर होती ह। आपकी इस अदभुत कवित्व—शक्ति की बदौलत ही आपकी यश—सुरभि सवत्र प्रसारित ह। आपने अपने जीवन म लगभग ७५००० कवित्त एव कविताए रच कर साहित्य का भडार सुसमृद्ध किया। आपका काव्य-साहित्य मनमोहक एव जीवन सिद्धान्तों का गम्भीर निदर्शक युग—युग तक अमर रहनेवाली कहानी है। धर्म क मर्म का परमार्थ प्रतिपादन करने में तत्कालीन सत—समाज में आपका प्रमुख स्थान था। छोटे से छोटे विषय का भी आपने अपनी अलौकिक प्रतिभा से सुन्दर सारगर्भित एव सांगोपाग विवेचन किया ह। आपकी रचनाए अत्यन्त सरस मधुर एव प्रसादगुणयुक्त ह। वैराग्य और आध्यात्मिकता का अन्तःकरण में झरना बहानेवाली ह।

लेखन—कला में आप इतने पटु थे कि सपूर्ण दशवैकालिक सूत्र एक ही पन्न म लिखकर अवशिष्ट डेढ इच के भाग में सपूर्ण आनुपूर्वी अकित कर दी है। जिसे देखकर अच्छे—अच्छे विद्वान् दातों-तले अगुली दबाते ह।

चित्रकला के प्रति आपका स्वाभाविक आकर्षण था। जैन धर्म होने के नाते आपने धार्मिक एवं सैद्धान्तिक कथाप्रसंगों के भावों को लेकर अपनी अनूठी तूलिका के आधार से ज्ञानकुंजर, शीलरथ, चित्रालंकार काव्य आदि अनेकानेक ऐसे बोधप्रद चित्र चित्रित किये हैं, जिन्हें अवलोकन कर हमारा मनमयूर नाच उठता है।

पूज्यपादश्रीजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। प्रचंड साहित्यकार, उद्भट कवि, संयम में प्रकृष्ट भावनाशील, धर्म एवं संघ के अभ्युदय के लिए अहर्निश तत्पर पूज्यपादश्रीजी की काव्यसुधा का पान कर समाज का मानस मुखरित हो चिरकाल तक अपने को कृतकृत्य मानकर अपना जीवन धन्य समझता रहेगा। आज महाराष्ट्र की भूमि में जो श्वे० स्था० समाज का बगीचा लहलहा रहा है, उसका सर्वश्रेय पूज्यपादश्रीजी को ही है। यदि पूज्यपादश्रीजी की कृपावृष्टि इस भूमि पर न हुई होती तो सम्भवतः आज जो इस भूमि में धर्म एवं ज्ञान की मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही है वह नहीं होती।

३६ वर्ष की अल्पायु में ही संयम-साधना करते हुए अपने भव्य एवं प्रभावशाली वक्तव्य द्वारा अनेक भव्य प्राणियों का उद्धार करते हुए आप समाधिमरण पूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुए। आपके त्याग एवं वैराग्यमय आचरण की अमिट छाप समस्त श्वे० स्थानकवासी समाज में युग-युग तक अक्षय रूप से सुरक्षित रहेगी।

श्रद्धा के सुमन

पं० विद्याभूषणमणि त्रिपाठी साहित्य-विशारद

विधि हरि हर कवि कोविद-बानी।
कहत साधु महिमा सकुचानी ॥

अर्थात्—ब्रह्मा, विष्णु, महेश' कवि पंडित और स्वयं सरस्वती भी साधुओं की महिमा का यथार्थ वर्णन करने में सकुचा जाती है. जब साधुओं की महिमा का यथार्थ वर्णन करने में संसार की ऐसी २ दिव्य शक्तियों की गति-मति भी कुंठित हो जाती है, तब मुझ जैसे अल्पज्ञ और अनुभवहीन व्यक्ति के द्वारा श्री पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० श्री के प्रति साधुतामयी जीवनी को लिखने का साहस करना तो केवल सूरज को दीपक लेकर ढूंढने का ही प्रयास मात्र है। फिर भी स्वान्त सुखाय के नाते आपके गुणगान के लिये, अपनी अन्तरात्मा को उद्धार के सुपथ पर लगाने का अधिकार तो छोटे से छोटे और बड़े से बड़े सभी को है। बस एक मात्र इसी ध्येय को ध्यान में रखते हुए मैंने भी छोटी सी श्रद्धाञ्जली लिखने का साहस किया है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि म० ने १० वर्ष की अल्पायु में सयम पथ पर आरूढ होकर मालवा एव महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में विचरण कर जो अपनी अलौकिक प्रतिभा का निदर्शन किया ह और भूले हुए पथिक को सन्मार्ग पर लगाया ह उसे समाज भूल नहीं सकता ह ।

आज भी प्रतिक्रमण के समय कहत तिलोकरिख' की गूज श्रवकर्ण-कुहरों में सुनाई पडती ह ।

आपने अपनी छोटी अवस्था में १७ शास्त्रों को कण्ठस्थ करके सभी आगमों का सारभूत तत्त्व अपनी कविताओं के अन्दर निबद्ध कर कविकुल-भूषण पद को अलकृत किया ह ।

आपश्री में अद्भुत विलक्षण कवित्व शक्ति विद्यमान थी । अध्यात्म एव वैराग्य से ओतप्रोत उत्कृष्ट भावमय कृतियाँ आपके असाधारण काव्य-चातुर्य का परिचय कराती है । आपने ज्ञानकुजर और चित्रालकार काव्य का निर्माण किया ह । यह दोनों कृतियाँ बडी ही चित्ताकर्षक ह ।

दश अध्ययनों के श्री दशवकालिकसूत्र को एक ही पन्ने में सुन्दर और सुवाच्य लिपि में लिख देना यह कला-कौशल की अद्वितीय पराकाष्ठा ह ।

आपके द्वारा निर्मित चौकरथ को अवलोकन करने से चित्रकला की सीमा दृष्टिपथ में आ जाती ह ।

आप उच्च कोटि के सत होते हुए भी उच्च कोटि के कलाकार भी थ ।

आपने स्वल्प वय में जो काय किया है और उनकी कला-कृतियों पर जब हम अपनी दृष्टि डालते ह तब विस्मयान्वित हुए बिना नही रहते ।

निस्सदेह कविकुल भूषण पूज्यपाद महाराज में असाधारण सामर्थ्य था । उसे कोई उनके जसा समथ पुरुष ही लिपिबद्ध कर सकता है । मैं तो इस दीक्षा शता-गी के पुनीत अवसर पर उनके श्रीचरणों में मैं श्रद्धा के कतिपय कुसुम अर्पित करता ह ।

किशोरीलाल जैन बी ए (आनर्स) एल एल बी एडवोकेट
प्रधान जन सभा फरीदकोट

कविकुल भूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के दीक्षा-शताब्दी महोत्सव' के शुभ प्रसग पर प्रकाशित होनेवाले अभिनन्दन-ग्रन्थ" के लिए कुछ लिखना म अपना अति सौभाग्य समझता हू ।

जन सन्यास आत्मसाधना का -उच्चतम माग ह । यद्यपि इस माग पर चलने में जो घोर शारीरिक कष्ट उठाने पडते ह उनको दृष्टि में रखते हुए प्राय

यह कहा जाता है कि जैन श्रमण तलवार की धार पर चलता है, मगर इस पथ के राही को अपनी प्रगति के साथ जो सम्यग् ज्ञान का प्रकाश और आत्मा की पवित्रता तथा आनन्द की प्राप्ति करने का सुपथ प्राप्त होता है, वह संयम के कष्टों को भुला देता है। इसे ही संयम का रस कहते हैं।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के शरीर के रोम रोम में और उनकी आत्मा के प्रदेश प्रदेश में यह संयम-रस बहुलता से बसा हुआ था।

आपश्रीजी एक उच्च कोटि के साधक थे और आपने संसार को साधना का सही मार्ग अपने जीवन से दरसाया। आपके साधनामय जीवन की महानता इस बात से सिद्ध है, कि आपके उस भौतिक शरीर के मौजूद न होने पर भी आपके साधक जीवन की उत्कृष्टता समाज को धर्म के पथ पर चलने के लिए प्रेरित कर रही है।

आज संसार भौतिक वातावरण में बड़ी तेजी के साथ बढ़ रहा है। आध्यात्मिक अनुभूति से मानव-जीवन बिलकुल शून्य है। ऐसी प्रतिपत्ति में यह भौतिक प्रगति आध्यात्मिक रोशनी के बगैर मार्ग को तय करने में असमर्थ है और मानव की एक गढ़े में गिरने की बड़ी संभावना है। आध्यात्मिक अनुभूति और धार्मिक शिक्षा ही इस भौतिक प्रगति को सफल बना सकते हैं।

यही संदेश है जो पूज्यपाद महाऋषिजी की पवित्र और संयमी जीवनी से संसार को मिल रहा है।

पूज्यपाद कवि-कुल-भूषण स्वर्गीय श्री तिलोकऋषिजी महाराज के प्रति पाथर्डी श्री संघ की ओर से श्रद्धांजली।

पूज्यपाद कविकुल-भूषण श्री तिलोकऋषिजी म. के इस शताब्दी-उत्सव पर हम पाथर्डीनिवासी परिवार जितनी प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। उतनी प्रसन्नता का अनुभव शायद ही और कोई करता होगा। उन स्वर्गीय ऋषिजी महाराज द्वारा दिये हुए आलोक से आलोकित होकर स्वर्गीय रत्नऋषिजी म. ने हमारे ग्राम में तिलोक जैन विद्यालय की स्थापना की है। उसके बाद परोपकारी स्व. श्री रत्न ऋषिजी म. के पट्ट शिष्य पंडितरत्न उपाध्याय मुनिश्री आनन्दऋषिजी महाराज इस संस्था के आसपास इतनी अधिक संस्थाएँ स्थापित करने में प्रेरक बने हैं। पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म. के उस महान् प्रताप से ही आज हमारा ग्राम सारे भारतवर्ष में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है। मेरी दृष्टि से आपके कारण हमारे गाँव को जितना यश प्राप्त हुआ

ह, उतना और किसी को नहीं। मेरे कुटुंब पर तो पिछली तीन पीढ़ियों से उनकी छत्र छाया रही है। उन्हीं की प्रेरणा से मेरे पिता श्री मोतीलालजी गुगले जीवन क अंतिम क्षणों तक श्री तिलोक जैन विद्यालय का कार्य संभाल सके थ। पूज्यपाद श्री क इन अनन्त उपकारों को स्मरण कर मेरा हृदय गदगद [illegible] जाता है। मेरी इतनी शक्ति नहीं कि उनके गुणों का म अपनी वाणी द्वारा बखान कर सकूं।

अत उन श्रद्धेय पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म क प्रति अपने सारे ग्राम तथा कुटुंब की ओर से यह श्रद्धांजली समर्पित करता हूँ।

सुशीलाल मोतीलाल गुगले
अध्यक्ष
श्री वर्द्धमान स्था जैन श्रावक संघ पाथर्डी

श्रद्धा के दो शब्द

(प चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी)

पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज के इस दीक्षा शताब्दी महोत्सव पर श्रद्धास्वरूप दो शब्द प्रकटकर धन्यता का अनुभव करता हूँ।

उन पूज्यपाद के आलोक के कारण ही अपने स्वर्गीय पिता श्री (वि वा प राजधारी त्रिपाठीजी शास्त्री) के साथ मुझे भारतीय संस्कृति के एक महान् अंग जैन दर्शन का अभ्यास करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनकी इस परोपकार वृत्ति से मेरा हृदय अत्यन्त आनंदानुभव कर रहा ह।

उन पूज्यपाद श्री के अनन्त उपकारों से उपकृत होने के कारण मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि उनके अमर अक्षर देह को वाणी का रूप दे सकूं। इस अवसर पर मेरी यही हार्दिक अभिलाषा है कि उनके निरंतर विकास-शील जीवन द्वारा कुछ प्रेरणा प्राप्तकर अपने आपको सफल बना सकूं। इससे बढ़कर उनके प्रति और क्या श्रद्धांजलि हो सकती ह?

आदर्श कविवर्य ऋषिप्रवर

हम युवकों को एक आदर्श कविवर्य ऋषिप्रवर के दीक्षा–शताब्दी–महोत्सव पर उनके परमपवित्र कर्तव्य-कर्म के प्रति श्रद्धाञ्जली समर्पित करने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है और इस उत्सव के प्रसंग पर प्रत्यक्ष सेवा का सद्भाग्य मिल रहा है। इसके लिए हम अपने-आपको धन्य समझते हैं।

आज–जैसी बाह्य साधन–सामग्री के अभाव में भी पूज्यपाद कविवर्य ने उस कठिन समय में भगवान् महावीर स्वामी के वचनों को जन-जन तक पहुँचाने में मदद की और सरल, सरस, सुन्दर, काव्यमय शब्दों में धर्म–क्रियाओं को चैतन्य दिया। इसके लिए हम किन शब्दों में उनका उपकार मानें, यह समझ में नहीं आता। परन्तु हम यह जरूर चाहते हैं कि उनकी दया से आज भी हम में वह शक्ति आ जाय कि सुसम्पन्न विकसित लोक–भाषाओं का उपयोग कर के हम श्रमण–भगवान् महावीर स्वामी के उपदेशों का विस्तार करने में समर्थ बनें।

भवदीय—

इन्द्रभान पितलिया, सम्पतकुमार गांधिया

संयुक्त मन्त्री—जैन युवक मण्डल, घोडनदी (पूना)

श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के रजिस्ट्रार पं० बदरीनारायण शुक्ल की ओर से श्रद्धांजली

सायं की स्वर्णिम सुषमा

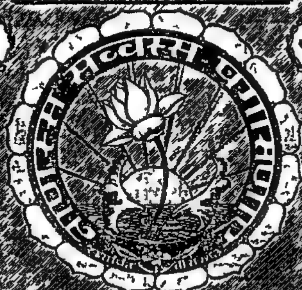
उषा समीप आती है तब शशि निष्प्रभ हो जाता है, जब सन्ध्या-समय आता है तब रवि भी प्रशान्त हो जाता है, पर तिलोक के आलोक की यह अद्भुत विशेषता है—जो जीवन की सन्ध्या में वह और भी निखर उठा है। 'शुक्ल'



श्रद्धा के फूल

दिवगत पूज्यपाद महाराज श्रीके आलोक से आलोकित
धार्मिक परीक्षा बोर्ड की ओर से

उनके इस दीक्षा शताब्दी महोत्सव पर



श्री तिलोकरत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड
पाथर्डी (अहमदनगर)





पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज की

कलात्मक कृतियों
का
विवेचन

कोड़ बात की वारता, सकल शास्त्र को सार ।

दया, दान दम आत्मा, तिलोकरिख कहे धार ॥

—तिलोक ऋषि

विवेचक

पं. श्री महेन्द्रकुमार जैन

समुद्र-बंध एवं नागपाश-बंध काव्य

— WMWMWM —

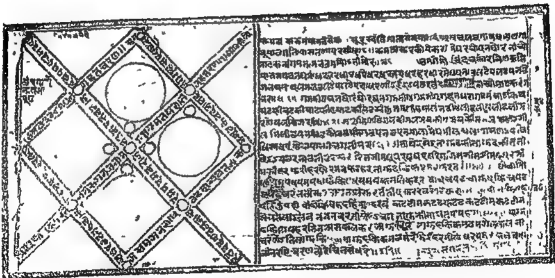
वार बार कहू तोए सावधान क्यूं न होय,
ममता की पोट सिर काहे कु धरतु है।
मेरो धन मेरो धाम मेरो सुत मेरो ठाम
मेरो पशु मेरो ग्राम भूल्यो यों फिरतु हे ॥
तू तो भयो बावरो विकाय गइ तेरी बुध,
ऐसे अंध कूप गहे, तामें क्यू परतु हे ॥
सुंदर कहत तोए, अजहूं न आवे लाज
काज को बिगाड के, अकाज क्यू करतु है ॥

संवत १९२४ वैशाख वदि १० लि तिलोक

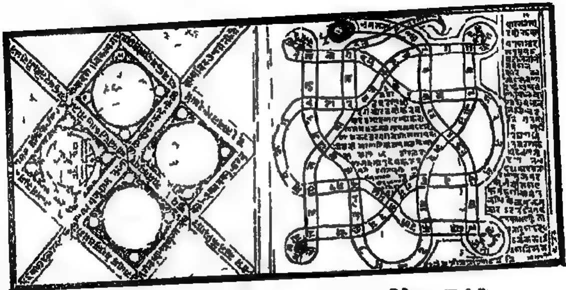
सामने के फलक में पाठक एक आकृति देख रहे है। उसे अंग्रेजी के डब्ल्यु एवं एम को दृष्टि में रखकर उस में सन्निहित सवये को पढ सकते हैं। जिस समय महाराज श्री की केवल बीस वर्ष की अवस्था थी उस समय उन्होंने बडी कुशलता पूर्वक इस प्रकार के बंध में मनहरण छंद लिखकर लेखन कला का एक आदर्श उपस्थित किया है।

यह सवया निर्गुण पंथ शाखा के श्रेष्ठ कवि सुंदरदासजी द्वारा रचित है। कबीर से प्रारंभ कर हिंदी साहित्य में जितने संत कवि हुए उनमें महात्मा सुंदर दास ही ऐसे है जिनकी कि काव्य कृतियां छंद शास्त्र के गुणों से युक्त हैं। अन्य कवियों की रचना में कहीं कहीं पर छंदोभंग आदि दोष दृष्टिगोचर होते हैं पर आपकी कविता में कहीं भी दोष दिखाई नहीं देता। सुंदरदास ने अत्यन्त सरल शब्दों में अपने हृदगत भाव इस प्रकार व्यक्त किये हैं।

बार बार कहने पर भी (तू) सावधान क्यों नहीं होता है? (संसार में परिभ्रमण कराने वाली) ममता या राग की गठरी अपने सिर पर तूने किसलिए रख छोडी है? तू यह मेरा धन है मेरा यह घर है मेरा यह पुत्र है, मेरा स्थान है मेरे पशु है और मेरा यह गाँव है। इस प्रकार बाह्य वस्तुओं में भूला हुआ है? तुम्हारी यह हालत देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है। तू तो पागल हो गया है और सदसदविवेकिनी तेरी बुद्धि नष्ट हो गई है। इस प्रकार संसार रूपी अंधे कुए ने तुम्हे पकड रखा है फिर भी जानते-बूझते उसमें प्राण देने के लिए क्यों गिरता है? सुंदर कहता है तब भी तुझे अभी तक लज्जा नहीं आती। अपने काम को बिगाड कर अकाज क्यों करता है? (शास्त्रों में प्रतिपादित जीवन को



समुद्रबन्ध काव्य विवेचन पृष्ठ १८६



विवेचन पष्ठ १८४ समुद्रबंध एवं नागपाशबंध काव्य विवेचन पृष्ठ १८५

ऊपर उठाने वाले क्षमा-मार्दव-आर्जव-शौच-संतोष-तप-त्याग-आकिंचन्य-ब्रह्मचर्य आदि कर्तव्यों को छोड़कर संसार में गिरानेवाले इनसे विपरीत आचरण क्यों करता है ?)

डमरू और मृग की आकृतिवाले जिस बंध में पूज्यपाद श्री ने उपर्युक्त सवैये को लिखा है, उस बंध का नाम समुद्र बंध है। क्योंकि इस छंद में संसार रूपी सागर का वर्णन है। इसके लिए सवैये के उपयुक्त समुद्र बंध ही उचित हो सकता है। इससे पता चलता है कि बीस बरस की छोटी-सी अवस्था में भी महाराज श्री की कितनी पैनी दृष्टि थी ? समुद्र बंध के सामने ही उसी पृष्ठ पर एक नागपाश बंध काव्य है, इसमें बड़ी खूबी से भगवान् पार्श्वनाथ के जीवन की घटना का समावेश कर उनकी स्तुति की गई है। नागपाश में सन्निहित सवैया इस प्रकार है—

अमर उद्धरण धीर गंभीर, भविक भव पार उतारण
रक्षा करण समथ कमठ-तापस-मद-टारण
संकट उरगम वाय सरण पदवी ठवी सरण
विकट कमठ दियो कष्ट सही जलदल विस्तारण
जब नागदेव कहर भये दहल तपथिन न गण
सरण दियो त्रिविध विचित्र सही पारग गत तारण तरण

नाग नागिनी की रक्षा की थी। इतना ही नहीं अंतिम अवस्था में उन्हें नमोक्कार मंत्र का उपदेश देकर देवलोक का रास्ता दिखाया था। भगवान् द्वारा उपदिष्ट नमोक्कार मंत्र से ही वे नरकगामी क्रूर सर्प सर्पिणी नरक में नहीं जाकर देवलोक गये। बाद में जब कमठ तापस ने बहुत वृष्टि कर पार्श्वनाथ भगवान् को कष्ट दिया था तब उसी देवलोकगामी धरणेन्द्र नाग ने भगवान् पर फन फैलाकर वृष्टि से उनकी रक्षा की थी।

इस प्रकार भगवान के जीवन के साथ नाग का अमर संबंध है। यहाँ पर भी भगवान की स्तुति करते हुए उसका नाग-पाश में समावेश करना सर्वथा संगत है। पूज्यपाद श्री सरीखे सूक्ष्म प्रज्ञ की ही ऐसी सूझ हो सकती है।

इस पत्र के द्वितीय पृष्ठ में एक और समुद्र-बंध काव्य है। उसमें निम्नांकित सवैये को उद्धृत किया गया है—

करत कपट सठ धरम करत हठ
धरन में धन धट पच पच मरण।
अथर छ तन धन चलत सजन जन
ममत करत मन न गहत चरण।
समज समज नर बरज परम मर
जगत भमत नर बन गह सरण।
सतत हणत जन अठ बस अघ तज
करम अठ दह तब लह तरण॥

हे शठ! तू संसार में प्रत्येक व्यक्ति के साथ कपट तो करता है पर धर्म करते समय हठ करता है। अपने एकत्रित किए हुए द्रव्य को पृथ्वी में डालता है और संसार में पच-पच कर अंत में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। तुम्हारा यह शरीर और धन तो अस्थिर है केवल सज्जन व्यक्ति द्वारा दिया हुआ उपदेश या उनके द्वारा बताए हुए मार्गानुसार चलने पर होनेवाला पुण्य ही साथ चलता है। तू मन में सदैव ममता करता रहता है, संत जनों के चरणों को ग्रहण नहीं करता है। हे मनुष्य! मैं तुझे बार-बार समझाता हूँ, इसलिए समझ! समझ! जो श्रेष्ठ धर्म है केवल उसी का वरण कर। तू गहनरूपी संसार में कल्पित चित्र बनाकर परिभ्रमण करता रहता है उसे छोड़ सजग होकर भगवान् की शरण ग्रहण कर। अहर्निश तू जिन प्राणियों का हनन करता रहता है उनका हनन करते समय लज्जा का अनुभव कर बार संसार में भिरानेवाले अठारह पापों को छोड़। इस प्रकार आठों कर्मों का दहन करने के बाद ही तू इस संसार को तिरकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

यहाँ पर भी ससार में ग्रस्त प्राणी का चित्र चित्रित किया गया है। इसलिए उक्त सवैये में वर्णित भावों के लिए प्रथम पृष्ठ की तरह समुद्रबंध सर्वथा उपयुक्त है।

पाठक थोड़ी देर के लिए इसमें निहित अर्थ की ओर से ध्यान हटाकर सवैये की शब्द-रचना की ओर ध्यान दें। कहीं पर भी दीर्घ तथा संयुक्त अक्षर नहीं हैं। सब लघु अक्षर हैं। शब्द भी ऐसे सरल हैं कि साधारण पढ़ा हुआ व्यक्ति भी इसके भावों को आसानी से ग्रहण कर सकता है, पढ़ते समय लय-सा बंध जाता है। सुस्वर से गाने पर बार-बार इसे सुनने की इच्छा बनी रहती है। सुनते समय कभी भी चित्त अतृप्त नहीं होता। 'करत कपट सठ, धरम करत हठ,। 'धरण न धन वट, पच पच मरण'। कितने हृदयहारी मनोहर एवं श्रुति-मधुर शब्द हैं? अबोध बालक के सामने भी इसे गाने पर वह सब ओर से अपना ध्यान हटाकर केवल इसे ही सुनता रहेगा।

स्व महाराज श्री की अर्थ दृष्टि की महत्ता के साथ शब्दों की रमणीयता की ओर भी कितनी सूक्ष्म दृष्टि थी? इन पदों के चयन में आप श्री की पदके मुख्य तत्त्व गेयत्व की ओर प्रधान दृष्टि रही है, क्यों कि जिन्हें सुस्वर से अच्छी तरह गाया जा सकता है, वे ही चिरकाल तक लोक-समुदाय की जिह्वापर स्थिर रहकर प्रत्येक व्यक्ति के हृदय पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ सकते हैं।

प्रथम पृष्ठ पर अंग्रेजी के डब्ल्यू और एम् की आकृति में जिस समुद्र बंध काव्य की रचना की गई है, उसके चारों ओर एक-एक रुपये भर जगह छोड़कर उसके आस-पास की जगह को पीत वर्ण से चित्रित किया गया है। उस में से भी दाहिनी ओर के रुपये भर अवकाश में एक स्थान पर अत्यन्त सूक्ष्म रूप से १५२ हाथी चित्रित किये गये है, इतने हाथियों का चित्रण करने पर भी उसका कुछ भाग खाली रह गया है। उसके पास ही दूसरी ओर के उतने ही भाग में १३६ हाथी चित्रित किये गये हैं। दाहिनी ओर की तरह बाई ओर भी उतने ही अवकाश में एक स्थान पर बड़ी खूबी से जंबूद्वीप का नक्शा निकाला गया है। उसके पास ही जो एक रुपये भर जगह रह गई है उसे ऐसे ही रिक्त छोड़ दिया गया है।

अभी हमारे देखने में जितने भूचर प्राणी आते हैं, उनमें हाथी की आकृति ही सबसे बड़ी होती है। ऐसे विशालकाय हाथी का चित्रण करने में एक रुपया तो क्या उससे भी अधिक स्थान की अपेक्षा रहती है, पर महाराज श्री ने कल्पनातीत कौशल्य से अपनी अद्भुत शक्ति द्वारा इतनी छोटी जगह में एक साथ इतने

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि महाराज दस साल की छोटी शैशवावस्था में दीक्षा ग्रहण कर आध्यात्मिक पथ में निरंतर आगे बढ़ते रहे। उनमें ऋजुता या सरलता थी। सब पर समान दृष्टि थी। इसलिए प्रत्येक कार्य को मनोयोगपूर्वक करते थे, जिस समय जो काम करते उस समय अपने आपको भूल जाते। उनकी आत्मा तद्रूप हो जाती थी। इसलिए दूसरे व्यक्तियों द्वारा सर्वथा असाध्य कार्य उनके लिए सरल था। लेखन कला के इस आदर्श के पीछे उनकी आध्यात्मिक चमत्कृतिमूलक संपूर्ण एकाग्रता और योग दृष्टि है। ध्यान योग का विकसित रूप है। धर्म ध्यान की ओर उत्कृष्ट प्रमाण है। पन्ने के चारों ओर चित्रकार की तरह सुन्दर बोर्डर चित्रित किये गये हैं।

चित्रालङ्कार काव्य

इस चित्रालंकार काव्य में आरम्भ से अंत तक कुल छत्तीस पंक्तियों में छत्तीस दोहे हैं। प्रथम पंक्ति में मंगलाचरण है, द्वितीय पंक्ति से पच्चीसवीं पंक्ति तक चौबीस तीर्थंकरों के स्तुति-परक चौबीस दोहे हैं। तदनन्तर छब्बीसवीं पंक्ति से तीसवीं पंक्ति तक नमस्कार मंत्र के पाँच पदों के पाँच दोहे दिये गये हैं। तत्पश्चात मोक्षमार्ग के उपादेय ज्ञान दर्शन और चारित्र की स्तुति करते हुए तेतीसवीं पंक्ति तक तीन दोहे अंकित किये गये हैं और अंत में चोतीसवीं से छत्तीसवीं पंक्ति तक देव गुरु तथा धर्म की स्तुति करते हुए तीन दोहे दिये गये हैं। धर्मकी स्तुति करते हुए अंतिम दोहा इस प्रकार दिया गया है—

जैन धर्म ऐसो अवर, नहीं रच सुख ठौर।
ना समरथ आतं मय तिलोक नमे कर जोर ॥

जैन धर्म के समान अन्य किसी स्थान पर लेश मात्र भी सुख का स्थान नहीं है। इस धर्म में संतोष को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। संतोषी व्यक्ति ही सब प्रकार से सुखी होता है। इसलिये जैन धर्म संतोष रूपी सुख प्राप्ति के लिये सर्वोत्तम साधन है। जैन धर्म के अतिरिक्त अन्य अनंत नयों में एकान्तवादी सम्प्रदायों में ऐसा सामर्थ्य नहीं है। ऐसे धर्म के लिये तिलोकऋषिजी म० हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं—

इस चित्रालंकार काव्य में जो चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति दोहा-छन्द में की गई है उस स्तुति के अंदर छत्रबंध, हृदबंध, गोमूत्रिका बंधों में नमस्कार मंत्र आदि अनेक चीजें निकलती हैं। इसका अवलोकन कर अनुभवी कविगण और विद्वान व्यक्ति भी आश्चर्यान्वित हो जाते हैं। इस काव्य का परिचय इस प्रकार है—

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि महाराज दस साल की छोटी बाल्यावस्था में दीक्षा ग्रहण कर आध्यात्मिक पथ में निरतर आगे बढ़ते रहे। उनमें ऋजुता या सरलता थी। सब पर समान दृष्टि थी। इसलिए प्रत्येक कार्य को मनोयोगपूर्वक करते थे, जिस समय जो काम करते उस समय अपने आपको भूल जाते। उनकी आत्मा तद्रूप हो जाती थी। इसलिए दूसरे व्यक्तियों द्वारा सर्वथा असाध्य कार्य उनके लिए सरल था। लेखन कला के इस आदर्श के पीछे उनकी आध्यात्मिक उत्क्रांतिमूलक सपूर्ण एकाग्रता और योग दृष्टि है। ध्यान योग का विकसित रूप है। धर्म ध्यान की ओर उन्मुख प्रयाण है। पत्रे के चारों ओर चित्रकार की तरह सुन्दर बोर्डर चित्रित किया गया है।

चित्रालङ्कार काव्य

इस चित्रालकार काव्य में प्रारंभ से अत तक कुल छत्तीस पक्तियों में छत्तीस दोहे हैं। प्रथम पक्ति में मगलाचरण है, द्वितीय पक्ति से पच्चीसवीं पक्ति तक चौबीस तीर्थकरो के स्तुति-परक चौबीस दोहे हैं। तदनन्तर छब्बीसवी पक्ति से तीसवी पक्ति तक नमस्कार मत्र के पाँच पदों के पाँच दोहे दिये गये है। तत्पश्चात मोक्षमार्ग के उपादेय ज्ञान दर्शन और चारित्र की स्तुति करते हुए तेतीसवी पक्ति तक तीन दोहे अकित किये गये है और अत में चौतीसवी से छत्तीसवी पक्ति तक देव गुरु तथा धर्म की स्तुति करते हुए तीन दोहे दिये गये है। धर्मकी स्तुति करते हुए अंतिम दोहा इस प्रकार दिया गया है—

जन धर्म ऐसो अवर, नहीं रच सुख ठौर।
जा समरथ अनंत नय तिलोक नमे कर जोर॥

जैन धर्म के समान अन्य किसी स्थान पर लेश मात्र भी सुख का स्थान नहीं है। इस धर्म में सतोष को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सतोषी व्यक्ति ही सब प्रकार से सुखी होता है। इसलिए जैन धर्म सतोष रूपी सुख प्राप्ति के लिये सर्वोत्तम साधन है। जैन धर्म के अतिरिक्त अन्य अनत नयों में एकान्तवादी सप्रदायों में ऐसा सामर्थ्य नहीं है। ऐसे धर्म के लिए तिलोकऋषिजी म० हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं—

इस चित्रालकार काव्य में जो चौबीस तीर्थकरो की स्तुति दोहा-छद में की गई है उस स्तुति के अदर छत्रबंध, दुबबंध गोमूत्रिका बंधों में नमस्कार मत्र आदि अनेक चीजें निकलती है। इसका अवलोकन कर अनुभवी कविगण और विद्वान व्यक्ति भी आश्चर्यान्वित हो जाते हैं। इस काव्य का परिचय इस प्रकार है—

इसके चारो ओर गो मूत्रिका बध मे तीन प्रकार से नमोक्कार मंत्र के अक्षर आए हुए हैं। पहले पीले वर्ण में "णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूण" ये पाँच पद अंकित किये गये हैं। उसके बाद लाल रग में नमोक्कार मत्र की महात्म्य सूचक—

एसो पञ्च नमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो।
मगलाण च सव्वेसि पढमं हवइ मगलम्॥

यह प्रसिद्ध गाथा अंकित की गई है। इस प्रसिद्ध नमोक्कार मत्रके पश्चात् गो मूत्रिका बध में द्वितीय मत्र के रूप मे श्री चद्र प्रज्ञप्ति सूत्र के अदर की गाथा दी गई है। वह इस प्रकार है।—

नमिऊण असुर-सुरगरुल भुयंग परिवंदिए गयकिलेसे।
अरिहे सिद्धायरिय उवज्झाय सव्वसाहूए॥

इस प्रसिद्ध गाथा में भी पाँच पदो की वदना की गई है।

तीसरा मंत्र श्री उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवे अध्ययन की प्रथम गाथा का पूर्वार्द्ध है। वह पीत वर्ण में इस प्रकार अंकित है—

सिद्धाण णमो किच्चा, संजयाण च भावओ।

इस गाथा में भी सक्षिप्त रूपसे नमोक्कार मत्र का समावेश किया गया है। इस में सिद्ध और साधु ऐसे दो पद हैं। अरिहत और सिद्ध इन दो पदो का सिद्ध में समावेश होता है और आचार्य, उपाध्याय तथा साधु इन तीन पदो का सन्निवेश सयत (साधु) शब्द में होता है। क्योकि प्राणी साधु होने के बाद ही योग्यता सपादन करने के पश्चात् आचार्य, उपाध्याय आदि पद का अधिकारी होता है।

इस चित्रालकार काव्य मे दोनो ओर नीले रग में दो चोकडियाँ बनाई गई हैं। उनमें से एक में व्यवहार नय से मोक्ष मार्ग के लिए उपादेय दान, शील, तप, भाव ये अक्षर दिये गये है और दूसरी में निश्चय नय से मोक्ष मार्ग के लिए उपादेय नाण, दसण, चरित ये अक्षर आये है। इसी प्रकार श्री मानतुगाचार्य द्वारा रचित भक्तामर स्तोत्र का छब्बीसवाँ श्लोक लाल रग में पूरा लिखा गया है। वह श्लोक इस प्रकार है —

"तुभ्य नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ,
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्य नमस्त्रिजगत परमेश्वराय,
तुभ्य नमो जिन भवोदधिशोषणाय॥

प्रथम तो अखिल जैन परंपरा में भक्तामर स्तोत्र का प्रात काल अधिकतर लोग पारायण करते है, क्यो कि इस स्तोत्र मे आदिनाथ भगवान् ऋषभ देव की स्तुति की गई है। इस स्तोत्र में कुल ४४ श्लोक है, कुछ लोग ४८ भी मानते

ज्योतिष–चक्र

हम ऊपर एक अत्यंत सुन्दर ज्योतिषचक्र देख रहे हैं। उसकी रचना के संबंध में महाराज श्री ने एक दोहा अंकित किया है —

प्राचीन पत्र विलोक के, यन्त्र लिख्यो मनरंग।
ज्योतिषचक्रचरित्र है समझे चातुर चंग ॥

मैंने बहुत समय पूर्व के ज्योतिष संबंधी प्राचीन पत्र देखकर यह मन को मुग्ध करने वाला यंत्र लिखा है। इसका नाम ज्योतिषचक्र है और इसे कोई अच्छा चतुर व्यक्ति ही समझ सकता है।

वस्तुतः महाराज साहब ने अपने इस दोहे में उपर्युक्त चक्र के संबंध में जो कुछ लिखा है वह अक्षरशः सत्य है। इस चक्र में ही आपश्री ने ज्योतिष संबंधी सब मुख्य अंगों का समावेश कर दिया है। कोई ज्योतिष प्रकांड वेत्ता ही इस यंत्रगत सारे विवरण का विवेचन कर सकता है। केवल इस यंत्र का अध्ययन कर कोई सूक्ष्मप्रज्ञ ज्योतिष का इतना अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता है कि वह बड़े बड़े पंडितों से ज्योतिष-शास्त्र के मुख्य अंगों के संबंध में चर्चा कर सकता है।

इस ग्रंथ का सारा विवरण लिखने से ग्रंथ का बहुत अधिक कलेवर बढ़ने की संभावना है। इसलिए यंत्रगत सब विषयों पर प्रकाश नहीं डालकर हुआ केवल प्रत्येक चक्र में रहे हुए मुद्दों पर थोड़ा सा प्रकाश डालकर संतोष करता हूं।

इस यंत्र में कुल बारह चक्र हैं। बारह चक्रों की आकृति बनाकर उन पर लाल, आसमानी पीले हरे और काले रंग के कंगूरे बनाये गये हैं। इसी प्रकार यंत्र निकालने के पूर्व बिलकुल मध्य में पीले और लाल रंग का वृत्त बनाया गया है। पहले पीले रंग की बड़ी बिंदी दी गई है उसके ऊपर लाल रंग का भरा है। उसके बाद ही एक के ऊपर एक इस प्रकार कुल बारह चक्र दिये गये हैं। इस चक्र में अवकहड़ा चक्र और घात चक्र इन दोनों चक्रों का सम्मिलन है। घात चक्र के नीचे दो चक्र और हैं, कितना ही परिश्रम करने पर भी इन दोनों के संबंध में कुछ ज्ञानकारी प्राप्त नहीं कर सका हूं।

सब से ऊपर बारहवें चक्र में १०, २०, ३० ४० ५० ६०, ७० ८० ९ ८०, ७० ६० ५० ४० ३० २० १०, ० १० २० ३० ४० ५०, ६० ७० ८० ९० ८०, ७० ६०, ५० ४० ३० २० १० और ० इस प्रकार की संख्या देखते हैं वे दिन और रात्रि के छोटे–बड़े होने का सूचन करती है। उक्त

रायण प्रारंभ होने के बाद जब दिन बढ़ा होते–होते ९० के अंश पर पहुँचता है उस समय दिन सबसे बड़ा होता है, तत्पश्चात् वह घटते–घटते ० के चिन्ह पर आ जाता है। तब दिन–रात दोनो एक समान होते है, अर्थात् यदि छ बजे सूर्योदय होता है तो उसका अस्त भी छ बजे होता है । इसी प्रकार रात्रि भी दिन की तरह बारह घंटे की होती है । दिन और रात्रि के समान होने पर फिर दिन की तरह रात्रि भी बड़ी होती–होती ९० के अंशपर पहुँचने पर सब से बड़ी होती है । तत्पश्चात् पूर्ववत् घटते–घटते जब ० पर आती है तब रात्रि और दिन दोनो समान होते है । चैत्र और आश्विन मास में दिन और रात दोनो एक समान होते है ।

बारहवे चक्र के नीचे ग्यारहवे चक्र में किस राशि में जन्म लेने पर कौन से अक्षर होते है, वे दिये गये है । जैसे कि मेष राशिके चु, चे, चो,ला, ली, लू, ले, लो अक्षर होते है । इन अक्षरो के आधार से चुन्नीलाल, चेनराम, चोथमल,लाभचंद, लीलाचंद, लेहरचंद, लोभचंद आदि नाम रखे जाते है । इसी तरह शेष ग्यारह राशियो के नामानुकूल अक्षर अंकित है ।

ग्यारहवे चक्र के नीचे दसवे चक्र में ऊपर दिये हुए अक्षरो के ठीक नीचे ९, १०, ३, ७, १०, ०, ९, २१ आदि अंक दिये गये है । इनका अर्थ यह है, चु अक्षरवाले को रोग होने पर ९ दिन रहता है, चे अक्षरवाले को रोग होने पर १० दिन रहता है, चो अक्षरवाले को रोग होने पर तीन दिन रहता है । इसी प्रकार सब अक्षरोके संबंध में जान लेना चाहिए ।

दसवे चक्र के नीचे नवमे चक्र में नक्षत्रो की दृष्टि से दानादि का वर्णन किया गया है । यथा अश्विनी नक्षत्र में अन्नदान, भरणी नक्षत्र में श्वेत वस्त्र–दान, कृतिका नक्षत्र में हेम (सुवर्ण) दान, रोहिणी नक्षत्र मे दुग्धदान, मृगसिरा नक्षत्र में क्षिप्रादान, आर्द्रा नक्षत्र में कृष्ण गो दान का विधान है। चक्र में लिखी हुई विधि के अनुसार उस नक्षत्र के लिए लिखी हुई वस्तु का दान करने से नक्षत्र गत अनिष्ट दूर हो जाता है । इसी प्रकार अन्य सब नक्षत्रो के ऊपर दिये हुए दान के संबंध में भी जान लेना चाहिये ।

नवमे चक्र में प्रदर्शित ग्रह की शान्ति के लिए दानादि देने का जो विधान किया गया है, वह स्वयं पूज्यपादश्री का मन्तव्य नही है उन्होने किसी ज्योतिष के प्राचीन पत्र को देखकर इसकी प्रतिलिपि की है ।

नवमे चक्र के नीचे आठवे चक्र में नक्षत्र, उनके लिंग तथा घटिका अंश आदि का यंत्र निर्मित किया गया है । जैसे अश्विनी के खाने में अश्विनी ३० और पु ऐसे तीन संकेत किये गये है, यहाँ अश्विनी = अश्विनी नक्षत्र, तीस

से तीस घटिका मंश आर पु से पुल्लिंग है। उसके बाद भरणी के खान में भी भरणी १६ और पु का संकेत देखते है। वहाँ भी पहले खाने की तरह भरणी से भरणी नक्षत्र १६ से सोलह घटिका अंश और पु से पुल्लिंग का तात्पर्य है। अश्विनी भरणी की तरह अन्य पच्चीस कोष्टकों में दिये हुए कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य आश्लेषा आदि नक्षत्रों क सबध में जान लेना चाहिए।

आठवे चक्र के नीचे सातवे चक्र म ऊपर दिये हुए नक्षत्रों के गण, नाडी और योनि दिय हुए ह। जसे कि अश्विनी नक्षत्र के ठीक नीचे के खाने में दे १ आ ४ और अश्व देखते हैं। यहाँ दे स देवगण आर अश्व से अश्वयोनि का अभिप्राय है। दे और अश्व अक्षर के मध्यवर्ती आ अक्षर के लिए नाडी का संकेत किया है पर वह हमें सगत प्रतीत नहीं होता। अनेक ज्योतिषियों को दिखान पर भी वे इस सबध में अपना स्पष्ट मतव्य प्रकट नही कर सके। नाडी तो तीन प्रकार की होती ह। वह ह आदि मध्य और अन्त। पर हम यहाँ नाडीगत अक्षरों की अपेक्षा कुछ भिन्न ही अक्षर देख रहे है। सभवतः ज्योतिषियों ने आज कल के पचागों में देखकर एसे ही इस पर अपना अभिप्राय प्रकट कर दिया होगा। अश्विनी नक्षत्र की तरह शेष छब्बीस नक्षत्रों के भी कोष्टक में लिखे हुए सकेत के अनुसार गण योनि आदि जान लेना चाहिए।

सातवे चक्र क नीचे छट्ठे चक्र में राशि स्थान, अधिपति और ऋतु का विवरण दिया गया ह। यथा मेष राशि क प्रथम खंड में मेष त म आर वस देखते है। यहाँ मेष से मेष राशि त, से ऋतु स्थान म से मेष राशि का मगल आधिपति और वस से उस समय वसत ऋतु होती है। इसी प्रकार शेष ग्यारह राशियों के खाने म दिये हुए वर्णो के सम्बन्ध में जान लेना चाहिए।

छठे चक्र के नीचे पाँचवें चक्र में सब ग्रहों की महादशा का वर्णन किया गया ह। जैसे १२ वर्ष तक राहु की महादशा २१ वर्ष तक शुक्र की महादशा छह वर्ष तक रवि की महादशा पद्रह वर्ष तक चद्र की महादशा आठ वर्ष तक मगल की महादशा सेरह वर्ष तक बुध की महादशा, दस वर्ष तक शनि की महादशा आर १९ वर्ष तक गुरु की महादशा होती है। यह चक्र अष्टोत्तरी महादशा के अनुसार बनाया गया ह।

पाँचवे चक्र के नीचे चाथ चक्र म प्रत्यक राशि क वर्ण, योनि आर तत्त्व दिय हुए ह। जैसे मेष राशि का विप्रवर्ण मत्स्य योनि और वात तत्त्व होता ह। शेष ग्यारह राशियों के वर्ण, योनि और तत्त्व भी चक्र में दिये हुए वर्ण से जान लना चाहिए।

चौथे चक्र के नीचे तीसरे चक्र में घात चक्र दिया गया है। घात चक्र को अंकित करते समय ठीक अवधान नही रहने के कारण प्रत्येक यत्र का विवरण अगले यत्र में दिया गया है। जैसे मेष राशि का घात चक्र वृषभ राशि के यत्र में है, वृषभ राशि का घात चक्र मिथुन राशि के यत्र में दिया गया है। इस तरह आगे बढते २ मीन राशि का, घात चक्र मेष राशि के यत्र मे दिया गया है। इसीलिये मेष राशि का घात चक्र उस के नीचे दिये हुए यत्र में नही पढकर वृषभ राशि के नीचे दिये हुए यत्र में पढना चाहिए। इस क्रम से मेष राशि का घात चक्र इस प्रकार होगा-मेष राशि का घात मास कार्तिक, घात तिथि १, ६, ११, घात वार रवि, घात नक्षत्र मघा, घात प्रहर प्रथम, पुरुष घात चद्र प्रथम, स्त्री घात चंद्र प्रथम है, वृषभ राशि का घात मास मार्गशीर्ष, घात तिथि ५, १०, १५, घात वार शनि, घात नक्षत्र हस्त, घात प्रहर चतुर्थ, पुरुष घात चद्र पचम और स्त्री घात अष्टम है। मिथुन राशि का घात मास आषाढ, घात तिथि २, ७, १२ घात वार सोम, घात नक्षत्र स्वाति, घात प्रहर तृतीय, पुरुष घात चद्र नवमां और स्त्री घात चंद्र सातवां है। इसी प्रकार कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुभ, मीन आदि छ राशियो के आगे के यंत्र में दिये हुए विवरण से जान लेना चाहिए।

अब अवशिष्ट रह जाते है द्वितीय और प्रथम यत्र। इन यत्रो के सबंध में बहुत प्रयत्न करने पर भी मै प्रकाश डालने में सर्वथा असमर्थ हूँ। प्रथम तो ज्योतिष मेरा विषय नही। इस विषय की किसी भी पुस्तक का मैने अभी तक अध्ययन नही किया। ऊपर जो कुछ लिखा गया, वह सब उपाध्याय मुनि श्री आनदऋषिजी महाराज तथा अन्य ज्योतिषी मित्रो से ज्ञान प्राप्तकर लिखा गया है। अंतिम दो यत्रो के सबध में कुछ जानकारी प्राप्त नही कर सकने के कारण तत्सबधी ज्ञान प्राप्त करने हेतु मै अहमदनगर में भी अनेक विख्यात ज्योतिषियो से मिला, पर कोई भी सतोषजनक उत्तर नही दे सका। इस प्रकार इन दो यत्रो के सबध में कुछ जानकारी प्राप्त नही होने से मैने इनके सबंध में कुछ भी नही लिखा है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज साहब ने पहले ही इस यत्र के सबध में अपनी ओर से लिख दिया है— 'ज्योतिष चक्र चरिय है समझे चातुर चग' इस ज्योतिष चक्र को कोई अच्छा चतुर व्यक्ति ही समझ सकता है। इस लिये इन दो चक्रो में दिये हुए विवरण के विवेचन करने का भार हम ज्योतिष शास्त्र के निष्णात पडितो पर ही छोड देते है।

इसी चक्र के दो कोनो में आपश्री ने इस यत्र की प्रतिलिपि करने के वार, तिथि, सवत् आदि का इस प्रकार उल्लेख किया है— श्री ॥६०॥ ज्योतिष चक्र

छ, संवत १९२८ आश्विन कृष्ण ६ भृगुवासरे लिपिकृत तिलोकरिख सहर साहजापुर।

जिस समय महाराज श्री की अवस्था केवल २४ वर्ष की थी उस समय उन्होंने इस यंत्र की प्रतिलिपि की। इस यंत्र का अध्ययन कर कोई भी सुज्ञ पाठक अनुमान कर सकता है कि पूज्यपाद तिलोक ऋषिजी महाराज का ज्योतिष विषयक ज्ञान भी कितना अगाध था। हमें आश्चर्य तो इस बात से होता है कि ये अहर्निश अध्ययन-अध्यापन, लेखन, प्रतिलिपि काव्य-निर्माण व्याख्यान देना और मुनिजनोचित क्रियाओं में रत रहते थे। इतने कार्यों के बीच आप श्री ने ज्योतिष संबंधी ज्ञान संपादन करने के लिए कहाँ से समय निकाला होगा? आप में एक प्रकृतिदत्त स्वयं प्रतिभा थी जिसके बल से किसी के नहीं सिखाने पर भी केवल स्वयं-प्रेरणा से आपने इतने विषयों का ज्ञान संपादन कर लिया।

इस ज्योतिष-चक्र के अतिरिक्त पूज्यपाद महाराज श्री ने संवत १९२५ फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को मोला (म. प्र.) में एक ज्योतिष विषयक नवग्रहों का महान चित्र भी चित्रित किया है। इस बृहदाकार चित्र में महाराज श्री ने संक्षेप में सारे ज्योतिष विषयक ज्ञान का समावेश कर दिया है पर जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ। ज्योतिष मेरा विषय नहीं साहित्य तथा दर्शन मेरा मुख्य विषय रहा है। प्रारम्भ से ही मैंने ज्ञान के इस मुख्य अंग की उपेक्षा की है। अतएव इस महत्त्वपूर्ण कृति का विवेचन करने में मैं अपने आप को असमर्थ पाता हूँ। प्रस्तुत पन्ना उपाध्याय मुनि श्री के पास है। पाठक आप श्री के पास उसका अवलोकन कर सकते हैं। पाठक उसे देखकर स्व. महाराज श्री के ज्योतिष विषयक तलस्पर्शी अध्ययन की कुछ कल्पना कर सकते हैं। इन चित्रों के अतिरिक्त आपके हस्त-लिखित ऐसे अनेक पत्र प्राप्त हुए हैं जिनमें कि इस विषय का विशद एवं स्पष्ट विवेचन किया गया है।

पन्नवणा पद ११

पाठक सामने जो पन्ना देख रहे हैं वह ९½ इंच लंबा और ढाई इंच चौड़ा है। इस पन्ने के केवल ५½ इंच लंबे और ढाई इंच चौड़े भाग में पन्नवणा सूत्र के ग्यारहवें पद में सन्निहित भाषा विषयक-विषय का संक्षेप में सन्निवेश किया गया है। पन्ने के बीच में एक कलाकार की तरह लता का चित्र चित्रित किया गया है उसपर विकसित पुष्प लगे हुए हैं और उन पुष्पों पर सुंदर लिपि में ग्यारह का अंक दिया गया है। ग्यारह अंक के ऊपर पन्नवणा पद अंकों की तरह ...

लिपि के आदर्शानुरूप सुंदर अक्षरो में लिखा गया है। इसने अल्प भाग में भी ऊपरवर्ती लता के आसपास का बहुत-सा भाग खाली है और नीचे अक्षरोंको कलात्मक ढंग से त्रिकोण रूपमें लिखने के कारण दोनों ओर की जगह छूटी हुई है।

अवशिष्ट थोडी-सी जगह में आपश्री ने संक्षेप में पन्नवणासूत्र के भाषा संबंधी विषय को इस खूबी से लिखा है कि उसमें थोडी-सी भी अस्पष्टता नहीं रही है।

मनुष्य के विचारो के आदान-प्रदान में मुख्य साधन भाषा है। भाषा के संबंध में अनेक दार्शनिको ने विभिन्न रूप से विचार किया है, पर जैन वाङ्‌मय में भाषा के संबंध में जितनी सूक्ष्मता से विचार किया गया है, वह अन्यत्र दृष्टि-गोचर नहीं होता। भाषा विषयक जितनी ज्ञातव्य बातें है, उन सब पर इसमें सूक्ष्म दृष्टि से प्रकाश डाला गया है।

भाषा बोलनेवाले प्राणी पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय होते है। ये प्राणी कुल २३९ दो सौ उनचालीस प्रकार से पुद्‌गलो को ग्रहण कर भाषा बोलते हैं। वे २३९ प्रकार के पुद्‌गल किस प्रकार ग्रहण करते है, इस पर ऊपर के फलक में अंकित पन्नवणा पद ११ में प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक प्राणी भाषा को ग्रहण करते समय वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रूप से ग्रहण करता है। वर्ण से ग्रहण करते समय एक गुण काला, दो गुण काला, तीन गुण काला, चार गुण काला, पाँच गुण काला, छ गुण काला, सात गुण काला, आठ गुण काला, नौ गुण काला, दस गुण काला, संख्येय गुण काला, असंख्येय गुण काला, अनंत गुण काला इस प्रकार तेरह बोल से ग्रहण करता है। इसी प्रकार गंध रस और स्पर्श भी एक गुण, द्विगुण, त्रिगुण आदि उपर्युक्त तेरह बोलो से ग्रहण करता है। भाषा वर्गणा के पुद्‌गलों मे पाँचो प्रकार के वर्ण, दो प्रकार की गंध, पाँचो प्रकार के रस और आठ स्पर्शो में केवल चार प्रकार के स्पर्श होते है। आठ स्पर्शो में प्राणी केवल शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शवाले भाषा वर्गणा के पुद्‌गल ही ग्रहण करता है। ऊपर कहे हुए एक गुणादि तेरह बोलो का ५वर्ण, २ गंध, ५रस और ४ स्पर्श इन १६ मे गुणन करने पर २०८ दो सौ आठ बोल हुए।

जब प्राणी एक गुण काले यावत् अनंत गुण रूक्ष भाषा वर्गणा के पुद्‌गल ग्रहण करता है, तो वह एक समय की स्थिति से लेकर यावत् अनंत समय स्थिति का उपर्युक्त तेरह प्रकार से ग्रहण करता है। २०८ में इन तेरह बोलो को मिलाने पर २२१ हुए।

इन भाषा वगणा के पुग्गलों को भी भाषा बोलने वाला प्राणी स्पश किये हुए पदगलों को ग्रहण करता है अवगाह कर ग्रहण करता है, अनतर अवगाहित ग्रहण करता ह सूक्ष्म बार बादर (दोनों प्रकार के भाषा वगणा के पुदगल) ग्रहण करता ह वह ऊध्व अधो तथा तियक दिशा के भाषा वगणा के पुदगल ग्रहण करता ह वह आदि मध्य तथा पयवसान (अत) म इस प्रकार तीनों दिशा के पुदगल ग्रहण करता है,

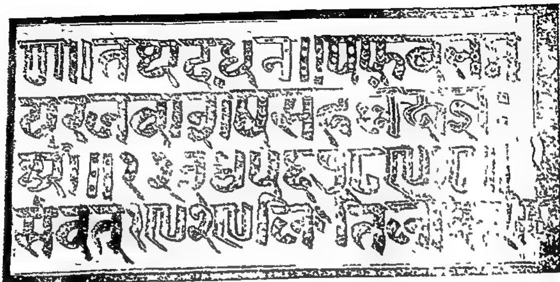
इस प्रकार स्पश अवगाह अनतर निरतर सूक्ष्म बादर, ऊध्व अधो तियक् आदि मध्य और पयवसान इन बारह को उपयुक्त २२१ दो सौ इक्कीस बोलों में मिलान पर २३३ बोल हुए।

इन सब भाषा वर्गणा के पदगलों को वह विषय सहित ग्रहण करता है विषयरहित होने पर भी वह अनुपूर्वी से ग्रहण करता ह, अनानुपूर्वी से नहीं, इन सब को भी छहों दिशाओं से ग्रहण करता ह। क्यों कि भाषा बोलनेवाले जीव लोक के मध्य में होने से वे छह दिशाओं से ही भाषा वगणा के पुदगल ग्रहण कर सकते हैं अधिक दिशाओं से नहीं। इस प्रकार स्पशते हुए अवगाहित, अनन्तर सूक्ष्म व बादर, ऊध्व, अधो, तिर्यक आदि, मध्य पयवसान विषय, पूर्ति और नियमा छ दिशा के पुदगलों को भाषक जीव ग्रहण करते ह। २३३ में इन छ को मिलान पर कुल २३९ दो सौ उनचालिस बोल हुए।

अत में V बही की आकृति म इस प्रकार लिखा गया है—संवत् १९२८ पौष सुद २ शुक्रवार, लिपिकृत तिलोक रिख साहुजापूर।

जब श्रमणसंघीय प्रधान मंत्री (वतमान में उपाध्याय) मुनि श्रीआनद ऋषिजी महाराज सा मेवाड़ प्रांत में विहार कर रहे थे, तब गुलाबपुरा के समीप वर्ती मसूणा नामक ग्राम म आप श्री की दीक्षावाले स्थविर मुनि श्रीमोतीलालजी महाराजसाहब से भेट हुई। उपाध्याय मुनि श्री स्थविर मुनिजी के पास दिवगत श्री तिलोकऋषिजी महाराज द्वारा विरचित उपयुक्त पन्ना देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और अनन दादागुरु के उस पन्ने की आप श्री न प्रतिलिपि करनी चाही तब स्थविर मुनिन उपाध्यायश्री को यह पन्ना दे दिया आज इस पन्ने की प्रतिलिपि स्थविर मुनि श्री की देन में आई। एतदथ स्थविर मुनि श्री मोतीलालजी महाराज के हम कृतज्ञ हैं।





वर्तनिका या मातृका पर विवेचन पृष्ठ १०२



वर्तनिका या मातृका पद

अध्ययन प्रारंभ करने के पूर्व प्रथम वर्तनिका अर्थात् स्वर-व्यंजन तथा संयुक्त अक्षरों का ज्ञान एवं अंकों को जानना अत्यावश्यक है। अध्ययन की दिशा में प्रगति करनेवाला जब तक उनका ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। साक्षर बनने के लिए इनका ज्ञान प्राप्त करना ऊपर चढ़ने के लिए प्रथम सोपान है। साक्षर जीवन की यह बुनियाद है। इसलिये अत्यन्त अध्ययनशील व्यक्ति की भी किसी को साक्षर बनाते समय सर्व प्रथम उन्हें अच्छी तरह सिखाने की ओर दृष्टि रहती है। अक्षरों का जीवन के साथ संबंध है। जिस व्यक्ति के अक्षर जितने अच्छे होते हैं, उसका जीवन उतना ही लोकप्रिय होता है। इसलिए बड़े-बड़े महापुरुष सुंदर लेख की ओर बराबर भार देते रहे हैं।

पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज ने अपने जीवनकाल में विद्वत्ता की दृष्टि से बड़े-बड़े आध्यात्मिक ग्रंथों की रचना की पर उनकी दृष्टि से विद्वत्ता प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम उपयोगी वर्तनिका और अंक ओझल नहीं रहे। उन्हें किस प्रकार लिखना चाहिये ? उनकी गोलाई आकृति और मोड़ कैसी होनी चाहिये ? किस प्रकार लिखने से वे आंखों को अधिक सुंदर लग सकते हैं आदि सब विषयों की ओर उनकी संपूर्ण दृष्टि थी। इसी दृष्टि से ऊपर के फलक में उन्होंने वर्तनिका की लेखन-कला का एक सर्वांगसुंदर आदर्श उपस्थित किया है।

फलक में हम जो लिपि देख रहे हैं वह मुद्रण युग के पूर्व पत्रों में लिखी जानेवाली शास्त्रीय लिपि है। दसवीं शताब्दी के बाद से हमारे मुनिवृंद तथा लहिये लिखते समय जिस लिपि का प्रयोग करते रहे हैं, वे सब प्राय इसी लिपि में लिखते थे। पूज्यपाद तिलोक ऋषिजी महाराज ने भी शास्त्रों में प्रयुक्त इसी लिपि को उपर्युक्त पत्र में अंकित किया है।

अब इन सब अक्षरों पर कला की दृष्टि से अपना विचार प्रस्तुत करता हूँ। पाठक इस फलक का अवलोकन कर जान सकते हैं कि प्रथम अक्षर जिस रूप से लिखा गया है, कला की दृष्टि से दूसरा उस से सर्वथा भिन्न है। एक ही भांत से सब अक्षर नहीं लिखे गये हैं। सब की भांत भिन्न-भिन्न है। भांत में कहीं पर पुनरुक्ति दोष दृष्टि-गोचर नहीं होता। यहां तक कि अक्षरों में जो आड़ी-टेढ़ी, लंबी-चौड़ी, तिरछी या गोल रेखाएँ देखते हैं, उनमें भी कहीं साम्य

नहीं। कट हुए मोटे कद से लिखते समय अक्षरों की जसी मोटाई होनी चाहिए वसी इन अक्षरों की मोटाई ह। पर वे एक कलाकार की दृष्टि से चित्रित करने के कारण सपूर्ण रूप से रोशनाई से परिपूर्ण नहीं ह उन्हें लकीरों के रूप में अंकित कर रोशनाईवाले भाग को अत्यत कलात्मक ढग से चित्रित किया गया है। इसी दृष्टि से अब हम इन सब अक्षरों का अवलोकन करे।

सब प्रथम दो लबी रेखाए और व की आकृति लिखकर (॥ ।। व) मगलाचरण किया गया ह। इसके बाद पुन दो खडी लकीरें अंकित की गई ह। प्रथम दो खडी रेखाओं में तीन फुलडियाँ और फुलडियों के मध्य में नीले रग की दो बिंदुए ह। मध्यवर्ती फूलडियाँ बिलकुल लाल ह। ऊपर और नीचे की आकृति में पहले दो नीले रग की बिंदुएँ अंकित कर उनके चारों ओर लाल रग की फुलडियाँ चित्रित की गई ह। उसके बाद व की आकृति भी पहली दो रेखाओं की तरह ही चित्रित की गई है पर ध्यानपूवक देखन से उसमें थोडा सा अतर दृष्टिगोचर होता है। पहले की मध्यवर्ती आकृतियो में जहाँ बिंदु सपूर्ण ह वहाँ इसमें ऊपर का कुछ भाग रिक्त ह और इसके चारों ओर इसी प्रकार लाल रग की फुलडियाँ ह। इसके बाद अब हम ॐ इस रूप में मगलाचरण देखत ह। इस मगलाचरण के प्रथम अक्षर की शिरोरेखा चार ऊपर की व आकृति क मध्य में एक काली रेखा ह। शिरोरेखावर्ती मध्य रेखा के बीच में दो सफेद बिंदुए ह और मध्यरेखा के आस-पास लाल बिंदुएँ ह। द् आकृति के पीछे जो चद्रबिंदु है वह लाल एव काली बिंदुओं से चित्रित किया गया ह। शिरोरेखा के नीचे जो व की आकृति ह उसके मध्य में दोनो ओर वक्राकार काली रेखा के बीच खाली वक्राकार सफेद जगह है काली रेखा के आस पास लाल बिंदुएँ ह और अक्षर के नीचे का भाग छोटा होने से उसके बीच का हिस्सा खाली ह। मगलाचरण में जो अन्य ॰ की आकृति ह उसकी शिरोरेखा के मध्य म काली खडी लकीरें खीचकर उनके आस-पास लाल बिंदुएँ अंकित की गई है। व अक्षर क मध्य में अग्रजी V की आकृति मोटे रूप में चित्रित कर दोनों कोनों की ओर लाल बिंदुए दी गई ह। निम्नवर्ती मध्य भाग में काली लकीर के बीच लाल बिंदुएँ ह। मगलाचरण के बाद पूववत पुन दो खडी लकीरें खीची गई ह। उनके मध्यवर्ती भाग में काली रोशनाई के बीच एक सफद कमला की आकृति देखते ह। सफद कमला के बीच में छोटी-छोटी काली बिंदुए दी गई ह। उसके बाद ग्रन्थारम्भ के पूर्व लिखाया जानेवाला ॐ नम सिद्धं॥ वाक्य ह। पत्र में ये अक्षर ही पाठक का सबसे

अधिक अपनी ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। ॐ को लिखने में काली, पीली, लाल और नीली इन चार रोशनाइयों का उपयोग किया गया है। इसकी शिरोरेखा तथा अक्षर के मध्य में वक्राकार काली रेखा है, वक्ररेखा के मध्य-मध्य मे सफेद बिन्दुएँ हैं और रेखा के आसपास का स्थान पीले रंग से भर कर थोड़े-थोड़े अंतर से लाल टीलियाँ दी गई हैं। न आकृतिवाला मध्यवर्ती भाग कुछ छोटा होने से केवल बड़े भाग को काली रोशनाई से ※ इस प्रकार चित्रित किया गया है। ॐ के ऊपर जो रेफ की आकृति तथा चन्द्रबिन्दु है, उनमें से रेफ के मध्य के हिस्से की काली लकीर के ऊपर और नीचे काली लकीरें बिलकुल पास-पास खींचकर सुंदर बनाया गया है और रेफ के पास में स्थित चन्द्रबिन्दु में पीला रंग भरकर लाल बिन्दियाँ दी गई हैं। चन्द्रबिन्दु में लाल रंग का एक चतुष्कोण भी है। ऊपरवर्ती बिंदी में एक और चन्द्रबिन्दु है।

ॐ के बाद न आता है। न के ऊपर की शिरोरेखा में चार सफेद बिंदियाँ क्रमश नीले, लाल और पीले रंग की बनी हुई हैं। बिंदिओ के आस-पास का भाग पीले रंग से भरकर शून्य के ऊपर और नीचे बड़े कलात्मक ढंग से काली बिंदियाँ दी गई हैं। न के काने को चित्रित करने में और दृष्टि से काम लिया गया है। इसमें भी तीन सफेद बिंदियाँ नीले रंग की बनाई गई हैं। इन बिंदियो के बीच के रिक्त भाग को पीले रंग से भरकर पुन मध्यवर्ती भाग में दो सफेद बिंदियाँ और अंकित की गई हैं। ये बिंदियाँ लाल रंग की हैं। इस भाग के दोनों ओर लकीर के रूप में दो साकल हैं। न के मध्यवर्ती भाग को दोनों ओर रोमांकार काली रेखाओं से सजाकर प्रारंभ के बड़े भाग को एक सफेद बिंदी अंकित कर उसके आस-पास और अनेक सफेद बिंदियाँ चित्रित कर सजाया गया है।

न के बाद हम म देखते हैं। म की आकृति लेहरिया भातवाले कपड़े की तरह है। ऊपर की शिरोरेखा में पहले वक्राकार लाल एवं नीली रेखा चित्रित कर उसके आस-पास सफेद बिंदियाँ दी गई हैं। लकीर एवं बिंदियों के आस-पास का हिस्सा पीले एवं लाल रंग से भरा गया है। नीचे म की आकृति में दोनों ओर लाल, पीली एवं नीली लोहरिया भात है। इन वक्राकार रेखाओं के बीच में सफेद बिंदियाँ हैं। 'म' के मध्यवर्ती पीले भाग में पाँच काली बिंदियाँ हैं। 'म' के सामने की दोनों बिंदियों में से ऊपर की बिंदियों में स्वेत रंग की ※ यह आकृति बनाकर उसे लाल रंग से पूर्ण करके खाली हिस्से में पीला रंग भरा गया है और नीचे की बिंदी में चार चतुष्कोण अंकित कर ऊपर की तरह ही उसे लाल एवं पीले रंग से पूरा गया है।

म के बाद 'सिद्ध वर्ती सि पर दृष्टि पड़ती है। उसमें लाल रंगवाली जंजीर क बीच नील रंग के अकोड़े देकर उनके दोनों ओर कलात्मक ढंग से काली बिंदियाँ अंकित की गई ह। स के मध्यवर्ती छोटे हिस्से में पांच काली बिंदियाँ ह। स क प्रारंभ में जो छोटी इ ि मात्रा ह। उसकी ओर स की आकृति में भी कुछ भिन्नता दृष्टिगोचर होती ह। इ की मात्रा की मध्यवर्ती साकल केवल वक्राकार लाल रंग की नहीं बनाकर 'म की ऊपर की बिंदी में निर्मित * एक वर्णवाली बनाई गई ह। शेष भाग की पूर्ति स की तरह की गई है।

सि क बाद द्ध' की आकृति देखते ह। इस आकृति वाले अक्षर के मध्यवर्ती भाग को काली जंजीर क बीच नील अकोड़े देकर उसके आस-पास के रिक्त भाग को पील रंग से भरा गया ह और अक्षरों की आकृति वाली लाइनों में दोनो ओर पास पास अनेक लाल रेखाएँ दी गई है। 'द्ध क ऊपर चन्द्रबिंदु ह, + वह भी लाल रेखाओं से खचित कर पील रंग से भरा गया है। चन्द्र की आकृति में दो काली बिंदियाँ ह।

द्ध क बाद दो खड़ी लकीरें ॥' खिंची गई ह। इन लकीरों क मध्य में काली जंजीरों क बीच लाल एवं नीले रंग के तीन अकोड़े ह। तीन अकोड़ो में भी दोनों जगह बीच का अकोड़ा लाल है और ऊपर तथा नीचे क अकोड़े नीले एवं लाल रंग क है। नील रंग के ऊपर लाल रेखा खचित की गई ह। लाइनों की आकृति के रूप में बनाई गई इन रेखाओं क अंदर की ओर स अक्षर की तरह रोमाकार अनक काली लाईनें खिंची गई ह और अवशिष्ट भाग पील रंग से भरा गया ह।

॥ ॐ नमः सिद्धं ॥ क बाद वर्तनिका या मातृका पद में सर्वप्रथम दिखाई आनेवाले स्वरों पर दृष्टि पड़ती ह। स्वरों में अवर्ण का प्रथम स्थान है।

स्वरों में सर्व प्रथम अ आता ह। अ की आकृति 'अ' इस प्रकार दी गई है। प्रथम ऊपर की शिरोरेखा में हम तीन सफेद बिंदियाँ देखते ह। तीनों सफेद बिन्दिया के मध्य में छोटी-छोटी लाल बिन्दियाँ ह वह भी केवल एक को छोड़ शेष सारी रेखा के मध्य में कंगूरेदार काली लाइन खिंची गई है इस लाइन के मध्य में कुछ-कुछ अंतर से केवल एक-एक काली रेखा खींचकर उसके आस-पास अनेक रोएंदार रेखाएं खिंची गई ह। अवशिष्ट भाग की पूर्ति पीले रंग से की गई ह। शिरोरेखा के नीचे जो अ की आकृति ह उसक कोने की ओर ऊपर से नीचे की तरफ अंग्रेजी वी की चार उल्टी ^ आकृतियाँ बनाकर अवशिष्ट भाग में लंबी और आड़ी काली लकीर खींचकर शेष भाग को पीले रंग से भरा

गया है। अ अक्षर शुरू करने के प्रारम्भिक भाग में दो अग्रेजी A की आकृति काली स्याही से बनाई गई है। शेष की पूर्ति इस अक्षर के कानें की तरह ही की गई है। अ की आकृति का मुख्य अंग जो कि चूल्हे के रूप में ञ इस प्रकार लिखा जाता है, उसके ऊपर के हिस्से में पास-पास अकोडेदार तीन काली बिंदियाँ हैं। शेष भाग अ की तरह छोटी-छोटी काली लाइनो से खचितकर पीले रंग मे भरा गया है।

अवर्ण में दूसरा आ है। इस अक्षर की शिरोरेखा में भी अ की तरह चार सफेद बिन्दियाँ देकर उनके मध्य में चार लाल बिन्दियाँ दी गई है। अवशिष्ट भाग में कर-वरीदार या वक्राकार ~~~ लाल रेखा खीचकर वक्र-रेखा के मध्य मध्य में काली V ध्द्धी की आकृति बनाकर अवशिष्ट भाग को पीले रग से भरा गया है। उसके मुख्य अग चूल्हे को पीले रग से भरकर छोटी-बडी अनेक काली रेखाओ से खचित किया गया है। आ के प्रारम्भिक अंश के मध्य में एक सफेद बिन्दु के मध्य में लाल बिन्दु है। अवशिष्ट भाग आ के मुख्य अश चूल्हे की तरह है। आ अक्षर को सपूर्ण बनानेवाले पहले के वक्र कान के मध्य मे तीन सफेद और दो नीली बिन्दियाँ है। सफेद बिन्दियो के मध्य मे नीली और नीली बिन्दियो के बीच में सफेद बिन्दियाँ दी गई है। शेष भाग को पूर्ववत् पीले रग से भरकर काली रेखाओ से खचित किया गया है। आ की पूर्ति के रूप में लिखे जानेवाले ा काने के मध्य में एक लाल रेखा खीच कर पाँच काली तथा पाँच सफेद बिन्दियाँ दी गई है। सफेद बिन्दियो के मध्य में लाल बिन्दियाँ है। शेष भाग पहले की तरह रग से परिपूर्ण है।

'इ ई' इ वर्ण की आकृति बनाने में अधिकतर काले रग का उपयोग किया गया है। मूलाक्षर अवर्ण का लिखते समय लाल स्याही का उपयोग किया गया है, जब कि इ वर्ण को लिखने में काले रग का उपयोग किया है। इ की शिरो-रेखा में दो छोटी-छोटी सफेद बिन्दियो के मध्य में एक-एक और बिन्दी दी गई है। अवशिष्ट सारा भाग लाल रग का है। शिरोरेखा के नीचे ञ आकृति में भी छ सफेद बिंदियो के मध्य मे काली बिन्दियाँ देकर शेष भाग ऊपर की तरह लाल रग मे भरा गया है। इ की गाँठ के पास अंतिम सफेद बिन्दी के समीपवर्ती सफेद तारक के मध्य में काला चन्द्रबिन्दु है।

दीर्घ ई की आकृति भी ह्रस्व इ की तरह बनाई गई है। उसमें ऊपर की मात्रा के मध्य में लाल अंश के बीच सफेद रिक्त भाग है, इसी तरह ई की ऊपर की शिरोरेखा में भी एक सफेद बिंदी देदेकर छोटी-सी सफेद लाइन खिची गई है

और ई की आकृति में छोट दिये हों इस प्रकार पाँच सफेद बिंदियाँ ह। सब के ऊपर का सफेद अद्य लाइन की आकृति का है। नीचे जो ई की गांठ है, उसमें तारकाकार तिलक के मध्य में काली रेखा ह। शेष भाग ह्रस्व इ की तरह लाल रग से परिपूर्ण ह।

उ ऊ उ की आकृति जन वाङ्मय में अंकित ‴ (ॐ) की आकृति से कुछ मिलती-जुलती ह। उ के ऊपर की शिरोरेखा के मध्य में एक लाल रग की कड़ियाँ ह चार रेखा के बीच बीच में चार सफेद बिंदियाँ उन बिंदियों की पूर्ति नीले रंग से की गई ह। प्रत्येक सफेद बिंदी की मध्य में एक-एक अत्यंत छोटी लाल बिंदी देखते ह। इस लाल रग की साँकल को रोएँदार अनेक काली रेखाओं से खचित किया गया है। शिरोरेखा के नीचे जो ु का भाग ह, इसके कवल मध्य भाग को छोड़कर शेष भाग शिरोरेखा की तरह ही चित्रित किया गया है। मध्य के भाग में तिलक के आकार की नीले रग की आकृति बनाकर उसक बीच में लाल रग की बिंदी दी गई है। बिंदी के आस-पास की छूटी जगह सफेद ह। तिलक क आस-पास पीले स्थान पर अनेक काली रेखाए खिंची गइ है।

ह्रस्व उ क बाद दीघ ऊ आता ह। ह्रस्व उ की अपेक्षा इसक चित्रण में कुछ अन्तर ह। दीघ ऊ की शिरोरेखा म ऊपर और नीचे सफद और लाल रग की तीन तीन अंग्रजी V वी की आकृति चित्रित की गइ ह। सफद रग की वी की लाइनो को खचित करने में नीले रग का उपयोग किया गया ह। ऊपरवर्ती इन तीन वी की आकृतियो के ऊपर लाल रग की एक-एक और वी की आकृति चित्रित की गई ह। नीचे जो लाल रग की वी की आकृति ह उसक बाह्य भाग को रोएँदार अनेक काली रेखाओं से खचितकर वी के मध्यवर्ती भाग को पीले रग से भरा गया ह। शिरोरेखा के नीचे निर्मित ऊ के लबाकार भाग के चित्रण करन में शिरोरेखा की तरह ही काम लिया गया ह। उसमें भी तीन सफद वी की आकृतियाँ चारों ओर नीली रेखाए खिंचकर बनाइ गई ह। वी के ऊपर और नीचे लाल रग की वी की आकृतियाँ बनाकर अवशिष्ट पीले भाग में सघन काली रखाए खिंची गइ ह। दीघ ऊ का मध्यवर्ती भाग ह्रस्व उ की तरह है और ह्रस्व उ की अपेक्षा दीघ ऊ का जो अधिक भाग ह, वह भी ह्रस्व चार दीघ ऊ क मध्यवर्ती भाग की तरह चित्रित किया गया ह। केवल नीले रग के तिलक के नीचे एक सफद बिंदी की नीले रग से पूर्ति कर उसके बीच मे लाल बिंदी दी गई है।

'ऋ ॠ' वाल कल मुद्रणयुग में लिखी जाने वाली ऋ की अपेक्षा पाठक इस शास्त्रीय ऋ की आकृति कुछ भिन्न देखते है। पहले ऋ की ऊपर की शिरो-रेखा को नीले रंग से भरकर नील वर्ण के मध्य में सात सफेद बिंदुएँ देकर उनके बीच में एक-एक लाल बिंदी दी गई है। नीचे लंबाकार ऋ की आकृति में सफेद लता की आकृति चित्रित कर उस पर सफेद पुष्प बनाये गये हैं। लता के आस-पास भाग नीले रंग से भरकर लंबाकार ऋ की रेखा के पास अनेक सफेद बिंदियाँ अंकित की गई है। ऋ का मध्यवर्ती भाग शिरोरेखा की तरह बनाया गया है। उसमें भरे हुए नीले रंग के मध्य में अनेक सफेद बिंदियाँ हैं। इसी अक्षर के मध्य में बाहर की ओर बनी हुई जो चूल्हे की आकृति है, उसमें ऊपरवर्ती सफेद रंग के मध्य में एक छोटी लाल पत्ति है। निम्न भाग में लंबाकार ऋ की आकृति में निर्मित लता की तरह एक छोटी सफेद लता का चित्रण किया गया है। लता में निर्मित पत्तियो में छोटी-छोटी दो लाल लाइने है। लता के आस-पास का भाग नीले रंग से भरकर उसके मध्य में लाल लाइन के पास अनेक सफेद रेखाएँ खिंची गई है।

ह्रस्व ऋ के बाद दीर्घ ॠ की आकृति पर दृष्टि पड़ती है। इसमें भी ऊपर खिंची हुई शिरोरेखा के मध्य में वक्राकार सफेद शिरोरेखा के प्रत्येक कोने पर एक-एक लाल बिंदी देकर शेष भाग को नीले रंग से भरा गया है। शिरोरेखा-वर्ती नीलवर्ण में वक्राकार रेखा के कारण त्रिकोण की आकृति धारण कर रखी है। शिरोरेखा के निम्नवर्ती ॠ के लंबाकार भाग में ऊपर की तरह मध्य में वक्राकार रेखा बनाकर बीच-बीच में लाल-लाल बिंदियाँ दी गई है। अंतर इतना ही है, ऊपर जहाँ अवशिष्ट भाग में नीले त्रिकोण बने हुए है, वहा यहा पर काली बिंदियों के बीच में सफेद बिंदियाँ बनी हुई है। शेष अवशिष्ट भाग की पूर्ति नीले रंग से की गई है। मध्यवर्ती भाग में काले रंग का तिलक बनाकर तिलक के बीच में दो लाल बिंदियाँ दी गई है। बाहर की ओर बने हुए मध्यवर्ती भाग को समानाकार लाल, नीली और सफेद इन तीन रेखाओं द्वारा पूर्ण किया गया है।

ऌ ॡ इन दोनो अक्षरो का आधुनिक प्रकाशन युग में प्रचार नहीं है, केवल प्राचीन शास्त्रो में ही इन दोनो अक्षरो का उपयोग होता था। ह्रस्व ऌ में प्रथम ऊपर शिरोरेखा में लाल एवं हरी रेखाएँ अंकित कर उनके आस-पास ऊपर नीचे सफेद और लाल बिंदियाँ दी गई है। नीचे जो अक्षर की आकृति है, उसमें भी मध्य में सलग रेखा खचितकर लाइन के आस-पास अनेक काली एवं लाल ~ऐदार लाइने दी गई हैं। दीर्घ ॡ के निर्माण में लाल, काले, नीले एवं सफेद

रग का उपयोग किया गया है। ऊपर शिरोरेखा को लाल रग से भरते समय लाल रग के बीच तीन जगह काला रग दिया गया है। नीचे का भाग रगों के अंकन की दृष्टि से अपनी खास विशेषता रखता है। उसमें दो जगह रिक्त सफेद स्थानों के मध्य में नीली बिंदियाँ है। नीचे सफेद तिलकाकृति है।

ए ऐ ए के शिरोभाग में लेहरिया भाँत की काली और पीली शिरोरेखा है। नीचे दोनों ओर काले वस्त्र के बीच सफेद बिंदी बनाकर शेष भाग को काली रेखाओं से लचित किया गया है। ऐ में हम ऊपर शिरोरेखा तथा नीचे दो इस प्रकार कुल तीन उल्टी लाल रग की डी की आकृति देखते है। शेष भाग को अनेक काली रेखाएं अंकितकर पूर्ण किया गया है।

ओ ओ' ओ के ऊपर की शिरोरेखा तथा मात्रा में केवल एक मोटी काली लाइन है। नीचे भी लाल और सफेद रग की बिंदियाँ बनाते लिए ऊपर की तरह मध्य में मोटी काली लाइन चित्रित की गई है। और औ ओ की तरह ही चित्रित किया गया है। अंतर इतना ही है, नीचे काली लाइन के बीच में दोनों प्रकार की बिंदियाँ नहीं देकर सफेद बिंदियाँ ही दी गई हैं।

अ अ । अ के ऊपर की शिरोरेखा में सफेद रग की कशरीदार रेखा बनाकर उसके ऊपर और नीचे के भाग को लाल तथा नीले रग से भरा गया है। नीचे का भाग लेहरिया भातवाली लाल नीली एवं सफेद रेखाओं से अंकित है। अ के ऊपर की शिरोरेखा के मध्य में कशरीदार काली और सफेद रेखाएं खींचकर उसके ऊपर और नीचे के भाग को नीले रग से भरा गया है। मुख्य अक्षर की आकृति मे काले और पीले अनेक वस्त्र बनाकर बीच में लाल बिंदियाँ दी गई है। अक्षर के मुख्य अंग पूंछ की आकृति को पत्ती का चिन्ह बनाकर चित्रित किया गया है। सामने को दो नीले शून्यो के बीच दो लाल बिंदियाँ है।

स्वर लिखन के बाद दो लाइन खींची गई है। इन दोनों में से एक में लाल एवं सफेद रग की लता की आकृति बनाकर रिक्त अंश को नीले रग से भरा गया है और द्वितीय पंक्ति के पास-पास दो लाल एवं सफेद रेखाएं खींचकर शेष भाग को नीले रग से भरा गया है।

वर्णमाला में स्वरों के बाद व्यजनों का नबर आता है। व्यजनों में कवर्ग का स्थान सर्व प्रथम है। इनमें पहले के क्रमशः क ख ग की शिरोरेखाओं में नमो अरिहताणं णमो सिद्धाणं और णमो आयरियाणं लिखकर नीचे के भागो का अनेक प्रकार की काली वक्राकार लाइनो से चित्रित किये गये है। घ के ऊपर की शिरोरेखा तथा नीचे के कान के कुछ हिस्से में णमो उवज्झायाणं

लिखकर शेष भाग को करवरीदार काली एव लाल रेखाओ से चित्रित किया गया है और ड में नमस्कार मत्र का पचम पद णमो लोए सव्व साहूण लिखकर काली लाल नीली और सफेद रेखाओ एव विदियो से अलकृत किया गया है।

इसके बाद चवर्ग प्रारभ करने के पूर्व एक खडी रेखा खीच कर ऊपर और नीचे नीली पान की आकृतियां बनाते हुए मध्य में तीन लाल शून्ये दी गई है। मध्यवर्ती शून्य को छोडकर अवशिष्ट दोनो शून्यो को दोनो ओर के पान से मिलाया गया है। चकी आकृति के ऊपर की शिरोरेखा के मध्य में करवरीदार सफेद रेखा बनाकर अवशिष्ट भाग को काले रग से भरा गया है। नीचे के भाग को पीठमिश्रित लाल रग से भरकर तीना ओर तीन सफेद त्रिकोण बनाये गये हैं नीचे को छोडकर ऊपर के दोनो त्रिकोणो मे नीली विदियां है। छ के ऊपर की शिरोरेखा में लवी अनेक लाल रेखाएं खीची गई है। नीचे के अक्षर के मूल भाग में राजस्थानी भाषा मे प्रसिद्ध मोडी बारये की आकृति बनाकर शेष भाग की पूर्ति लाल रग से की गई है। लाल रग मे भी चार सफेद शून्यो के मध्य में दो काली और दो नीली विदियां है। लाल रग के मध्य मे एक केवल काली शून्य भी है। ज और झ की आकृति में लाल रग के मध्य सफेद और नीले रग की लता बनाई गई है। इन दोनो लताओ में परस्पर कुछ सादृश्य नही। ञ की आकृति में पूर्ववर्ती दोनो अक्षरो की सरणी अत्यत कलात्मक ढग से अपनाई गई है। यहां लता मे लगे हुए अनेक प्रकार के पुष्पो पर दृष्टि पडती है। फिर चवर्ग की समाप्तिसूचक दो खडी लकीरे खीची गई है। चित्रण की दृष्टि से इनकी खास विशेषता है।

यह सारा विवरण लिख लेने पर भी मुझे स्वय अरुचिकर प्रतीत हो रहा है। इसके बाद भी लगभग छ पृष्ठो में इसी प्रकार वर्णन किया गया है। अनेक कार्यों में व्यस्त रहनेवाले आज-कल के पाठको मे इतना धैर्य कहाँ, जो यह सारा विवरण पढने के लिए समय निकाल सके। इसलिए अवशिष्ट भाग का मुद्रण रोककर उपसंहार पर आता हूँ।

इस प्रकार वर्तनिका और अकाक्षर लिख लेने के बाद पूज्यपाद श्री तिलोक-ऋषिजी महाराज ने सब के अत में इस पन्ने को लिखने का सवत् तथा अपने नाम का उल्लेख किया है। वह इस प्रकार है—संवत् १९२९ लि०तिलोक रिख। इस सत्र की आकृति भी ऊपर के अक्षरो की तरह ही बनाई गई है।

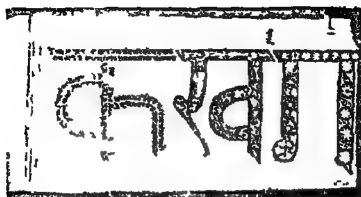
ऊपर प्रत्येक अक्षर के चित्रण में भिन्नता होने पर भी सजातीय तथा समान वर्गीय अक्षरो के अकन में एक ही प्रकार के रगो का उपयोग किया गया है।

जिससे ऊपर से देखने पर उनमें कुछ सादृश्य प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ पाठक अ, आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ, औ, अं अः इन अलग-अलग सजातीय स्वरों की आकृति देख सकते हैं। व्यंजनों के चित्रण में भी यही सरणी अपनाई गई है। फलतः क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग त वर्ग और प वर्ग, ये पाँचों वर्ग अकन की दृष्टि से अपना अलग-अलग स्थान रखते हैं। नीचे के शेष अक्षरों में भी इसी दृष्टि से काम लिया गया है। इन अक्षरों के अंकन में महाराजश्री हमारे सामने एक चित्रकार के रूप में उपस्थित होते हैं। इसमें एक योगी की एकाग्रता से काम लिया गया है। जीवन में एकाग्रता को साधे बिना इस प्रकार की आकृतियाँ निकालना असंभव है।

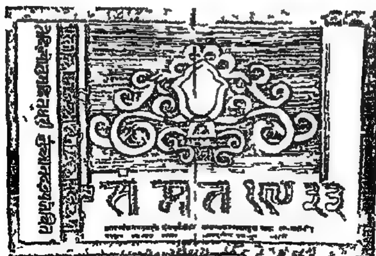
ऊपर मैंने जो कुछ विवेचन लिखा है वह महाराजश्री द्वारा लिखित मूल पत्र को देखकर। उस पत्र में आपने जिस रूप से चित्रकारी की है, उन्हीं रंगों के साथ उसका फोटो लिया जाता तो यह सारा परिश्रम सफल होता। फिर भी पाठक पाथर्डी धार्मिक परीक्षा बोर्ड के अंतर्गत श्री रत्न जैन पुस्तकालय में यह प्रति देख सकते हैं।



गूढार्थ और साधारण दोहे विवेचन पृष्ठ २२०



क ख ग विवेचन पृष्ठ २११



पदक की आकृति विवेचन पृष्ठ २१६

क ख ग

नोट-पाठक पृष्ठ १९८ के फलक में दी हुई पन्नवणा पद ११ के पीछे के फलक में अंकित क, ख, ग की आकृति देखकर प्रस्तुत विवरण पढ़ें ।

ऊपर हम वर्तनिका (मातृका पद) और अंकों के सम्बन्ध में बहुत कुछ प्रकाश डाल चुके हैं। इनके अतिरिक्त पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज द्वारा व्यंजनाक्षरों का एक त्रुटित पत्र प्राप्त हुआ है। उसमें क वर्ग के प्रथम केवल क ख ग ये तीन अक्षर अंकित हैं। इन अक्षरों के अंकन में पूर्व प्रतिपादित अक्षरों की अपेक्षा भी अत्यन्त सूक्ष्म कलात्मक शैली से काम लिया गया है। आध्यात्मिक साधना में आगे बढ़ा हुआ कुशल चित्रकार ही इस प्रकार की मजी हुई शैली में चित्रण कर सकता है।

प्रथम क अक्षर के अंकन में इस कलात्मक ढंगसे अक्षर लिखे गये हैं कि उस में जैन वाङ्मय में प्रसिद्ध नमस्कार मंत्र तथा चन्द्र प्रज्ञप्ति, उत्तराध्ययन और दशवैकालिक इन प्रसिद्ध सूत्रों की तीन विख्यात गाथाओं का समाहार कर लिया है। प्रथम शिरोरेखा में जो अक्षर अंकित किये गये हैं, उन्हें पढ़ने से चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र की यह गाथा अनायास ही ख्याल में आ जाती है। अक्षर छोटे होने पर भी अत्यन्त स्पष्ट एवं सुवाच्य हैं।

"ॐ णमिऊण असुरसुरगरूल भुयगपरिवंदिय गयकिलेसे।
अरिहे सिद्धायरिय उवज्झाय सव्व साहूण ॥ १ ॥ गाथा छे

क अक्षर की प्रथम अर्द्ध गोलाकार आकृति बनाने में जैन परंपरा में प्रतिदिन नाम-स्मरण के समय मंत्र रूप से बोले जानेवाले नमस्कार मंत्र का चित्रण किया गया है। वह मंत्र इस प्रकार है——

णम्मो अरिहंताणं, णम्मो सिद्धाणं, णम्मो आयरियाणं, णम्मो उवज्झायाणं, णम्मो लोयसव्वसाहूणं

(इस नमस्कार मंत्र का जप करते समय हम णम्मो के स्थान पर केवल णमो का ही उच्चारण करते हैं, पर यहां एक हलंत 'म्' अधिक लिखा गया है।) क की अर्द्ध गोलाकार आकृति के सामने उससे मिला हुआ जो काना खींचा गया है, उसके अंकन में उत्तराध्ययन सूत्र की इस प्रसिद्ध गाथा का चित्रण किया गया है।

पइत्ता बारह वास चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
सती सतिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरम् ॥

अंत में दशवकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की यह प्रथम गाथा दी गई है।—

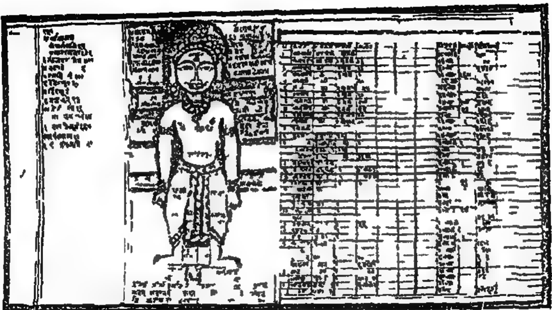
धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

इस प्रकार की लेखन-शैली से ही पाठक समझ सकते हैं कि लेखन काल के समय भी महाराज श्री का मानस नाम-स्मरण में कितना मग्न रहता था। नाम स्मरण के समय वे नमस्कार मन्त्र का तो जाप करते ही थे पर उनके साथ शास्त्रों में वर्णित तदुपयुक्त गाथाओं की ओर भी सतत उनकी दृष्टि रहती थी जैसे की ऊपर शिरोरेखा में चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र की जो गाथा दी गई है। उसमें भी देवता तथा राक्षसों द्वारा वन्दनीय क्लेशरहित पाँच पदों की वंदना की गई है। गोलवृत्ताकार क में जो अक्षर हैं वे तो पाँच पदों के रूप में प्रसिद्ध नमस्कार मन्त्र ही है। जिनका कि जैन कुल में उत्पन्न प्रत्येक बच्चा नाम स्मरण या माला फेरते समय उच्चारण करता है। जैन वाङ्मय में इस मंत्र की महत्ता बहुत अधिक बताई गई है। नमस्कार मंत्र के बाद बीच वाले में अंकित जो उत्तराध्ययन की गाथा है उसमें भी सिद्ध गति में प्राप्त आत्माओं की स्तुति की गई है और अंत में दशवकालिकसूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा में तो जीवन का सार तत्त्व भर दिया है। इसमें सब मंगलों में उत्कृष्ट मंगल धर्म को बताया गया है। वह धर्म अहिंसा संयम तथा तप रूप है। जिस प्राणी का चित्त धर्म के इन मुख्य अंगों की ओर सतत लगा रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। लेखन के समय भी इस प्रकार उनकी कितनी उच्च दृष्टि रहती थी ?

इसके बाद क्रमवर्ती जो दो अक्षर दिए गये हैं, उनमें तो चित्रकला की पराकाष्ठा कर दी गई है। निरंतर इस कला द्वारा नवीन आकृतियों का सर्जन करनेवाले कुशल चित्रकार से भी इस प्रकार की आकृतियाँ निकालना कठिन है। इसमें शिरोरेखा तथा नीचे अक्षर की आकृति में भिन्न भिन्न प्रकार की मछलियों के चित्र बनाये गये हैं। समुद्र तटवर्ती बम्बई मद्रास तथा त्रिवेन्द्रम आदि स्थानों में जो मछलीघर (ओमर्युरियम) बने हुए हैं। उनमें स्थित मछलियों का अवलोकन कर पाठक इनके बारे में कुछ कुछ अनुमान कर सकते हैं। यद्यपि इन मछलियों में रंग नहीं भरा गया है फिर भी इन्हें देखने से सहज ही पता चल सकता है कि इसमें एक ओर जहाँ सुनहली रंग वाली प्रसिद्ध रोहू मछली अंकित की गई है



अशोक वृक्ष
देखो विवेचन पृष्ठ २१२



पुरुषाकार अगोपाग सिद्धांतकल्प

यहाँ चादी के रंग की दूसरी मछली भी चित्रित की गई है छोटी-बडी मछलियो के भेद रूप से मत्स्यो की अनेक आकृतियाँ बनाई गई है। कही पर मणि और रत्नमय मछली की भी आकृति है। इससे पता चलता है कि महाराज श्री का जलवर्ती सामुद्रिक प्राणियो का भी कितना आगाघ ज्ञान था। आश्चर्य है, अपने छोटे से जीवन काल में आपश्री ने इन जन्तुओ का कब दर्शन किया होगा और फिर उन्हे अपने हृदय-पटल पर अकित कर इस छोटी-सी आकृति में किस प्रकार अकित की होगी? सर्वतोमुखी प्रतिभा सपन्न व्यक्ति ही इस प्रकार मनोमुग्ध कारी चित्रण कर सकता है।

ग की आकृती ख की आकृति से और भी अधिक नयनाभिराम है। उसमे तीनो ओर तीन प्रकार की नक्काशी की गई है और प्रत्येक के अंकन में भिन्न भिन्न रंगो का उपयोग किया गया है आजकल कपडो तथा धातु के बर्तनो पर नक्काशी करने वाले पच्चीकार भी इसे देखकर नवीन ज्ञान प्राप्त कर सकते है। मीलो और हाथ-करघे पर बुने हुए कपडो पर जो विविध प्रकार की भाँत आदि देखते है, उनके मालिक भी इस नक्काशी (डिझाईन) को देखकर अपने कपडो पर भाँत निकाल सकते है।

इससे पता चलता है, महाराज श्री का जो ज्ञान था [illegible] कच्चा तथा अपूर्ण नही था। ज्ञान-विज्ञान की जिस किसी शाखा में वे अपना हाथ लगाते, उसे पूर्ग करके ही छोडते थे। अधूरा या अपूर्ण ज्ञान उन्हे असह्य था। जीवन-साधना में पूर्णताकी ओर प्रयाण करने वाले व्यक्ति को ही ऐसी सर्वांगपूर्ण दृष्टि हो सकती है। वस्तुके विवेचन या चित्र के चित्रण के समय उसकी सूक्ष्म मे सूक्ष्म भाग पर दृष्टि रहती है। उनकी दृष्टि से एक भी अग ओझल नही हो सकता। पूर्णता की ओर सतत गमन करने वाले दिवंगत पूज्यपाद श्री तिलोक-ऋषिजी महाराज द्वारा ही इस प्रकार का श्लाघनीय चित्रण शक्य था।

पुरुषाकार अंग-उपांग सिद्धांत कल्प

पाठक इस पन्ने में एक पुरुष की अत्यन्त कलात्मक आकृति देख रहे है। वह रेशमी धोती पहने हुए है, धोती की किनारी लाल है, इसका अंतिम छोर हरे एव सुनहरे रग का है। वह पीत वर्ण वाली भूमिपर स्थित है। पुरुप की बाँहे घुटने तक लबी है, उसके कधे उठे हुए है। सामुद्रिक लक्षणो के अनुसार एक पुरुप की जैसी आकृति होनी चाहिए वह आकृति इसमें दी गई है। इसी आकृति में जैन वाङ्मय में प्रसिद्ध मुख्य आगमो को लिपि-बद्ध किया गया है। बत्तीस आगमो में ग्यारह अग, बारह उपाग, चार मूल सूत्र तथा चार छेद सूत्र एवं आवश्यक ये बत्तीस सूत्र प्रसिद्ध है।

पांव से प्रारम्भ कर शिर तक के सब अंगोपांगों में इन बत्तीस सूत्रों को लिखा गया है। सब प्रथम पीली वेदिका के ऊपर दाहिनी ओर एडी के पास आचारांग सूत्र लिखा गया है उसके पास ही बाईं ओर एडी के पास सूत्र कृतांग सूत्र अंकित किया गया है। उसके बाद दाहिनी ओर के घुटने पर स्थानांग और बाईं ओर के घुटने पर समवायांग आता है। घुटन से कुछ आग बढन पर दाहिनी ओर के उर पर भगवती सूत्र बाईं ओर के उरु पर ज्ञाता धर्मकथांग लिखा गया है। फिर बिलकुल मध्य में नाभि पर उपासक दशांग सूत्र दिया गया है। उस से आग बढन पर वक्षस्थल पर अंतगड सूत्र को लिखा हुआ देखते हैं। फिर बढन पर अनुत्तरोववाई मुहपर प्रश्नव्याकरण और ललाट पर विपाक सूत्र लिपिबद्ध किया गया है।

ग्यारह अंगों के बाद उपांग मूल सूत्र तथा छद सूत्रों को इस प्रकार लिपिबद्ध किय गय है। जिन म उववाई सूत्र दाहिने पांव की अगुलिया के पास और रायपसेणिय सूत्र बायें पांव की अगुलियों क पास देखते है उसके बाद जीवाभिगम सूत्र दाहिन हाथ के पहुचे के पास और पन्नवणा सूत्र बायें हाथ के पहुचे के पास हष्टिगोचर होता है तत्पश्चात जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति दाहिनी और भुजा के पास और बाईं ओर की भुजा क पास चंद्रप्रज्ञप्ति सूत्र दिखाई देते है। तदन्तर दाहिनी ओर क स्कंध क पास सूर्य प्रज्ञप्ति और बाईं ओर के स्कंध के पास निरयावलिया सूत्र पर दृष्टि पडती है। फिर दाहिनी ओर क कान के लोल के पास कप्पवडंसिया और बाय ओर क लोल के पास पुप्फिया सूत्र दिया गया है। उस स आगे बढन पर दाहिनी ओर की आंख क पास पुप्फ चूलिया और बाईं ओर की आंख क पास वह्निदशा सूत्र लिख गये है। बारह उपांगों के बाद चार मूल सूत्रों का नम्बर आता है उसके लेखन का क्रम इस प्रकार है—

पत्र पर हम जो पुरुषाकृति दख रहे है वह एक भव्य मुकुट पहन हुए है। मुकुट के ऊपरी छोर से प्रारम्भ कर ललाट तक दाहिनी ओर उत्तराध्ययन दशवैकालिक नन्दीसूत्र और अनुयोगद्वार ये चार मूल सूत्र तथा इसी प्रकार बाईं ओर दशाश्रुतस्कंध बृहत् कल्प व्यवहार और निशीथ सूत्र य चार छद सूत्र लिपिबद्ध किये गय है।

इस पुरुषाकार आकृति के सामने एक नक्शा है। उसमें बत्तीस लाइन तथा बारह खाने है। इस नक्शे म इन बत्तीस सूत्रों के संबंध में ज्ञातव्य सब बातों का विवरण दिया गया है। उसमें क्रम से सूत्र नाम, कालिक या उत्कालिक श्रुतस्कंध अध्ययन उसके बाद तीन खान ऐसे ही खाली दिये गये है।

और अन्त के चार खानो में से तीन खानो में निछराय, साधु सख्या और ग्रन्थ की संख्या दिये गये है। वह नक्शा पुरुषाकार अगोपाग सिद्धात कल्प के सामने ही दिया गया है। पाठक इस नक्शे द्वारा आगम-सबधी सारा विवरण जान सकते है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की दृष्टि इतनी पैनी थी कि उन की दृष्टि से कोई भी विषय अधूरा नही गुजरता था, वे जिस किसी भी विषय को लेते उस पर सागोपाग रूप से सम्पूर्ण दृष्टि से विचार करते। जैन परपरा केवल श्वेताबर स्थानकवासी परपरा तक ही सीमित नही है। उसकी एक परपरा दिगम्बर सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। दिगम्बर आम्नाय के अनुसार यद्यपि भगवान् द्वारा प्ररूपित मूल आगम ग्रन्थ लुप्त हो गये, फिर भी वे आगमो के समकक्ष कुछ ग्रन्थ मानते है। जिनका की महत्त्व आगमो के समान ही है, उन ग्रन्थो में जैनधर्म के सब मुख्य सिद्धातो का अच्छी तरह प्ररूपण किया गया है। पूज्यपाद महाराजश्री ने दिगम्बर आम्नाय में प्रसिद्ध उन सब सैद्धातिक ४५ ग्रन्थो के नाम इस पन्ने की पृष्ठ पीठिका में दिये है। इस प्रकार इस पन्ने में महाराजश्री ने श्वेताबर और दिगम्बर आम्नाय में प्रसिद्ध प्राय सब सैद्धातिक आगमो और ग्रन्थो के नाम दे दिये है। उनकी दृष्टि से उन्होने एक भी ग्रन्थ नही छोडा है। पन्ने में पुरुष की आकृति अकित करके शरीर के अगोपागो के पास आगम रूप से प्रसिद्ध अग उपाग को लिखने के बाद आपश्री ने अंत में सबसे नीचे इसके निर्माण का इस प्रकार उल्लेख किया है—

इति श्री ॐ न्ही श्री पुरुषाकार अग उपाग सिद्धात कल्प सम्पूर्णम्। संवत् १९३० वर्षे चैत्र कृष्ण १३ तिथौ चद्रवासरे लिपि कृतम् तिलोक रिख शहर आगर मध्ये स्वय आत्मार्थ श्रीरस्तु।

जब पूज्यपाद महाराजश्री की अवस्था केवल छब्बीस वर्ष की थी तब आपश्री ने शरीर के अगोपागो की तरह जैन वाङ्मय में प्रसिद्ध अगोपागो को उस-उस स्थान पर बडी खूबी से अकित किये थे। किसी सूक्ष्म द्रष्टा की ही ऐसी दृष्टि हो सकती है। साथ ही इस लेखन का हेतु बताते हुए आपश्री ने यह निर्देश किया है—'स्वय आत्मार्थ' यह सब अपने लिए लिखा है, दूसरे के लिए नही। जिससे जैन-सिद्धात का यह वृहत् सैद्धातिक वाङ्मय सदैव आपके सामने चित्रवत उपस्थित रहे और जिस समय आपकी जिस ग्रन्थ को पढने की इच्छा होती उस समय उस आगम या ग्रन्थ को पढकर अपनी ज्ञान-पिपासा शात कर सकते।

पाँव से प्रारंभ कर सिर तक के सब अंगोपांगों में इन बत्तीस सूत्रों को लिखा गया है। सब प्रथम पोली वेदिका के ऊपर दाहिनी ओर एड़ी के पास आचारांग सूत्र लिखा गया है उसके पास ही बाईं ओर एड़ी के पास सूत्र कृतांग सूत्र अंकित किया गया है। उसके बाद दाहिनी ओर के घुटने पर स्थानांग और बाईं ओर के घुटने पर समवायांग आता है। घुटने से कुछ आगे बढ़ने पर दाहिनी ओर के उरु पर भगवती सूत्र बाईं ओर के उरु पर ज्ञाता धर्मकथांग लिखा गया है। फिर बिल्कुल मध्य में नाभि पर उपासक दशांग सूत्र दिया गया है। उस से आगे बढ़ने पर वक्षस्थल पर अंतगड सूत्र को लिखा हुआ देखते हैं। फिर गर्दन पर अनुत्तरोववाई मुँह पर प्रश्नव्याकरण और ललाट पर विपाक सूत्र लिपिबद्ध किया गया है।

ग्यारह अंगों के बाद उपांग मूल सूत्र तथा छेद सूत्रों को इस प्रकार लिपिबद्ध किये गये हैं। जिस में उववाई सूत्र दाहिने पाँव की अंगुलियों के पास और रायपसेणिय सूत्र बाँये पाँव की अंगुलियों के पास देखते हैं उसके बाद जीवाभिगम सूत्र दाहिने हाथ के पहुंचे के पास और पन्नवणा सूत्र बायें हाथ के पहुंचे के पास दृष्टिगोचर होता है तत्पश्चात जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति दाहिनी ओर भुजा के पास और बाईं ओर की भुजा के पास चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र दिखाई देते हैं। तदनन्तर दाहिनी ओर के स्कंध के पास सूर्य प्रज्ञप्ति और बाईं ओर के स्कंध के पास निरयावलिया सूत्र पर दृष्टि पड़ती है। फिर दाहिनी ओर के कान के लोल के पास कप्पवडंसिया और बायें ओर के लोल के पास पुप्फिया सूत्र दिया गया है। उस से आगे बढ़ने पर दाहिनी ओर की आँख के पास पुप्फ चुलिया और बाईं ओर की आँख के पास वह्निदसा सूत्र लिखे गये हैं। बारह उपांगों के बाद चार मूल सूत्रों का नंबर आता है उसके लेखन का क्रम इस प्रकार है—

पत्र पर हम जो पुरुषाकृति देख रहे हैं वह एक भव्य मुकुट पहने हुए है। मुकुट के ऊपरी छोर से प्रारंभ कर ललाट तक दाहिनी ओर उत्तराध्ययन दशवैकालिक नन्दीसूत्र और अनुयोगद्वार ये चार मूल सूत्र तथा इसी प्रकार बाईं ओर दशाश्रुतस्कंध बृहत्कल्प व्यवहार और निशीथ सूत्र ये चार छेद सूत्र लिपिबद्ध किये गये हैं।

इस पुरुषाकार आकृति के सामने एक नक्शा है। उसमें बत्तीस लाइन तथा बारह खाने हैं। इस नक्शे में इन बत्तीस सूत्रों के संबंध में ज्ञातव्य सब बातों का विवरण दिया गया है। उसमें क्रम से सूत्र नाम, कालिक या उत्कालिक श्रुतस्कंध अध्ययन उसके बाद तीन खाने एवं दो खाली दिये गये हैं।

और अन्त के चार खानो में से तीन खानो में निछराय, साधु सख्या और ग्रन्थ की सख्या दिये गये है । वह नक्शा पुरुषाकार अगोपाग सिद्धात कल्प के सामने ही दिया गया है । पाठक इस नक्शे द्वारा आगम–सबधी सारा विवरण जान सकते है ।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की दृष्टि इतनी पैनी थी कि उन की दृष्टि से कोई भी विषय अधूरा नही गुजरता था, वे जिस किसी भी विषय को लेते उस पर सागोपाग रूप से सम्पूर्ण दृष्टि से विचार करते । जैन परपरा केवल श्वेतांबर स्थानकवासी परपरा तक ही सीमित नही है । उसकी एक परपरा दिगम्बर सप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। दिगम्बर आम्नाय के अनुसार यद्यपि भगवान् द्वारा प्ररूपित मूल आगम ग्रन्थ लुप्त हो गये, फिर भी वे आगमो के समकक्ष कुछ ग्रन्थ मानते है । जिनका भी महत्त्व आगमो के समान ही है, उन ग्रन्थो में जैनधर्म के सब मुख्य सिद्धातो का अच्छी तरह प्ररूपण किया गया है । पूज्यपाद महाराजश्री ने दिगम्बर अम्नाय में प्रसिद्ध उन सब सैद्धांतिक ४५ ग्रन्थो के नाम इस पन्ने की पृष्ठ पीठिका में दिये है । इस प्रकार इस पन्ने मे महाराजश्री ने श्वेतांबर और दिगम्बर आम्नाय में प्रसिद्ध प्राय सब सैद्धांतिक आगमो और ग्रन्थो के नाम दे दिये है । उनकी दृष्टि से उन्होने एक भी ग्रन्थ नही छोडा है । पन्ने में पुरुष की आकृति अकित करके शरीर के अगोपागो के पास आगम रूप से प्रसिद्ध अग उपाग को लिखने के बाद आपश्री ने अंत में सबसे नीचे इसके निर्माण का इस प्रकार उल्लेख किया है —

इति श्री ॐ ह्री श्री पुरुषाकार अग उपाग सिद्धात कल्प सम्पूर्णम् । संवत् १९३० वर्षे चैत्र कृष्ण १३ तिथौ चद्रवासरे लिपि कृतम् तिलोक रिख शहर आगर मध्य स्वय आत्मार्थ श्रीरस्तु ।

जब पूज्यपाद महाराजश्री की अवस्था केवल छब्बीस वर्ष की थी तब आपश्री ने शरीर के अगोपागो की तरह जैन वाङमय में प्रसिद्ध अंगोपागो को उस-उस स्थान पर बडी खूबी से अकित किये थे । किसी सूक्ष्म द्रष्टा की ही ऐसी दृष्टि हो सकती है । साथ ही इस लेखन का हेतु बताते हुए आपश्री ने यह निर्देश किया है—'स्वय आत्मार्थ' यह सब अपने लिए लिखा है,-दूसरे के लिए नही । जिससे जैन–सिद्धात का यह वृहत् सैद्धातिक वाङमय सदैव आपके सामने चिरन्तन उपस्थित रहे और जिस समय आपको जिस ग्रन्थ को पढने की इच्छा होती उस समय उस आगम या ग्रन्थ को पढकर अपनी ज्ञान–पिपासा शात कर सकते ।

पदक की आकृति एव पृष्ठपीठिका में गूढार्थक दोहे

ऊपर हम जो एक अत्यन्त सुदर पदक की आकृति से युक्त पत्र देख रहे ह, वह पत्र धर्म प्रेमी सुश्राविका श्रीमती रभाबाई को स्व पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज द्वारा लिखा गया ह।

अहमदनगर निवासिनी सुश्राविका रभाबाई का कुछ वर्णन हम पूज्यपाद श्री के जीवन–चरित्र में कर चुके हैं। यह बाई अत्यन्त सरल उदार एव अह–र्निश धार्मिक क्रियाओं में रत रहती थी। समाज में इसका महत्वपूर्ण स्थान था। पुरुषों की अपेक्षा भी इनकी बातों का विशेष प्रभाव पडता था। अहमदनगर में आज हम जो विशाल धर्म स्थानक देखते हैं वह स्थानक इन्ही बाई द्वारा सघ को अर्पण किया गया है। रभाबाई के कोई औरस सतान नही थी। उनके दत्तक पुत्र का नाम चदनमलजी पितलिया था। चदनमलजी भी अपनी माता की तरह ही उदारचेता थ और अपने समय में अग्रणी श्रावक मान जाते थे। अहमदनगर में विशाल जन छात्रालय है उस छात्रालय की जमीन भी चदनमलजी के सुपुत्रोंने (श्री मोतीलालजी कुंवरलालजी) अपने पिता के स्मर–णार्थ अपनी ओर से दी ह। इन्ही चदनमलजी की सुपुत्री मानककुवरबाई ने पडिता महासती श्री राजकुवरजी महाराज के पास भागवती दीक्षा ग्रहण की ह।

जन धर्म और साधु–सतोंके दर्शन में बहुत रुचि होने के कारण श्रीमती रभाबाई प्रतिवर्ष चातुर्मास के दिनों में साधु–सतों के दर्शन के लिए जाया करती थी। दक्षिण प्रदेश में विहार करने के पूर्व जब पूज्यपाद महाराज श्री मालव आदि प्रांतों मे विहार कर रहे थ उस समय श्री रभाबाईने उन प्रातों में जाकर अनक बार उनक दर्शन किये थे। सत–समागम और धार्मिक ग्रथो का अध्ययन करते–करते उनका जीवन धर्ममय हो चुका था। किसी सत क नगर में आन क समाचार से उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता होती थी। जब पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी महाराज सब प्रथम अहमदनगर पधारे, उस समय जिस व्यक्ति ने श्री रभाबाई को यह शुभ सवाद सुनाया उसे धर्म प्रमी रभाबाइ ने अपने हाथो के सुवर्ण ककण उतारकर बधाई में दे दिया। एसी धर्मनिष्ठ उदारचेता सुश्राविका श्रीमती रभाबाइ को यह पत्र पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज द्वारा लिखा गया ह। पत्र में इस धर्म प्रमी बाई की धर्म में और अधिक श्रद्धा बढाने के लिए कहा गया ह।

पहले पहल आप श्री न हाशिय क रिक्त भाग में अपने इस पत्र का प्रत्युत्तर देन क लिए एक दोहे को अकित किया है।—

का अक्षर है आद में द अक्षर है अत।
ते दिज्यो तुम हित धरी ज्यु आनद उपजे चित ॥

जिसके आदि में 'का' और अंत में 'द' अक्षर है। उस कागज को आप हित रखकर देना, जिससे कि चित्त में आनद पैदा हो। इस दोहे के प्रथम दो पाद अत्यत सुन्दर काली स्याही से अंकित हैं। इस पत्र में सर्वप्रथम अत्यंत सूक्ष्म काली लाइनो के बीच एक पदक की आकृति चित्रित की गई है। संवत् १९३३ में आज से ८४ साल पहले इस पदक की आकृति बनाई गई है। इन वर्षो मे दुनिया अत्यत द्रुत गति से आगे बढती रही है। पहले के सौ या हजार वर्षो में दुनिया जितना विकास नही कर सकी थी, उतना आधुनिक युग के इन दस वर्षों में किया है। इस अवधि में आभूषण, चित्र, वस्त्र आदि की निर्मिति में बहुत विकास हो चुका है। पुराने युग की बहुत-सी वस्तुएँ निकम्मी ठहराई जाती है। इसी प्रकार पदको की आकृति में भी बहुत कुछ विकास हो चुका है। फिर भी महाराज श्री ने इसका निर्माण इस ढंग से किया है कि उसकी आकृति आजकल के पदको में भी दृष्टिगोचर होती है। बहुत बार तो यह भ्रम होता है कि कही महाराज श्री द्वारा लगभग एक सौ वर्ष पहले बनाई हुई इस कृति को देखकर तो लोग आजकल पदक नही बना रहे है? एक भविष्य द्रष्टा अलौकिक पुरुष के द्वारा ही ऐसी रचना सभव है, जिसे देखकर भावी पीढी के लोग उसका अनुकरण कर कृतार्थ होते है। इस पदक की आकृति साधारण नही है। राष्ट्रपति द्वारा देश में विशिष्ट कार्य करने वाले पुरुषो को उनके सम्मानसूचक प्रदत्त पदको में इस प्रकार की विशिष्ट आकृति दृष्टिगोचर होती है। मानो यह पदक महाराज श्री ने उनके द्वारा किय हुए उत्कृष्ट कार्यो के निमित्त प्रदान किया हो।

पदक के अत मे इस पत्र को लिखने का संवत् अंकित किया गया है। सवत् का चित्रण इस प्रकार अक्षरो में किया गया है कि उसमें महाराज श्री ने पत्र मे लिखने का वक्तव्यांश लिख दिया है। अक्षर थोडे होने पर से भी सूत्रात्मक है, पर उससे सुज्ञ पाठक विशद अर्थ निकाल सकता है। अब हम सर्व प्रथम सवत् में अंकित इस पत्र को पढें।

स रभावाईने धर्म स्नेह वचज्यो। पालज्यो शुद्ध आचार
म दोय अक्षर सरनाम है, जतन करो तुम नीत।
धर्म सनेह वीचार के, लिखियो भवे मित ॥
त तत्त्व तत्त्व निरणे करो, छोडो मोह विकार
१ एक घट घालो एक काढो
९ ४ वोल को जोग जब। ता दिन होसी मिलाप
३ छत्तीस अक समान मत होज्यो
३ ६३ अक मिल्या रहज्यो नित

संवत १९३३ के तीनों अक्षर तथा चारों अंकों के निर्माण में महाराज श्री ने पत्रमर्दी जिन जिन वाक्यों से काम लिया है। वे वाक्य उस-उस अक्षर के सामने ऊपर लिख दिये है।

इस पत्रका तात्पर्य स्पष्ट है। यह प्रथम किसी मुनिराज द्वारा अपने संघ के श्रावक या श्राविका को लिखे जानेवाले धर्म स्नेह की तरह रमाबाई को धर्म स्नेह लिखा गया है। रमाबाई से धर्मस्नेह क्यों ? अपने धर्म में वे केवल धर्मं संदेश लिखकर ही न रह गय है। धर्म स्नेह के साथ शुभ आचारका पालन करने के लिए भार दिया है। अतएव धर्म स्नेह के बाद तुरंत आपश्री ने उसी अक्षर में शुद्ध आचार का पालन करने के लिए उल्लेख किया है पालो शुद्ध आचार।। शुद्ध आचार का पालनभी जब तक धर्म का भाव नही होता तब तक नही हो सकता और न [illegible] इसी प्रकार की प्रमवृत्ति द्वारा उत्तर दिया जा सकता है। इस लिए म अक्षर में आपश्री ने धर्म की उत्कृष्टता बताकर उसी वृत्ति से प्रत्युत्तर देने के लिए लिखा है।

दो म अक्षर नाम है, जतन करो तुम नित।
धम स्नह विचार के लिखियो मुझे मित्त।।

धर्म में दो अक्षर ही श्रेष्ठ नाम है इसकी तुम यत्नपूर्वक रक्षा करना। क्योंकि धर्म से चित्त शांत होता और तुम मुझे प्रत्युत्तर देते समय हे मित्र, मेरी तरह धर्म स्नेह का विचार करके मुझे पत्र लिखना।

सर्वों एवं मुनिराजों की दृष्टि में विश्व के प्राणी मात्र मित्रवत् होते हैं वे सत्त्वेषु मैत्री' इस सिद्धांत के अनुसार अखिल जगत के प्राणियों के साथ मैत्री भावना रखते हैं। इस लिये रमाबाई को उपलक्षण बनाकर यहाँ पर आपश्री ने बाईजी के बहाने सब प्राणियों के लिये मित्र शब्द का प्रयोग किया है।

धर्म की शरण ग्रहण करने के लिए कहकर आपश्री ने तीसरे 'स' अक्षर में तत्त्वों का निर्णय करके मोह विकार छोड़ने लिए लिखा है— तत्त्व तत्त्व निर्णय करो छांडो मोह विकार। अपने जीवन में सत्य जैन सिद्धांत में प्ररूपित तत्त्वों का ही चिंतन कर उपादेय सिद्धांतों का निर्णय करना। इन तत्त्वों का निर्णय करना जीवन को नीचे गिरानवाले मोह विकार आदि छोड़ देना। मोह विकार ही संसार बंधन के कारण है। इनसे चित्त हटाकर उच्च गुण श्रेणी की ओर प्रयाण करने से जल्दी आत्म कल्याण होगा।

इस त अक्षर के बाद प्रथम एवं र अंक में अपने जीवन में आस्रवों से चित्त हटाकर संवर मय जीवन यापन करने के लिए लिखा गया है। एक घट धालो एक काढो। अपने हृदय में एक का प्रवेश कराओ और एक को निकलो।

अर्थात् आस्रव ही संसार में बंधन कारक हैं और संवर मोक्ष दायक । अतएव अनादि कालसे संसार में परिभ्रमण करानेवाले आस्रवों को अपने हृदय से निकाल कर उनके स्थान पर संवर रखने चाहिए । संयत मनुष्य का जीवन सामायिकमय होता है, पर गृहस्थ-जीवन में धर्मवृत्ति से जीवन-यापन करनेवाले मनुष्य का जीवन संवरमय होता है।

अपने पत्र में इस प्रकार धर्ममय जीवन यापन करने का संदेश देकर बाद में ९ के अंक में मिलने की आशा प्रकट की है— 'चार बोल को जोग जब, ता दिन होसी मिलाप।' 'अभी तो मैं संक्षेप में ही धर्म-संदेश लिख रहा हूँ, पर भविष्य में जब द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव इन चार बोलों का योग होगा । उस दिन साक्षात्कार होगा । पत्र में हृदगत बातें संपूर्ण रूप से नहीं की जा सकती । मैं जो कुछ धर्म-संदेश लिखना चाहता हूँ, वह इस छोटे-से पत्र में संपूर्ण रूप से अंकित नहीं कर सकता । पर साक्षात्कार होने पर धर्म का विशद विवेचन कर सकूँगा ।

अंत में ३६ अंक में अंको द्वारा शत्रु और मित्र के लक्षण बताकर जीवन में सदैव नम्रतापूर्वक रहने के लिए कहा है-'छत्तीस अंक समान मत होज्यो, ६३ अंक सरखा रहज्यो मित्त ।' ३६ अंक के मुँह जिस प्रकार विरुद्ध दिशा की ओर रहते हैं, उसकी तरह तुम अपना व्यवहार मत बनाना, पर ६३ के अंक की तरह सदैव मैत्री भावना से रहना । ६३ अंक के मुँह जिस प्रकार परस्पर एक दूसरे के सामने रहते हैं, कभी एक दूसरे से विमुख नहीं होते। उसी तरह तुम्हारा मुँह भी विरुद्ध दिशा की ओर न हो अर्थात् सबको मैत्री-भावना से देखने की साधना कर अहिंसा की उच्चतम श्रेणी पर चढ़ना ।

अंत में इस पत्र द्वारा नौ और आठ के पहाड़े द्वारा अपने जीवन को नौ के अंक की तरह सदैव एक स्थिति में रखने का भार देकर पुन. धर्म-संदेश दिया है ।—

नव अंक सम तुम रखो, प्रीत धर्मनी रीत ।

नव दुणा १८, एक आठ ९ एवं रीत ॥

नौ का अंक चाहे जितनी संख्या से गिनने पर भी सदैव एक स्थिति में रहता है । कभी वह अपने नौ के स्वभाव को नहीं छोड़ता । उसी प्रकार तुम धर्म के प्रति अपनी प्रीति रखना । यथा—

९-१-९ = ९

९-२-१८ = १ + ८ = ९

९-३-२७ = २ , ७ = ९

९-४-३६ = ३ - ६ = ९

९-५-४५ = ४ ५ = ९

इस तरह संख्या से गिनने पर भी नौ ने अपनी पूर्व स्थिति नहीं छोडी है। फिर आठ के अंक के समान होने का आप श्री ने निषेध किया है अष्ट अंक सम मत हुवो या कहण हमारी नीत।

आठ दुणा १६ एक था छ ७ एव नीत॥

हमारे कहने की नीति यही है कि आठ के अंक के समान तुम मत होना। क्योंकि आठ का अंक सदैव घटता-बढता रहता है। कभी एक स्थिति में नहीं रहता। तुच्छ व्यक्ति की हो आठ के अंक जैसी दशा होती है। धर्म मार्ग में निरंतर प्रयाण करनेवाले व्यक्ति से गांभीर्य होने से उसकी स्थिति समुद्र के समान मर्यादायुक्त होती है। वह अपनी मर्यादा का कभी अतिक्रमण नहीं किया करता। इसलिये उसकी स्थिति नौ की तरह बताई गई है।

इस पत्रे के पिछले हिस्से में '१ श्री रीषभजी २३ श्री पार्श्वजी २२ श्री नमजी इस प्रकार तीन तीर्थंकरों के नाम लिखकर पहले अपने इस पत्र के संबंध में एक दोहा लिखा गया है —

तीन अक्षर से नहीं लिख सकु मीलण्यो होसी जब।
मन मन की हु वारता कहि सुणासु सब॥१॥

तीन अक्षरवाले इस कागज में मैं अपने हृद्गत सब भाव नहीं लिख सकता। वे तो जब कभी द्रव्य क्षेत्र-काल भाव [illegible] मिलन का योग होने पर मिलना होगा तब व्यक्त करूंगा। मन मन की जो बात है अर्थात् अभी मेरे चित्त में प्राणी मात्र को आध्यात्मिक पथ की ओर अग्रसर करनेवाली अनेक बातें तरंगित हो रही है वे सब उस समय मैं कह सुनाऊंगा।

इसके बाद तीन गूढार्थक दोहे लिखकर अंत में दो दोहे लिखे गये है॥ वे गूढार्थक दोहे इस प्रकार है —

॥८०॥ गूढार्थ॥ दुहरा॥ दधी 'सुत रीपु स' जाणीये॥ तस 'रीपु' रीपु से जाण॥ कंठ छवी तसु वाहन॥ लछण सोहे सुजाण १ मेह जिनराज न भजो नीत — ॥दूहा॥ सायर सुत से जाणो य। तस। सुत वल्लभ, तेह, तस वाहण भक्षण। स्वामीजो॥ प्रणमे सहु। नर जहु२ए प्रभु प्रते नीत नमस्कार करज्यो—

॥दूहा॥ गिर। पुत्रि। पति। तिलक। तसु। तात। पुत्री को। पत॥ पिता। भ्रात। नंदन वहु वदन। करस्यो। नीत॥३॥ ए प्रभु ने नीत जापता रहि यो॥

इन तीनों का अर्थ इस प्रकार है।

(१) दधीसुत—चन्द्रमा उसका रिपु राहु राहु का रिपु-विष्णु, विष्णु का रिपु रावण रावण का स्वामी—शिव उस कंठछविवाले शिव का वाहन—वृषभ,

यह वृषभ जिसके चिन्ह रूप से शोभित होता रहता है, ऐसे जिनराज श्री ऋषभदेव भगवान् का नित्य भजन करो।

(२) सायरसुत—चन्द्रमा, चन्द्रमा का सुत-बुध, बुध की वल्लभा-रोहिणी, रोहिणी का वाहन-सर्प, सर्प का भक्षक—गरुड, गरुडका—स्वामी—विष्णु, जिसे कि सब मनुष्य प्रणाम करते हैं। इस प्रभु के प्रति भी नित्य नमस्कार करता।

(३) गिरि—हिमालय गिरिपुत्ति—हिमालय की पुत्री—पार्वती, गिरिपुति पति शिव, गिरि-पुतिपति तिलक—शिव का तिलक—चद्रमा चद्रमा का तात समुद्र, समुद्र पुत्री-लक्ष्मी, लक्ष्मी का पति—विष्णु अर्थात् कृष्ण-पिता भ्रात नदन—पिता वसुदेव और भाई बलदेव को प्रसन्न करनेवाले श्रीकृष्ण। ऐसे कृष्ण को नित्य वदन करता और ऐसे प्रभु का नित्य स्तवन करते रहना।

इन तीन गूढार्थक दोहों के बाद नौ और दोहे लिखे गये हैं। वे इस प्रकार हैं।

नारी बधण बधीया नारी नरने पास। नारी बधन सारखो दूर गति जाय

नीरास इण न्याय से स्त्री पुरुष से जाणो ॥ १ ॥

धनथी धर्म नही नीपजै धन बाब आधार।

कामक माया पोषवै दुर गति देव अवतार ॥ २ ॥

भोग ते कादम सारखो अपवित्र मलीन ए होय।

प्राणीषु ता भोग में नीकाली न सके कोय ॥ ३ ॥

समकितदृष्टिड जीवडो पाले कुटुब परिवार।

अतरगत भेद नहि, जिम धाए खिलावत बाल ॥ ४ ॥

सतगुरू सगत कीजिये सरस वचन सुणो नित।

सवरभाव चित मे धरो- सदा रखो धरम मे चित ॥ ५ ॥

समता सम ससार में और न दूसरो सुख।

विपता सम इण लोक में नहीं जगत में दुख ॥ ६ ॥

धर्म प्रीत जग मे भली पाप प्रीत दुखदाय।

धर्म पुगावे शुभ गति पाप नरक ले जाय ॥ ७ ॥

मृग आंखमा जेहने तेह् थको सपजे विकार।

पुर्स स्त्री निर्म्मोकारता तब उतर भवपार ॥ ८ ॥

दोय कपाट ऊपर रहे बत्तीस रहे तिण पास।

तेहना अतिचार पच हैं। टाल्या मुक्ति में वास ॥ ९ ॥

अर्थ —ससार के अधिकतर लोग स्त्री के बंधन से बंधे हुए हैं। इसी बधन मे पुरुष के प्रति आसक्ति होने के कारण स्त्री पुरुष के पास रहती है पुरुष या स्त्री के प्रति यह ब धन उसे इस लोक से दुर्गति में जानेपर निराश

करेगा। अर्थात स्त्री के प्रति आसक्ति रखने के कारण वह दुर्गति प्राप्त करेगा। इसी प्रकार स्त्री भी पुरुष के प्रति आसक्ति रखने के कारण दुर्गति प्राप्त करेगी। इस लिए स्त्री और पुरुष किसी को परस्पर एक दूसरे में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

२ धन से धर्म पैदा नहीं हो सकता है। धन अनेक बाधाओं का आधार है। धन केवल काम में प्रवृत्त कर माया का पोषण करता रहता है। और वह परलोक में प्राप्त होनेवाले देवता के अवतार को दूर करता है। धनिक व्यक्ति अत्यधिक आरंभ समारंभ करने के कारण अधिकतर देव गति में बहुत कम जाते हैं।

३ भोग कर्दम के समान है। इसे सेवन करनेवाला व्यक्ति अपवित्र तथा मलिन होता है। इस भोगमें निमग्न व्यक्ति को कोई बाहर नहीं निकाल सकता। सदव शुद्ध जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति को इन भोगों से दूर रहना चाहिए।

४ सम्यग्दृष्टि जीव संसार में रहकर भी अपने कुटुंब परिवार का पालन पोषण करता है। ऐसा मुमुक्षु प्राणी अंतर और बाह्य भेद रखे बिना सदैव साम्य अवस्था में रहता है। जिस प्रकार धाय अनासक्त भाव से शिशु को दूध पिलाती है। उसी तरह वह भी अनासक्त भाव से अपने कुटुंब का पालन पोषण करता है।

५ सदव सद्गुरु की संगति करना चाहिए। उनके पास जाकर नित्य सुखद उपदेशात्मक वचन सुनो। अपने चित्त में सवर भाव रखो और धर्म में सदव अपना चित्त लगाये रखो।

६ समता के समान इस संसार में और कोई दूसरा सुख नहीं है और विपत्ति के समान इस संसार में दुःख नहीं है।

७ संसार में केवल धर्म के प्रति प्रीति ही भली है। पाप के प्रति जो प्रीति होती है वह दुःखदायिनी है। क्योंकि धर्म शुभ गति में पहुंचाता है। पर पाप नरक की ओर ले जाता है।

८ जिसकी मृग से उपमा दी जाती है। अर्थात जिसकी मृगकी आंखों से उपमा दी जाती है। उस मन लोचनी नारी से विकार पैदा होता है। जब पुरुष और स्त्री इन दोनों का परस्पर एक दूसरे के प्रति निर्विकार भाव होता है तब प्राणी इस संसार रूपी समुद्र से पार उतरता है।

९ मनुष्य के शरीर में ओष्ठरूपी दो किवाड़ ऊपर रहते हैं। और उन किवाडों के पास बत्तीस दांत दांत रहते हैं। उस मुँह से वाणी निकलने पर पांच प्रकार के अतिचार लगते हैं इन अतिचारों को टालने पर व्यक्ति स्वर्ग में निवास करता है। उपर मन सुश्राविका श्री रमाबाई को लिखे हुए पत्रका जो विवेचन किया है वह पत्र शांत स्वभावी सतिशिरोमणि श्री रामकुंवरजी महाराज का परिवार की सतियों से श्रमण संघीय उपाध्याय मुनिश्री आनंदऋषिजी महाराज को प्राप्त हुआ है।

अशोक वृक्ष

(नोट—महाराज श्री द्वारा चित्रित अशोक वृक्ष का चित्र पृष्ठ २१३ पर अगोपाग सिद्धात कल्प नामक फलक की पृष्ठ पीठिका में दिया गया है। पाठक उस चित्र को देखकर प्रस्तुत विवेचन पढें ॥

जैन वाड्मय में नम्मोक्कार मत्र का सबसे अधिक महत्त्व है। ब्राह्मण परंपरा में जिस प्रकार गायत्री का महत्त्व है, उसी प्रकार बल्कि उससे अधिक इस मत्र का जैन सस्कृति में महत्त्व है। इसे महामत्र कहते हैं। जैन कुल में उत्पन्न प्रत्येक बालक प्रतिदिन इसका स्मरण करता है। इस मंत्र मे सर्व प्रथम अरिहतो को नमस्कार किया गया है। इस अवसर्पिणी काल में भगवान् ऋषभ देव से लगाकर भगवान महावीर स्वामी पर्यंत जो चोवीस तीर्थंकर हुए, वे ही उस समय अरिहत कहलाते थे। जो तीर्थंकर होकर तीर्थ की स्थापना करता है वही अरिहत होता है। शास्त्रो मे अरिहंत भगवान् के १००८ गुणो का वर्णन किया गया है और जिस समय वे देशना देते है, उस समय वहाँ देवगण एक भव्य समसरण की रचना करते है। अरिहत भगवान् उस समवसरण मे अशोक वृक्ष के नीचे व्यास—पीठ पर अधिष्ठित होकर अपनी देशना देते है।

इस कलाकृति में पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज ने शास्त्रो में वर्णित अरिहतो के अष्ट महा प्रतिहार्यो में प्रथम प्रतिहार्य अशोक वृक्ष की रचना की है। अशोक वृक्ष के ऊपर एक वेदिका है, वेदिका के दोनो ओर तोरण द्वार की तरह दो स्तभ खडे हुए है, उन दोनो स्तभो के ऊपर चदावा तना हुआ है। इसी मडप मे अरिहंत भगवान् वेदिका पर अधिष्ठित होकर देशना दे रहे है। उनके सामने रजोहरण रखा हुआ है। संप्रदायो की भिन्नता के अनुसार तीर्थ की स्थापना करनेवाले तीर्थंकरो की आकृति में मतभेद हो सकता है। कदाचित् मूर्तिपूजक श्वेताबर संप्रदाय और दिगबर सप्रदाय इसमें अपना मतभेद प्रकट करे। पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी महाराजने अपनी संप्रदाय के अनुसार इस आकृति का निर्माण किया है।

अब हम इस अशोक वृक्ष का निर्माण करने मे जिन भगवान की देशना—रूप अमृतोपम मंत्रो, सूत्रो एव वाक्यो का उपयोग किया गया है उनका अध्ययन करे। सबसे पहले स्तभो के ऊपर स्थित चदोवा के ऊपर जो गुवज है, उस गुवज

में 'उ की रचना की गई है। गुबज के ऊपर नमस्कार मत्र अकित किया गया है। वहाँ जगह कम होने से इस मत्र के एकाध अक्षर छूट गये है वह इस प्रकार है।--

अरिताण सिद्धाण आयरिया उवज्झाय साहुय 'अरिताण म 'ह अक्षर छुटा हुआ है, इस मत्र के ऊपर उ अकित है। गुबज के नीचे दो लाइनों में 'नमो अरिहन्त सिध्वसाधुभ्य सकल सिध्दिदायकाय नमामि सदा' इस प्रकार लिखा हुआ है। उसके बाद दोनो स्तभो तथा ऊपरवर्ती पटोव में देव गुरु और धर्म की वदना की गई है। वह इस प्रकार है-- देव अरिहत च नमामि, गुरु निग्रथ च नमामि और दयामय धरम च नमामि। भाषा भेद होने पर भी ऊपर वर्णित मडप और गबजवर्ती अक्षरों द्वारा महामत्र नमस्कार मत्र का ही चित्रण किया गया है। भगवान के आसीन होने की वेदिका निर्माण परमेश्वराय नमामि सदा इन अक्षरों द्वारा किया गया है।

अब हम मडप के दोनों ओर अकित क ख अक्षर की ओर मुडते है। बाई ओर क अक्षर है। उसमे नमस्कार मत्र दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा तथा उत्तराध्ययन सूत्र की एक प्रसिध्द गाथा का उत्तराध्द देखते है। उनका वर्णन पहले अनेक बार हो चुका है। उनका अंकन इस प्रकार किया गया है--णमो अरिहत सिध्द आएरिय उवज्झाय साहुए १ धम्मो मगलमुक्किट्ठ अहिंसा सजमो तवो। देवावि त नमसति जस्स धम्मे सया मणो॥१॥

खति खति करे लोय पत्तोमइसमपुत्तर ॥१॥

इसी क अक्षर के मध्यवर्ती काम में जहाँ कि दशवैकालिक की प्रथम गाथा लिखी गई है वहाँ नीचे की ओर स १९३६ लिखा गया है। मडप की दाहिनी ओर ख अक्षर का अकन किया गया है। इस अक्षर की आकृति क ख ग शिपक के नीचे वर्णित ख और ग की आकृति से मिलती--जुलती है, वहाँ उनका विशद विवेचन कर चुका हूँ। वही पर विवरण पढकर पाठक इसके सबध में जानकारी प्राप्त कर ले। वहाँ ख अक्षर में मछलियों का चित्रण किया गया है और ग में लताओं का। इन दोनों अक्षरों में चित्रित मछलियाँ तथा लताओं का चित्रण अकेले इस ख अक्षर में है।

५ समवसरण रचना के बाह्यवर्ती रिक्त भाग में विविध आकृति में चित्र--कार द्वारा चित्रित चित्रो की तरह ग घ, ड च छ ज झ ट ठ ढ ण त द ध इन अक्षरो की आकृति निर्मित की गई है। यहाँ पर भी प्रत्येक अक्षर के अकन करने में बडी कुशलता से काम लिया गया है। प्रत्येक अक्षर की आकृति भिन्न भिन्न ढग

से बनाई गई है। पाठक फलक में अंकित अक्षरों को देखकर उनकी विशेषता जान सकते हैं। विस्तार-भय से मैं उनका विशद विवेचन नहीं कर मुख्य विषय पर आता हूँ। सब से पहले अशोक वृक्ष का निर्माण करके उस पवित्र वृक्ष के नीचे मूल भाग में जो चबूतरा बनाया गया है उसपर 'श्री परमेश्वराय नमः सिद्ध श्री' लिखा है। उसके बाद इस वृक्ष की थड में दशवैकालिकसूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा अंकित की गई है। इस गाथा का अंकन कर महाराज श्री ने इस वृक्ष को धर्ममय बताया है। तत्पश्चात् थड के ऊपर जहाँ कि डालियाँ प्रारंभ होती हैं, वृक्ष का वह भाग सब से महत्त्वपूर्ण है। वहाँ उपदेशात्मक वाक्यों द्वारा पत्तियों का चित्रण किया गया है। ये उपदेशात्मक वाक्य अत्यंत छोटे होने से पढते ही हृदय को छू लेते हैं। इनकी हृदय पर सीधी असर होती है। ऐसा प्रतीत होता है—स्वयं भगवान् ही इस पंचम काल में आजकल की जन भाषा में देशना दे रहे हैं पहले पहल अहिंसा को श्रेष्ठ बताकर हिंसा की तुच्छता सिद्ध की गई है। यथा—'जेणा नीकी छे हिंसा फीकी छे' यतना श्रेष्ठ है हिंसा तुच्छ है। दशवैकालिकसूत्र के चतुर्थ अध्ययन की सातवीं गाथा में पहले यह पूछा गया है कि किस प्रकार आचरण करने से पाप कर्म का बंधन नहीं होता है—

कहं चरे? कहं चिट्ठे? कहं आसे? कहं सए?
कहं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बन्धइ?

वहाँ इसका उत्तर उससे बाद की गाथा में इस प्रकार दिया गया है—

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयं आसे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं [redacted] बन्धइ॥

किस प्रकार चलने, खडे होने, बैठने, सोने, भोजन करने और भाषण करने से प्राणी पाप कर्म का नहीं बांधता है। इसके उत्तर में कहा गया है कि यतनापूर्वक चलता हुआ, यतनापूर्वक खडा होता हुआ, यतनापूर्वक सोता हुआ, यतनापूर्वक भोजन करता हुआ और यतनापूर्वक बोलता हुआ प्राणी पाप कर्म से बद्ध नहीं होता है। इसलिए यतना रखना अहिंसा का चिन्ह है और अयतनापूर्वक आचरण हिंसा का द्योतक है। जिस प्रकार कार्य करने से कर्मों का बंध नहीं होता, वही अहिंसा है। जयणापूर्वक आचरण करने पर ही प्राणी कर्मों से लिप्त नहीं होने से अहिंसा का पालन करता है।

उसके बाद दूसरी ओर उसी पत्ती की आकृति में लिखा हुआ है- 'कर जो धरम टूटेगा करम" धर्माचरण करना, जिससे कर्म नष्ट होंगे। संसार में धर्म ही एक मात्र तरणोपाय है, धर्माचरण करने वाले व्यक्ति का ही जीवन सार्थक माना जाता है, शुद्ध हृदय से धर्म का पालन करनेवाले व्यक्ति के कर्म धूप में पडी हुई

अग्नि की तरह जल्दी नष्ट हो जाते है। पत्ती की मध्य में अंकित लाल अक्षरों में। भ्रमता दमता है।' नामक सूत्रात्मक वाक्य है। भ्रम अर्थात् किसी प्रकार की शंका रखना। भ्रम रखनेवाले व्यक्ति का सदैव दमन होता है। वह प्रत्येक व्यक्ति से पराजित होता है। क्यों कि शंकाशील व्यक्ति स्वयं शंकित होने से अपने सिद्धांत पर भी ठीक तरह से विश्वास नहीं कर सकता और अन्य संप्रदाय वाले व्यक्ति द्वारा अच्छे शब्दों में अपने सिद्धांत का प्रतिपादन करने पर तुरंत उस पर विश्वास कर लेता है। फिर दूसरी ओर उसी प्रकार लाल अक्षरों में 'समता रखता है' सुनहला वाक्य अंकित है। समता रखनेवाला व्यक्ति सदैव अपनी आत्मा में रमण करता है उसकी बाह्य वस्तुओं की ओर दृष्टि नहीं होती उसी पत्ती में बाँई ओर उपर के छोर पर धारजो दया आणिजो मया अंकित है। अपने हृदय में दया धारण करना जिस से चित्त सद्भावनाशील होगा। करुणा रखने वाले या अहिंसा का पालन करने वाले व्यक्ति का हृदय भावनाशील होता है। भावुक व्यक्ति सब प्राणियों पर कारुण्य वृत्ति रखकर सतत शुभ कार्यों में रत रहता है। अंत में दूसरी ओर होय जो नरम जु दुटसी करम लिखकर इस पत्ती की आकृति को पूर्ण किया है। जीवन में सदैव विनम्र या विनयशील होना चाहिए विनयशील व्यक्ति शीघ्र ही इष्ट ज्ञान संपादन कर लेता है वह सब ओर से ज्ञान प्राप्त करने के लिए तत्पर रहता है। एस विनयशील व्यक्ति के कर्म जल्दी नष्ट हो जाते है। विनय या नम्रता बारह प्रकार के तप में एक प्रकार का तप है। इस विनय रूपी तपश्चर्या से प्राणी कर्म बंध से विरहित होता है।

नीचे भी पहली पत्ती की जैसी आकृति बनाई गई है। उस आकृति के निर्माण में महाराज श्री ने निम्नांकित सूत्रात्मक वाक्यों का उपयोग किया है। 'सब जो साध के मेटो उपाध के' ध्यावजो मम होवे ज सम दान में ज्ञान है। दान में मान है। थे देजो साता जू होसी साता – 'आणो संतोष मीटे सोसता। इन सब सूत्रात्मक वाक्यों का अर्थ बहुत सरल है। सब से पहले संतों के सान्निध्य में रहने का महत्त्व बताया गया है। 'सेवजो साध के मेटा उपाध के।

शुभ साधकों का सेवन करना जिससे तुम्हारी सब उपाधियाँ दूर हो जायगी प्राणी के विकास में सद्ग्रंथो का पठन, धर्माचरण आदि का नंबर बाद में आता है। सब से पहले उसके लिए साधुओं की सेवा या सत्संगति आवश्यक है। साधुओं के सान्निध्य में रहनेवाले व्यक्ति को अनायास धर्म का ज्ञान हो जाता है। क्योंकि साधुओं की प्रत्येक चर्या धर्म रूप होती है। उनकी चर्या ही आँख खोल कर देखनेवाले व्यक्ति के लिए धर्म रूप होती है।

उसके लिए उसे स्वतंत्र रूप से धर्म-ग्रंथ पढने की आवश्यकता नही रहती। साधुओ की सेवा करनेवाले व्यक्ति की अनायास सब उपाधियाँ दूर हो जाती है। इसके विपरीत असाधुओ के निकट रहने से दिन-रात उपाधियाँ बढती रहती है। कहा भी है—

संगत कीजिये साधु की, हरे और की व्याधि ।
ओछी संगत क्रूर की, आठो प्रहर उपाधि ।।

साधु सेवा के बाद 'लावजो गम होवे जु सम' लिखा हुआ है। क्रोध के वशीभूत होकर प्राणी अनेक बार ऐसे कृत्य कर बैठता है, जिसके लिए उसे जन्म पर्यंत पश्चात्ताप करना पडता है। क्रोध की उपमा कही-कही पर भूत या पिशाच से दी गई है। पिशाचग्रस्त प्राणी विचार-शून्य होकर ऐसे कृत्य कर बैठता है कि बाद में स्वस्थ अवस्था में आने पर उसे स्वय अपने पर विश्वास नही होता और कहता है कि क्या ये कार्य मेरे द्वारा किये हुए है। इसी तरह क्रोधी व्यक्ति भी विचार-शून्य होकर जो अकृत्य करता है, क्रोध रूपी भूत के उतरने पर उसे अपने उन कार्यों के लिए पश्चात्ताप होता है। इसलिए जब क्रोध पैदा होने जैसी अवस्था हो, उस समय मौन धारण कर लेना चाहिए, चुप रह जाना चाहिए मौन धारण करने से चित्त में शान्ति हो जाती है। शान्त जीवन ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है। अत शात जीवन व्यतीत करने के लिए कटु वचन बोलने का अवसर आने पर सदैव मौन का आश्रय लेना चाहिए।

मौन का महत्त्व बतलाने के बाद आपश्री ने 'तान मे तान है, अकित किया है। इसका अर्थ है—खीचातानी में खीचातानी है। कभी किसी वस्तु के लिए खीचातानी नही करनी चाहिए। खीचातानी करनेवाले व्यक्ति का जीवन सतत सघर्षमय रहता है। खीचातानी कलहमूलक है। इसलिए वैर की वृद्धि करनेवाली खीचातानी से सदैव दूर रहना चाहिए।

वैरमूलक खीचातानी से दूर रहने का उपदेश देकर दान का महत्त्व बताया गया है। दान में मान है' दान, शील, तप भावनारूप चतुर्विध धर्म में दान का प्रथम स्थान है। दानी व्यक्ति सम्मान का पात्र होता है, कजूस व्यक्ति चोरो को सतप्त करता है। दानी व्यक्ति की मृत्यु होने पर भी वह अपने यश-रूपी शरीर से जीवित रहता है—'कीर्तिर्यस्य सो जीवति' जिसकी कीर्ति बनी रहती है, ससार में वही जीवित रहता है। उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त करने के लिए सदैव सत्पात्र को दान देते रहना चाहिए।

दान का माहात्म्य वर्णन करने के बाद सब प्राणियो को सुख पहुँचाने के महत्त्व का गान किया गया है—'थे देजो साता जु होसो साता'। सब प्राणियो

को सुख—शान्ति पहुचानेवाला व्यक्ति सदव मस्त रहता है। दुःख पहुचानवाले व्यक्ति का हृदय सदव अशांत रहता ह। अशांत व्यक्ति कभी मस्त नही रह सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को पीडा पहुँचानेवाला व्यक्ति सदव पीडित व्यक्तियों का शाप प्राप्त करता रहता ह। शोषित और पीडित व्यक्तियों का वह शाप उसके चित्त को और अधिक सतापित करता रहता ह। इसके विपरीत प्राणि मात्र को आराम पहुचानवाला व्यक्ति सदव शात रहता है। वह दुःख में भी सुख का अनुभव करता ह। पीडित व्यक्ति के मुख पर मुसकान की एक रेखा देखकर वह पुलकित हो उठता ह। वह सदव आत्मा की आनदमय अवस्था में विचरण करता ह। आत्मा का सहज आनद प्राप्त करन के बाद उसका मस्त रहना स्वाभाविक ह। अतएव यह लिखना सवथा सगत ह—

न देवो साता जु हो सो माता।[1]

सब को सुख पहुँचान के महत्त्व का वणन करने के बाद सतोष की स्तुति गाई गई ह— आणो सतोष मिट सोसता।।[1] जीवन में सतोष सुखदायक और तृष्णा दुःखदायक होती ह। तृष्णा कभी कम नहीं होती वह सदव बढती रहती है।

तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा।

तृष्णा कभी वृद्ध नही होती वह सदव अपनी यौवनावस्था में रहकर निरतर आगे बढती रहती है। यहाँ तक कि पहले मर्यादित सपत्ति प्राप्त कर लेने पर भी उसे सतोष नही होता। इसलिए अधिक सपत्ति प्राप्त करने की लालसा में वह मन ही मन जलता रहता है। इसके विपरीत सतोषी व्यक्ति की दृष्टि सदव नीचे की ओर रहन से अपने पास जो कुछ होता ह उसीमें सतुष्ट रहता ह। वह निम्न प्राणियों से अपने को अधिक सपन्न देखकर सुखी होता है। कहा भी ह—

सतोष परमं सुखम्।

सतोष ही श्रेष्ठ सुख ह। सतोषी व्यक्ति के चित्त में तृष्णामूलक दाह नहीं रहता। इसलिए सतोष द्वारा अपने जीवन में अनुभूत इस सूत्र वाक्य का सब को अपने जीवन में पालन करना चाहिए—(आणो सन्तोष मिटे सोसता। तुम अपने जीवन में सतोष धारण करो जिससे तुम्हारे चित्त को जलानेवाला तृष्णा मूलक दाह दूर हो जाय। पक्तियों के चित्रण के बाद सबसे ऊपर जो गुबज की आकृति ह उसके मध्य में मगलाचरण सूचक[1] श्री ऐं ॐ ह्री श्री अर्हित ह। मगलाचरण के दोनों ओर 'बोलो साँच मीट आँच तथा जन मत एन ओर फन। लिखा हुआ है।

पच महाव्रतों में अहिंसा व्रत का यद्यपि प्रथम स्थान है, पर सत्यव्रत की समता अहिंसा के समकक्ष की गई है। दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। सत्यव्रत का आचरण किये बिना अहिंसा का पालन नहीं हो सकता। और अहिंसा व्रत का पालन किये बिना सत्य का भी पालन नहीं हो सकता। सत्य बोलनेवाले को वाचा-सिद्धि की प्राप्ति होती है। उस पर जो कुछ मिथ्या दोषारोपण किया जाता है, वह ठहर नहीं सकता। इसलिए यह लिखना सर्वथा युक्तियुक्त है— "बोलो साँच मीठे बोल" तुम सत्य बोलो जिससे तुम्हारे ऊपर यदि कोई झूठे दोष का आरोप करेगा तो वह मिट जायगा। एक ऐसी कहावत भी है।—

"साँच को आँच नहीं।"

अन्त में जैन मत की श्रेष्ठता बताई गई है—'जैन मत ऐन और फेन' संसार के सब मतों में जैन मत ही श्रेष्ठ है और सब मत पानी के बुदबुदे के समान है। जैन सिद्धान्त में प्ररूपित स्याद्वाद सिद्धान्त में विश्व के सब दर्शनों का समावेश हो जाता है।

गुंबज के मध्य में लाल अक्षरों में 'दोष न रोस न करणी तरणी' लिखा हुआ है। इन दोनों का अर्थ सरल है। दोष या अपराध करनेवाला व्यक्ति ही अधिक क्रोधी होता है। निरपराधी सदव शान्त रहता है, जिसके जीवन में किसी प्रकार दोष नहीं होता, उसके लिए क्रोध करने का कोई हेतु नहीं रहता। अपराधी व्यक्ति ही अपने दोष को छिपाने के लिए क्रोध करता है। यह अनेक अनुभवी महापुरुषों के द्वारा अनुभव करने के पश्चात् प्रकट किया हुआ तत्त्व है।

दूसरी ओर है—"करणी तरणी" प्राणी अनन्त काल से संसार रूपी समुद्र में गोते लगा रहा है। इस समुद्र से पार उतरने के लिए उसे कोई किनारा नहीं दीखता। केवल तपश्चर्या, ज्ञान सपादन, सयम आदि उसे पार करने के लिए तरणी—नौका रूप है। अहिंसा आदि पच महाव्रतों का पालन, सयम और तप की साधना करनेवाला इस संसाररूपी समुद्र को जल्दी तिर सकता है। इसलिए इस संसार में "करणी ही तरणी है।"

इस अशोक वृक्ष के चारों ओर वृत्ताकार रूप में अरिहंत भगवान् की स्तुतिपरक एक सवैया है—

केवल कंवल केवली मारग, सर्व गुणागार जो अरिहन्त।
चोतीस अतिसे आप विराजत, पैंतीस वाणी धुणी गरजत॥
जोजन वेण सुणत सबै जन, को होवे श्रावक कोइक सत।
तिलोक रिख कहे रूप अनुपम, दीपत दामणी जामणी कंत॥

अर्थ—सब गुणों के सागर जो अरिहन्त भगवान हैं, केवल उन्हीं केवल—ज्ञानधारी केवली भगवान् का मार्ग सच्चा है। आप परिषद् में चौंतीस अतिशयों से युक्त होकर विराजमान होते हैं और पतीस गुणों से युक्त आपकी वाणी की गर्जना चारों दिशाओं में होती है। आपकी देशना को एक योजन पर्यन्त सब लोग सुनते हैं फिर चाहे वह कोई श्रावक हो या कोई संत हो। तिलोकऋषिजी म० कहते हैं कि उन अरिहंत भगवान का रूप अत्यंत अनुपम है। वे रात्रि में यामिनी-कांत चन्द्रमा की तरह अपनी परिषद् में सुशोभित होते हैं।

चन्द्रमा की किरणें अत्यंत शीतल होने से सब उसकी ओर देखते हैं उस ओर देखने में किसी को कष्ट नहीं होता। उलटा चित्त में आह्लाद पैदा होता है। इसी तरह तीर्थंकर भगवान की भव्य आकृति भी चित्त को आह्लादित करती है। उनकी ओर देखने से कभी तृप्ति नहीं होती सदैव उसके सामने बैठकर उनकी रूप सुधा का पान करने की इच्छा बनी रहती है।

अशोक वृक्ष के बाद उपर्युक्त सवैये में जो अरिहन्त भगवान का स्तवन किया गया है वह कितना उचित है। क्योंकि पहले जो अशोक वृक्ष का जो जो कुछ निरूपण कर चुके हैं वह सब केवली भगवान द्वारा प्ररूपित देशना है अत-एव अशोक वृक्ष के बाद अरिहन्त भगवान् की स्तुति करना सर्वथा उचित है।

सवैये बाद चारों ओर वृत्ताकार रूप में एक वल्लरी की रचना की गई है। वल्लरी के बीच में जो पत्तियाँ दी गई हैं, उन सब में भी अंकित है। उसके बाद फिर एक उत्कृष्ट सवैया पहले सवैये की तरह लिखा गया है। वह इस प्रकार है—

करत करम कर हरख हरख भर
भरत भजन अघ भ्रमत अगत वन।
अघक भरत तस भरत करम घन,
अफल जनम जस तजत धरम धन॥
दख जन अप्रमत्त, चरत अभय सत,
दत्त ब्रह्म ध्रममन करत करमन,
रमत रतनत्रय अमतम खग सम।
तप जप व्रत तत परम अचल प्रन॥

अर्थ—प्राणी प्रसन्न होकर क्रूर कर्म करता रहता है वह अपने आप में पाप रूपी बोझ भरकर संसार रूपी अटवी में भटकता रहता है। उसके कारण अत्यंत दुःखी हो कर्मों के वशीभूत होकर बार-बार मृत्यु को प्राप्त होता रहता है।

है। जो व्यक्ति अपने धर्म रूपी धन को छोड़ देता है, उसका इस संसार में जन्म लेना व्यर्थ है। इसके विपरीत वह व्यक्ति दक्ष है, जो अप्रमत्त और निर्भय होकर अपने हृदय में सत्यको धारण करता है। ममतारहित होकर आत्मज्ञान संपादन करने में लीन रहता है, क्रूर कर्मों को नहीं करता है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यग् चारित्र रूप रत्नत्रय को रचने या प्राप्त करने में रत रहता है, संसार में पक्षी के समान अनासक्त होकर विहार करता है। जो तपश्चर्या, जप, व्रत और तत्त्वों का ज्ञान संपादन करने के लिए श्रम करता है और जो कोई महती प्रतिज्ञा लेकर उस पर अटल रहता है वही व्यक्ति चतुर है। अशोक वृक्ष के नीचे एक और सवैया अंकित है—

खाया पीया खूसी मानी, पापी सेती प्रीती मानी,
काची काची सोची मानी, मेरी माया जानी है।
जूबानी को जोमी चाले, टेढ़े टेढ़ो बोले खोटो,
खोटा खोटा किया घणा, अंधा पापी प्राणी है॥
साधू वाणी माने नहीं, सोची नाहीं नीकी फीकी,
सुद्धि बुद्धि बिना भ्रष्टी, पावे पीड़ा खाणी है।
त्रैलोका की नौका छडी, सील, प्रिया बाँधी सडी,
पाणी माहे डूबे डडी, आवा काज ठाणी है॥

अर्थ—यहाँ अहर्निश पाप कर्म में रत रहनेवाले व्यक्ति के लिए कहा गया है। केवल अपने आपका ही भरण-पोषण कर सुखी रहनेवाला व्यक्ति खुश होकर खाता-पीता रहता है, अपने समान पापी व्यक्तियों के पापकर्म से प्रेम करता है, कच्ची अधूरी अप्रामाणिक बातों को सत्य मानता है और संसार मे लुब्ध करनेवाली माया को अपनी जानता है, युवावस्था के जोश के कारण वह टेढ़ा टेढ़ा चलता है तथा परमात्मा का डर नहीं रखकर खोटा-खोटा बोलता है—मिथ्या भाषण करता है। वह काला बाजार करता है। ऐसा पाप करने वाला पापी प्राणी पाप करते समय अंधा बना रहता है। वह साधुओं द्वारा दिये हुए उपदेश को नहीं मानता, अच्छे-बुरे का कुछ भी विचार नहीं करता। इस प्रकार शुद्धि और बुद्धि के बिना चारों ओरसे भ्रष्ट होकर पीड़ा की खान को प्राप्त करता है—संसार में बहुत दुःख प्राप्त करता है। ऐसे व्यक्ति ने संसार से पार उतारने वाले त्रिलोकीनाथ केवली भगवान् को उपदेश रूपी नौका छोड़कर अपने गले में कर्म रूपी प्रिय शिला बाँध रखी है। उसकी डंडी पानी में डूब रही है। वह संसार रूपी समुद्र से नहीं तिर कर उसमें डूब रहा है और यहाँ से जाने के लिए उसने ऐसा अकृत्य ठान रक्खा है।

उस समय के बाद दोनों ओर सम परिमाण में लाल लाइनें खींच-कर मध्य में पास-पास अनेक सघन काली लाइनें खिची गई हैं। लाइनों के ऊपर "श्री रिसभाय नमामि ऐ" लिखा हुआ है।

यह लिखने के पश्चात अंत में अत्यन्त सुंदर ढंग से 'कामी' की आकृति चित्रित की गई है। सूत्र पढते या व्याख्यान देते समय मुनिवृंद अंगुली के पसीने आदि से सूत्र खराब न हों इसलिए उनकी रक्षार्थ 'कामी' रखते हैं। यह कामी पहले सूत्र के पत्र पर रखकर बाद में उसपर वे अपना अंगूठा रखते हैं। चिर-काल से शास्त्राभ्यास करने के समय 'कामी' का प्रचार होने से इसका निर्माण अत्यंत कलात्मक रूप से किया जाता है। यहाँ पर इसके चित्रण में महाराजश्री ने अपनी उत्कृष्ट कला की इतिश्री कर दी है। इसमें चित्रित सुन्दर कामी का अन्यत्र शायद ही कहीं दर्शन हो। कामी के मध्य में एक दोहा अंकित है, वह इस प्रकार है—

क्रोड बात की बारता, सकल शास्त्र को सार।
दया दान दम आतमा तिलोक रिख कहे सार॥

अर्थ—सब शास्त्रों का सार तथा करोड बात की बात एक ही है कि विचार करनेवाली सभी आत्माओं को दया, दान और दमन करना चाहिए ऐसा तिलोकऋषिजी म. निश्चय कर कहते हैं।

इस प्रसंग की कथा ब्राह्मण परंपरा के उत्कृष्ट ग्रंथ उपनिषद और जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण द्वारा विरचित विशेषावश्यक भाष्य के गणधर वाद में है। एक बार असुर मानव और देव उपदेश ग्रहण करने के लिये ब्रह्मा के पास गये, असुरों के जानेपर ब्रह्माने 'द' कहा, मनुष्यों के जानेपर भी 'द' कहा और देवों के जानेपर भी 'द' का उच्चारण करके उपदेश दिया। तीनों के उपदेश में 'द' अक्षर समान होनेपर भी उन्होंने अपने-अपने आचारण के अनुसार 'द' का भिन्न भिन्न अर्थ लिया। असुर अत्यंत हिंसा करते हैं अतएव उन्होंने 'द' से दया अर्थ ग्रहण किया मनुष्योंने 'द' शब्द से दान अर्थ ग्रहण किया और अहर्निश भोगों में रत रहनेवाले देवताओं ने 'द' से दमन अर्थ ग्रहण किया। देवताओं ने यह समझा सतत भोगों में मग्न नहीं रहकर इन्द्रियों का दमन करना चाहिए। विशेषावश्यक के गणधरवाद में यही प्रसंग है पर वह भगवान महावीर के पास शंकित हृदय से आये हुए एक गणधर की शंका के निराकरण के प्रसंग में आता है।

इस कामी के बाईं ओर श्री अक्षरों से अंकित 'र' की आकृति चित्रित की गई है और दाहिनी ओर 'वा' अक्षर की आकृति बनाई गई है। दोनों अक्षरों को मिलाने पर 'रवा' शब्द बनता है। इस रवाबाई के सम्बन्ध में मैं पहले उन्हें

प्रदत्त पत्र का विवेचन करते समय लिख चुका हूँ। था अक्षर के बाद पूर्व के दोनो अक्षरो की तरह केवल श्री से निर्मित खुली हुई छत्री की भी एक भव्य आकृति है।

कामी के नीचे और रंवा अक्षर के बीच में इस चित्र को चित्रित करने का सवत्, तिथि आदि लिखी गई है। सवत् १९३६ पौष ३० लि० तिलोक रिख देश दक्षिण अहमदनगर मध्ये श्रीरस्तु कल्याणमस्तु।

जिस समय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की अवस्था केवल बत्तीस साल की थी। उस समय आपश्री ने जैन सिद्धात के अनुसार इस अद्भुत चित्र का चित्रण किया। इस अशोक वृक्ष के द्वारा आपश्री ने जनभाषा में जीवन-विकास का सुन्दर मार्ग बताया है। इसमें दिये हुए सूत्रात्मक छोटे-छोटे वाक्यो, सवैयो और दोहो का निरतर मनन करनेवाला प्राणी कभी असन्मार्ग की ओर नहीं जा सकता।



ज्ञान-कुंजर

ऊपर हम हाथी के रूप में पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज द्वारा विरचित आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण 'ज्ञान कुंजर' की एक अत्यंत सुन्दर आकृति देख रहे हैं। अपने नाम के अनुरूप यह कुंजर ज्ञान से परिपूर्ण है।

केवल लाइनें खींचकर हाथी का स्केच बनाने में ही अत्यंत कठिनाई होती है फिर आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण अक्षरों द्वारा हाथी का चित्रण करने में कितना कौशल का काम है? यह तो पाठक इसका सूक्ष्म पर्यवेक्षण कर स्वयं अनुभव कर सकते हैं।

हाथी के सब अंगों में सूँड की मुख्यता है। उसकी सारी शोभा सूँड में ही समाई हुई है। इसलिए सबसे पहले चौबीस तीर्थंकरों के नाम लिखकर सूँड की आकृति बनाई गई है। उनके अंत में वर्तमान शासन नायक भगवान महावीर का नाम है। सूँड के पार्श्ववर्ती कान पर भगवान महावीर के ग्यारह गणधरों के नाम लिखकर बनाये गए हैं। तीर्थंकरों के नाम के बाद तुरंत ग्यारह गणधरों के नाम-निर्देश के पीछे गूढ़ तात्पर्य है। वर्तमान शासन नायक भगवान महावीर ने समवसरण में या अन्यत्र जो कुछ देशना दी, उसे ग्रहण करने वाले भगवान् के मुख्य शिष्य गणधर थे। वही ज्ञान सूत्ररूप में आज जीवित है। इस हाथी की आँख केवल ज्ञान रूप है। ज्ञान कुंजर की आँख केवल ज्ञान के अतिरिक्त दूसरी नहीं हो सकती।

हाथी के सूँड मस्तिष्क और कान के बाद एकाएक हमारी दृष्टि उसकी दोनों दन्तूरों पर पड़ती है। सफेद होने से वे आकर्षक भी होती हैं। यहाँ ज्ञान कुंजर की धीरज और शम ये दो दन्तूरें हैं।

सुसज्जित हाथी के ऊपर झूल पड़ी रहने से वह भाग नहीं दिखाई देता, पर उसके खुले पाँव पर सबकी दृष्टि पड़ती है। गणधरों द्वारा ग्रथित आचारांग सूत्रकृतांग आदि बत्तीस आगमों के नाम लिखकर ज्ञान कुंजर के पाँवों की रचना की गई है। इसके पीछे यह तात्पर्य है जब तक तीर्थंकर और गणधर जीवित थे तब तक इस लोक के प्राणियों को साक्षात् उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता रहता था। उनके निर्वाण के बाद इस पंचम काल में गणधरों द्वारा ग्रथित आगम ही एक मात्र तरणोपाय है। तीन पाँवों के निर्माण में ही ११ अंग १२ उपांग, ४ छेद सूत्र ४ मूलसूत्र और ३२ वाँ आवश्यक इन बत्तीस आगमों के नाम समाप्त हो जाते हैं। अवशिष्ट बचे हुए चतुर्थ पाँव के निर्माण में प्रसिद्ध घटने, बढ़ने स्थिर और चल अचल रूप (घट आयुष्य बढ़ तृष्णा स्थिर कर्म की

रेखा-वह न तो घटती है और न बढती है और घटने-बढने वाले मन के परिणाम) इन चार बातों तथा अशोक वृक्षकी कामी मे उल्लिखित प्रसिद्ध दोहे से काम लिया गया है। हाथी के चारो पाँव ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप है। हाथी के पहले पाँव के मध्य में चउदी भर जगह में ६५ हाथियों के चित्र है।

इतने विशाल हाथी की जो छोटीसी पूंछ है, वह ज्ञान-कुंजर में निर्दिष्ट तत्त्वो के अनुरूप मिथ्यात्वरूप मक्खियों को उडाने के लिए विवेकरूपी पूंछ है।

उसके बाद हमारी ज्ञान-कुंजर पर चढने के लिए बनाई हुई निसेनी पर दृष्टि पडती है। इस निसेनी का एक डण्डा दान, शील, तप, भावना, क्षमा, दया और संतोष रूप है और दूसरा डंडा भी दान देना, शील का पालन करना, तप करना, भावना भाना आदि रूप है। निसेनी में लगी हुई पाँच सीढियाँ अहिंसा-सत्य अस्तेय-ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच महाव्रत है।

तदनतर हाथी पर पडी हुई झूल पर दृष्टि पडती है। उस झूल को एक छोर पर ज्ञान-ध्यान-तप-जप, आदि विषयों से परिपूरित एक सवैया अंकित किया गया है। सवैये से सलग्न करबरी रूप में अंकित बीस विहरमानों के नाम है।

इस ज्ञान कुंजर को चलानेवाला करुणा, दया, दान, शान्ति दांति, क्षांति आदि रूप महाव्रत है, उसके हाथ में उपदेश और ज्ञानरूपी अंकुश है। अंकुश के ठीक सामने जम्बूद्वीप का एक नक्शा चित्रित है। महाव्रत के ऊपर देव अरिहंत, गुरु-निर्ग्रंथ और केवली प्ररूपित धर्म इन तीन तत्त्वों से परिपूरित छत्री तनी हुई है। इस छत्र की डंडी सम्यक्त्व है।

हाथी पर डाली हुई झूल के ऊपर बैठने के लिए रखी हुई अंबाडी के दर्शन होते हैं। इस अंबाडी के निर्माण में चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र की प्रसिद्ध 'नमि-ऊण असुर-सुर गरुल भुयग 'गाथा से काम लिया गया है। इस गाथा से सलग्न ॐनम ॐनम ॐनम अंकित किये गये है और उसके मध्य के रिक्त स्थान में ॐ ह्री श्री क्ली क्ली ॐ ॐ ऐं स्वाहा लिखा हुआ है। इस अंबाडी के निम्न भाग में झूल के ऊपर क्षति मुक्ति अज्जवे मद्दवे लाघवे रूप धर्म का उल्लेख कर थोडे से रिक्त भाग में कलात्मक रुपसे आठ श्री लिखी गई है।

अंबाडी के ऊपर एक मदिर के प्रकार की आकृति चित्रित है। इस आकृति के तात्पर्य का समझाने के लिए आपश्री ने नीचे के भाग में स्वय इस प्रकार लिख दिया है --' श्री जैनधर्म रूप मंदिर को सरणो भवे भवे ममास्तु।' इसके दोनो ओर ज्ञान दर्शन, चारित्र और तपरूप चार स्तभ है। इसके मध्य में प्रतिमाधारी एक मुनिराज की आकृति है। उसके ऊपर उत्तराध्ययन के अठारहवे अध्ययन की एक प्रसिद्ध गाथा है। वह इस प्रकार है--

चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
संति संतिकरे लोये पत्तो गइमणुत्तरं ॥

इस अंबाडी से ऊपर धर्म और शुक्ल ध्यान रूपी पताका लहरा रही है। उत्तराध्ययन के मोक्षाध्ययन में प्ररूपित सिद्धांत के अनुसार आचरण करनेवाला मोक्षगामी चरम शरीर अवश्य मोक्ष गति प्राप्त करता है। अतएव इसके ऊपर सिद्धशिला की आकृति का निर्माण किया गया है। उस पर एक दूसरे से संलग्न अनक ॐ की आकृतियाँ हैं। इसका अभिप्राय यह है कि सिद्धगति प्राप्त करने पर सब आत्माएं अशरीर होने से एक रूप हो जाती हैं। जिस प्रकार अनेक दीपकों की ज्योतियाँ पृथक होने पर भी अपृथक रहती हैं, उसी प्रकार सिद्धगति प्राप्त जीव भी ज्योति में ज्योति की तरह विराजमान रहते हैं। सिद्ध शिला पर स्थित मोक्ष प्राप्त आत्माओं के चारों ओर प्रसिद्ध नमस्कार मंत्र अंकित है।

ज्ञान कुंजर का क्रमिक रूप से वर्णन करने पर भी कुछ नीचे का भाग छूट गया है वह इस प्रकार है—हाथी के चरने के लिए कुछ घास फूस चाहिए। उसे खाय बिना वह जीवित नहीं रह सकता। फलक पर चित्रित ज्ञान कुंजर के खाद्य के अनुरूप यहाँ सूंड के सामने उसके खाने के लिए तप, जप, दया, क्षमा संतोष संयम, अमान आदि रूप खाद्य पदार्थ रखे हुए हैं।

इस हाथी की सूंड से बंधा हुआ एक सज्झाय करण घट है। उस घट से बंधी हुई दो डोरियाँ हैं। उनका यह तात्पर्य है कि इस संसार में केवल तप और संयम सार है। निरन्तर तपश्चर्यापूर्वक संयम का आचरण करने पर सज्झाय करण—स्वाध्यायकरण रूप घट की ध्वनि होती है। अर्थात् तपश्चर्यापूर्वक संयम का पालन करने पर भी सतत स्वाध्याय में रत रहना चाहिए। स्वाध्याय करने वाले साधु की तपश्चर्या तथा संयम तेजस्वी होते हैं।

महाव्रत के ऊपर तनी हुई छत्र की डंडी तथा सिद्धशिला के सामने मकर और कर्क इन दो सक्रांतियों की आकृतियाँ बनाई गई है। ये दोनों आकृतियाँ बहुत सूचक हैं। मकर सक्रांति प्रति पौष मास की पूर्णिमा से प्रारंभ होती है और कर्क सक्रांति आषाढ मास की पूर्णिमा से। मकर सक्रांति लगने पर रात्रि घटने लगती है और दिन उत्तरोत्तर बड़े होते जाते हैं। यह स्थिति आषाढ मास की पूर्णिमा तक रहती है। फिर आषाढ की पूर्णिमा आने पर कर्क सक्रांति से दिन घटने लग जाते हैं और रात्रि बड़ी होने लगती है। ब्राह्मण परंपरा में रात्रि अंधकार प्रधान होने से उस को धूम्रमार्ग कहा है और दिन प्रकाशरूप होने से उस समय को अर्चिमार्ग कहा है। उपनिषद्, महाभारत और गीता आदि ग्रंथों में उत्तरायण और दक्षिणायन अर्चिमार्ग और धूम्रमार्ग, देवयान और पितृयान का अत्यन्त

आकर्षक वर्णन है। मकर सक्रांति प्रारंभ होने पर दक्षिणायन से उत्तरायण की ओर सूर्य जाता है, वह काल अर्चिमार्ग या देवयान कहा गया है और कर्क सक्रांति प्रारभ होने पर सूर्य के उत्तरायण से दक्षिणायन की ओर गमन करने पर जो समय होता है वह धूम्रमार्ग या पितृयान कहा जाता है। इसमें से उत्तरायण काल में अपनी देह छोडनेवाला श्रेष्ठ योगी परमगति का अधिकारी होता है और दक्षिणायन काल में इस लोक से गमन करनेवाला योगी देवलोक का अधिकारी होता है।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में इन दोनो मार्गों का इस प्रकार वर्णन किया है—

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिन ।
प्रयाता यान्ति त काल, वक्ष्यामि भरतर्षभ ।।
अग्निर्ज्योतिरह शुक्ल , षण्मासा उत्तरायणम् ,
तत्र प्रयाता गच्छन्ति, ब्रह्म ब्रह्मविदो जना ।।
धूमो रात्रिस्तथा कृष्ण , षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमस ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ।।
शुक्लकृष्णे गती ह्येते, जगत शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुन ।।

अध्याय ८ श्लोक २३-२४-२५-२६

अर्थ—हे अर्जुन ! जिस काल में-मार्ग से शरीर त्यागकर गये हुए योगी-जन पीछे न आनेवाली गति को और पीछे आनेवाली गति को प्राप्त होते है, उस काल को अर्थात् मार्ग को कहूंगा।

इन दो प्रकार के मार्गों में से जिस मार्ग में ज्योतिर्मय अग्नि (अभिमानी देवता है,) दिन का (अभिमानी देवता है) तथा शुक्लपक्ष का (अभिमानी देवता है) और उत्तरायण के छ महीनो का (अभिमानी देवता है) उस मार्ग में मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता अर्थात् परमेश्वर की उपासना से परमेश्वर को परोक्षभाव से जानेवाले योगीराज उपरोक्त देवताओ द्वारा क्रम से ले गये हुए ब्रह्म को प्राप्त होते है।

तथा जिसमें धूमाभिमानी देवता है और रात्रि अभिमानी देवता है तथा कृष्ण पक्ष का अभिमानी देवता है और दक्षिणायन के छ महीनो का अभिमानी देवता है, उस मार्ग से मरकर गया हुआ सकाम कर्मयोगी, उपरोक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले गया हुआ देवगति को प्राप्त होकर, स्वर्ग में अपने शुभ कर्मों का फल भोग कर पीछा आता है।

जगत् के यह दो प्रकार के शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गये है। इनमें एक के द्वारा गया हुआ पीछा न आनेवाली

परम गति को प्राप्त होता है और अन्य मार्ग से गया हुआ पीछा आता है अर्थात् जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है।

जैन परंपरा के अनुसार कर्म ही प्राणी को अच्छी बुरी गति में परिभ्रमण करानेवाले हैं। शुभ कर्मों के उदय से प्राणी उच्च गति को प्राप्त होता है और अशुभ कर्मों के उदय से नीच गति प्राप्त करता है। घाती और अघाती इन आठ कर्मों के विनाश होने पर वह मोक्ष का अधिकारी होता है। इसलिए जैन परंपरा के अनुसार कृष्ण पाक्षिक और शुक्ल पाक्षिक जीव का वर्णन अन्य दृष्टि से किया गया है। यहाँ देवप्रधान नहीं होकर कर्म प्रधान है। स्थानांग सूत्र के प्रथम अध्ययन में उसका इस प्रकार वर्णन है—

किंचिदवड्ढोपोग्गल परियट्टो सेसओ उ ससारो
ते सुक्कपक्खिया खलु अहिए पुण किण्हपक्खिया ॥
संस्कृतच्छाया—यथामपार्धपुद्गलपरावर्त अवस्तु ससार ।
ते शुक्लपाक्षिका खलु अधिके पुन कृष्णपाक्षिका ॥१॥

अर्थ—जिन प्राणियों का अपार्ध पुद्गल परावर्त जितना संसार अवशिष्ट रहता है वे शुक्लपाक्षिक होते हैं और इससे अधिक संसार में परिभ्रमण करने वाले प्राणी कृष्णपाक्षिक होते हैं।

ज्ञान कुंजर का इस प्रकार अधिकक सर्वांगपूर्ण वर्णन करने के बाद ऊपर जो तोरणद्वार बनाया गया है उसपर एकाक्षरी और द्वयक्षरी कुल चार कवित्त लिखे गये हैं। प्रथम कवित्त में त अक्षर से काम लिया गया है द्वितीय एवं तृतीय में क्रमशः केवल क और स अक्षर हैं तथा चतुर्थ कवित्त में केवल न और र इन दो अक्षरों से काम लिया गया है।

तोरण द्वार के दोनों सिरों पर दो अद्भुत चित्र चित्रित हैं। उनमें बाईं ओर के चित्र में तीन मछलियों की आकृतियाँ बनाकर उनका केवल एक ही मुँह बनाया गया है और दाहिनी ओर के चित्र में भी दो तोतों का एक ही मुँह है। तोते की आकृति बनाने में उसके रंग के अनुरूप हरे रंग से काम लिया गया है। इन दोनों आकृतियों को अंकित करने में अध्यात्मप्रधान दोहों से काम लिया है। इन दोनों चित्रों में मछली की आकृति के ऊपर बाल चन्द्रमा का चित्रण किया गया है। इस बालचन्द्र के चित्रण द्वारा मनुष्य की द्वितीया के चन्द्रमा की तरह वृद्धि की कामना की गई है। दूसरी ओर तोते के बाजू में सूर्य का चित्रण किया गया है। उसका यह अभिप्राय है कि भगवान मिथ्यात्व का अपहरण करने के लिए सूर्य के समान हैं।

इस फलक में अंकित ज्ञानकुंवर के तीनों ओर रिक्त भाग में पीली और लाल रेखा खींचकर दोहे छद, सवैये, सूत्रों की गाथाएँ स्तुत्यात्मक श्लोक, थोकडे आदि लिखे गये हैं। इनमें से पहले बाईं ओर दोहा, चौपाई, घनाक्षरी अडिल्ल और दोहा छद में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि पाँच पदों की वदना की गई है, इसी प्रकार ऊपर के हिस्से में दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की पाँच गाथाएँ अंकित कर उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन की पहली गाथा लिखी गई है और तीसरी दिशा में दाहिनी ओर श्री मानतुगाचार्य द्वारा विरचित भक्तामर का 'तुभ्य नमस्त्रिभुवनातिहराय नाथ' नामक छब्बीसवाँ श्लोक, अहिंसाप्रधान एक अनुष्टुप् छद 'यदीये चैतन्ये' नामक महावीराष्टक का प्रथम श्लोक और रूपी–अरूपी का थोकडा लिखा गया है। बाईं ओर की रेखा के मध्य भाग में ऊपर से एक सर्प की आकृति चित्रित की गई है। इस चित्र द्वारा जैन परपरा के अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी इन दोनों कालों को समझाया गया है। इनमें से प्रत्येक काल में छः आरे होते हैं। अवसर्पिणी काल में एक आरे के बाद दूसरा आरा क्रमश छोटा होता जाता है और उत्सर्पिणी काल में अवसर्पिणी काल के विरुद्ध प्रत्येक आरा उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। अवसर्पिणी काल में पहला आरा सबसे बडा होता है। तथा उत्सर्पिणी काल में अंतिम आरा सबसे बड़ा होता है। इसलिए इन दोनों कालों के चित्रण में अवसर्पिणी को क्रमश क्षीयमाण और उत्सर्पिणी को वर्द्धमान बनाया गया है।

सबके नीचे के रिक्त भाग में एक दोहा अंकित किया गया है। वह इस प्रकार है—

ज्ञानी समझे ज्ञान में, अणसमझ्यो चित्राम।
तिलोकरिख अनुभव दीसा, समझे सो सोवधाम॥

अर्थ—दुनियाँ में दो प्रकार के प्राणी होते हैं–ज्ञानी और अज्ञानी। ज्ञानी व्यक्ति ज्ञान का संपादन कर तत्त्व को जान लेता है, पर अज्ञानी व्यक्ति बुद्धि के अभाव के कारण चित्र देखकर बाह्यरूप से उस तत्त्व का आकलन करता है।- चित्र देखकर भी वह ज्ञानी की तरह उच्च अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता, पर इन दोनों अवस्थाओं से उत्कृष्ट दशा है–अनुभव दशा। क्योंकि अनुभव दशा में वह आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करता है, जो व्यक्ति अनुभव दशा प्राप्त कर आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है, वह मोक्षगति को प्राप्त होता है।

इस दोहे के अन्त में 'लिपीकृत तिलोक रिख श्रीरस्तु एँ नम श्री ॥ छ, श्री' लिखा हुआ है। इसी प्रकार अवाडी के सामने भी एक सुन्दर फलक की आकृति बनाकर उसके अदर 'लि तिलोक रिख' अंकित किया गया है और

परम गति को प्राप्त होता है और अन्य मार्ग से गया हुआ पीछा आता है अर्थात् जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है।

जैन परंपरा के अनुसार कर्म ही प्राणी को अच्छी बुरी गति में परिभ्रमण करानेवाले हैं। शुभ कर्मों के उदय से प्राणी उच्च गति को प्राप्त होता है और अशुभ कर्मों के उदय से नीच गति प्राप्त करता है। घाती और अघाती इन आठ कर्मों के विनाश होने पर वह मोक्ष का अधिकारी होता है। इसलिए जैन परंपरा के अनुसार शुक्ल पाक्षिक और कृष्ण पाक्षिक जीव का वर्णन अन्य दृष्टि से किया गया है। वहाँ देवप्रधान नहीं होकर कर्म प्रधान है। स्थानांग सूत्र के प्रथम अध्ययन में उसका इस प्रकार वर्णन है—

> जसिमवड्ढोपोग्गल परियट्टो सेसओ उ संसारो।
> ते सुक्कपक्खिया खलु अहिए पुण किण्हपक्खिया ॥
> संस्कृतच्छाया—येषामपार्धपुद्गलपरावर्त्तः शेषस्तु संसारः।
> ते शुक्लपाक्षिकाः खलु अधिके पुनः कृष्णपाक्षिकाः ॥१॥

अर्थ—जिन प्राणियों का अपार्ध पुद्गल परावर्त जितना संसार अवशिष्ट रहता है वे शुक्लपाक्षिक होते हैं और इससे अधिक संसार में परिभ्रमण करने वाले प्राणी कृष्णपाक्षिक होते हैं।

ज्ञान कुंजर का इस प्रकार अविकल सर्वांगपूर्ण वर्णन करने के बाद ऊपर जो तोरण-द्वार बनाया गया है, उसपर एकाक्षरी और द्वयक्षरी कुल चार कवित्त लिखे गये हैं। प्रथम कवित्त में 'त' अक्षर से काम लिया गया है। द्वितीय एवं तृतीय में क्रमशः केवल 'क' और 'स' अक्षर हैं तथा चतुर्थ कवित्त में केवल 'य' और 'र' इन दो अक्षरों से काम लिया गया है।

तोरण द्वार के दोनों सिरों पर दो अद्भुत चित्र चित्रित हैं। उनमें बाईं ओर के चित्र में तीन मछलियों की आकृतियाँ बनाकर उनका केवल एक ही मुँह बनाया गया है और दाहिनी ओर के चित्र में भी दो तोतों का एक ही मुँह है। तोते की आकृति बनाने में उसके रंग के अनुरूप हरे रंग से काम लिया गया है। इन दोनों आकृतियों को अंकित करने में अध्यात्मप्रधान दोहों से काम लिया है। इन दोनों चित्रों में मछली की आकृति के ऊपर बाल चन्द्रमा का चित्रण किया गया है। इस बालचन्द्र के चित्रण द्वारा मनुष्य की द्वितीया के चन्द्रमा की तरह वृद्धि की कामना की गई है। दूसरी ओर तोते के बाजू में सूर्य का चित्रण किया गया है। उसका यह अभिप्राय है कि भगवान मिथ्यात्व का अपहरण करने के लिए सूर्य के समान है।

इस फलक में अंकित ज्ञानकुंजर के तीनों ओर रिक्त भाग में पीली और लाल रेखा खींचकर दोहे छद, सवैये, सूत्रों की गाथाएँ स्तुत्यात्मक श्लोक, थोकड़े आदि लिखे गये हैं। इनमें से पहले बाई ओर दोहा, चौपाई, घनाक्षरी अडिल्ल और दोहा छंद में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि पाँच पदों की वंदना की गई है, इसी प्रकार ऊपर के हिस्से में दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की पाँच गाथाएँ अंकित कर उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन की पहली गाथा लिखी गई है और तीसरी दिशा में दाहिनी ओर श्री मानतुंगाचार्य द्वारा विरचित भक्तामर का 'तुभ्य नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ' नामक छब्बीसवाँ श्लोक, अहिंसाप्रधान एक अनुष्टुप् छद 'यदीये चैतन्ये' नामक महावीराष्टक का प्रथम श्लोक और रूपी-अरूपी का थोकड़ा लिखा गया है। बाईं ओर की रेखा के मध्य भाग में ऊपर से एक सर्प की आकृति चित्रित की गई है। इस चित्र द्वारा जैन परंपरा के अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी इन दोनों कालों को समझाया गया है। इनमें से प्रत्येक काल में छः आरे होते हैं। अवसर्पिणी काल में एक आरे के बाद दूसरा आरा क्रमशः छोटा होता जाता है और उत्सर्पिणी काल में अवसर्पिणी काल के विरुद्ध प्रत्येक आरा उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। अवसर्पिणी काल में पहला आरा सबसे बड़ा होता है। तथा उत्सर्पिणी काल में अंतिम आरा सबसे बड़ा होता है। इसलिए इन दोनों कालों के चित्रण में अवसर्पिणी को क्रमशः क्षीयमाण और उत्सर्पिणी को वर्द्धमान बताया गया है।

सबके नीचे के रिक्त भाग में एक दोहा अंकित किया गया है। वह इस प्रकार है—

ज्ञानी समझे ज्ञान में, अणसमज्यो चित्राम।
तिलोकरिख अनुभव दीसा समझे सो सावधाम ॥

अर्थ— दुनियाँ में दो प्रकार के प्राणी होते हैं—ज्ञानी और अज्ञानी। ज्ञानी व्यक्ति ज्ञान का संपादन कर तत्त्व को जान लेता है, पर अज्ञानी व्यक्ति बुद्धि के अभाव के कारण चित्र देखकर बाह्यरूप से उस तत्त्व का आकलन करता है। चित्र देखकर भी वह ज्ञानी की तरह उच्च अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता, पर इन दोनों अवस्थाओं से उत्कृष्ट दशा है—अनुभव दशा। क्योंकि अनुभव दशा में वह आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करता है, जो व्यक्ति अनुभव दशा प्राप्त कर आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है, वह मोक्षगति को प्राप्त होता है।

इस दोहे के अन्त में 'लिपीकृत तिलोक रिख श्रीरस्तु ऐं नम श्री ॥ छ, श्री' लिखा हुआ है। इसी प्रकार अंबाड़ी के सामने भी एक सुन्दर फलक की आकृति बनाकर उसके अंदर 'लि तिलोक रिख' अंकित किया गया है और

ऊपर की तरह ज्ञान कुंजर के अगले और पीछे पाँवों के मध्य में अत्यन्त कलात्मक ढग से सं १९३७ मगसु १२ देश दक्षिण, घोडनदी लखकर लिखा हुआ है।

मालव मेवाड तथा राजस्थान के बहुत से भागों में सतत विहार कर पूज्य-पाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज सबसे पहले दक्षिण देश में घोडनदी पधारे थे। घोडनदी में ही आप के पट्टधर मुख्य शिष्य श्री रत्नऋषिजी महाराज और तपस्विनी श्री चम्पाजी म एवं शांतमूर्ति महासती श्री रामकुंवरजी महाराज ने दीक्षा ली उसी घोडनदी का यह सौभाग्य है कि यहाँ पर महाराज श्री ने आध्यात्मिकता से परिपूर्ण इस प्रकार की उत्कृष्ट ज्ञानकुंजर की रचना की। इसकी रचना के समय महाराजश्री की अवस्था केवल ३३ वर्ष की थी, पर तेतीस वर्ष की छोटी सी अवस्था में आपने इस के चित्रण में किस अनुपम कला से काम लिया उसे देखकर आश्चर्य होता है। हाथी के चित्रण में आपश्री ने संक्षेप में सम्पूर्ण जैन सिद्धांत को चित्र द्वारा मूर्तरूप में रख दिया है। इसमें खूबी यह है कि इसे देखकर ज्ञानी व्यक्ति अपने ज्ञान को और अधिक विशद्ध बनाते हैं और चित्र देखकर ज्ञान प्राप्त करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग् ज्ञान की ओर बढते हैं।

इस ज्ञानकुंजर का चित्र स्पष्टीकरण करने के लिए आज से चार साल पहले नाथद्वारा निवासी विद्वान श्री राधाकृष्ण शर्मा एम ए वेदान्ताचार्य साहित्य रत्न ने ज्ञान कुंजर दीपिका नामक एक पुस्तिका लिखी है। उसमें लेखक महोदय ने ज्ञानकुंजर के प्रत्येक अवयव का विशद रूप से विवेचन किया है। एक पुस्तक के विद्यमान होने से मैंने इस पर अपनी तरफ से विशद विवेचन नहीं किया उसे नहीं देखने पर भी विवेचन करने में कहीं पुनरुक्ति नहीं हो जाय इसलिए चित्र में अंकित केवल मुख्य अवयवों पर ही प्रकाश डाला है। इस उत्कृष्ट कृति का विशद अध्ययन करने के लिए पाठक श्री राधाकृष्ण शर्मा द्वारा विरचित ज्ञान कुंजर दीपिका का अवलोकन करें। मेरे लिए यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि श्री राधाकृष्ण शर्मा मेरे प्रान्त के निवासी होने के साथ मेरे गाँव के पास रहनेवाले हैं।



प्रत्येक संज्ञा पाँच सौ प्रकार की होती है । चारों संज्ञाओं के भेद मिलाने पर कुल दो हजार भेद होते हैं । शीलवान व्यक्ति चारों संज्ञाओं में किसी संज्ञा से प्रेरित होकर आरम्भ-समारम्भ नहीं करता है । आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये सब प्राणी की कामनाएं या मानसिक विचार हैं । कामनाओं की सिद्धि के लिए इंद्रियों की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है । जब तक इंद्रियों की प्रवृत्ति नहीं होती तब तक उपर्युक्त संज्ञाओं की सिद्धि नहीं होती । इंद्रियां भी श्रोत्रेन्द्रिय चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय क्रम से पाँच प्रकार की होती हैं और प्रत्येक इंद्रिय के सौ भेद होने से सौ को पाँचों इंद्रियों से गुणने पर पाँच सौ भेद हुए । इस प्रकार इंद्रियों के पाँच सौ भेदों का समाहार प्रत्येक संज्ञा के ५० में हो जाता है । शीलवान व्यक्ति प्रत्येक इंद्रिय से सौ प्रकार से संज्ञा आदि से प्रेरित होकर तीन करण और तीन योग से आरम्भ-समारम्भ नहीं करता है । इंद्रियाँ भी संसार में परिभ्रमण करनेवाले कर्मनिष्ठ जीव के होती हैं असंसारी (सिद्ध) जीव के नहीं । संसार में परिभ्रमण करनेवाले जीव दस प्रकार के होते हैं—पृथ्वीकाय अप्काय तेजस्काय वायुकाय वनस्पतिकाय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अजीव काय । पृथ्वी आदि प्रत्येक काय के दस दस भेद होते हैं । दस का उपर्युक्त दस प्रकार के जीवों से गुणन करने पर सौ भेद हुए अर्थात् शीलवान प्राणी दस प्रकार से पृथ्वीकाय आदि का श्रोत्रेन्द्रिय आदि की प्रवृत्ति कर आहार आदि संज्ञा से प्रेरित होकर तीन करण तीन योग से आरम्भ समारम्भ नहीं करता है । शीलवान् व्यक्ति निम्नांकित दस प्रकार के धर्मों से भूषित होता है । वे ये धर्म हैं क्षांति, मुक्ति, आर्जवे मद्दवे लाघवे सच्चे संजमे तवे चियाए और बंभचेरे । शीलवान व्यक्ति क्षमाशील होता है, मुमुक्षु होता है ऋजु होता है लघु विनीत होता है मृदु होता है सत्यवादी होता है, संयमशील होता है तपस्वी होता है त्यागी होता है और ब्रह्मचारी होता है ।

क्षमाशील मुमुक्षु ऋजु, मृदु विनीत सत्यवादी, संयमशील तपस्वी त्यागी और ब्रह्मचारी शीलवान व्यक्ति पृथ्वीकाय आदि प्राणियों का पाँचों ज्ञानेंद्रियों द्वारा आहार भय आदि चारों संज्ञाओं से प्रेरित होकर तीन करण तथा तीन योग से आरम्भ-समारम्भ नहीं करता है ।

रथ में जुटे हुए घोड़े के पेट में आपत्ति न कहीं खूबी से इस शील रथ के रचने के स्थान समय तिथि आदि का निर्देश कर दिया है ।

संवत् १९३८ भाद्रपद शुक्ल ११ श्री तिलोकरिख बाबोरी

जिस प्रकार पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज ने शील रथ की रचना की है, उसी तरह् सगुण भक्ति परम्परा में रामाश्रयी शाखा के श्रेष्ठ कवि भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने राम चरित मानस में बडे मनोहर ढंग से रामरथ का वर्णन किया है ।

लंका काड में राम–रावण का युद्ध हो रहा है । युद्धभूमि में रावण रथारूढ है और राम पैदल खडे है । राम को ऐसे ही पैदल खडे देखकर विभीषण के मन में आशका होती है । इस समय राम विभीषण को आत्मा पर विजय प्राप्त करने वाले रथ का स्वरूप इस प्रकार बताते हैं ।

रावण रथी बिरथ रघुबीरा । देखि बिभीषण भयउ अधीरा ।
अधिक प्रीति मन भा सदेहा । बदि चरन कह सहित सनेहा ।।
नाथ न रथ न हि पदत्राना । केहि बिधि जितब बीर बलवाना ।
सुनहु सखा कह कृपानिधाना । जेहि जय होई सो स्यंदन आना ।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य सील दृढ ध्वजा पताका ।
बल बिबेक दम परहित घोरे । छमा, कृपा, समता, रजु जोरे ।।
ईस भजनु सारथी सुजाना । बिरति चम सतोप कृपाना ।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर बिग्यान कठिन कोदडा ।।
अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जप नियम सिलीमुख नाना ।
कवच अभेद बिप्रगुर पूजा । एहि सम बिजय उपाय न दूजा ।।
सखा धर्ममय अस रथ जाके । जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताके ।
महा अजय ससार रिपु । जीति सकइ सो बीर ।।
जाके अस रथ होई दृढ, सुनहु सखा मतिधीर ।

रावण रथ पर आरूढ था और श्रीराम रथ विहीन पैदल खडे थे । राम की ऐसी हालत देखकर विभीषण अधीर हो गया । राम के प्रति अत्यधिक स्नेह होने के कारण उसके मन में सदेह हुआ । उसने श्री रामके चरणो का वदन कर स्नेहपूर्वक कहा । हे नाथ ! आप न तो रथ पर आरूढ हैं और न आपके पाँवो में जूते हैं, ऐसी परिस्थिति में आप किस प्रकार उस वीर बलवान रावण पर विजय प्राप्त करेंगे ? यह सुनकर कृपानिधान राम ने कहा, हे सखा ! सुनो । जिस रथ से जय होती है वह रथ लाओ । वह रथ कैसा है ? शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये हैं, सत्य और शील उस रथ की दृढ ध्वजा या पताका है । बल, विवेक दम और परहित ये चारों उस रथ में जुते हुए घोडे हैं । वे क्षमा, कृपा और समता-रूपी रस्सी से बंधे हुए हैं । उस पर ईश्वर भजन रूपी सज्जन सारथी बैठा हुआ

जिस प्रकार पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज ने शील रथ की रचना की है, उसी तरह सगुण भक्ति परम्परा में रामाश्रयी शाखा के श्रेष्ठ कवि भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने राम चरित मानस में बड़े मनोहर ढग से रामरथ का वर्णन किया है।

लंका काड में राम–रावण का युद्ध हो रहा है। युद्धभूमि में रावण रथारूढ है और राम पैदल खड़े हैं। राम को ऐसे ही पैदल खड़े देखकर विभीषण के मन में आशका होती है। इस समय राम विभीषण को आत्मा पर विजय प्राप्त करने वाले रथ का स्वरूप इस प्रकार बताते हैं।

> रावण रथी विरथ रघुबीरा। देखि बिभीषण भयऊ अधीरा।
> अधिक प्रीति भा मन सदेहा। बदि चरन कह सहित सनेहा॥
> नाथ न रथ न हिं पदत्राना। केहि विधि जितब बीर बलवाना।
> सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होई सो स्यदन आना॥
> सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका।
> बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा, कृपा, समता, रजु जोरे॥
> ईस भजनु सहित सारथी सुजाना। बिरति चम सतोष कृपाना।
> दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदडा॥
> अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जप नियम सिलीमुख नाना।
> कवच अभेद बिप्रगुरु पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
> सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताके।
> महा अजय ससार रिपु। जीति सकइ सो बीर॥
> जाके अस रथ होई दृढ, सुनहु सखा मतिधीर।

रावण रथ पर आरूढ था और श्रीराम रथ विहीन पैदल खड़े थे। राम की ऐसी हालत देखकर विभीषण अधीर हो गया। राम के प्रति अत्यधिक स्नेह होने के कारण उसके मन में सदेह हुआ। उसने श्री रामके चरणों का वदन कर स्नेहपूर्वक कहा। हे नाथ! आप न तो रथ पर आरूढ हैं और न आपके पाँवों में जूते हैं, ऐसी परिस्थिति में आप किस प्रकार उस वीर बलवान रावण पर विजय प्राप्त करेंगे? यह सुनकर कृपानिधान राम ने कहा, हे सखा! सुनो। जिस रथ से जय होती है वह रथ लाओ। वह रथ कैसा है? शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये हैं, सत्य और शील उस रथ की दृढ ध्वजा या पताका है। बल, विवेक दम और परहित ये चारों उस रथ में जुते हुए घोड़े हैं। वे क्षमा, कृपा और समता-रूपी रस्सी से बधे हुए हैं। उस पर ईश्वर भजन रूपी सज्जन सारथी बैठा हुआ

प्रत्येक सज्ञा पाँच सौ प्रकार की होती है। चारों सज्ञाओं के भेद मिलाने पर कुल दो हजार भेद होते हैं। शीलवान व्यक्ति चारों सज्ञाओं में किसी सज्ञा से प्रेरित होकर आरभ-समारभ नहीं करता है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये सब प्राणी की कामनाएं या मानसिक विचार हैं। कामनाओं की सिद्धि के लिए इन्द्रियों की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है। जब तक इन्द्रियों की प्रवृत्ति नहीं होती तब तक उपर्युक्त सज्ञाओं की सिद्धि नहीं होती। इन्द्रियाँ भी श्रोत्रेन्द्रिय चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय रूप से पाँच प्रकार की होती हैं और प्रत्येक इन्द्रिय के सौ भेद होते हैं। सौ को पाँचों इन्द्रियों से गुणने पर पाँच सौ भेद हुए। इस प्रकार इन्द्रियों के पाँच सौ भेदों का समाहार प्रत्येक सज्ञा के ५०० में हो जाता है। शीलवान् व्यक्ति प्रत्येक इन्द्रिय से सौ प्रकार से सज्ञा आदि से प्रेरित होकर तीन करण और तीन योग से आरभ-समारभ नहीं करता है। इन्द्रियाँ भी ससार में परिभ्रमण करनेवाले कर्मलिप्त जीव के होती हैं असंसारी (सिद्ध) जीव के नहीं। ससार में परिभ्रमण करनेवाले जीव दस प्रकार के होते हैं-पृथ्वीकाय अपकाय तेजुकाय वायुकाय वनस्पतिकाय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय और अजीव काय। पृथ्वी आदि प्रत्येक काय के दस दस भेद होते हैं। दस का उपर्युक्त दस प्रकार के जीवों से गुणन करने पर सौ भेद हुए अर्थात् शीलवान प्राणी दस प्रकार से पृथ्वीकाय आदि का श्रोत्रेन्द्रिय आदि की प्रवृत्ति कर आहार आदि सज्ञा से प्रेरित होकर तीन करण तीन योग से आरभ समारभ नहीं करता है। शीलवान् व्यक्ति निम्नांकित दस प्रकार के धर्मों से मंडित होता है। वे ये धर्म हैं क्षति, मुत्ति, अज्जवे, मद्दवे लाघवे सच्चे सजम तवे चियाए और बभचेरे। शीलवान व्यक्ति क्षमाशील होता है, मुमुक्षु होता है ऋजु होता है लघु विनीत होता है मृदु होता है सत्यवादी होता है, सयमशील होता है तपस्वी होता है त्यागी होता है और ब्रह्मचारी होता है।

क्षमाशील मुमुक्षु, ऋजु, मृदु विनीत सत्यवादी, सयमशील तपस्वी त्यागी और ब्रह्मचारी शीलवान व्यक्ति पृथ्वीकाय आदि प्राणियों का पाँचों ज्ञानेन्द्रिया द्वारा आहार भय आदि चारों सज्ञाओं से प्रेरित होकर तीन करण तथा तीन योग से आरभ-समारभ नहीं करता है।

रथ में जुटे हुए घोड़े के पेट में आपर्य न बखी सूची से इस शील रथ के रचने में स्थान समय तिथि आदि का निर्देश कर दिया है।

सवत १९३८ भाद्रपद शुक्ल ११ श्री तिलोकरिख वावोरी

जिस प्रकार पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज ने शील रथ की रचना की है, उसी तरह सगुण भक्ति परम्परा में रामाश्रयी शाखा के श्रेष्ठ कवि भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने राम चरित मानस में बडे मनोहर ढंग से रामरथ का वर्णन किया है।

लंका कांड में राम-रावण का युद्ध हो रहा है। युद्धभूमि में रावण रथारूढ है और राम पैदल खडे है। राम को ऐसे ही पैदल खडे देखकर विभीषण के मन में आशंका होती है। इस समय राम विभीषण को आत्मा पर विजय प्राप्त करने वाले रथ का स्वरूप इस प्रकार बताते हैं।

रावण रथी विरथ रघुबीरा। देखि बिभीषण भयऊ अधीरा।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ नहि तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना।
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होई सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका।
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा, कृपा, समता, रजु जोरे॥
ईश भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद बिप्रगुरु पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।
महा अजय संसार रिपु। जीति सकइ सो बीर॥
जाके अस रथ होई दृढ, सुनहु सखा मतिधीर।

रावण रथ पर आरूढ था और श्रीराम रथ विहीन पैदल खडे थे। राम की ऐसी हालत देखकर विभीषण अधीर हो गया। राम के प्रति अत्यधिक स्नेह होने के कारण उसके मन में संदेह हुआ। उसने श्री रामके चरणों का वंदन कर स्नेहपूर्वक कहा। हे नाथ! आप न तो रथ पर आरूढ हैं और न आपके पांवों में जूते हैं, ऐसी परिस्थिति में आप किस प्रकार उस वीर बलवान रावण पर विजय प्राप्त करेंगे? यह सुनकर कृपानिधान राम ने कहा, हे सखा! सुनो। जिस रथ से जय होती है वह रथ लाओ। वह रथ कैसा है? शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये हैं, सत्य और शील उस रथ की दृढ ध्वजा या पताका है। बल, विवेक दम और परहित ये चारों उस रथ में जुते हुए घोडे हैं। वे क्षमा, कृपा और समतारूपी रस्सी से बंधे हुए हैं। उस पर ईश्वर भजन रूपी सज्जन सारथी बैठा हुआ

है। शत युद्ध में शरीर पर पहना जानेवाला बख्तर है संतोष वीर के हाथ में रहनेवाला कृपाण है दान परसु है तथा बुद्धि प्रचंड शक्ति है। सदर विज्ञान कठिन धनुष है निर्मल तथा स्थिर मन तोण के समान है शम-यम और नियम उस वीर के कोदंड में चढाये जानेवाले अनेक बाण है। विप्र एवं गुरु पूजा उस वीर के शरीर पर रहनेवाला अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का और दूसरा कोई उपाय नहीं है। हे सखा! जिसके पास एसा धर्ममय रथ होता है उसके लिए रिपुओं को जीतना अत्यंत सरल है। यह संसार रूपी समुद्र महा अजय है, इस पर कोई जय प्राप्त नहीं कर सकता है। जो इसे जीत सकता है वही वीर होता है। जिसके पास एसा दृढ रथ होता है। हे सखा सुनो वही व्यक्ति बुद्धिमान तथा वीर होता है।

रामचरित मानस के युद्धकांड में वर्णित उपयुक्त रथ में भी आत्मवर्ती विकास गुणो का निरूपण किया गया है। पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज ने अपने शीलरथ में क्षमा भक्ति, मार्दव, आर्जव, शौच सत्य, संयम तप त्याग और ब्रह्मचर्य आदि जिन दस धर्मों का वर्णन किया है उन दस धर्मों में रामा-श्रमवर्ती रामरथ में बताए हुए सब गुणों का समावेश हो जाता है। केवल कथन शैली तथा शब्दों में भेद है, सिद्धांत रूप से दोनों ने आत्मा के क्षमा आदि धर्मों के विकास करने की ओर जोर दिया है।

गोस्वामी तुलसीदास के रामरथ से मैं बचपन से बहुत प्रभावित हूँ। श्री ऋषिजी महाराज ने अपनी चित्रमय शैली में शीलरथ के द्वारा आत्मा के मूल गुणों पर प्रकाश डाला है, गोस्वामीजी ने अपनी उत्कृष्ट काव्य-रचना द्वारा आत्मा के उन्हीं सहज गुणो को हमारे सामने रख दिए हैं। गोस्वामीजी के काव्य में प्रौढता, सहजता एवं गांभीर्य है।

शीलरथ की रचना करते समय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की अवस्था ३४ चौंतीस वर्ष की थी।



उपदेशात्मक छंद

उपदेशात्मक छंद

उपर के फलक में हम महाराजश्री द्वारा लिखित कुछ उपदेशात्मक छद देख रहे हैं। ये छद स्वय आपश्री द्वारा विरचित नही है, पर अन्य कवियो के उदधृत किये गये हैं। छन्दो के चयन में भी आपकी कैसी उत्कृष्ट दृष्टि रहती थी, इसका तो हम इनका तात्पर्य पढ़ कर सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। इससे पता चलता है कि आपश्री में गुणग्राहकता की अदभुत शक्ति थी, जहाँ कही थोड़े से भी गुण का दर्शन करते, उसे वे तुरत आत्मसात कर लेते थे और उसे स्वय तक सीमित नही रखकर सबको मुक्त हस्त से वितरित करते थे। इस फलक में उद्धृत छन्द इस प्रकार है।—

कहेणा उनकु जो करे कहेन,
करे कहे ना उन क्यो कहना।
रहेना उन पे हित होत तहा,
न होत नही तहाँ क्यो रहेना।
बहेना उन पे गुण रित लखे,
रि नाहि लखे तहाँ क्यो बहेना।
लहना अपना कछु आत नही,
लिखिया है लिलाट सो ही लहना ॥१॥

अथ — उन्ही व्यक्तियो को कुछ कहना चाहिए, जो अपने कहने के अनुसार आचरण करते हैं। जो हमारे कहने के अनुसार नही चलते हैं उनको क्यो कुछ कहना चाहिए? उन्ही व्यक्तियो के पास रहना चाहिए, जहाँ अपने रहने से उनका कुछ हित होता हो, पर जहाँ रहने से कुछ हित नही होता, वहाँ क्यो रहना चाहिए? उनके पास ही अपने गुणो के प्रवाह को प्रवाहित करना चाहिए, जो गुण की रीति देखते है, पर जो गुण की रीति नही देखते, उनके सामने अपने गुणो का प्रदर्शन करने से क्या लाभ? वही चीज प्राप्त करना चाहिए, जिससे अपना कुछ नही जाता। इसलिए जो हमारे ललाट या भाग्य में लिखा हुआ है वही प्राप्त करना चाहिए अधिक प्राप्त करने से वह चीज हमारे पास नही ठहरती।

अपने हित हि तऊ न करे, ता से हित बात करि तो कहा।
रस रित न जाणे रिसाय चले, वहि के कछु काम लियो तो कहा।
अतर तो मन अतर ही, मन अतर बात करी तो कहा।
अब एसे अनाडी सो प्रीत करी मो, रही तो रही ना रही तो कहा ॥२॥

अर्थ—जिस व्यक्ति से अपने हित की बात कहने पर भी उसे नहीं करता है उससे हित की बात करने से क्या लाभ? जो व्यक्ति रस की रीति नहीं जानता है रस बात कहने पर जो क्रोधित होकर चला जाता है, ऐसे की अड़ियल टट्टू से अड़कर यदि कुछ काम ले लिया जाय तो उससे क्या लाभ? जिसके मन के अन्दर की बात अंतर में ही रहती है उस मन से अंतर रखनेवाले व्यक्ति से यदि कुछ बात कर ली तो इस प्रकार की बात करने से क्या लाभ? ऊपर बतलाये हुए दोषों से परिपूर्ण यदि किसी मूर्ख से मैत्री कर ली तो उस मैत्री के रहने या नहीं रहने से क्या लाभ? दोनों अवस्था में वह समान है।

गंगनदी परवाह चली, अलि कुम्भ को नीरो पीयो न पियो।
जिनके हिरदे भगवत बसे तब और को नाम लियो न लियो।
यम के जोग सुपात्र मिले तब कुपात्र दान दियो न दियो।
कवि गंग कहे सुन साह अकब्बर मूरख मित्र कियो न कियो॥

अर्थ—हे अलि! जब गंगा नदी का अनवरत प्रवाह बह रहा है उस समय घड़े का जल पीना या न पीना दोनों समान है। बहते हुए गंगा नदी का जल ही पीना चाहिए। जिसके हृदय में भगवान विराजमान रहते हैं वे भगवद्भक्त और देवी देवताओं के नाम लें या न लें, दोनों अवस्थाएं उनके लिए समान हैं। ऐसे परमात्मा में लीन होनेवाले भगवत भक्तों के लिए मुंह से अन्य देवी देवताओं का नाम लेने की आवश्यकता नहीं। यदि सद्भाग्य से हमें सुपात्र मिल जाय तब बाद में कुपात्र प्राप्त होने पर उसे दान देना या नहीं देना दोनों समान है। सुपात्र के मिलने पर कुपात्र को दान देने की आवश्यकता नहीं। कवि गंग कहता है हे अकबर बादशाह सुनो मूर्ख व्यक्ति को अपना मित्र बनाना या नहीं बनाना दोनों समान है। क्योंकि मूर्ख व्यक्ति दोनों अवस्थाओं में दुःखदाई होता है।

सज्जन ऐसा कीजिये ढाल सरीखा होय।
सुख में पीछे रहे दुःख में आगे होय॥

अर्थ—ऐसे सज्जन व्यक्ति को अपना मित्र बनाना चाहिए जो कि सदैव समय पड़ने पर ढाल के समान होता है। वह सुख के समय तो पीछे रहता है, पर कष्ट आने पर मदद आगे रहता है। दुःख के समय ढाल की तरह अपने मित्र के आगे रहकर स्वयं चोटें सहन कर अपने मित्र को बचाता है पर सुख के समय जिस तरह ढाल पीछे बंधी रहती है उसी तरह वह अपने मित्र के सामने नहीं आता।

मालती को मित्र पुन
जाचक है जलजऊ को।
कवि के कवीतन में तेरो तन बस है,

ठाकर कहेत रस-रित के जनैया ।
कहा रूप ही पर रिझ हुयो,
ऐसो मति मद है ।
यह तो अविवेकी प्रित,
रित कु न पालि जाने ।
निस दिन फुल्यो हि फिरे,
बिन बध है ।
चित्र के कमल पर विचित्र तू,
भ्रतक (भ्रमत) हा अरे मधुकर अब ।
या में रस ना सुगध है ।

अर्थ---तूं मालती का मित्र होकर पुनः कमल की याचना करता है और तेरा स्नेह-बंधन तो हाथी के गण्डस्थल से चूनेवाले मद से है । ऐसे अलि से रीति कालीन कवि ठाकुर कहता है ।--हे रस की रीति जाननेवाले अलि, तू इस सुंदर रूप पर ही क्यों मुग्ध हो रहा है । इस प्रकार का तू मति मंद है । यह तो अविवेकी व्यक्ति की रीति है, जो कि प्रीति की रीति को नही पालना जानता है । बिना स्नेह बंधन के तूं रात-दिन फूला-फूला फिर रहा है । हे अरे मधुकर, तू विचित्र-चित्र के कमल पर मडरा रहा है । इस चित्र लिखित कमल में न किसी प्रकार का रस है । और न सुगन्धि है ।

ये उपदेशात्मक छंद उद्धृत करने के बाद आपश्री ने लाल अक्षरो में लिखा है—(लि तिलोक रिख) और पन्ने के दाहिनीं ओर हासिये में लाल अक्षरो में ही उलटे अक्षरो में लिखा है—'जो, दी, छो, पा, दि, ज, गु, मा' इसे उर्दू लिपिके अक्षरो की तरह बाईं ओर से पढने पर होता है ।--माग जदी पाछो दीजो । उसके नीचे फिर कुछ अंतर से दो लाल अक्षर लिखे हुए है--'जो खि' इन दोनों अक्षरो को बाईं ओर से पढने पर 'खिजो' निकलता है । बाईं ओर से लिखे हुए (मा, गु, ज, दि, पा, छो, दी, जो) इन अक्षरो को देखकर पहले तो मैं देखता ही रह गया । देखते ही अपने स्वभावानुसार पहले कुछ अर्थ नही जान सकने के कारण थोडी देर तक चुपचाप अर्थ के थाह तक पहुंचने का प्रयत्न किया फिर उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज सा ने उन्ही अक्षरो को जब बाईं ओर से पढकर बताये तब स्व तिलोकऋषिजी महाराज की चक्कर में डालने वाली इस सूझ के लिए बहुत आश्चर्य हुआ । जिज्ञासा शांत होने पर आश्चर्य के साथ संतोष होना सहज है ।

पृथक् पृथक् लिखित अक्षर एव मात्राएँ

सामने के फलक में हम दो ओर समान रेखा में दो अलग अलग आकृतियाँ देख रहे है। उन्हें ध्यानपूर्वक देखने पर एक ओर केवल मात्राएँ तथा अक्षर के कान आदि प्रतीत होते है और दूसरी ओर मात्रा तथा कानों आदि से विहीन स्वर तथा व्यजनाक्षर दृष्टिगोचर होते है।

इन दोनो पक्षो को समान रूप से बिलकुल मध्य में मोडकर एकाकार बनाने से अक्षरो की स्पष्ट आकृति दृष्टिगोचर होती है। दो अलग अलग पक्षों में विकल रूप से अक्षरों की आकृति बनाने मे यद्यपि कहीं-कही पर अक्षरो की आकृति स्पष्ट न हो पाई है। बहुत प्रयत्न करने पर अनुमान से उस अक्षर को जानना पडता है फिर भी यह फलक देखने वाले को आश्चर्य में डालने वाला है। पहले तो इस प्रकार की सूझ होना ही कठिन है। अहर्निश इस प्रवृत्ति में रत रहनेवाले सयमी मुनि को ही ऐसी दृष्टि हो सकती है। इस फलक में उपयुक्त रीति से लिखे हुए दोहे हिंदी के रीतिकालीन बिहारी वृंद आदि श्रेष्ठ कवियों द्वारा विरचित है। इन दोनों पक्षों को मिलाने पर हम ये दोहे इस प्रकार पढ सकते है।—

नीच निचाई न छोडे, देखो दिल के बीच।
जल, नल चढ ऊँचे पड अंत नीच को नीच ॥ १॥

अर्थ——अपने हृदय में अच्छी तरह विचार कर देखो कि नीच व्यक्ति कभी अपनी नीचता नही छोडता। सदैव नीचे की ओर बहनेवाला जल नल के ऊपर चढता है पर अत में वह अपने स्वभाव के अनुसार नीचे की ओर ही बहता है।

जाण से अजाण हो ने तत लीजे ताणी।
आगलो अगन होवे आप होज पाणी ॥ २ ॥

अर्थ—यदि सामनेवाला जानकार हो तो उसके सामने अजान (बिलकुल नहीं जाननेवाला मूर्ख) बनना चाहिये। इस प्रकार अज्ञान बनकर उस तज्ञ व्यक्ति से तत्त्व ज्ञान लेना चाहिये। इसके लिए नीचे दूसरी लाईन में अच्छा उदाहरण दिया गया है। यदि सामनेवाला व्यक्ति अग्नि के समान हो तो स्वय पानी की तरह शीतल बन जाना चाहिए। पानी के समान शीतल होनेपर सामने वाले व्यक्ति के चाहे जितने क्रोधित होने पर भी हम उससे तत्त्व की सब बातें जान सकते है।

केवल अक्षर

श्री

[illegible]

पृथक् पृथक् कागजोंपर कतरे हुये अक्षर और मात्राओं के संयोगसे बने हुये शब्द और पंक्तियाँ

पन्नवणा पद ११
विवेचन पृष्ठ १९८

१३ हाथी विवेचन पृष्ठ २५५

मूरख के मुख बिम्ब वा, निकसत वचन भुयम ।
जिणरी ओषध मुन है, जहेर न व्यापे अग ॥३॥

अर्थ —— मूर्ख व्यक्ति के मुंह रूपी बांबी मे सदैव कृष्णसर्प के मुह मे निकलनेवाले विष की तरह कटुक वचन निकलते रहते है। ऐसे व्यक्ति का सामना होने पर उसकी ओषध केवल मौन है, जिसमे उसके मुंह मे निकलनेवाला वचन रूपी विष हमारी देह में व्याप्त नही होता ।

इन तीनो दोहो को उद्धृत करने के बाद लिखा है—— लिपिकृत तिलोक रिख, पूज्यपाद तिलोकऋषिजी महाराज द्वारा लिपिबद्ध किये हुए पन्नो में मैने अभीतक दो प्रकार देखे है। एक तो वे है, जो स्वय उनके द्वारा विरचित है। और दूसरे उद्धृत। आपश्री ने स्वरचित पन्नो पर लिखा है—— लिखी तिलोकरिख। और अन्य जगह मे उद्धृत पन्नो पर 'लिपिकृतं तिलोकरिख' लिखा है ।

"पृथक-पृथक लिखित अक्षर एव मात्राऐं" इस पन्ने को लिखकर आपश्री ने पाठकों की बुद्धि की परीक्षा ली है। तीनो पन्नो को समान रूप मे मोडकर यदि कोई तीनो दोहे पढने की चेष्टा करेगा तो वह मुंहकी खायगा। पढने के बाद दूसरे दोहे को पढते समय जब तक उस दोहे के अक्षर स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई दें तब तक मात्रावाले पन्ने को अक्षरवाले पन्नो पर सरकाना चाहिए, तभी हम अक्षर अच्छी तरह पढ सकते है। तीनो दोहो मे से प्रत्येक दोहे को पढते समय इसी कुशलता से काम लेना पडता है। लिपि-साहित्य के इतिहास में अक्षरो की इस प्रकार की आकृति के कारण इस पन्ने का विशेष महत्व है।

नंद्यावर्त स्वस्तिक

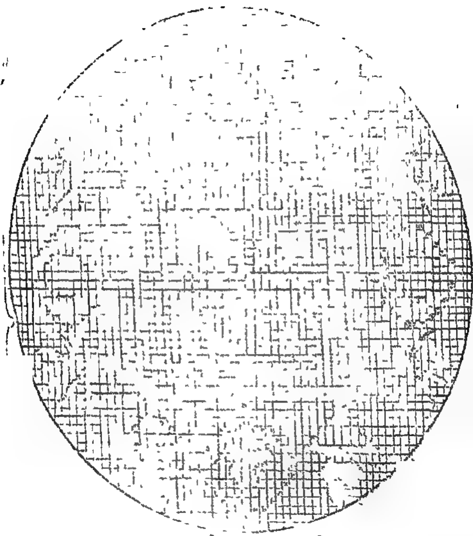
लोक में प्रत्येक शुभ कार्य का प्रारभ करने के पहले मगल करने की परिपाटी है। व्यवहारिक मार्ग की तरह आध्यात्मिक मार्ग में भी यही परिपाटी है। इसी प्रकार प्रत्येक ग्रथ कर्ता अपने ग्रन्थ को निर्विघ्न समाप्त करने के लिए ग्रन्थारभ में मगलाचरण करता है। ये मगल स्तुत्यात्मक श्लोक और द्रव्य रूप से दो प्रकार के होते है। स्तुत्यात्मक श्लोक ग्रन्थ के आरभ में लिखे जाते है, कहीं-कहीं मगल सूचक ॐ या नमस्कार मत्र लिखकर ग्रन्थ का आरंभ कर दिया जाता है।

भगवान् द्वारा प्ररूपित आगमों में द्रव्य मगल का दस प्रकार विधान किया गया है। "अष्टसख्यानि अष्ट मगलसज्ञानि वस्तूनि "जाव दप्पाण, तिइह यावत्करणादिद द्रव्य-"नदिया-वत्तवद्धमाणागमद्दसणकलसच्छ "त्ति,,

व्याख्या प्रज्ञप्ति ९ शतके ६३ अभयदेवीयावृत्ति २

द्रव्य मंगल आठ प्रकार के होते हैं।—नंद्यावर्त वर्द्धमानक भद्रासन, कलश छत्र आदि। ऊपर के फलक में महाराजश्री ने शास्त्र तथा लोक में सब से अधिक प्रसिद्ध तथा मंगलों में प्रथम स्थानीय नंद्यावर्त मंगल की आकृति चित्रित की है। इस द्र य मंगल का चित्रण करने के पूर्व आपश्री ने पहले एक लाखवस्त्र बनाया है। उसके अंदर दोनों ओर समान अंतर से ६२ लाइनें खिंची है। पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण दोनों ओर से गिनने पर दोनों ओर ६२ ६२ लाइनें है। फिर इन लाइनों को दृष्टि में रखकर बड़े कलात्मक ढंग से नंद्या-वर्त आदि मंगलों की रचना की गई। उनमें मध्यवर्ती खास आकृति सुविख्यात नंद्यावर्त मंगल की आकृति है। नंद्यावर्त मंगल की आकृति बनाकर उसकी दो लाइनों के प्रत्यक छोर पर वेदिका बनाकर उस पर मंगलसूचकसूत्र कलश की स्थापना की गई है। कलश पर फिर मंगलात्मक कदली फल तथा श्रीफल रखे हुए है। अवशिष्ट दो लाइनों के अंतिम छोरों पर गमलों में दो दो आमों से युक्त आम्रवृक्ष की टहनियाँ लगाई गई है। स्वस्तिक कुंभ दर्पण छत्र आदि द्रव्य की तरह कदली तथा आम्रफल और इन दोनो वृक्ष की पत्तियाँ भी मंगलरूप मानी गई है। इसीलिए किसी शुभ अवसर पर मंडप बनाते समय लोक में तोरणद्वार के रूप में आम्र तथा केले की पत्तियाँ बंदनवार बनाकर उनके साथ इन दोनो फलों के गुच्छ लगाये जाते है। कहीं कहीं तो द्वार के रूप में सारे केले का झाड़ ही उखाड़ कर लगा दिया जाता है। दक्षिण भारत में तो यह परिपाटी बहुत अधिक प्रचलित है। विवाहोत्सव भवन उद्घाटन, विद्यालयों के वार्षिकोत्सव आदि अनेक मांगलिक अवसरों पर मंच प्रायः सर्वत्र यह दृश्य देखा है। कदली तथा आम्र फल की तरह श्रीफल का भी मंगलसूचक द्रव्य के रूप में बहुत महत्त्व है। अट्ठाई आदि बड़ी तपश्चर्याओं के पच्चक्खाण लेते समय बहुत जगह प्रभावना के रूप में श्रीफल वितरित किये जाते हैं। प्रभावना के समय इनके वितरण करने के पीछे मांगलिक दृष्टि है। यहाँ महाराजश्री मंगलात्मक केवल नंद्यावर्त की आकृति बनाकर ही मौन नहीं रहे मंच पर उसे और भी अनेक मंगलसूचक द्रव्यों से सुस-ज्जित किया है।

नंद्यावर्त स्वस्तिक के चहुँ ओर बिलकुल मध्य में छत्र तने हुए है। प्रसिद्ध अष्ट मंगलों में छत्र भी एक मंगल है, इसका उल्लेख पहले मैं व्याख्या प्रज्ञप्ति के उद्धरण द्वारा कर चुका हूँ। छत्र को तो इतनी उत्कृष्ट मांगलिकता गिनाई गई है कि उसका स्थान तीर्थंकर भगवान् के अष्ट महाप्रतिहार्यों में एक है। इन



नंद्यावर्त्त स्वस्तिक चित्रण पृ० २८२

नमिप्रव्रज्या

चारो छत्रो के मध्य में भिन्न भिन्न आकृतियाँ बनी हुई हैं। एक ओर दोनो अलग-अलग दिशाओ में सूर्य तथा चन्द्र की आकृति बनाई गई है और दूसरी ओर दोनो दिशाओ में कदली-फल के वृक्ष लगाये गये है। नद्यावर्त स्वस्तिक की तरह सूर्य, चद्र की भी मंगल रूप से परिगणना की गई है। इन चारो छत्रो में से तीन छत्रो में छत्रबध काव्य लिखे हुए है वे इस प्रकार हैं—

गगन रमे मही रमे मगळवास गुण सेव।
सिधु-सुत सम है कुनण मम गुरुदेव ॥

अर्थ—जो आकाश में रमण-विचरण करता है, पर पृथ्वी पर रहने वाले लोगो को अच्छा लगता है और रात्रि के समय नक्षत्रो में जिसका अग्रवास रहता है तथा जिसके शीतल आदि गुण सेवन करने के योग्य है। कुदन कवि कहता है, ऐसे समुद्र के पुत्र चन्द्रमा के समान शीतल एव सतोषी मेरे गुरुदेव है।

इसके नीचे के छत्रबध में उत्तराध्ययन सूत्र की यह गाथा लिखी हुई है—

अहो ते अज्जवं साहू अहो ते साहू मद्दव।
अहो ते उत्तमा खंती अहो ते मुत्ति उत्तमा ॥

अर्थ—हे मुनि, तुम्हारी आर्जवता, सरलता, को धन्य है, तुम्हारी कोमलता को धन्य है और तुम्हारे उत्तम त्याग को धन्य है

यह उस समय का वर्णन है जब मिथिला के नमि राजर्षि अपना राजपाट वैभव आदि सब कुछ छोडकर उद्यान में ध्यानावस्था में अवस्थित थे, उस समय इद्र ब्राह्मण के रूप मे आकर उन्हे अनेक प्रकार से विचलित करने का प्रयत्न करता है, यहाँ तक वह कहता है—तुम इधर ध्यानावस्था में स्थित हो पर उधर सारी मिथिला नगरी जल रही है। इसके उत्तर में श्री नमि राजर्षि यह कहते है—

"मिथिलाया दह्यमानायां न मे दहति किंचन।" मिथिला के जलने पर भी मेरा कुछ भी नही जल रहा है।

नमि राजर्षि को ध्यानावस्था में इतने दृढ देखकर इन्द्र अपने असली वेश में प्रकट होकर उनकी वदना करता है और उनकी प्रशसा के रूप में उपर्युक्त गाथा का उच्चारण करता है।

तीसरे छत्र में जो छत्रबध दोहा अकित किया गया है, उसमे भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। वह इस प्रकार है।

महितल ते निपनो, कुधातन धात।
लोले वर्णे चिन नमुं, कुनण सदा विख्यात ॥

स्पर्श मणि या पारस पत्थर पृथ्वी स्थल से उत्पन्न होकर कुधातुरूप लोहे को सुवर्ण बनाता है—पारस पत्थर का लोहे से स्पर्श होने पर वह अपने लोह

रूप को त्यागकर सुवर्ण रूप में परिवर्तित हो जाता है । कुनण कवि कहता है सदा लोक में विख्यात ऐसे नीले वर्णवाले श्री पारस जिनेश्वर को नमस्कार करता हूँ ।

भगवान पारसनाथ भी इसी महीतल पर उत्पन्न हुए और उन्होंने अपनी शांत मुद्रा से जलते हुए नाग-नागिनी को उपदेश रूपी सुधा पिलाकर क्रोध से विमुक्त किया । भगवान के उपदेश से ही दोनों-नाग नागिनी तापस के प्रति रहे अपने द्वेष को छोड़कर नमोक्कार मंत्र का जाप करते करते स्वर्ग सिधारे ।

यहाँ पारसनाथ भगवान को पारस पत्थर से भी अधिक महत्ता बताई गई है । पारस पत्थर तो केवल जड़ लोहे को सुवर्ण का रूप देता है पर पारसनाथ भगवान अत्यंत क्रोधी हिंस्र प्राणी को हिंसा से विमुक्तकर सद्गति प्रदान करते हैं ।

चतुर्थ छत्र में कोई छत्रबंध दोहा या गाथा नहीं है वह खाली है ।

नक्षावर्त की इस आकृति को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि यह आकृति सम्भवतः अंतिम होगी । इस महाराजश्री अनेक सवैये दोहों गाथाओं और सूत्र वाक्यों द्वारा सजानेवाले थे, इसीलिए आपश्री ने दोनों ओर ६२ ६२ लाइनें खींचकर अनेक स्थान बनाये हैं । प्रत्येक स्थान में कुछ । कुछ लिखकर उसकी पूर्ति करनेवाले थे पर कारणविशेष से यह भव्य आकृति अधूरी ही रह गई । इसमें आपश्री अध्यात्म ज्ञान से परिपूर्ण कौन से छंद आदि लिखनेवाले थे इसे या तो आपश्री जानते थे या केवली भगवान जानते हैं । इस आकृति के अधूरी होने का अनुमान तो पाठक चतुर्थ छत्र से ही लगा सकते हैं । क्योंकि चारों छत्रों में से केवल तीन छत्र छत्रबंध हैं । तीनों छत्रों की तरह चतुर्थ छत्र भी छत्रबंध होना चाहिए था ।

पूज्य की सब कला—कृतियों का अध्ययन करने से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि महाराजश्री में यह अद्भुत विशेषता थी कि वे जिस किसी कार्य को अपने हाथ में लेते उसे सर्वांगपूर्ण करके ही छोड़ते थे—कभी उसे अधूरा नहीं रखते इस कृति के अपूर्ण होने के कारण ही हम इसके अंतिम होने का अनुमान करते हैं । जो कुछ हो पर इसकी अपूर्णता के कारण हम एक बहुत बड़े ज्ञान से वंचित रह गये हैं ।

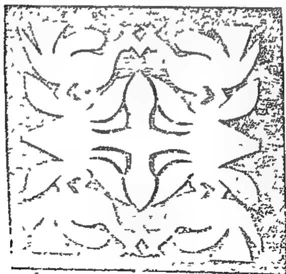


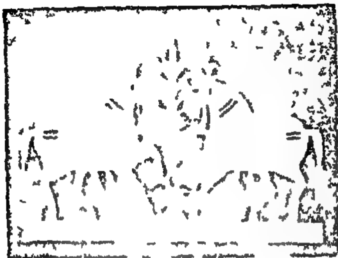
—पाँव द्वारा निर्मित दो अद्भुत कृतियाँ—

दो अश्व और मयूर

सामने के फलक पर दृष्टि पड़ते ही हमारे सामने चलने के लिए सन्नद्ध पाँव उठाये हुए दो बलशाली अश्वों की आकृति उपस्थित हो जाती है । ये दोनों अश्व अच्छे जाति के घोड़े की तरह जीन आदि से कसे हुए हैं । उन्हें चाँदी के







पाव द्वारा निर्मित अश्व एवं मयूर

आभूषण पहना कर और अधिक अलंकृत किया गया है । उन दोनो अश्वो के बीच में मंगल सूचक अनेक बेलबूटो से सज्जित एक स्तंभ खड़ा किया गया है, स्तंभ के नीचे एक पुष्पाकार वेदिका है ।

प्रथम तो यदि कोई व्यक्ति हाथ से इस प्रकार का चित्र बनाना चाहे तो एकाएक इस प्रकार की कोतरनी करना अशक्य है, पर आश्चर्य की बात तो यह है कि महाराजश्री ने इस चित्र की कोतरनी अपने पाँवो द्वारा की है। सुनते हैं वे अनेक बार हाथ थक जाने पर पाँवो से भी लिखते थे। अधिकतर देखा जाता है कि यदि दाहिने हाथ से लिखने या कार्य करने का अभ्यास होता है तो प्रयत्न करने पर भी बायें हाथ से उतने सुचारुप से न तो अक्षर लिखे जाते है और न उतने व्यवस्थित रूप से कोई कार्य हो सकता है। फिर पाँव से कार्य करने की बात अलग रही। पाँव का काम तो केवल चलने तक ही सीमित है। अधिक हुआ तो जमीन पर पड़ी हुई किसी चीज को पाँवो द्वारा इधर-उधर सरका सकते है या खेल के समय फुटबाल आदि भी खेल सकते है। पर महाराजश्री ने अपने पाँवो से इस नयनाभिराम अश्वो की कोतरनी कर के सब को आश्चर्य में डाल दिया है। उन्होंने अपने पाँवो से किस प्रकार कैंची पकडी होगी और फिर हाथो का उपयोग किये बिना कैसे इन की कोतरनी की होगी?

इसी के साथ एक मयूर भी फलक पर अंकित है। वह भी पाँवो द्वारा कैंची पकड़कर कुतरा गया है। उसकी आकृति भी प्राणि-शास्त्र के अनुरूप सब अंगो से परिपूर्ण है।

पाँवो द्वारा इन दोनो प्राणियो की कोतरने के पीछे महाराज सा०की क्या दृष्टि रही होगी? बहुत सोचने पर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि महाराज श्री की दृष्टि सतत मगलसूचक पदार्थों या प्राणियो पर रही थी। उन्होंने प्रत्येक स्थान पर ऐसे ही प्राणियो, द्रव्यो या पदार्थों के चित्र चित्रित किये है जो लौकिक और शास्त्रीय दृष्टि से मंगलसूचक माने गये है।

पहले नद्यावर्त स्वस्तिक का विवेचन करते समय मैं अष्ट मागलिक द्रव्यो के सम्बन्ध में कुछ संकेत कर चुका हूँ। इसी तरह स्वप्नशास्त्र की दृष्टि से अश्व भी मंगलसूचक माना गया है। मेरी शैशवावस्था की बात है कि जब मेरी सात-आठ साल की अवस्था थी तब मेरे स्व. पूज्य पितामह श्री पन्नालालजी खटोड़ ने सामायिक आदि का पाठ कण्ठस्थ करने के साथ कुछ थोकडे भी सिखाये थे। उनमें चौदह बोल का एक थोकडा भी था। जिसमें उन स्वप्नो का फल मोक्ष-सूचक बताया गया है। उन चौदह बोलो में पहला बोल इस प्रकार है—

पहले स्वप्ने हाथी, घोड़ा ने पलाण करतो। थने जागे जीव तो तेज भवे ले मोक्ष जाय॥

बचपन में इन चौदह बोलों को कण्ठस्थ करने के बाद यह इच्छा रही कि शास्त्रों के अनुसार थोकड़े में सगृहीत स्वप्न की तरह मुझे भी सतत ऐसे ही स्वप्न आते रहे। दुनियां में अनेक कार्यों में उलझे हुए हमारे जैसे केवल स्वार्थपरायण व्यक्तियों का भी जब अश्व की इस मांगलिकता पर इतना दृढ़ अविचल विश्वास है तब सतत अध्यात्म साधना में रत रहनेवाले महाराज श्री को तो इस सूत्र वाक्य पर न मालूम कितनी असीम श्रद्धा रही होगी वे मुमुक्षु थे। मोक्ष प्राप्त करना ही उनके जीवन का ध्येय था। वे जो कुछ कार्य करते थे वे सब मोक्षलक्षी होते थे। जिस समय उन्होंने पांव से अश्व को कोतरने का यह दुष्कर कार्य किया, उस समय आपका ध्यान मोक्ष की ओर था और मोक्षसूचक स्वप्नों में सब प्रथम दिखाई देनेवाले स्वप्नगत प्राणी का चित्र उसी रूप में चित्रित किया। दूसरे व्यक्ति इस चित्र को देखकर और कुछ कल्पना कर सकते हैं पर मैं अपनी भावना और स्वभाव के अनुरूप इस चित्र को देखकर जो कुछ और जैसा समझ पाया हूं उसे सहज भाव से लिखा है और मेरी दृष्टि से इस चित्र को कोतरने के पीछे महाराजश्री की उपर निर्दिष्ट दृष्टि के सिवाय और कुछ नहीं है।

अश्व की तरह मयूर का भी लोकमानस में कितना स्थान है? यह किसी से छिपा नहीं। भारतीय जनता के मानस में घर करनेवाले देवकीनंदन बालकृष्ण की सब क्रीडाएँ मयूर पिच्छ पर आधारित है। उस नटनागर माखन-चोर के सिर पर मयूरपक्ष का मुकुट न हो तो वह चित्र अधूरा ही समझा जाता है।

जैन परंपरा में दिगंबर सम्प्रदाय के साधु रजोहरण के स्थानपर मयूरपिच्छ रखते हैं अपने घरों में मयूरपंख से बने हुए कलात्मक सुन्दर पंखों को रखने की परिपाटी है। इस प्रकार साधुवर्ग और गृहस्थवर्ग दोनों जगह अपनी मांगलिकता के कारण मयूर ने अपना स्थान जमा रखा है। अश्व की तरह मयूर भी मंगल-सूचक होने से महाराजश्री ने इस को भी कोतरणी पांव से बड़े कलात्मक ढंग से की है।

पांवों द्वारा कोतरी हुई इन दोनों कलात्मक कृतियों को देखकर कुछ हाथ-पाँव नहीं हिलानेवाले अकर्मण्य आलसी व्यक्तियों के मन में शंका आ सकती है कि क्या पांवों द्वारा भी ऐसा कार्य शक्य है? वे प्रत्येक कार्य के लिए कुछ प्रमाण चाहते हैं। पर प्रयत्नशील पुरुषार्थी व्यक्ति द्वारा कोई कार्य असम्भव नहीं। दुनियां में आज भी अनेक ऐसे व्यक्ति हैं, जो पांवों से भी उतनी ही कुशलतापूर्वक कार्य करते हैं जितना कि हाथों से।

मैंने पंडितरत्न उपाध्याय मुनिश्री आनंदऋषिजी महाराज के साथ विचरण करनेवाले मुनिश्री शांतिऋषिजी म० सा० के पास से इस प्रकार की जानकारी प्राप्त की है कि लुधियाना में तीसवर्षीय एक ऐसा व्यक्ति है, जो ऊपर ऊपर से देखने से तेजोहीन प्रतीत होता है, किसी से बातचीत करते समय वह आँख से आँख मिलाकर बातचीत नहीं कर सकता। बीच में अनेक बार या तो जहाँ तक गर्दन मुड सकती हो उतनी मोडकर दाहिनी ओर देखता है या बाईं ओर उसी प्रकार गर्दन घुमाकर टुकर टुकर दूसरी ओर देखता रहता है। उसके हाथ कभी सीधे नहीं रहते, यहाँ तक कि वह हाथो की मुट्ठियाँ तक सीधी तरह नहीं बंद कर सकता। इसी प्रकार प्रयत्न से बंद की हुई मुट्ठी को खोलने में भी उसे कठिनाई होती है। पर पाँवो से काम लेते लेते उसके पाँव काम करने में इतने अभ्यस्त एवं कुशल हो गये हैं कि देखते ही बनता है। वह अपने पाँवो से भोजन बनाता है, कपडे धोता है, झाडू निकालता है चित्रांकन करता है, फूल-पत्ती निकालता है और आवश्यकता पडने पर लिखता भी है। उसके इस अद्भुत कौशल को देखकर सब दांतो-तले उंगली दबाते है।

पं० महासती श्री सुमतिकुंवरजी म० ने भी अपने पंजाब के विहार-काल के समय लुधियाना में पूज्य आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज सा० के पास इस व्यक्ति को देखा है।

स्व० पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० में अपनी सब इन्द्रियो से काम करने की अद्भुत क्षमता थी, इसीलिए वे अपनी अल्पायु में इतना अधिक कार्य कर गये हैं कि स्थानकवासी समाज में तो उनकी जैसी छोटी आयु में इतना अधिक शास्त्रीय कार्य करने वाले कोई अन्य संत हुए हो तो कम से कम मेरी दृष्टि में तो नहीं आये। इसी कारण मैं आपश्री की कृतियो से इतना अधिक मुग्ध हुआ हूँ।

एक इंच चौडी और एक इंच लम्बी जगह में ९३ हाथियों का चित्र

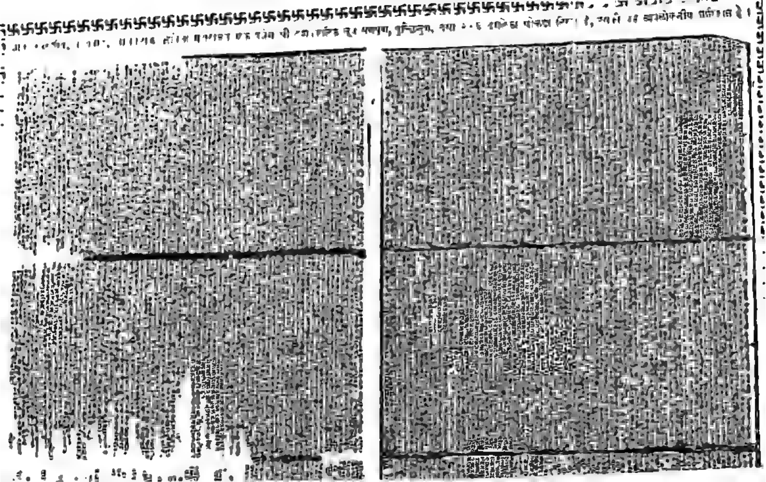
पाठक सामने के फलक में एक छोटा-सा चित्र देख रहे हैं फलगत कागज की लम्बाई और चौडाई पौने दो, पौने दो इंच है। उसका रंग पीला है, उसके ऊपर और नीचे दो काली रेखाएँ खींची हुई हैं, उसके चारो ओर बोर्डर पर दो दो काली रेखाएँ खींचकर अन्दर अंदर लाल रंग भरा गया है। तत्पश्चात् समानाकार चतुष्कोण बनाकर बाहर पंक्तियो में ९३ हाथी चित्रित किये गये हैं। इसमें

पहले की दो पंक्तियों में प्रत्येक पंक्ति में सात-सात हाथियों के हिसाब से चौदह हाथी दिये गये हैं। तदनंतर नीचे की चार पंक्तियों में से प्रत्येक पंक्ति में आठ-आठ हाथियों के हिसाब से बत्तीस हाथी चित्रित किये गए हैं। इसके बाद सातवीं पंक्ति में फिर सात हाथियों के चित्र दिये गये हैं। फिर अवशिष्ट पाँच पंक्तियों में ऊपर अंकित चार पंक्तियों की तरह प्रत्येक पंक्ति में आठ-आठ हाथी के हिसाब से चालीस हाथी अंकित किये गये हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर ९३ हाथी होते हैं।

मालूम होता है कि पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज की हाथी पर विशेष दृष्टि थी क्यों कि ऊपर प्रारम्भ से पूज्यपादश्री की जिन जिन कृतियों का विवेचन किया गया है उनमें से आपश्री की चित्रांकन-शैली में हाथी का ही विशेष स्थान किया है। पहले-पहल जिस समुद्रबंध और नागपाशबंध का विवेचन कर चुका हूँ, उस में भी समुद्रबंध काव्य में दाहिनी ओर की रूपम रूपम भर जगह में आपश्री ने क्रमशः १५२ और ११६ हाथी चित्रित किये हैं। जैन सिद्धान्त को संक्षेप में चित्ररूप से समझाने के लिए भी आपश्री ने ज्ञानकुंजर का चित्रण किया है और उस ज्ञान कुंजर के पहले पाँव के मध्य में चढ़ती भर जगह में ६५ हाथियों के चित्र अंकित किये गये हैं।

प्राणी सृष्टि में पशुओं में हाथी सब से बड़ा होनेपर भी सब से अधिक आकर्षक होता है, वेसी तथा विदेशी सब इसे देखकर देखते ही रह जाते हैं। शहरों या गांवों में उसके आनपर सब लोग उसे देखने के लिए जमा हो जाते हैं। विदेशी लोग तो इसे अपने यहां ले जाकर अजायब घरों में रखते हैं। हमारे भारत के वर्तमान प्रधान मंत्री पं. श्री जवाहरलाल नेहरू ने तो अन्य राष्ट्रों के साथ मैत्री के प्रतीक रूप में रूस जापान आदि देशों में हाथी भेजे हैं। स्वप्न शास्त्र की दृष्टि से भी हाथी का स्वप्न में दिखाई देना मांगलिक माना गया है। तीर्थंकर या किसी विशिष्ट पुरुष के अवतरित होने के पूर्व उनकी माताएँ स्वप्नावस्था में हथिनी को मुंह में प्रवेश करती हुई देखती हैं।

पूर्व में विवाहादि के प्रसंग पर हाथी का बारात में रहना अनिवार्य माना जाता है। जहाँ हाथी मिल सकता है, वहाँ दीक्षार्थी वैरागी को हाथी पर बैठाकर जुलूस निकाला जाता है और वह जुलूस में हाथी पर बैठकर दीक्षा लेने के स्थान पर जाता है। इस प्रकार लौकिक और आध्यात्मिक शास्त्र में हाथी का अत्यंत महत्त्वपूर्ण वर्णन किया गया है। फिर पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज ने जिस रतलाम शहर में जन्म लिया, वह उस समय एक बहुत



बडी रियासत थी । वहाँ हाथियो का बहुत अधिक जमघट था । दशहरा आदि विशिष्ट प्रसंगोपर उनका बराबर प्रदर्शन किया जाता था । दीक्षा लेने के पूर्व महाराजश्री उनका बराबर अवलोकन करते रहते थे । मुझे तो ऐसा लगता है— उस शैशवावस्था में ही हाथी की इस भव्य आकृति ने आपको मुग्ध कर लिया होगा ।

दीक्षित होने के पूर्व भी आपने कुछ हाथी चित्रित किये हों तो कुछ आश्चर्य नही । बचपन का यह अभ्यास अवस्था प्राप्त होनेपर और अधिक दृढ हुआ होगा और आपने उसी अभ्यास के परिणामस्वरूप मेरी दृष्टिसे इतने अधिक स्थानो पर अगणित हाथी चित्रित किये है ।

इतने अधिक हाथियो का अंकन करने के पश्चात् अन्त में चतुष्कोण के नीचे लिखा हुआ है—

संवत १९३४ लि तिलोकरिख रतलाम में ।

मध्यभारत से महाराष्ट्र प्रान्त में पदार्पण करने के पूर्व महाराजश्री ने अपनी तीस साल की अवस्था में अपने जन्म-स्थान रतलाम शहर में इन हाथियो का चित्रण किया है ।

जब पंडितरत्न उपाध्याय मुनिश्री आनन्दऋषिजी महाराज धुलिया में विराजमान थे तब पंडिता महासती श्री सज्जनकुँवरजी महाराज से यह ९३ हाथियो से चित्रित छोटा-सा चतुष्कोण उपाध्याय मुनि श्री को प्राप्त हुआ है । यह महासतीजी ऋषि सम्प्रदाय की है । जब महासतीजी ने यह चित्र उपाध्याय श्री जी को दिया होगा, तब उन्होने कल्पना भी नही की होगी कि क्या भविष्य मे इसका इस प्रकार विवेचन हो सकेगा । सच पूछा जाय तो इसे हाथ में लेकर लिखने के पूर्व मुझे भी कुछ नही सूझ रहा था कि इसपर क्या लिखूँ ? पर एक प्रकार से यह अच्छा ही हुआ कि इसपर प्रकाश डालने के बहाने कल्पना द्वारा पहले विवेचित अनेक कृतियो में अंकित हाथियो के चित्रण के पीछे महाराजश्री की जो भावना रही होगी, उसमें से तो सदुद्देश्य का दर्शन कर संतोष की साँस लेता हूँ ।

अज्ञात रूप से शैशवावस्था में अपने उज्ज्वल वक्षरात्मक देह से आकर्षित करनेवाले पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज को सादर श्रद्धापूर्वक—

महेन्द्र





卐 विवेचन सपूर्ण 卐



निबन्धसार



श्री
तिलोक दीक्षा-शताब्दी के उपलक्ष्य में
विशिष्ट विद्वानो एवं विचारको के



विविध वस्तु-विषयक

सारगर्भित निबन्ध



एक तुलनात्मक चिंतन

ध्यान और योग

आचार्य श्री आत्मारामजी म० लुधियाना



भारतीय चिन्तन का मूल केंद्र आत्मा है। इस देश की समग्र चिन्तनधारा आत्मा को आधार मानकर गतिशील रही है। अतः समस्त आध्यात्मिक विचारकों ने आत्म–चिन्तन पर भार दिया और आत्म–विकास के मार्ग का अन्वेषण करने में अपने सारे जीवन का उत्सर्ग कर दिया। जैन चिंतकों ने भी आत्मा के विकास के मार्ग का अन्वेषण करने में अपनी शक्ति लगाई और उसका स्वरूप दुनिया के सामने रखा। आत्म–विकास के मार्ग को समझने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि आत्मा क्या है? उसका स्वरूप क्या है? किन कारणों से उसका विकास-पथ अवरुद्ध है?

जैन आगमों में आत्मा को शरीर, इन्द्रिय, एवं मन आदि भौतिक पदार्थों से एक स्वतंत्र द्रव्य माना गया है। वह इतना सूक्ष्म है कि पूर्ण ज्ञान-संपन्न व्यक्ति के अतिरिक्त कोई भी उसे देख नहीं सकता। हाँ उसकी अनुभूति अवश्य कर सकता है। इसके अतिरिक्त वह वर्ण, गंध रस और स्पर्श से रहित है, अर्थात् अरूपी है। यह सब बातें भौतिक पदार्थों में पाई जाती है और आत्मा अभौतिक द्रव्य है। इसलिए वह इन सबसे विहीन है। ऐसे विशुद्ध आत्मा के पतन का कारण है— राग–द्वेष आदि विकारों का संसर्ग। राग द्वेष से कर्म का बन्ध होता है और कर्म बन्ध के कारण आत्मा संसार में परिभ्रमण करती है। अतः आत्म विकास का अर्थ है— अभिनव कर्म के आगमन को रोक कर आबद्ध कर्मों का क्षय करना।

इसके लिए भारतीय विचारकों ने अनेक मार्गों की कल्पना की है। पातंजल योग दर्शन में कर्म–बन्ध का कारण चित्त–वृत्ति को माना है। इसलिए आत्मा को कर्म बन्धन से मुक्त करने के लिए उन्होंने चित्त–वृत्ति के निरोध करने पर जोर दिया और उसे योग कहा। चित्त-वृत्ति को रोकना योग अर्थात आत्मा को कर्म बन्धन से मुक्त करने का एक मार्ग है।

जैन आगमों में कर्म बन्ध के ५ कारण बताये गये हैं—

(१) योगश्चित्तवृत्तिनिरोध । –पातञ्जल योगदर्शन, १, २ ।

(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय और योग इनमें मूल १ मिथ्यात्व, २ कषाय और ३ योग हैं। अविरति और प्रमाद कषाय के ही विस्तृत रूप हैं। योग से कर्मों का आगमन होता है और कषाय के कारण उनका बन्ध होता है। बन्ध ४ प्रकार का माना गया है— (१) प्रकृति बन्ध, (२) प्रदेश बंध, (३) अनुभाग बन्ध और (४) स्थिति बन्ध। योगों की प्रवृत्ति से कर्म का आत्म-प्रदेशों के साथ संबंध होता है, जिसे प्रदेश-बन्ध कहते हैं। उसके पश्चात् वे जिस स्वभाव–ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि के होते हैं तदनुसार उनका बन्ध होता है, जिसे प्रकृति बन्ध कहते हैं। प्रकृति एवं प्रदेश बन्ध संसार परिभ्रमण के मुख्य कारण नहीं हैं, जब योगों के साथ कषाय का उदय होता है तब उनका अनुभाग एवं स्थितिबन्ध होता है और यह बन्ध ही संसार–परिभ्रमण का कारण है। अनुभाग का अर्थ है– रस। अच्छे एवं बुरे का कटुक एवं मधुर रस का बन्ध कषायों की कटुता एवं मधुरता के अनुरूप होता है। यदि प्रशस्त कषाय है, तो उससे शुभ रस का बन्ध होगा और अप्रशस्त कषाय से अशुभ रस का बन्ध होगा। कषाय एकान्त रूप से अप्रशस्त ही नहीं कही जा सकती। जैसे क्रोध बुरा है, पतन का कारण है, परन्तु धर्म एवं शील की रक्षा के लिए बिना किसी दुर्भावना के किये गए क्रोध को एकान्त रूप से बुरा नहीं कह सकते। सीता ने अपने शील एवं धर्म की रक्षा के लिए रावण को कटु शब्द कहे, परन्तु उसके मन में रावण के प्रति दुर्भाव नहीं था, केवल अपनी धर्म की रक्षा एवं उसे बुरे मार्ग से हटाने की ही उसकी भावना थी। इसलिए उसका वह आवेश प्रशस्त है। फिर भी कषाययुक्त होने के कारण वह पुण्य–बन्ध का कारण है। उससे निर्जरा नहीं, बन्ध ही होता है। अतः कषाय से उस प्रदेश एवं प्रकृति बन्ध में मधु या कटुक रस का संचार होता है और उसकी स्थिति का बन्ध भी कषाय से होता है। प्रत्येक आबद्ध कर्म अपने मर्यादित काल में उदय में आता है और फल प्रदान करके नष्ट हो जाता है। इस तरह इन साधनों से आत्मा कर्म से आबद्ध होकर संसार में परिभ्रमण करती है। इसलिए इन्हें आस्रव अर्थात् कर्मों के आने का रास्ता कहा गया है।

योग भी आस्रव हैं और वे तीन माने गये हैं— (१) मन, (२) वचन, और काय। इन में मन की वृत्ति मुख्य मानी गई है। वचन एवं काय की प्रवृत्ति से कर्म-पुद्गलों का आगमन होता है, परन्तु उनका बन्ध परिणामों से होता

है। परिणामों की शुद्धता–अशुद्धता एवं तीव्रता–मन्दता के अनुरूप ही उनका बंध होता है। इसलिए आगम में बंध परिणामों के अनुसार माना गया है। आत्मा को निष्कर्म बनाने के लिए कर्म–बन्ध के कारण योगों की प्रवृत्ति को रोकने का विधान किया गया है। जिसे आगमिक परिभाषा में 'संवर' कहते हैं और इसके लिए तीन गुप्ति की साधना बताई गई है—(१) मन गुप्ति (२) वचन गुप्ति और (३) काय गुप्ति।

इस तरह हमने देखा कि पातंजल योगदर्शन में चित्त के निरोध करने को योग कहा है और जैनागमों में मन, वचन और काय को योग कहा है और तीनों के निरोध को संवर अभिनव कर्म के आगमन को रोकना कहा है। चित्त वृत्ति का दोनों में उल्लेख है। जैनागमों के अनुसार कर्म–बन्ध परिणाम से होता है, अतः परिणाम का निरोध करने से आत्मा निष्कर्म बनती है। इस कारण १४ वें गुणस्थान में आरूढ़ आत्मा सबसे पहले मन के योग का निरोध करती है उसके बाद वचन और काययोग का निरोध करती है। इस तरह शाब्दिक अन्तर होते हुए भी दोनों का उद्देश्य समान है। अतः हम कह सकते हैं कि चित्त–वृत्ति या मन वचन और काय योग को गोपन का प्रयत्न करना आत्मा को निष्कर्म बनाने का प्रशस्त पथ है। इससे आत्मा में संवर होता है, अभिनव कर्मों का आगमन रुकता है।

अभिनव कर्मों का आगमन रोकने के लिए संवर की साधना बताई गई है और पूर्व आबद्ध कर्मों का क्षय करने के लिए तप की साधना का उपदेश दिया गया है। तपस्या कर्म रूपी इंधन को जलाने के लिए अग्निरूप है। इससे विकार उपशान्त होते हैं और विकारों के उपशान्त होने पर योगों में एकाग्रता आती है। योगों की चंचलता का मूल कारण विकार है। विकारों के प्राबल्य से मन एवं इन्द्रियाँ इधर उधर उछल-कूद मचाती हैं। अतः विकारों को शान्त करने के लिए तप की साधना आवश्यक है। गीता में भी कहा है कि आहार का त्याग करनेवाले अर्थात तप-साधना को स्वीकार करनेवाले व्यक्ति को विकार नहीं सताते हैं।[१] विकारों के उपशमन से चित्त में स्थिरता आती है और परिणाम स्वरूप आत्मा स्वस्वरूप के चिन्तन में संलग्न होती है और परस्वरूप से दूर रहने का प्रयत्न करती है। इस तरह तप से वह पूर्व आबद्ध कर्मों को क्षय करती है और एक दिन समस्त पर-पदार्थों से विहीन होकर अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेती है। आगम में बताया है कि साधक ज्ञान से पदार्थों के यथार्थ स्वरूप

(१) वि या विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः। गीता २ ५

को जानता है, दर्शन से उस परिज्ञात स्वरूप पर विश्वास करता है, चारित्र (संयम-संवर) से अभिनव कर्मों के आगमन को रोकता है और तप से पहले बन्धे हुए कर्मों का नाश करता है।[2] इससे यह स्पष्ट हुआ कि साधक ज्ञान एवं दर्शन युक्त चारित्र (संवर) से नये कर्मों के स्रोत को बन्द करता है और तप से पुरातन कर्मों का क्षय करता है।

अतः निष्कर्म बनने के लिए संवर के साथ तप की भी आवश्यकता है। तप के दो प्रकार हैं— (१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। बाह्य तप ६ प्रकार का है—— (१) अनशन, (२) ऊनोदर्य (३) भिक्षाचरी, (४) रस-परित्याग, (५) काया-क्लेश और (६) प्रतिसंलीनता। आभ्यन्तर तप के भी ६ भेद हैं। (१) विनय, (२) वैयावृत्य, (३) प्रायश्चित्त, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान और (६) व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग)। यह तप योगों की चंचलता को रोकने या अपने आपको एकाग्र करने का साधन है। योग दर्शन में भी चित्त-वृत्ति का निरोध करने की साधना बताते हुए तप, स्वाध्याय और प्रणव ॐ या ईश्वर के स्वरूप में लीन होना बताया गया है।[3] जैनागमों में स्वाध्याय एवं प्रणव आत्म एवं परमात्म स्वरूप के चिन्तन-ध्यान करने को आभ्यन्तर तप में समाविष्ट किया है। इससे स्पष्ट होता है कि समग्र भारतीय चिन्तन-धारा में तप का महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है।

योगों का निरोध करने के लिए आभ्यन्तर तप सर्वश्रेष्ठ साधन है। ध्यान एवं कायोत्सर्ग की साधना से साधक योगों की प्रवृत्तियों का गोपन करने या निरोध करने में समर्थ होता है। धर्म-ध्यान एवं शुक्ल-ध्यान के द्वारा साधक राग-द्वेष को क्षय करके चार घातिक कर्मों से अनावृत हो जाता है और १३ वें गुणस्थान में शुक्ल-ध्यान की साधना करते हुए शुक्ल ध्यान के चौथे पाए का चिन्तन करते हुए अवशेष रहे चारों अघातिक कर्मों को क्षय करके निष्कर्म अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इस तरह ध्यान तप की साधना से साधक निष्क-र्मता की ओर बढ़ता है।

हमने यह देखा कि योग का अर्थ चित्तवृत्ति का निरोध करना है और ध्यान का उद्देश्य भी चित्तवृत्तियों को आत्म-चिन्तन में केन्द्रित करता है। इसलिए ध्यान को योग भी कहा जाता है। उस योग विधि को जाननेवाला साधक ही ध्यान या

(२) नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हइ, तवेण परिसुज्झइ। —उत्तराध्ययन, २८ २५

(३) तपस्स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रिया योग। —योगदर्शन, २, १

योग—साधना करने के योग्य है। इसलिए साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह योग्य गुरु के पास योग—साधना की शिक्षा प्राप्त करे। क्योंकि ज्ञान के बिना वह यथार्थ रूप से साधन नहीं कर सकता। इसलिए आगम में कहा गया है कि साधक को शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरुकुल—गुरु की सेवा में निवास करना चाहिए। गुरु की सेवा में रहकर ही साधक योगवान् हो सकता है।[1] वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि गुरु-सेवा में रहते हुए साधक योगवान् उपधान तप करनेवाला प्रिय बोलनेवाला, प्रिय कार्य करनेवाला होता है। इन गुण से युक्त साधक शिक्षा प्राप्त करने के योग्य होता है। योगवान् शब्द से वृत्तिकार ने अष्टांग योग भी ग्रहण किया है।[2] आगमों में योग शब्द के अर्थ में ध्यान शब्द का प्रयोग मिलता है। योग एवं ध्यान दोनों के उद्देश्य की समानता को हम देख चुके हैं। अतः ध्यान या योग की शिक्षा प्राप्त करने के लिए साधक को गुरु की सेवा में रहना चाहिए।

ध्यान एवं योग की शिक्षा प्राप्त करनेवाले साधक को किस तरह का जीवन बिताना चाहिए। इसके संबंध में आगम में बताया गया है कि ध्यान की साधना को अल्प आहार करना चाहिए, अल्प पानी पीना चाहिए, अल्प बोलना चाहिए और सुव्रत, क्षमाशील, शान्त और दमितेन्द्रिय होना चाहिए। अधिक भोजन करने से आलस्य अधिक आता है और उसका अधिकांश समय पदार्थों को लाने एवं खाने में ही बीतता है। इसलिए साधक को अधिक आहार नहीं करना चाहिए और पदार्थों में आसक्त न होकर विवेकपूर्वक साधना में संलग्न रहना चाहिए।[3]

(१) वसे गुरुकुले निच्चं जोगवं उवहाणवं।
पियंकरे पियंवाई से सिक्खं लद्धुमरिहइ ॥ उत्तराध्ययन ११, १४

(२) स मुनिः शिक्षां लब्धुमर्हति शिक्षायै योग्यो भवति। स इति क? यो गुरुकुले नित्यं वसेत्, गुरोः पूज्यस्य विद्यादीक्षादायकस्य या कुले गच्छे समुदाये वा यावज्जीवं तिष्ठत् पुनर्यो मुनिः योगवान् योगो धर्मव्यापारः स विद्यते यस्य स योगवान् अथवा योगोऽष्टांगलक्षणस्तद्वानित्यर्थः। पुनर्य साधु उपधानवान् उपधानम् अंगोपांगादीनां सिद्धान्तानां पठनाराधनार्थम् आचाम्लोपवास निर्विकृत्यादि लक्षणं तपो वर्तते स विद्यते यस्य स उपधानवान् सिद्धान्ताराधनतपोयुक्त इत्यर्थः। पुनर्यः साधुः प्रियकरः आचार्यादीनां हितकारकः पुनर्यः प्रियवादी प्रियभाषी एभिर्लक्षणैर्युक्तो मुनिः शिक्षां प्राप्तुं योग्यो भवति। —उत्तराध्ययन वृत्ति ११ १४

(३) अप्पपिण्डासि पाणासि अप्पं भासेज्ज सुव्वए।
खन्तेऽभिनिव्वुडे दन्ते वीयगिद्धी सया जए॥
झाणं जोगं समाहट्टु कायं विउसेज्ज सव्वसो।
तितिक्खं परमं नच्चा आमोक्खाए परिव्वएज्जासि॥
सूत्रकृतांग सूत्र १ ८ २५, २६

इसके पश्चात् उसे अपनी वृत्तियाँ एक पदार्थ पर केन्द्रित करनी चाहिये। ध्यान-साधना के लिए बताया गया है कि साधक को अपनी दृष्टि एवं सब ओर से हटाकर एक पुद्गल पर रखनी चाहिए। साधक को जिस पदार्थ या तत्त्व का ध्यान (चिन्तन) करना है उसे उस समय अपना चित्त, मन लेश्या, अध्यवसाय, तीव्र अध्यवसाय और उपयोग उसमें लगा देना चाहिए। अपने मन, वचन और काय योग को उसको अर्पण कर देना चाहिए। उसी भावना से भावित हो और उसका मन उस चिन्त्य पदार्थ के अतिरिक्त अन्यत्र न जाना चाहिए।[1] कहने का तात्पर्य यह है कि साधक को उस समय तद्रूप बन जाना चाहिए। जैसे पानी में रंग मिलाने पर नमक एवं दूध में डाली हुई मिश्री तद्रूप हो जाती है, उसी तरह साधक को भी तद्रूप हो जाना चाहिए। जैसे अरिहन्त का ध्यान करते समय समस्त विषय विकारों एवं राग-द्वेष से ऊपर उठकर तद्रूप होने का प्रयत्न करना चाहिए और तद्रूप होकर चिन्तन (ध्यान) करनेवाले साधक को उस समय के लिए निश्चय नय से अरिहन्त भी कह सकते हैं। क्योंकि वह ध्यान या चिन्तन के समय तक तद्रूप बनकर चिन्तन कर रहा है।

इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए साधक को अपनी आत्मा को निर्मल बनाना चाहिए। शुद्ध आत्मा ही पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को देखने में समर्थ होती है। इसलिए आगम में कहा गया है कि आत्मा को आत्मा के द्वारा जाने। इसका तात्पर्य यह है कि ज्ञानात्मा से द्रव्य आदि आत्माओं को जाने। ज्ञान की विशुद्धता ध्यान एवं व्युत्सर्ग तप पर आधारित है। अतः इस विषय की जानकारी करने के लिए जिज्ञासुओं को समवायांग सूत्र का १० वां समवाय, दशाश्रुतस्कंध सूत्र की पांचवीं चित्त-समाधि दशा, भगवती सूत्र का २५ वां शतक (तप प्रकरण) स्थानांग सूत्र के ४ स्थान में चार प्रकार के ध्यान का वर्णन, उववाई सूत्र में तप का वर्णन और सूत्र कृतांग सूत्र के दसवें समाधि अध्ययन का अनुशीलन-परिशीलन करना चाहिए।

इस ध्यान-साधना से आत्मा में ज्ञान का विकास होता है और साधक ज्ञानावरण कर्म को क्षय करके सर्वज्ञ पद को प्राप्त कर लेता है। इसके लिए आगम में बताया गया है कि साधक किन साधनों से केवल ज्ञान पा सकता है और किन साधनों से नहीं पा सकता। केवलज्ञान प्राप्त कर सकने या न पा सकने के आगम में चार कारण बताए गए हैं जो साधक (१) बार-बार स्त्री कथा,

(१) जे इमे समणे वा समणी वा सावओ वा सावियाओ वा तच्चित्ते, तम्मणे, तल्लेसे, तदज्झवसिए, तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते, तदप्पियकरणे, तब्भावणाभाविए अण्णत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे उभओकालं आवस्सय करेइ, सेत्तं लोगुत्तरियं भावावस्सयं। अनुयोग द्वार सूत्र (भावावश्यक प्रकरण) यही पाठ भगवती १, ७ में आता है।

भक्त कथा देश कथा और राज कथा करता है (२) विवेकपूर्वक ध्यान एवं व्युत्सर्ग तप की साधना नहीं करता (३) रात्रि के प्रथम एवं अंतिम प्रहर में धर्म जागरण नहीं करता और (४) प्रासुक, एषणीय अल्प मात्रा के एवं सामुदायिक भिक्षा की गवेषणा नहीं करता वह केवलज्ञान को नहीं पा सकता। इसके विपरीत जो साधक (१) बार-बार स्त्री आदि की कथा नहीं करता (२) विवेकपूर्वक व्युत्सर्ग तप की साधना करता है, (३) रात्रि के प्रथम एवं अंतिम प्रहर में धर्म जागरण करता है और (४) प्रासुक एषणीय स्वल्प एवं सामुदायिक वृत्ति की गवेषणा करता है वह केवलज्ञान को प्राप्त कर सकता है।[1]

इससे यह स्पष्ट हो गया कि आत्मा को निष्कर्म बनाने के लिए संवर और तप-ध्यान या योग साधना की महती आवश्यकता है। इससे योगों की प्रवृत्तियों का निरोध होता है विकारों का नाश होता है जिससे आत्मा में एकाग्रता एवं स्थिरता में अभिवृद्धि होती है और धीरे-धीरे आत्मा कर्म-बन्धन से मुक्त होते-होते एक दिन सर्वथा उन्मुक्त हो जाती है।[2]

---

(१) चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अस्सिं समयंसि अइसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउ कामे वि णो समुप्पज्जेज्जा तं अभिक्खणं २ इत्थिकहं भत्तकहं देसकहं, रायकहं कहेता भवइ विवेगेण विउस्सग्गेणं णो सम्ममप्पाणंभावेत्ता भवइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि णो धम्म जागरियं जागरित्ता भवइ फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स णो सम्म गवेसइत्ता भवइ इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा जाव णो समुप्पज्जेज्जा। चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अइसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउ कामे समुप्पज्जेज्जा तंजहा इत्थिकहं भत्तकहं देसकहं रायकहं णो कहेत्ता भवइ विवेगेण विउस्सग्गेणं सम्ममप्पाणं भावेत्ता भवइ, पुव्वरत्तावरत्त कालसमयंसि धम्मजागरियं जागरित्ता भवइ फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स सम्म गवेसइत्ता भवइ इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा जाव समुप्पज्जेज्जा। —स्थानांग सूत्र स्थान ४ उद्देशा २

(२) इस विषय के जिज्ञासुओं को उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९ में वर्णित मन वचन और काय गुप्ति तथा मन समाधारणा वचन समाधारणा एवं काय समाधारणा का अध्ययन करना चाहिए।

इसके सिवाय ज्ञानार्णव एवं योग शास्त्र (आचार्य हेमचन्द्र तथा योग शतक (आचार्य हरिभद्र) का अनुशीलन करना चाहिए।



सम्यग् दृष्टि, सम्यग् दर्शन और उसकी साधना

लेखकः– पं मुनि श्री श्रीमल्लजी महाराज

संस्कृति का आविष्कार क्यों ?

धर्म, दर्शन और संस्कृति का आविष्कार मनुष्य ने मनुष्य के लिए किया है। भारतीय साधना में जीवन के प्रत्येक अनुष्ठान का केन्द्र–बिन्दु मनुष्य है। धर्म, दर्शन तथा संस्कृति के क्षेत्र में यही प्रयोग आज महत्त्वपूर्ण है, जिसका इष्टदेवता अथवा उपास्य देव मनुष्य है। जिस धर्म–क्रिया का फल साक्षात् इहलोक के मानव जीवन के लिए न हो– जो मनुष्य-जीवन की उपेक्षा करके स्वर्गवासी देवो के जीवन की अभिलाषा करता हो, वह विचार न तो धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के अनुकूल है और न आधुनिक जीवन–पद्धति के अनुरूप ही। विज्ञान, कला, साहित्य और राजनय सब की उपयोगिता की एकमात्र कसौटी मानव का प्रत्यक्ष लाभ और प्रत्यक्ष जीवन है। आज मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विचारो की हल–चल मनुष्य के इसी रूप को पकडने के प्रयत्न में है। जीवन के इस स्वस्थ दृष्टि-कोण से जहाँ एक ओर मानव की प्रतिष्ठा बढी है, वहाँ दूसरी ओर स्वर्ग की ओर उडनेवाले मनुष्य के विचारो ने धरती की कुशल–मगल पूछने का नया पाठ भी पढा है, और यह एक बडी बात है, महान् परिवर्तन है।

मनुष्य महनीय है ?

आज के इस जाने–पहिचाने विश्व के समग्र विचारो का मध्य विन्दु मानव के अतिरिक्त अन्य कुछ नही। विश्व क्षितिज का प्रत्येक नया ग्रह, मानव रूपी मध्य केन्द्र के चारो ओर ही मँडराता है, उसकी गति–विधि का मूल आधार है–"मनुष्य" जो मनुष्य इतना महनीय है, जो विश्व की परिधि का केन्द्र है। वह यथार्थ में है क्या ? क्या हम उसे मिट्टी, पानी, आग और हवा का एक विलक्षण संयोग मात्र मान ले ? क्या वह जल में से ही उत्पन्न होनेवाला और जल में ही विलीन हो जानेवाला एक नगण्य जल बुद–बुद मात्र कहा जा सकता है ? नही, कदापि नहीं। मनुष्य मात्र वही नही है, जो आपको और हमको दृष्टिगोचर हो रहा है। मनुष्य में कुछ ऐसा तत्त्व भी है जो होकर भी दृष्टिगोचर नही हो पा रहा है। केवल दो-चार स्थूल तत्त्वो के विचित्र सयोग मात्र से ही मनुष्य नही बन गया।

मर्त्य और अमृत का संयोग

आत्मवादी दर्शनों की विचार धारा के अनुसार मनुष्य में मर्त्य और अमृत का सुंदर संयोग है। उसमें कुछ ऐसा है, जो बार बार बनता है, बिगड़ता है, सड़ता है और मिटता है। परन्तु साथ ही उसमें कुछ ऐसा भी है, जो न जन्मता है न मरता है न वृद्धियाता है और न कभी गलता-सड़ता ही है;—"वह चिरंतन सुन्दर है"। मनुष्य में देह मर्त्य है और आत्मा अमृत। उसके मर्त्य अंश उसको पार्थिव जगत के साथ बांध हुए हैं। किन्तु मनुष्य के भीतर ही उसका दिव्य अंश भी है। भारतीय दर्शन का यह कथन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है कि—*जब तक मर्त्य और अमृत अंशों को ठीक से न समझा जायगा और उनका ठीक से विकास न किया जायगा तब तक मनुष्य अतृप्त और अपूर्ण ही रहेगा।*

भोग-दृष्टि

भोगवादी मनुष्य केवल अपने भौतिक रूप को ही जानता और पहिचानता है। शरीर का सुख, उसका सुख है। शरीर की पीड़ा उसकी पीड़ा है शारीरिक ह्रास उसका ह्रास है। शरीर का विकास उसका विकास है। वह मानता है कि शरीर सुंदर है तो वह सुन्दर है। शरीर विकृत है तो वह विकृत है। भोगवादी मात्र भोग के जाल में आबद्ध रहता है। पृथ्वी जल अग्नि और वायु—ये सब मेरे हैं और मैं उनका हूँ। उक्त पदार्थों का संयोग मेरा अस्तित्व और उनका वियोग मेरा नाश है। मेरा अभाव है, मेरी असत्ता है। भोगवादी अमृत अंश का निषेध करता है और मर्त्य अंश को स्वीकार करता है। भोग विलास सुख और काम ये ही हैं—उसके जीवन के ध्येय बिन्दु। इन की प्राप्ति और इनके उपभोग में ही वह अपने जीवन की सार्थकता समझता है अपने को कृत-कृत्य मानता है।

आत्म-दृष्टि—आत्म वादी मनुष्य शरीर की सत्ता का तो निषेध नहीं करता परन्तु उसकी विवेक दृष्टि शरीर की दीवार को चीरकर अन्त स्थित दिव्य अंश के साक्षात्कार के लिए भी उत्कण्ठित रहती है। आत्म वादी मानव शरीर में स्थित ज्योतिर्मय, एवं शुभ्र[1] चिन्मय तत्त्वको पाने के लिए साधना में रत रहता है। दर्शन और धर्म की मूल भित्ति आत्मा है। यदि आत्मा है तो वह है नहीं तो नहीं। यह स्वस्थ दृष्टिकोण है—आत्म वादी मनुष्य का। भोग विलास और काम—उसके जीवन में रहें, यह बात अलग है परन्तु इनकी प्राप्ति और इनका उपभोग उसके जीवन का ध्येय नहीं होता। किंतु भोग से योग की ओर बढ़ते जाना उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य होता है। वह सदा प्रकार

---

[1]अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रः मुण्डकोपनिषद् ३—५

से [1]प्रकाश की ओर बढ़ने में विश्वास रखता है। आत्मवादी देह की उपेक्षा नहीं करता किन्तु देह-निरपेक्ष आत्मा की उपासना में ही उसकी अपेक्षा रहती है। शरीर को मारना नहीं, साधना है। [2]शरीर हमारी धर्म-साधना का मुख्य अंग है। शरीर के बिना केवल अशरीरी धर्म कैसे करेगा?

सम्यक्त्व रत्न:—श्रमण साहित्य में—"भोगवादी को मिथ्यादृष्टि और आत्मवादी को सम्यग्दृष्टि कहा गया है"। श्रमण-धर्म, श्रमण-दर्शन और श्रमण संस्कृति का मूल है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्दृष्टित्व तथा सम्यक्त्व—श्रमण विचार धारा [3]सम्यक्त्वमूलक है। धर्म, दर्शन और संस्कृति का मूल यहाँ पर सम्यक्त्व माना गया है। सम्यक्त्व है तो सब कुछ है, नहीं तो कुछ नहीं। श्रावक, श्रावक क्यों है? श्रमण श्रमण क्यों है? क्योंकि उसके पास सम्यक्त्व रत्न है। बस इसीलिए तो?

लोक का सार सत्य सत्यदृष्टि, सम्यग्दृष्टि, और सम्यक्त्व—ये तीनों पर्यायवाची शब्द हैं। इन तीनों को एक शब्द में ही कहना हो, तो "विवेकदृष्टि" रूप में कह सकते हैं, आत्मवादी की सब से बड़ी विशेषता है,—सत्य की उपासना, सत्य की साधना और सत्य की आराधना। सत्य उसके जीवन का मूल मंत्र होता है। यदि वह सत्य, अपने शास्त्रों में है, तो भी अपना है, और यदि पर के शास्त्रों में है, तो भी अपना है। सत्य सत्य है। उसमें स्वत्व-परत्व की कल्पना और भावना ही पक्षपात, मत का मोह मिथ्यात्व है, सब से भयंकर पाप है। जिस किसी भी आत्मवादी ने जब कभी भी आत्मा के शुद्ध एवं निर्मल स्वरूप को पाया है तो वह [4]सत्य से ही। श्रमण-साहित्य तो इस से भी बढ़कर कहता है कि "सम्पूर्ण लोक का [5]सार क्या है? सत्य! सत्य!! सत्य!!! फिर पूछा गया सत्य क्या है? उत्तर में बहुत ही गहरा रहस्य प्रकट किया गया—[6]सत्य स्वयं भगवान् है, और भगवान् है तो सत्य है।

एक दार्शनिक से पूछा गया—आखिर यह सत्य है क्या? आचार्य ने विश्वास से कहा—"जो जिन भगवान् ने कहा है, वह सत्य है। क्योंकि जो व्यक्तिविशेष क्षीणदोष है वह यथार्थ ज्ञाता एवं यथार्थ वक्ता है, उस से जो कुछ भी प्राप्त हुआ वही सत्य है। वह व्यक्तिविशेष फिर भले ही किसी भी देश का और किसी भी काल का क्यों न हो,? किन्तु श्रमण-संस्कृति केवल सत्य में आस्था

१ आराध तमसो ज्योति—वेद। २ शरीरं धर्मसाधनम्—कालिदास ३ दंसणमूला धम्मो।
४ सत्येन लभ्य. तप आत्मा मुण्डकोपनिषद। ५ सच्चं लोगम्मि सारभूयं प्रश्न व्याकरण
६ तं सच्चं खु भगवं प्रश्न व्याकरण सूत्र

मात्र स ही सन्तुष्ट नही। वह इससे आग बढकर कहती ह– 'सत्य का आचरण भी करो'

क्षुरस्य धारा—आत्म वादी सत्यदर्शी ही होता है। वह जहां कहीं भी और जिस किसी भी स्थिति में रहता है वहां सत्य की खोज करता रहता है, और "जो सत्य की खोज में रहता ह उसे किसी एक देश में आबद्ध नही होना चाहिए'। सत्य श्रेष्ठ ह परन्तु वह सत्य सरल होना चाहिए— 'सरल सत्य ससार की सर्वोच्च वस्तुओं में से एक ह'। सत्यवादी मनुष्य का यह दृष्टिकोण होता ह कि 'जब तक जीवन ह सत्य बोलते रहो और शतान (असत्य) को पराजित करते रहो' । अर्थात असत्य को सत्य से जीतते रहो। आखिर— विजय सत्य की होगी, असत्य असत्य ही पराजित होगा'। इसमें जरा भी सदेह नही। सत्य अपन आप म महान ह परन्तु उसकी साधना उतनी सरल नही ह जितनी समझी जाती रही ह। वह तो 'क्षुरस्य धारा' ह। सत्य का आचरण कांटो पर चलन जसा है।

सत्य की कसौटी सत्य के इसी पावन स्वरूप को श्रमण सस्कृति के जोतिधर आचार्यों म सम्यक्त्व, सम्यग् दृष्टि, और सत्य दृष्टि शब्दों से अभिव्यक्त किया ह। सम्यक्त्व आत्मा का निजगुण है निज स्वरूप है। सत्य दृष्टि ह तो श्रावक श्रावक ह और श्रमण श्रमण ह। श्रावक के अणुव्रत और श्रमण के *महाव्रत सम्यक्त्वमूलक होते हैं। यदि सम्यक्त्व है तो ज्ञान भी सम्यग् ज्ञान* ह और चारित्र भी सम्यक चारित्र ह। श्रमण दर्शन में जीव-जीवन और जगत की प्रत्यक प्रक्रिया एव प्रयोग को इसी सम्यक्त्व किंवा सत्यदृष्टि की कसौटी पर कस कर देखा और परखा जाता ह।

जीवन विकास के साधन— सत्यशोधक साधक जीव और जगत के स्वरूप को समझन का प्रयत्न करता है। मनुष्य ज्ञान से पदार्थों को जानता ह दर्शन से श्रद्धा करता ह चारित्र से उपादेय को ग्रहण करता ह और तप से अपन को शुद्ध बनाता[१] ह जीवन विकास के ये वे अन्तरग साधन ह, जो भगवान महावीर न अपनी अन्तिम वाणी में बताए ह। ज्ञान जीवन में बडी शक्ति है वह मानवता का सार ह परन्तु ज्ञान का भी सार ह सम्यक्त्व आत्म श्रध्दा आत्मनिष्ठा। जिसन जीवन में सम्यक्त्व नहीं पाया उसन ज्ञान और चारित्र भी नही पाया— नही पा सकता। क्योंकि सम्यक्त्वहीन का ज्ञान ज्ञान

१ नाणन जाणइ भावे दसणण य सद्दहे। चरित्तण निगिण्हाइ तवेण परिसुज्झइ॥
उत्तराध्ययन २८। ३५

नहीं, वह अज्ञान कहा जाता[1] है। सम्यक्त्व-हीन का चारित्र, चारित्र नहीं,—कुचारित्र कहा जाता[2] है। सम्यक्त्व रूप धर्म के प्रभाव से नीच से नीच मनुष्य भी देव हो जाता है, और मिथ्यात्व रूपी पाप से ऊंच से ऊँच मनुष्य भी हीन और तुच्छ हो जाता है।[3] श्रमण-साहित्य के अतिरिक्त वेदानुगामी साहित्य में भी सम्यग् दर्शन की महिमा कम नहीं है। ऋत, सत्य, समत्व आदि शब्दों से उक्त परम तत्त्व को स्वीकृत किया गया है। वैसे तो सम्यग्दर्शन शब्द भी वहाँ उपलब्ध है, परन्तु यत्र तत्र बहुत कम। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—"अर्जुन! जीवन को शांत एवं पूत बनाने के लिए समत्व को प्राप्त करने का प्रयत्न करो। समत्व सब से बडा योग है—"समत्व योग उच्यते" मनुसंहिता में मनु ने भी उक्त परम तत्त्व को स्वीकार किया है। वे कहते हैं "जो सम्यग् दर्शन से सपन्न है, वह कर्म से बद्ध नहीं होता। ससार में परिभ्रमण वही करता है, जो सम्यग्दर्शनविहीन है।[4]

मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि—मिथ्यादृष्टि ससार के काम—भोगों में लिप्त रहकर-ससक्त होकर अपने सच्चे स्वरूप को विस्मृत कर देता है। स्वादुभोजन मधुर पेय, सुन्दर वदन, चमक-दमक के अलकार और भव्य भवन इनमें मुग्ध होकर, वह अपने शाश्वत स्वरूप को भूल बैठता है। जब कि सम्यग्दृष्टि ससार में रहकर भी ससार के हास—विलास से ऊँचा, बहुत ऊँचा रहता है। जल में रहकर भी कमलपत्रवत् जल से ऊँचा रहता है। सम्यग्दर्शन सपन्न मनुष्य में यही कला होती है। ससार है, ससार के पदार्थ भी है, पर वह समझता है,—ये अन्य हैं, मैं अन्य हूँ। मैं चेता हूँ, ये जड हैं। मैं नेता हूँ, ये जड हैं। जिसकी मति सरल है, उसकी गति भी सरल है, उसका शील भी सरल है। क्योंकि सरलात्मा, सब को सरल ही समझता है।

मनुष्य की दृष्टि के अनुसार उसकी सृष्टि बनती है और बिगडती है। दिशा के अनुसार उसकी दशा सुधरती और बिगडती है। मैं सत् हूँ, मेरी सत्ता है, इतना तो मिथ्यादृष्टि भी समझ सकता है, परन्तु मैं चिन्मय हूँ, मैं आनन्द-

(१) नादसणिस्स नाण

(२) नत्थि चरित्त सम्मत्तविहूण — उत्तराध्ययन २८/३०

(३) सम्यग्दर्शन सम्पन्नमपि मातगदेहजम्
देवादेव विदुर्भस्मगूढागारान्तरोजसम् — उत्तराध्ययन २८/२९ — समन्त भद्र

(४) सम्यक्दर्शन सम्पन्न कर्मभिर्न निबद्धयते
दर्शनेन विहीनस्तु ससार प्रतिपद्यते — मनु संहिता ६–७४

मय हूँ यह अनुभूति सम्यग्दृष्टि को तो होती ह पर मिथ्यादृष्टि को कभी नहीं होती। सत्ता तो जड में भी होती है, किन्तु उसमें ज्ञान और आनन्द नहीं होता। सत, चित और आनन्द आत्मा मयात्मक ह। यह दिव्यदृष्टि जिसको मिल गई, वस्तुत वही सम्यग्दृष्टि ह। अब सवाल यह रह जाता है कि सम्यग्दृष्टि का व्यवहार कसा होता ह? उसका आचार कैसा होता ह? विचार कसा होता है? वह कैसा सोचता ह? और क्या करता है?

प्रशम—सम्यग्दृष्टि विजेता होता है। किसका विजेता? विकारों का। विकार को विचार में बदलने की कला इसके पास में होती ह। विकार चार हैं—क्रोध मान माया और लोभ। सम्यग्दृष्टि उपशम से क्रोध को विनय से मान को सरलता से वक्रता (माया) को और सतोष से लोभ को जीतने का निरन्तर प्रयत्न करता रहता ह। क्योकि क्रोध प्रम का नाश करता ह। मान विनम्रता का विनाश करता ह। माया, ऋजुता को क्षीण कर डालती है। लोभ आत्मा के समग्र सद्गुणों का घात करता है। उक्त चार विकार (कषाय) यदि जीवन भर स्थिर रह जाए अथवा यदि वे वर्ष भर भी जीवन के साथ जुड़े हुए रह जाए तो वे आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात कर डाल सकते ह। अत इन पर विजय पाना अत्यन्त आवश्यक ह। शास्त्र की भाषा में उक्त विकारों की विजय को प्रशम कहते ह अथवा उपशम कहते हैं। श्रमण धम की आध्यात्म साधना का यह सार है। शम—का प्राकृत भाषा में सम हो जाता है, जिस का अथ होगा— प्राणिमात्र के प्रति समता भाव। समता और समत्व का अथ एक ही है। समत्व की साधना से जीवन सुन्दर मधुर तथा पावन बनता ह। समत्व की साधना बहुत बडी साधना ह।

सवेग—सम्यग्दृष्टि में मोक्षाभिलाषा निरन्तर बनी रहती ह। मोक्ष पाना उसके जीवन का लक्ष्य हो जाता है। ध्येय जितना ऊँचा जितना दूर और जितना महान होगा साधक उतनी ही तीव्रता के साथ उस ओर बढने का प्रयत्न करता ह। ससार की ओर न बढकर मोक्ष की ओर गतिशील होना—सवेग कहा जाता ह। वेग का अर्थ ह गति यदि वह नीचे की ओर है तो वेग है और यदि वह ऊपर की ओर ह तो सवेग है। सम्यग्दृष्टि मात्र वेग की नहीं सवेग की साधना करता ह वह ससार से पराङ्मुख होकर मोक्ष के उन्मुख होता है। उक्त ध्येय निष्ठा को ही शास्त्र में सवेग कहा गया ह।

निर्वेद : सम्यग्दृष्टि का जीवन वैराग्यमय होता है। भोग, विलास और राग में उसकी अभिरुचि नहीं होती। उसका जीवन अनासक्त होता है आसक्त नहीं। सम्यग्दृष्टि इस लोक संबंधी और परलोक संबंधी किसी भी प्रकार के भोगों की अभिलाषा नहीं करता। वह अपनी शक्ति के अनुसार त्याग से करता है, भोग से नहीं। आगम की भाषा में कहें तो उसको भव का भेद चाहते हैं। वह भव (संसार) नहीं है, वह व्यक्ति निर्वेद होता है। निर्वेद अर्थात् वैराग्य-शील जीवन।

अनुकम्पा—सम्यग्दृष्टि कोमल हृदय का होता है। दूसरे की पीड़ा और कष्ट से उसका मन स्वयं भी द्रवित हो उठता है। अनुकम्पा, करुणा एवं दया जिसमें नहीं, वह सम्यग्दृष्टि हो ही कैसे सकता है? सम्यग्दृष्टि प्राणिमात्र को आत्मवत् समझता है। प्रत्येक जीव में आत्मा का अनुभव सम्यग्दृष्टि करता है, और जहाँ आत्मतत्त्व की अनुभूति होती है, वहाँ दूसरों का सुख-दुःख अपना सुख-दुःख हो जाता है। अतः किसी भी प्राणी को कष्ट में देखकर, उसके प्रति हृदय में जो संवेदन होता है, और उस संवेदन को लेकर दुःखी व्यक्ति के कष्ट को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है—यह अनुकम्पा है। अनुकम्पा के बिना जीवन संस्कृत कदापि सम्भव नहीं है।

आस्तिक्य—सम्यग्दृष्टि आस्तिक होता है। आत्मा, कर्म, लोक और परलोक में उसकी आस्था होती है। आत्म-निष्ठा, आत्म-श्रद्धा तथा आत्म-विश्वास को आस्तिक्य कहा जाता है। मैं चेतन हूँ, जड़ नहीं। मैं आत्मरूप हूँ, पुद्गल नहीं। मैं नित्य हूँ, मैं शाश्वत हूँ, एवं मैं चिन्मय हूँ—इस प्रकार के विश्वास को आस्तिकता कहते हैं। जो आत्मवादी होगा, वह कर्म-वादी, तथा परलोक-वादी भी अवश्य ही होगा।

इस प्रकार प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, और आस्तिक्य—ये पाँच लक्षण सम्यग्दृष्टि के हैं। ये सद्गुण सम्यग्दृष्टि में अवश्य होने चाहिए। इन गुणों की अभिव्यक्ति से सम्यग्दृष्टि की पहचान हो जाती है।

सम्यक्त्व के दूषण—सम्यग्दृष्टि साधक सम्यक्त्व की रक्षा के लिए सतत जागरूक रहता है। क्योंकि, साधक जीवन का प्राण है। सम्यक्त्व एक रत्न है। उसको शुद्ध निर्मल और पवित्र रखना—यह साधक का परम कर्तव्य है। आगम में सम्यक्त्व के पाँच अतिचार—पाँच दोष बताए गए हैं। शंका,

कांक्षा विचिकित्सा, परपाखण्डस्तव और परपाखण्ड–परिचय। उक्त दोषों के सेवन न करने से सम्यक्त्व गुण निर्मल रहता है। सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए साधन एवं साधना में संलग्न करना—कांक्षा है। साधना करने से परलोक में सुख मिलेगा। यह मोक्षाभिलाषा कांक्षा। मेरी साधना का जप तप का, मुझ कोई फल मिलेगा या नहीं—इस प्रकार के संदेह को—फल संदेह को विचिकित्सा कहते है। धर्म–विहीन एवं शिथिल आचारवाले व्यक्ति की प्रशंसा करना प्रशंसा करना, एवं परिचय करना— परपाखण्डस्तव तथा परपाखण्ड परिचय कहलाता है। इन्द्रिय जन्य सुख पराश्रित होने से पर कहे जाते है उन सुखों की आकांक्षा लेकर व्रत–साधना करनेवाले व्यक्ति को 'पर पाखण्डी' कहा जाता है। पाखण्ड शब्द का अर्थ 'व्रत' भी किया जाता है। पर पाखण्ड इन्द्रियजन्य सुखों तक ही सीमित रहने वाला,—मिथ्या दृष्टि है अतः उसका स्तव एवं परिचय पतन का कारण होता है।

महतो महीयान सत्य की साधना सब से बड़ी साधना है वह 'महतो महीयान' है। सत्य पथ पर चलनेवाला मृत्यु को भी जीत लेता है, वह आत्मा से परमात्मा बन जाता है। सत्य की पूर्णता का नाम ही तो भगवान् है। सम्यक्त्व साधना में सफल व्यक्ति ही व्रत–साधना करके अजर अमर एवं शाश्वतसिद्धि पद को प्राप्त करने में समर्थ होता है। सत्य अनन्त है, व्यक्ति सीमित है। परन्तु जब व्यक्ति सीमाओं को क्षुद्रताओं को पार करके ससीम से असीम बन जाता है तब उसका सत्य भी अनन्त हो जाता है। अनन्त में ही अनन्त गुण की अभिव्यक्ति हो सकती है, उस अनन्त सत्य को नमस्कार है उस अनन्त सत्य के साधक सम्यक्त्वी को नमस्कार है।

•



— अन्तर का आलोक —

मन्त्री मुनि, पंडित प्रवर श्रद्धेय श्री पुष्कर मुनिजी म०



जीव यद्यपि अनन्त गुणो की बहुमूल्य समृद्धि से परिपूर्ण है, तथापि उसमें चेतना समृद्धि ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, चेतना की अनिर्वचनीय चिनगारी से प्रस्फुटित ज्ञानालोक पर ही अन्तर्जगत् और बहिर्जगत् के अस्तित्व की अनुभूति अवलम्बित है।

दिवाकर की प्रखर रश्मियाँ जब अस्ताचल के अंक में विलीन होकर विश्रान्ति करती है और यह जगत् सघन अन्धकार के कृष्णवर्ण आवरण में अन्तर्हित हो जाता है तो प्रतीत होता है, मानो एक प्रकार की सर्वव्यापी शून्यता ने अखिल लोक को निगल लिया है। अशेष निःशेष में समा गया है। सर्वत्र नीरवता, जड़ता सुषुप्ति और अनस्तित्व का एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित हो जाता है।

किन्तु वही दिवाकर जब उदयाचल की ओट में उस शून्यता—अपनी करामात का अवलोकन करने के लिए झांकता है तो जगत् में जागृति के प्राणो का अभिनव स्पन्दन हो उठता है। सूर्य की स्वर्णरश्मियों का संस्पर्श पाकर सृष्टि पुनः प्रकाशमान हो उठती है, उसकी विविधता जैसे लौट आई हो।

यह उस प्रकाश का महत्त्व है जिसे हम बाह्य, जड़ या पौद्गलिक कहते है। इस प्रकाश के प्रकाश में देखने पर शायद आन्तरिक आत्मिक प्रकाश की महिमा का किञ्चित् आकलन किया जा सकता है। ज्ञान के आलोक में ही हम अपने एवं बाह्य जगत् के अस्तित्व को पहचान पाते है। ज्ञान है तो सब कुछ है, नही है तो कुछ भी नही है।

ज्ञान ज्ञेय का सम्बन्ध—

इस कथन का आशय यह न समझिए कि ज्ञेय की सत्ता ज्ञान पर निर्भर है। ज्ञेय अपने स्वरूप में और ज्ञान अपने स्वरूप में स्थित है। एक की सत्ता दूसरे पर अवलम्बित नही है। निबिड़ अन्धकार की स्थिति में भी पदार्थराशि का अभाव नही हो जाता। नेत्रहीन पुरुष भले पदार्थों का अवलोकन न कर सके,

तथापि उनका अस्तित्व तो अक्षुण्ण ही है। हम न जानें या अन्यथा जानें, पदार्थ अपने स्वरूप में अवस्थित और अचल ही रहता है। तथापि पदार्थ की अभिव्यक्ति एव अनुभूति ज्ञान के ही अधीन है। हमें प्रत्येक पदार्थ की सत्ता का आभास प्रतिभास ज्ञान के बिना नही होता। ज्ञान के अभाव में वस्तु की सत्ता असत्ता से अधिक मूल्य नही रखती।

ज्ञान ज्ञाता का सम्बन्ध—

ज्ञान ही जड और जीव की विभाजक रेखा है इसी कारण महर्षि कहते है जीवो उवओगमओ' अर्थात जीव उपयोगमय है। ज्ञान-दर्शन स्वरूप है। ज्ञान गुण की बदौलत ही आत्मा इतर द्रव्यों से भिन्न है। आत्मा ज्ञाता है इतर द्रव्य ज्ञेय है।

आत्मा और ज्ञान में गुण-गुणी सम्बन्ध है। गुणी आत्मा और गुण ज्ञान है किन्तु जैन दर्शन कणाद की तरह गुण-गुणी में एकान्त पार्थक्य स्वीकार नही करता। और न एकान्त अभेद ही। एकान्त पार्थक्य मानने पर दोनों का सम्बन्ध घटित नही होता और एकान्त अभेद मानने से दोनों में से किसी एक की ही सत्ता रह सकती है। गुणी माना जाय या गुण ही। मगर ऐसा मानने में ही समस्या का समाधान नहीं होता। जगत में गुण के अभाव में गुणी का और गुणी के अभाव में गुण का अस्तित्व नही देखा जाता।

विस्मय का विषय है कि कपिल जैसे दार्शनिक ज्ञान (बुद्धि) को जड प्रकृति का कार्य मानते है। उनकी यह मान्यता आत्मा के अस्तित्व का अपलाप करनेवाले चार्वाक दर्शन से मेल खाती है। चार्वाक चार भूतों के अतिरिक्त आत्म तत्त्व को स्वीकार नही करता किन्तु स्वसंवेदनसिद्ध चैतन्य से कैसे इन्कार किया जा सकता है? इस कारण चैतन्य को भूत मानने के लिए विवश है। मगर कपिल के सामने यह लाचारी नही थी। उन्होंने प्रकृति (जडतत्त्व) से सर्वथा पृथक पुरुष (आत्मा) तत्त्व स्वीकार किया है। फिर बुद्धि को पुरुष का धर्म न मानकर प्रकृति का कार्य स्वीकार करने का क्या रहस्य हो सकता है? सभवत आत्मा की कूटस्थ नित्यता की रक्षा करने के लिए ही उन्हें इस प्रकार की तर्क एव अनुभव से विरुद्ध कल्पना करनी पडी है।

कुछ भी हो निश्चित है कि ज्ञान न तो आत्मा से सर्वथा भिन्न या सर्वथा अभिन्न है और न जड का धर्म या कार्य है। उसका आत्मा के साथ गुण-गुणी

का भेदपरक सम्बन्ध होने पर भी वस्तुतः अभेद है। चेतना के बिना आत्मा की और आत्मा के बिना चेतना की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जैनागम का यह निर्णय असदिग्ध हो—

"जे आया से विण्णाया
जे विण्णाया से आया ॥

तो ज्ञान आत्मा का महत्व स्वभाव है। ज्ञान से ही आत्मा ज्योतिर्मय है। कहा है—

तमो धुनीते कुरुते प्रकाशं
शम विधत्ते विनिहन्ति कोपम्।
तनोति धर्मं विधुनोति पाप
ज्ञान न किं किं कुरुते नराणाम् ॥

सचमुच ज्ञान कल्पवृक्ष से भी बढ़कर अभीष्ट की सिद्धि करनेवाला है। कामधेनु के समान अमृत प्रदान करनेवाला है। कामकुम्भ ज्ञान के सामने तुच्छ है। यहाँ तक कि चिन्तामणि के साथ भी उसकी तुलना नहीं हो सकती है। अभीप्सित प्रदान करनेवाले इन सब दैवी पदार्थों का सामर्थ्य सासारिक विभूतियों तक ही सीमित है। आत्मिक वैभव तक इनकी पहुँच नहीं है। कल्पपादप आत्मा को भुलावे में डाल सकता है। कामधेनु कामना के कीचड़ में फँसा सकती है। कामकुम्भ कामभोग के असीम एवं अतल अम्भोनिधि में निमग्न कर सकता है और चिन्तामणि की चकाचौंध नेत्रों की विद्यमान विवेक ज्योति को भी विलुप्त कर सकती है। इनमें आत्मा को भ्रम के अन्धकार से उबारने की क्षमता नहीं। आन्तरिक आलोक की आभा उत्पन्न करना इनके वश की बात नहीं है। मगर ज्ञान! समग्र सृष्टि में कौनसा लौकिक और लोकोत्तर अभीष्ट है जो ज्ञान के द्वारा साध्य न हो? जिन प्राकृतिक शक्तियों के सामने किसी युग का मानव भयाकुल होकर नतमस्तक हो जाता था, दैन्य से अभिभूत होकर गिड़गिड़ाता था, और दैवी चमत्कार मानकर अनुनय–विनय करता था, विज्ञान की बदौलत आज वही शक्तियाँ मानव-जाति की क्रीत दासी बन गई हैं। वि-ज्ञान का सहारा पाकर मनुष्य आज विहगम से भी बढ़कर व्योम में स्वच्छन्द विचरण करता है, सागर के वक्षस्थल को विदीर्ण कर के यात्रा करता है। वि-ज्ञान ने जगत् के चिरपुरातन कलेवर में नूतनता के प्राण प्रतिष्ठित कर दिये हैं उसे नव्य–भव्य और कह सकते हैं कि दिव्य स्वरूप प्रदान किया है। सृष्टि का कोना–कोना ज्योतिर्मय हो उठना

है। जब बाह्य ज्ञान की इतनी क्षमता है तो आध्यात्मिक ज्ञान की क्षमता की समता कहाँ मिल सकती है? अतएव कवि ने यथार्थ ही कहा है—

ज्ञान न किं किं कुरुते नराणाम?

बाह्य-आन्तरिक प्रकाश—

ज्ञान अंधकार को, नष्ट करके चेतनमय प्रकाश की प्रभास्वर रश्मियाँ विकीर्ण करता है।

सूर्य और चन्द्र प्रकाश के पुञ्ज माने जाते हैं प्रदीप भी प्रकाश प्रदान करता है। विद्युत का प्रकाश भी अन्धकार का विनाशक है। परन्तु इस पुद्गलमय प्रकाश में और ज्ञान प्रकाश में महद् अन्तर है।

नयनहीन मानव को सूर्य, चन्द्र विद्युत बल्ब और सहस्रों प्रदीप भी मिलकर प्रकाश नहीं दे सकते क्योंकि उसे अपना चेतनमय प्रकाश प्राप्त नहीं है। अतएव स्पष्ट है कि पौद्गलिक प्रकाश आत्मिक प्रकाश के अभाव में निरुपयोगी है, पंगु है।

पुद्गलमय प्रकाश रूपवान् होने के कारण रूपवान् वस्तुओं को ही प्रकाशित कर सकता है। मगर सब रूपवान भी उसके दायरे में नहीं आते। इस लोकाकाश के प्रदेश-प्रदेश में अवगाढ अनन्त, अनन्त परमाणु और बहुत से स्कंध (परमाणु पिण्ड) भी ऐसे हैं जिन तक पुद्गलमय प्रकाश की पहुंच नहीं है। इसके अतिरिक्त जगत केवल पुद्गलों का ही प्रचय तो नहीं है। छह द्रव्यों में से पुद्गल एक है और पाँच द्रव्य उससे भिन्न हैं जिनमें न रूप है न रस है न गन्ध है न स्पर्श है। यह अरूपी द्रव्य आंशिक रूप से भी पौद्गलिक प्रकाश का गोचर नहीं है।

पौद्गलिक प्रकाश परावलम्बी और ससीम होने के साथ-साथ अस्थायी भी है। सूर्य सदा उदित नहीं रहता। चन्द्रमा की भी यही गति है। अन्यान्य प्रकाश भी इसी प्रकार के हैं किन्तु ज्ञान प्रकाश की बात निराली है वह न परावलम्बी है न उसकी कोई निर्धारित सीमा है। जब वह अपने शुद्ध स्वरूप में अभिव्यक्त होता है तो विश्व की समस्त भावराशि भले वह स्थूल हो या सूक्ष्म रूपी हो अथवा अरूपी जड हो या चेतन उसके द्वारा पूर्णरूपेण आलोकित हो उठती है।

जीव के समस्त दुःखों का मूल विषमभाव है। विषमभाव से आत्मा का समपरिणति भग्न हो जाती है और कषाय का दावानल सुलग उठता है किन्तु प्रश्न यह है कि विषमभाव का उद्गमस्थल क्या है? गंभीरतापूर्वक विचार

करनेपर ज्ञात होगा कि मूढ़ता ही विषमभाव की जननी है। जब मूढ़ता का अन्त और ज्ञान का उन्मेष होता है तो वस्तुस्वरूप को यथावस्थित रूप में समझना सम्भव हो जाता है और तब विषमभाव की भी इति हो जाती है। अतएव कहा गया है कि ज्ञान समभाव को जागृत करता है, और क्रोधादि कषायों का उन्मूलन कर देता है।

धर्म की आराधना का मूल आधार ज्ञान ही है। शास्त्र कहता है —

अन्नाणी किं काही
किं वा नाहीइ छेयपावग ॥

अज्ञान के तामस आवरण से आवृत बेचारा अज्ञानी पुण्य-पाप के पार्थक्य ज्ञान से भी अनभिज्ञ रहता है। वह पाप से पृथक् रहकर किस प्रकार पुण्य आचरण कर सकता है?

अमावास्या की निबड अन्धकारमयी रजनी में अरण्य में विचरण करनेवाला पथिक भटक जाता है। कुमार्ग पकड़कर किसी गहरे गर्त में गिरता है, या ठोकरें खाता है या कटीली झाड़ियों में उलझ जाता है। कभी-कभी वह ऐसी राह पकड़ लेता है जो उसे मंजिल तक पहुँचाने के बदले और अधिक दूरी पर ले जाती है। अज्ञानी मनुष्य की धर्माराधना की भी ऐसी ही स्थिति होती है।

कभी कभी अज्ञानी जीव भी कठिन तपश्चर्या करता है, देह-दमन करता है, मास-मास का उपवास करके काया को कृशतर कर लेता है, पचाग्नि तप कर विकारों को भस्म करने की धारणा करता है, परन्तु हन्त! उसका प्रयास ज्ञान के अभाव में निरर्थक ही सिद्ध होता है। यही नहीं, अग्निकाय का घोर आरंभ और कन्दमूलादि का भक्षण जैसी क्रियाएँ उसे विपरीत ही दिशा में ले जाती है। जिसे आत्मा-अनात्मा का विवेक नहीं, आस्रव-संवर की पहचान नहीं, बन्ध-निर्जरा का भान नहीं, उसकी साधना का पथ यदि विपरीत दिशागामी हो तो आश्चर्य ही क्या?

श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञान-अज्ञान का अन्तर समझाते हुए कहा है —

जे आसवा ते परिस्सवा
जे परिस्सवा ते आसवा ॥

आचाराग।

थोड़े से शब्दों में कितना विशाल आशय भर दिया गया है! इसी को कहते हैं— गागर में सागर भर देना।

बहुत बार अज्ञ और विज्ञ पुरुष की बाह्य क्रियाएँ ऊपर ऊपर से समान दृष्टि-गोचर होती हैं। परन्तु उनके आन्तरिक रूप और विपाक में आकाश-पाताल से कम अन्तर नहीं होता। अज्ञ पुरुष कर्मक्षयकारी क्रियाओं को भी कर्मबंध का हेतु बना लेता है जब कि ज्ञानी-पुरुष कर्मबन्ध के कारणों को कर्मक्षय का कारण बना लेता है। निष्कर्ष स्पष्ट है—ज्ञान ही निःश्रेयस् के पथ के पथिक के लिए प्रदीपालोक है और ज्ञान ही कल्मष की तिमिर-कालिमा को दूर कर सकता है। अतएव प्रत्येक मुमुक्षु के लिए अनिवार्य है कि जब वह साधना की बीहड़ पगडण्डी पर प्रस्थान करने को प्रस्तुत हो तो ज्ञान की मशाल अपने साथ रक्खे।

ज्ञान और सुख—

यद्यपि ज्ञान और सुख पृथक् आत्म-धर्म गिने गये हैं तथापि दोनों में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। ज्ञान की कृतार्थता सुख की सम्प्राप्ति में है और सुख संवेदना से शून्य नहीं हो सकता। जड़ पदार्थ ज्ञान-शून्य होने के कारण सुख से भी रहित है। सांसारिक सुख सातावेदन और दुःख असातावेदन कहलाता है। इसका आशय यह है कि हमारे सुख-दुःख एक विशिष्ट प्रकार की वेदना-अनुभूति ही हैं। ज्ञान और सुख का सम्बन्ध प्रकट करते हुए किसी ग्रन्थ ने कहा है—

'ज्ञान सुखों की खान'

मगर एक प्रश्न सामने आता है। एक व्यक्ति आनन्द के साथ अपना कालयापन कर रहा है। उसे समस्त सुख सामग्री प्राप्त है। उसके हृदय में किसी प्रकार का शल्य नहीं है। परदेश में बेटी है विपुल आय है। विनीत परिवार है। अकस्मात परदेश में स्थित उसके पुत्र के हृदय की गति बन्द हो जाती है और उसका प्राणान्त हो जाता है। डाक-तार कर्मचारियों की हड़ताल के कारण अव्यवस्था होने से पाँच दिन बाद उस व्यक्ति को अपने पुत्र की मृत्यु का पता चलता है।

जब तक उसे पुत्र की मृत्यु का ज्ञान नहीं था वह सुख चैन में था। ज्ञान होते ही उसका समग्र सुख सहस्रगुणित दुःख के रूप में परिणत हो गया। ऐसी स्थिति में ज्ञान को सुख की खान समझा जाय या दुःख की खान?

अज्ञानवादी इसी प्रकार के तर्क उपस्थित करके ज्ञान की हेयता और अज्ञान की उपादेयता सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। उनके मन्तव्य के अनुसार अज्ञान

ही श्रेयस्कर है। जिन जड़ पदार्थों में लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है वे सब प्रकार की दुःखानुभूति से बचे हुए हैं, उन्हें न चिन्ता है, न शोक है, न खेद है, न उद्वेग है, अपने स्वभाव में मस्त हैं। किन्तु अज्ञानवादी की यह तर्क वस्तुतः अज्ञानप्रसूत ही है।

एक व्यक्ति की मृत्यु का विभिन्न लोगों पर अलग-अलग असर होता है। गांधीजी ने भारतवर्ष के लिए क्या नहीं किया? स्वदेश की स्वाधीनता के लिए अपने सुखों का बलिदान किया। घोर से घोर यातनाएँ सहन की। उनकी समस्त शक्तियाँ स्वदेशवासियों के हित के निमित्त ही समर्पित रही। उनके मारे जाने का समाचार फैलते ही न केवल भारतवर्ष, वरन् संसार भर के विचारशील लोग शोक-सागर में निमग्न हो गये। परन्तु तब भी गोडसे जैसी विचारधारा के लोगों ने घी के दिये जलाए।

इन परस्पर विरुद्ध दिशागामी प्रभावों के रहस्य का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी घटना मनुष्यों की विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियों के कारण ही भिन्न-भिन्न प्रकार के असर पैदा करती है। घटना अपने आपमें कोई प्रभाव नहीं रखती। ऐसा होता तो एक घटना का प्रभाव सभी पर एक सा होता। पुत्र की मृत्यु का समाचार ज्ञात करके पिता को जो असीम दुःख-वेदना होती है, उसका प्रधान कारण, उसकी पुत्र के प्रति रागात्मक मनोवृत्ति है।

संसार में प्रतिदिन सहस्रों मानव काल की विकराल दाढ़ों में पिस रहे हैं। कौन किसके लिए मातम मनाने बैठता है। मगर जिसका जिसके प्रति अनुराग-मोह है, वही उसके लिए शोक का अनुभव करता है। अतएव स्पष्ट है कि दुःख और शोक मोहजनित है, ज्ञानजनित नहीं।

ज्ञान और भय—

भय के सम्बन्ध में भी यही समझना चाहिए। जब तक बगल में बैठे सर्प का पता नहीं चलता, मनुष्य निर्भय रहता है। पता चलते ही वह भय के कारण कांप उठता है और भागना संभव हो तो भाग खड़ा होता है, किन्तु इस प्रकार की भीति के अन्तस्थल में भी प्राणों का मोह ही छिपा है। मनुष्य चिड़ियाघर में जाकर भयंकर से भयंकर नाग को देखता है, कई बार उसके साथ छेड़-छाड़ भी करता है, मगर मन ही मन जानता है कि यह मुझे डंस नहीं सकता, अतः भयभीत नहीं होता। नाग का ज्ञान ही यदि भय का कारण होता तो चिड़ियाघर के पीजरे में बन्द नाग का ज्ञान भी भय उत्पन्न करता।

अभिप्राय यह है कि ज्ञान दुःख और भय का जनक नहीं। यही नहीं वह आनन्द और निर्भयता का अखण्ड स्रोत भी है। जब तक बालक की इन्द्रियों का विकास नहीं होता वह अबोध रहता है तब तक माता की गोदी से अलग होते ही डरता और रोता है किन्तु ज्यों-ज्यों उसके ज्ञान का विकास होता जाता है उसमें निर्भीकता आती जाती है। ज्ञान का परमप्रकर्ष होने पर तो मनुष्य में ऐसी निर्भयता आ जाती है कि विकराल से विकराल राक्षस भी उसे भयभीत नहीं कर सकता। इस सत्य को समझने के लिए हमें अतीत की ओर झाँकना चाहिए। गजसुकुमार जैसे अगणित सन्त और कामदेव तथा अर्हन्नक जैसे श्रमणोपासक इस सचाई के मूर्तिमान प्रमाण हैं।

ज्ञान के प्रकाश में शोक, दुःख और भय जैसी वृत्तियों के लिए कोई अवकाश नहीं। ये वृत्तियाँ अज्ञान से ही प्रसूत होती हैं। व्यासजी ने ठीक ही कहा है—

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य मुच्यते महतो भयात्।

भागवत वनपर्व।

प्रज्ञा के प्रासाद पर आरूढ़ होकर ही मनुष्य भय से छुटकारा पा सकता है।

भय एक प्रकार का मानसिक रोग है। ज्ञान ही इस रोग की सर्वोत्तम दवा है। भारत के प्राचीन राजनीतिज्ञ कौटिल्य का कहना है—

न संसारभयं ज्ञानवताम्

ज्ञान के प्रखर प्रकाश में विचरण करनेवाले पुरुषों के पास सांसारिक भीति नहीं फटक सकती। क्योंकि कहा है —

विज्ञानदीपेन संसारभयं निवर्तते।

अर्थात्—ज्ञान के प्रदीप का प्रकाश फैलते ही भय का अन्धकार दूर हो जाता है।

अतीत के उदाहरणों तथा विद्वानों की साक्षियों के रोशनी में यदि हम अपनी बुद्धि से विचार करें तो स्पष्ट हो जायगा कि दुःख शोक संताप और भय को जीतने के लिए ज्ञान ही सर्वोत्तम साधन है।



अपरिग्रह

पं. मुनि श्री. मिश्रीमलजी महाराज मधुकर

अपरिग्रह धर्म है। अध्यात्म जीवन की प्रगतिका एक राजमार्ग है। भगवान् महावीर के धर्म में जो स्थान अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य को मिला है, वही स्थान वहाँ अपरिग्रहको भी मिला है।

एक दृष्टिसे देखा जाय तो महाव्रतो में सर्वत्र उच्च स्थान अपरिग्रहको ही मिलना चाहिये, क्यो कि अपरिग्रहके बल पर ही जीवनमें अहिंसा, सत्य अस्तेय आदिका अधिक से अधिक प्रसार होता है।

'मेत्ती मे सब्व-भूएसु' यह एक ससार का बहुत बडा सिद्धान्त है। इस सिद्धात को जीवनमें उतारनेकी प्रेरणा अपरिग्रहसे ही मिलती है।

ममता परिग्रह है। ममतासे मुक्ति असभव है। इच्छा के बढनेपर ममता बढती है और इच्छा का निरोध करनेपर ममता से मुक्ति मिलती है।

ससारके सभी प्राणी सुख चाहते है। उनकी कल्पना में सुख भौतिक पदार्थो म है, अत वे उनका सचय करने में रात दिन एक कर देते है। जैसे जैसे लाभ होता जाता है वैसे वैसे उनकी तृष्णा बढती जाती है। 'जहा लाहो तहा लोहो' यह एक अपना सिद्धान्त है।

अगणित पदार्थो का उपभोग करने पर भी उनकी भोग-तृष्णा शात नही होती। वे उस उपभोगमें अतृप्तिका ही अनुभव करते है। फिर भी वे उनका सचय करने में अहर्निश लगे ही रहते है।

उन्हे सोचना चाहिये कि इन भौतिक पदार्थों का उपभोग करते करते अनन्त-अनन्त जीवन बीत जाने पर भी क्या कभी किसी को कही सुख मिला है? सुख के अभिलाषियों को समझ लेना चाहिये कि सुख भोग में नही, सुख तृष्णा में नही, सुख तो इच्छा के निरोध में है।

अपरिग्रह महाव्रत भी है और अणुव्रत भी। इच्छा-निरोध महाव्रत है और इच्छा परिमाण अणुव्रत।

साधना के दो मार्ग है–महाव्रत और अणुव्रत। अपनी अपनी क्षमता के अनुसार साधक दोनो में से किसी एक मार्ग को चुन सकता है।

हाँ, इतना अवश्य है कि साधक चाहे महाव्रती हो या अणुव्रती दोनों का लक्ष्य एक ही होता है। एक तीव्र गति से अपने लक्ष्य की ओर बढता जाता है तो दूसरा मन्थर गति से अपने लक्ष्य को पकडता है।

जो संत होता है वह अपरिग्रह महाव्रत को अंगीकार करता है। कषायोंसे दूर—बहुत—दूर रहना पडता है हास्य रति अरति भय, शोक जुगुप्सा आदि से किनारा लेना होता है। काम वासना का दमन करना पडता है। अगर वहाँ किसी भी बात की पकड है तो सिर्फ एक सत्य की यथार्थ वादकी।

इस महाव्रत की साधना करनेवाले संत के हृदयमें किसी भी वस्तु पर ममता नहीं रहती। वह किसी वस्तु को अपनी नहीं समझता है। और तो क्या? यहाँ तक कि देहको भी वह अपनी नहीं मानता। देहके रहते हुए भी वह विदेह होकर रहता है। इसीलिए वह निग्रन्थ है अकिंचन है।

अपरिग्रह महाव्रती संत कभी किसी भी प्रकार का संग्रह नहीं करता न वह किसी को संग्रह करने की प्रेरणा ही देता है और जो संग्रह करता है उसका वह कभी अनुमोदन भी नहीं करता है।

ऐसे संत को भी कुछ न कुछ तो चाहिए ही। संत-जीवन के लिए उपयुक्त भिक्षा, पात्र वस्त्र आदि वस्तुओंको वह याचना द्वारा ग्रहण करता है परन्तु उन पर उसकी मूर्छा नहीं रहती। उसकी एक अपनी भाषा है। वह कहता है अमुक वस्तु मेरी नहीं है, यह तो अभी मेरी नेश्राय (आश्रय) में है।

जन–संघ में साधु व साध्वियों का वर्ग अपरिग्रह महाव्रत को धारण करने वाला होता है।

जो अपरिग्रह महाव्रत को स्वीकार नहीं करता, उसके लिये इच्छा—परिमाण व्रत है। इस व्रत में इच्छा की सीमा बांधी जाती है। इच्छा–निरोध तक पहुँचने के लिये यह एक सरल मार्ग है।

आवश्यकता के अनुसार इच्छा रखना यह इस व्रत का अर्थ है। इच्छा के आधार पर आवश्यकताओं का निर्माण करने से वे बढ जाती हैं। इससे जीवन विकृत हो जाता है। विकृत जीवन धर्म से विमुख कर देता है और धर्म विमुख जीवन समाज व राष्ट्र के लिए अहितकर होता है।

इच्छा–परिमाण व्रत को स्वीकार करनेवाले का हृदय दयार्द्र हो जाता है। उसमें संतोष की मात्रा बढती जाती है। व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा वह समाज व राष्ट्र को हित–कामनाको अधिक महत्त्व देता है।

वह अर्जन–उपार्जन करता है, परंतु अपनी मर्यादा के अंदर रहकर। वह अर्थ का संचय भी करता है, परंतु 'तिरोण त्राण न लभे' इस सिद्धांत को अपने हृदय में रख कर।

ऐसा आदमी कभी किसी का शोषण नहीं करता। वह किसीका ग्रास नहीं छीनता है, प्रत्युत आवश्यकता पड़ने पर अपना ग्रास भी दूसरे को दे देता है। वह किसी को आश्रयहीन नहीं करता, परंतु स्वयं आश्रय–दाता बनकर धर्म, समाज व राष्ट्र की सेवा करता है।

जैन मत में श्रावक–श्राविकाओं का वर्ग इच्छा–परिमाण व्रत का अधि–कारी माना जाता है।

परिग्रह पाप है, महापाप है। संसारके समग्र पापों की जड़ यह परिग्रह ही है।

संग्रह, संचय, तृष्णा, लोभ लिप्सा आदि परिग्रह के ही नामांतर है।

परिग्रहके तीन केंद्र हैं, भूमि भूषण और रमणी।

आज तक संसारमें जितने युद्ध हुए–हत्याएँ हुई, विध्वंस हुआ, विप्लव व हा-हाकार मचा, वे सब परिग्रहके इन केंद्रों में ही तो हुए है।

आज जो भी रिश्वत, चोर-बाजारी नियत–खोटी आदि अवांछनीय प्रवृ-त्तियाँ यत्र तत्र सर्वत्र चल रही है, उन सबका मूल कारण यह संग्रहकी भावना ही है।

संसारकी इन विभीषिकाओंका अंत अपरिग्रहवृत्ति के ध्यास से ही हो सकता है।

परिग्रह से अपरिग्रह में आना एक संस्कृति है। इससे आत्मीयता बढ़ती है, एक दूसरेके प्रति बन्धुता के भाव जागृत होते है।

जिस दिन जन–जन के मानस में अपरिग्रह की भावना, तरंगित होगी उसी दिन विश्व-शांतिकी योजना सफल हो सकेगी।



जैनागमों में नारी का स्थान

परम विदुषी महासतीजी श्री उज्ज्वलकुमारीजी म०, अहमदनगर

जैनागमों में नारी का क्या स्थान है, यह जानने के लिये भारतीय नारी की व्यापक परिस्थिति क्या है इसका जरा सिंहावलोकन कर लेना जरूरी है। पाषाणकाल से लगाकर वर्तमान स्पूटनीक काल तक भारतीय नारी को अनेक सामाजिक बन्धनों अमानुषी अत्याचारों, अमानवीय मर्यादाओं पुरोहित व पण्डाओं के द्वारा खोदी गई गहरी खाइयों, तथा धर्मगुरुओं द्वारा बिछाये गये कटीले मार्ग में से गुजरना पड़ा।

वस्त्राभूषण की तरह नारी भी एक भोगविलास की निर्जीव चीज मानी गई थी। उसे कोई स्वतन्त्र विचारशक्ति है मन है या उसे भी कोई इच्छा हो सकती है? यह बात किसी के ख्याल में भी नहीं आती थी। नारी केवल पुरुषों के भोगका साधन मात्र है यह एक मान्यता लोगों के दिमागों में बस गई थी। उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व या स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास की झांकी भी किसी को नहीं हो रही थी। इस भोग साधन रूप मानी जाती नारी की दशा यह थी कि क्षत्रिय नरेश रथ भर भरकर दासियाँ पुरोहितों को दक्षिणा में देते थे। और अपने दामादों को विवाह के समय रथ भर भरकर दासियां भेट देते थे। भारतीय नरेशों के महल देशी और विदेशी नारियों से भरे रहते थे। और मुगल महलों की संख्या का तो किसी को पता ही नहीं चलता था।

भारत के बाहर भी नारी के यही हाल थे। चीनी सम्राट भी अपनी ओर से पालखियां भर भरकर कुमारियाँ हूण सरदारों को तथा तिब्बती काफलों के सरदारों को व तहुचव कबीले के नायकों को भेटों में देते थे। चीनी सम्राट को अपनी प्रत्येक नारी का मुख देखना असम्भव होता था। रूपवती के सम्पर्क में ही वह आता था बाकी की रानियाँ को सदा शाहीमहल की एक उपेक्षित ईंट की तरह जन्मभर सिसकते पड़े रहना पड़ता था।

आगे नारी का स्तर और भी नीचे उतरा। जुआरी लोग नारी को दाँव पर रखने लगे। नारी के जरा से अपराध का उसे कठोर दंड दिया जाता था। अन्य पुरुष के सामने देख लेने मात्र से ही लोग नारी को घर से निकालने के इस तरह नोटिस लगा देते थे कि जिस तरह कि नीलाम आदि माल के लगाते हैं।

नियत समय पर परित्यक्ता नारी घर के द्वार से धक्का देकर बाहर निराधार अवस्था में निकाली जाती थी और घर का दरवाजा बन्द कर लिया जाता था।

स्त्रियों की यह दयनीय स्थिति थी। पुरुष सैकडो हजारों स्त्रियों को अपनी भोग-सामग्री बना सकता था तब स्त्री एक पुरुष के सिवा दूसरे पुरुष के सामने भी देख ले तो दंड की अधिकारी बन जाती थी।

सती-प्रथा यह नारी विडम्बना की चरम सीमा थी। पति मरने के बाद स्त्री को जबरन पुरुष के साथ जला दिया जाता था। आज की सजग नारी के दिल में सवाल उठता है कि स्त्री के मरने के बाद पुरुष भी किस प्रकार जीवित रह सकता था? उसे भी सतीप्रथा का नियम क्यों नही लागू होता? स्त्रियों की ऐसी विषम हालत चलती आ रही है। अच्छे-अच्छे सात्त्विक कवियों के मुख से भी ऐसे- ऐसे उद्‌गार निकलते है कि जो स्त्री-समाज के प्रति घृणा बताते हैं। एक कवि के शब्द है —

"नागणी सी नारी जाण"

स्त्री को नागिन समझा। पर वास्तव में स्त्री नागिन नही है। नागिन तो पुरुष की वासना है। कवि तुलसीदास भी कह रहे है —

"शूद्र गँवार, ढोल, पशु, नारी, ये सब ताडन के अधिकारी" इस प्रकार स्त्री और पुरुष की आत्मा में और आत्मा की शक्ति में कुछ भी तफावत न होते हुए भी स्त्रियाँ हमेशा अपमानित होती रही है।

वैदिक परंपरा में नारी को आत्म-विकास के लिये अवकाश ही नही मिला और न उसे सामाजिक अधिकार ही मिले न धार्मिक भी। वैदिक धर्म-गुरुओं की उद्‌घोषणा थी कि —

"न स्त्रीशूद्रौ वेदमधीयेतां"

स्त्री और शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नही है। स्त्रियों को कोई भी धर्म-ग्रन्थ पढने का अधिकार नहीं था। धर्म को श्रवण करने का अधिकार भी नहीं था और धार्मिक क्रियाकांड भी स्त्रियाँ नही कर सकती थी। स्त्री और शूद्र दोनो समान माने जाते थे।

बौद्ध परंपरा में भी नारी को मुक्त स्थान न मिला। महात्मा बुद्ध ने अनिच्छा से अपने प्रिय शिष्य आनन्द के बहुत आग्रह करने पर नारी को संघ में दीक्षित किया और कहा–आनन्द! संघ वस्तुतः सहस्त्रों वर्षों तक जीवित रहता परन्तु इसमें नारी के प्रवेश होने से इसकी आयु क्षीण हो जायगी। और अब यह पांच सौ वर्षों से अधिक नहीं चल सकेगा। इस प्रकार बौद्ध परंपरा में भी नारी को मुक्त विहार न मिला।

जनधर्म में नारी को खूब महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। जनधर्म ने नारी के लिए विकास के सभी मार्ग खोल दिये। जनधर्म ने गुलामरूप बनी हुई नारी को गौरव दिया। पुरुषों के भग–शृंगार की चीज बनी हुई नारी को मुक्ति भी। भेंट सौगात में [illegible] की चीज बनी हुई नारी को आत्म विकास का मौका दिया। भोग साधन बनी हुई नारी को भव्यता दी। जड़ता की प्रतिमूर्ति बनी हुई नारी को चैतन्य दिया। भ० महावीर ने तीर्थ की स्थापना की। उस तीर्थ के चार अंग बनाये। साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका। इस तीर्थ में जितना महत्त्व साधु को है उतना ही साध्वी को भी है और जितना महत्त्व श्रावक को है उतना ही महत्त्व श्राविका को भी है। विश्व के तमाम धर्मों की अपेक्षा साध्वी बनकर आत्मशुद्धि, आत्मकल्याण, तथा आत्म–साक्षात्कार करने का समान अधिकार देकर जनधर्म ने स्त्रियों की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। इस प्रकार स्त्री पुरुष की समानता इस तीर्थ का आदर्श बना। भ० महावीर के इस संघ में पुरुष के समान ही स्थान युग-युग से तिरस्कृत नारी को भी मिला। उन्होंने गुलाम के रूप से बनी हुई चन्दना को अपने संघ में लेकर प्रवर्तिनी का स्थान दिया और सारे श्रमणी संघ का नेतृत्व उस महासती चन्दना को सौंपा। इस प्रकार जनधर्म में स्त्री-समाज को धर्म का सम्पूर्ण अधिकार दिया गया है।

पुरुष व नारी में यत्किंचित् भी भेद का भाव जैन शास्त्र में दृष्टिगोचर नहीं होगा। आजकल की नारी-व्यवस्था जैसे स्त्री को सब अधिकार देती है। गवर्नर व प्रधानमन्त्री का स्थान तथा एडवोकेट व जॉर्ज का स्थान स्त्रियों को दिया जाता है। उसी प्रकार जनधर्म ने अवतारी पुरुषों में, अपने तीर्थंकरों में भी नारी को स्थान दे दिया है। जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में १९ वे तीर्थंकर हैं भगवती मल्लिकुमारी। जिस धर्म ने स्त्री को तीर्थंकर भी बना दिया वह स्त्री को और कौनसा अधिकार नहीं देता भला?

स्त्री की समानता व प्रधानता के उदाहरणों से जिनागम भरे पड़े हैं।

इस काल-चक्र में सब से प्रथम मोक्ष में जानेवाली एक नारी भी थी और वह थी प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भ० की माता मरुदेवी। भगवान् ऋषभदेव के भरत व बाहुवलि सरीखे सौ पुत्र होने पर भी उन्होंने सबसे प्रथम अक्षर-ज्ञान व अकज्ञान अपनी कन्याएँ ब्राह्मी सुन्दरी को ही दिया। ब्राह्मी के नाम से ही लिपि का नाम भी ब्राह्मी लिपि पड गया है। इस प्रकार जैनधर्म ने समानता व उचित स्थान पर प्रधानता भी दी है।

बाहुबलीजी को मानरूपी ऐरावत हस्ति से उतारने के लिये ब्राह्मी सुन्दरी ही गई थी और वे उस काम में सफल भी रही थी। रहनेमी को चारित्र से विचलित होते हुए राजीमती ने ही बचाया था। राजीमती ने उन्हें कहा था "तू चारित्र से विचलित हो इसके बजाय तो तेरा मरना ही अधिक श्रेयस्कर है।" उसके तेजस्वी वचनों को सुनकरके अंकुश से हाथी जैसे वश हो जाता है। वैसे ही रहनेमी चारित्र में स्थिर होगये। रानी कमलावती इक्षुकार राजा से जो शब्द कहती है वे शब्द ही नारी की तेजस्विता को सिद्ध करते हैं। वह कहती है कि—दूसरे के त्यागे हुए धन को लेना यह तो दूसरे के वमन किये हुए को खाने जैसा है। और दूसरे के वमन किये हुए को खाना यह तो कौवे कुत्ते का काम है। हे राजन्! एक दिन तो तू इन मनोरम कामभोगों को छोड़कर मरेगा ही। उस समय एक धर्म के सिवा तुझे कोई चीज शरणभूत नहीं होगी। इसलिए धर्म का आचरण कर। इस प्रकार जैनधर्म ने नारी को बहुत अग्र स्थान दिया है। नारी की अंधकारपूर्ण सामाजिक यात्रा में जैनधर्म ने उसके लिये दीपस्तम्भ का काम किया है।

स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी कही जाती है। वह पुरुष का आधा अग है। तो उसे पुरुष के समान ही अधिकार मिलने चाहिये। स्त्री और पुरुष ये दो जीवन-रथ के चक्र हैं। रथ के दोनों ही चक्र समान होने चाहिए, जो छोटे-बडे रहेंगे तो जीवन रथ अच्छी तरह से नहीं चल सकेगा। इसलिये पुरुष के समान ही नारी को भी महत्त्व देने की जरूरत है।

स्त्री शक्ति है। वह अवला नहीं सवला है। स्त्रियों को जब—जब अपनी शक्ति के विकाश का मौका मिला है तब—तब वे सर्व प्रकार से तेजस्विनी ही दिखाई दी हैं। वीरता की दृष्टि से स्त्रियों ने 'रण सग्राम' भी खेले है। राज्य-शासन भी कुशलतापूर्वक चलाये हैं। शिक्षण, विज्ञान, वीरता, विद्वत्ता और राज्यशासन आदि क्षेत्रों में स्त्रियों ने अपनी विशिष्टता दिखाई है सहनशीलता,

त्याग तपश्चर्या प्रेम करुणा सहानुभूति सेवा श्रद्धा और समर्पण में पुरुष कभी भी स्त्री की बराबरी नहीं कर सकता है।

'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

माता और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान हैं। जहाँ स्त्रियों का अपमान होता है वहाँ नर्क पैदा हो जाता है। जिन कुटुम्बों में बहू बेटियां कष्ट पाती हैं वह कुटुम्ब नष्ट हो जाता है।

अपने शरीर में महत्त्वपूर्ण स्थान है नाडी का। नाडी जब तक ठीक ढंग से चलती है तब तक आदमी का स्वास्थ्य स्वस्थ रहता है। परन्तु जब नाडी में गडबडी हो जाती है तब स्वास्थ्य भी बिगड जाता है और कभी-कभी नाडी के ठोके अधिक बढ जायें तो जिन्दगी भी खतरे में आ जाती है। इस प्रकार नाडी की स्वस्थता अस्वस्थता पर ही शरीर की स्वस्थता अस्वस्थता का आधार रहा हुआ है।

जो स्थान शरीर में नाडी का है वही स्थान समाज में नारी का है। नारी संस्कारी होगी तो समाज संस्कारी बनेगा। नारी अशिक्षित असंस्कारी और असमझ होगी तो समाज वैसा ही बनेगा। नारी की स्वस्थता के ऊपर ही सारे समाज के स्वास्थ्य का आधार रहा हुआ है।

यह बात सब कोई जानते हैं कि—लोगों को जब धन चाहिये तब लोग लक्ष्मी की पूजा करते हैं, कुबेर की नहीं। विद्या के अभिलाषी लोग विद्या के लिये सरस्वती की पूजा करते हैं विद्या गुरु बृहस्पति की नहीं। शक्ति के उपासक देवी दुर्गा की उपासना करते हैं अन्य कोई शक्तिशाली देव की नहीं। इस प्रकार धन विद्या और बल के लिये देवियाँ पूजी जाती हैं, कोई देव नहीं। इसमें भी स्त्री-पूजा की ही विशेषता दिखाई देती है। देवों के नाम भी देखें तो उनमें भी स्त्रियों को ही प्रथम स्थान है। जैसे कि—गौरीशंकर राधाकृष्ण सीताराम, लक्ष्मीनारायण। पशुओं में भी गाय पूजी जाती है बैल नहीं। इस प्रकार सर्वत्र सम्मान ही नजर आता है। मानव समाज में भी वैसा ही स्त्री-सम्मान होना चाहिये।

पति के लिये चारित्र सन्तान के लिये ममता समाज के लिये शील, विश्व के लिये दया, तथा जीवमात्र के लिये करुणा प्रदान करनेवाली शक्ति का नाम ही नारी है।

॥ जय हो नारी की ॥

महावीर न नारी की शक्ति का आह्वान करते हुए कहा था— "ओ नारी ! तुम्हें यदि अपनी शक्ति पर पूर्ण आत्मविश्वास हो तो तुम किसी भी क्षेत्र में पुरुष से कम नहीं हो। संपूर्ण स्वातंत्र्य के द्वार खोलने का अनंत बल तुममें है। अखंड अविचल शक्ति का स्रोत तुम हो। जो अपने क्षेत्र में संपूर्ण समर्थ हैं वह विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में समर्थ बन सकता है।

पुन अपनी योग्यता प्राप्त करनी हो तो निष्क्रिय रहने से काम नहीं चलेगा। तुम्हारी खोई हुई शक्ति कोई लाकर नहीं देगा। अपने अखण्ड पुरुषार्थ से भविष्य का मंगल प्रारब्ध निर्मित करना है। शक्ति की खोज में अविश्रांत गति से चलना है। जीवन के संग्राम में अपने आप को विजयी बनाना है। उठो ! क्या शारीरिक स्थूल भेद आत्मीय शक्ति को विनष्ट करने में समर्थ है ? नहीं। यह बाह्य भेद जड पुद्गलों की पर्याएं है। सोचो ! निर्णय करो ! तुम्हें तुच्छ समझनेवाले लोगों के शब्दों की अपेक्षा तुम्हारी अपनी आत्मा के शब्द अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अपनी आत्मा से पूछो ! क्या वह स्वीकार नहीं करती है कि तुम पुरुष के समान शक्तिसंपन्न हो।" यह सुनते ही हजारों स्त्रियाँ समस्त मानव जाति के कल्याणार्थ ऐश्वर्य विलासी साधन एवं पुरुष के तंत्र को ठुकराकर संयमी जीवन के कठोर मार्ग पर सत्य की वेदी पर पुरुष की तरह सफलतापूर्वक प्रयाण करने के लिए निकल पडी थी। उन्होंने समझा था—कल्याण के लिए अपने जीवन का बलिदान करनेवाला कभी नष्ट नहीं होता। किन्तु पृथ्वी पर स्वर्ग उतार लाने का श्रेय प्राप्त करता है।

यह महान आदर्श युग युग से प्रकाश देते आ रहा है। अनेक ऐसी धर्मनिष्ठा एवं कर्तव्यनिष्ठा विभूतियों की जीवन–गाथाएं हमें आगम में उल्लिखित मिलेंगी जिनमें नारी–जीवन का सन्मान है।

उदाहरण के लिए देखिये— रानी कमलावती के जीवन का एक प्रसंग। राजा इक्षुकार के राज्य का एक ब्राह्मण परिवार दीक्षित होने जा रहा है। उसकी समस्त द्रव्य राशि राज्यभंडार में आ रही है। रानी कमलावती को यह सब मालूम होता है। वह स्वयं दरबार में आकर इसका विरोध करती है और अपने पतिराज से कहती हैं 'राजन् ! —

मरिहिसि राय जया तया वा मणोरमे कामगुणे पहाय ।
एक्को हु धम्मो नरदेव ताणं न विज्जइ अन्नमिहेह किंची ॥

जिसने जन्म लिया है उसे अवश्य काल के गाल में समा जाना है। तुम विस मूल में हो। ओ नरदेव ! एक धर्म ही आत्मा का सहायक है।'

विचारशील एवं विवेकपूर्ण मार्गदर्शन देकर रानी कमलावती राजा को त्याग के मार्ग पर लाने का प्रयत्न करती है।

उसके शब्दों को स्वयं भगवान् महावीर अपने उपदेश में उदाहरण देते हैं।

इसी प्रकार जैनी श्राविका के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का जो आगमों में उल्लेख है उसे देखकर सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भगवान् महावीर के समय में नारी का चित्त कितना चिन्तनशील था।

अकेली आर्या चन्दनबाला पर भगवान् महावीर ने ३६ हजार साध्वियों के नियंत्रण का भार सौंपा था, इससे जाना जा सकता है कि नारी की शक्ति या उसके दायित्व के प्रति भगवान् महावीर के हृदय में कितना विश्वास था।

जैनागमों में मल्लीजिन का उल्लेख इस बात का प्रबल प्रमाण है कि एक नारी तीर्थंकर जैसे महान् पद पर भी पहुँच सकती है। उन्होंने कहा था कि स्त्री हो या पुरुष, दोनों ही आचार के क्षेत्र में समान रूप से प्रगति कर सकते हैं। उदाहरण के लिए--महाव्रत की दीक्षा-विधि, केवल ज्ञान की प्राप्ति निर्वाण आदि किसी भी क्षेत्र में स्त्री और पुरुष के भेद को उन्होंने नहीं माना।

ऐसे उदाहरणों को देखकर यह भलीभाँति जाना जा सकता है कि नारी-जीवन के विषय में भगवान् महावीर का दृष्टिकोण क्या था।

इतना होते हुए भी आज की परिस्थिति का वलोकन करते हुए कहना पड़ेगा कि आगम के टीकाकार एवं भाष्यकार भी आस-पास के वातावरण तथा साहित्य की असर से विमुक्त नहीं रह सकते हैं। मन पर्यव ज्ञान और १४ पूर्व का ज्ञान स्त्री प्राप्त नहीं कर सकती। दिगंबर सम्प्रदाय ने तो स्त्री-मुक्ति का भी निषेध किया है। इसका क्या अभिप्राय है? वर्तमान में भी साधुओं की अपेक्षा साध्वियों का जीवन निम्न कोटि का माना जाता है। जैसे वंदन-व्यवहार। ऐसे अनेक विषय हैं जिनकी स्पष्ट रूप से चर्चा नहीं की जा सकती, फिर भी वे एक विचारक मानस में खटकते हैं।

सोना किसको अच्छा नहीं लगता? सभी उसकी इच्छा करते हैं। किन्तु अग्नि में तपे हुए रक्तवर्ण सोने को हाथ में लेने के लिए कोई तैयार नहीं होगा। उसी प्रकार सत्य सभी चाहते हैं किन्तु स्पष्ट एवं कटु शब्दों में कहा जाय तो उसे ग्रहण करने के लिए कोई तैयार नहीं होगा।

"पुरिस जेट्ठा" इसका अर्थ "पुरुष श्रेष्ठ"। ऐसा किया जाता है वास्तव में यह अर्थ की संकुचितता है। जैनधर्म ने किसी व्यक्ति-विशेष के महत्त्व को स्वीकार नहीं किया। श्रेष्ठता और ज्येष्ठता का मापक यंत्र शरीर की बाह्य रचना नहीं। किन्तु आंतरिक गुण हैं। और आगम में "पुरिस" शब्द का प्रयोग भी आत्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, किसी व्यक्ति-विशेष के अर्थ में नहीं, जैन-धर्म आत्मधर्म का पक्षपाती रहा है। "पुरिस" शब्द का अर्थ "आत्मा" कर के इस व्यापक अर्थ में ही हम भगवान् महावीर की भावना को सुरक्षित रख सकते हैं।

दूसरी तरफ आगम में किसी विशिष्ट संयोग के शब्दों के प्रयोग देखकर आगम भी स्त्री का अपमान करते हैं उसको हीन दृष्टि से देखते हैं ऐसा मानना न्याययुक्त नहीं है। उदाहरण के लिए—

"न रक्खसीसु गिज्झज्जा"

यहाँ 'रक्खसी' का अर्थ स्त्री नहीं है जो किया जाता है। वास्तव में साधक की अपनी दुष्ट मनोवृत्ति ही राक्षसी है और वही कर्मबन्ध का कारण है, कोई दूसरा पदार्थ नहीं। निमित्त के आधीन होकर कहना कि स्त्री नर्क का द्वार है वह कीचड़ है राक्षसी है, नागिन है।—ठीक नहीं है।

वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो आगम की पृष्ठभूमि में समानत्व एवं ऊँच नीच की कल्पना से दूर प्रत्येक आत्मा का पवित्र दर्शन प्राप्त होता है। वहाँ नारी जीवन की निष्फलता का भ्रामक प्रसार एवं प्रचार नहीं, किन्तु सत्य तथ्य जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण है।

वीर-वाणी ने तत्कालीन इतिहास को एक नूतन मोड़ दिया था। तथा युग युग से पुरुष द्वारा शोषित एवं पददलित नारी वर्ग में क्रान्ति का निनाद किया था जिसका सख्त विरोध हुआ, किन्तु विरुद्ध मानपत्र लेनेवालों के आधार पर नहीं मूक भाव से कर्तव्यपालन करनेवालों के आधार पर ही टिकता है।

इस विषय में कतिपय विद्वानों का अभिप्राय है कि आगम के पूर्व-काल में भी—गार्गी मैत्रेयी, सीता, सावित्री सरस्वती जैसी महिलाएं अपनी विद्वत्ता एवं चारित्र के बल पर सम्मानित थी। गृह-मंदिर में देवी की तरह पूजी जाती थी। इस विषय में आगम का कोई नवीन शोध नहीं है। इसके उत्तर में कहना है कि गार्गी आदि जिन स्त्रियों की महत्ता का उदाहरण पेश किया जाता है उन्हे पुरुषों के कारण ही महत्ता प्राप्त हुई है। किसी स्त्री ने स्वतंत्र रूप से अपने ही आत्म-बल से सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया है ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। भगवती मल्ली चन्दनबाला आदि के उदाहरण जैन आगमों से ही आते हैं। जिनसे भगवान् महावीर की क्रान्तिकारिता स्पष्ट होती है।

कार्य क्षेत्र के अनुसार कार्यकर्ताओं का पृथक्करण हो सकता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि यह नीच है यह ऊँच है। प्राणीमात्र के प्रति प्रेम, सहिष्णुता और सहअस्तित्व का पाठ याद करानेवाला साधक मानव-समाज में क्या विषमता की दीवाल खड़ी कर राग-द्वेष आदि बढ़ा सकता है। कभी नहीं?

इस रूप में आगम नारी के विषय में एक पवित्र भावना को लेकर आये हैं। उसे हम समझने का प्रयत्न करें तो महावीर की क्रान्ति के दीप में सहयोग देने का पवित्र श्रेय प्राप्त कर सकते हैं।

———ooOoo———

धर्म और विश्व की वर्तमान समस्याएँ

डा इन्द्र चन्द्र शास्त्री अध्यक्ष संस्कृति विभाग इन्स्टीट्यूट ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट
स्टडीज, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्रेन्डरसल ने विश्व की समस्याओ का विश्लेषण करते हुए उन्हे तीन कारणो में विभक्त किया है । पहिला कारण अज्ञान है । दूसरा अभाव और तीसरा अन्याय । साथ ही यह भी बताया है कि अज्ञान को दूर करना दर्शनशास्त्र का कार्य है और अभाव को दूर करना विज्ञान का । अन्याय के दो प्रकार है । व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति अन्याय और वर्ग का वर्ग के प्रति अन्याय । इनमें से प्रथम प्रकार के अन्याय को दूर करना धर्म का कार्य है और दूसरे को दूर करना राजनीति का । वास्तव में देखा जाय तो इन सभी कारणो के मूल में प्रधानतया स्वार्थवृत्ति ही छुपी रहती है और उसे दूर करना एकमात्र धर्म का कार्य है ।

उदाहरण के रूप में अज्ञान के दो भेद हैं ।

१ ज्ञान का अभाव और २ विपर्यय । विपर्यय भी दो प्रकार का है १ भ्रान्तिमूलक अर्थात् जो वस्तु जैसी नही है उसे वैसा समझना । २- भावना-मूलक--अर्थात् जो जैसा नही है उसे वैसा मानना । चन्द्रमा का आकार विशाल होने पर भी हमें वह छोटासा दिखाई देता है । यह भ्रान्तिमूलक विपर्यय है ।

अपनी साम्प्रदायिक, जातीय या प्रादेशिक सकुचित वृत्तियो के कारण हम मनुष्य और मनुष्य के बीच दीवार खडी कर लेते है ।

तथाकथित धर्मनायको व देशनायको के निर्णयानुसार हमारी मान्यताये बदलने लगती है । जो कल मित्र था, आज शत्रु हो जाता है । जो कल अपना था आज पराया हो जाता है । ये मान्यतायें भावनामूलक है ।

अज्ञान के उपर्युक्त रूपो में से ज्ञान के अभाव व भ्रान्तिमूलक विपर्यय को दूर करना यह दर्शनशास्त्र का कार्य है ।

और यह महत्त्वपूर्ण भी है, किन्तु विश्वव्यापी अशाति परस्पर अविश्वास तथा सघर्षों को देखा जाय तो सारा खेल भावनामूलक विपर्यय से ही सम्बन्ध रखता है वास्तव में उस स्तर पर पहुँच कर धर्म और दर्शन एक हो जाते है ।

भारत में दर्शन का उद्देश्य केवल अज्ञान-निवृत्ति नही है किन्तु तत्त्वज्ञान या अज्ञान-निवृत्ति के द्वारा नि श्रेयस् का साधन है ।

दर्शन जिस लक्ष्य पर बुद्धि के रास्ते पहुंचाता है। धर्म उसी लक्ष्य पर भावना या हृदय के रास्ते से पहुँचाता है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपने को बुद्धिमान् मानता है और अपने निर्णयों को बुद्धिपूर्ण निर्णय मानता है।

वास्तव में देखाजाय तो बड़े २ राजनीतिज्ञों धर्मनेताओं या अन्य प्रकार के जननायकों के निर्णयों में बुद्धि की अपेक्षा भावना का प्राबल्य है। उनके सभी निर्णय राग द्वेष, अहंकार एवं अन्य प्रकार के पूर्वग्रहों से एवं मिथ्याभिनिवेशों से संचालित होते हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ में बड़े २ राष्ट्रों के प्रतिनिधि विश्व की समस्याओं को सुलझाने के लिये इकट्ठे होते हैं। किन्तु वे अपने व पराये के भेद को मिटाने के लिए कभी तैयार नहीं होते। प्रत्येक समस्या को उसी दृष्टि से देखते हैं। कहते हैं परमाणु-युद्ध नहीं होना चाहिए। किन्तु चाहते हैं कि उनका अपना राष्ट्र तो बच जाय और दूसरे नष्ट होजाय तो कोई बात नहीं है।

प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को अविश्वास एवं संदेह की दृष्टि से देखता है। ऊपर से हंस कर स्वागत करता है किंतु मन ही मन उसकी पराजय चाहता है। ऐसे वातावरण में शांति की स्थापना स्वप्नमात्र है।

यदि हम इस प्रकार की मनोवृत्ति के मूल कारणों पर विचार करें तो मानवीय अस्मिता एवं अहंकार के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देता। अमरीका के राष्ट्रपति पृथ्वी के एक प्रदेश को अपना मानते हैं और चाहते हैं वहां सुख एवं संपत्ति की प्रत्येक प्रकार से वृद्धि हो, किंतु उस सीमा को पार करते ही उनकी भावना बदल जाती है। उस सीमा के परवर्ती प्रदेश पर यदि परमाणु बम गिरे तो उन्हें कोई चिंता नहीं है।

यदि कल वह प्रदेश अमेरीका की अधीनता स्वीकार कर लेता है तो वह भी चिंता का विषय बन जाता है। इस प्रकार की भेद भावना और उसमें होनेवाले परिवर्तन का कोई वास्तविक आधार नहीं है। सर्वत्र मानवीय अहंकार या अस्मिता बोल रही है।

इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर प्रसिद्ध इतिहासकार टोयनबी ने लिखा है कि मानवता की सब से बड़ी समस्या व्यक्ति का अथवा वर्ग का स्व-केंद्रित होना है।

हम स्व के सुख दुःख की चिन्ता करते हैं एवं स्व के विचारों को ठीक मानते हैं। उस स्व की परिधि किसी की अपने ही शरीर तक है किसी की कुटुंब

तक, किसीकी मोहल्ले या नगर तक, किसी की सम्प्रदाय या पथ तक, किसी की जाति या नस्ल तक, और किसी की राष्ट्र तक।

धर्माचार्य पथ के आगे नहीं बढ़ना चाहते और राजनीतिक नेता राष्ट्रीय सीमा के आगे।

विश्व के इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि मानव कल्याण के उद्देश्य से अवतार लेने वाले धर्मोंने समग्रतया उपकार की अपेक्षा अपकार अधिक किया है।

यहूदी मानते थे कि भगवान् यहोवा सुख—सम्पत्ति तथा कल्याण की वृद्धि करते हैं किन्तु उनकी कृपा के पात्र सभी नहीं हो सकते। उसके पात्र वे ही होसकते हैं जो यहूदी जाति में उत्पन्न हुये हों। वे अपने आप को खुदा के चुने हुए बंदे मानते थे। परिणामस्वरूप दूसरो को मारने व उनकी सम्पत्ति को लूटने तथा उनकी स्त्रियों से बलात्कार करने में कोई पाप न समझते थे। उन्होंने मिश्र के मूल निवासियों पर जो अत्याचार किये तथा जो जघन्य कृत्य किये उनके सामने राजनीतिक युद्ध भी लज्जित हो जायेंगे।

ईसामसीह ने विश्व-बन्धुत्व का उपदेश दिया और कहा यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर तमाचा लगाये तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो। यदि तुमसे पहृद माने तो अपना कोट भी उतार कर दे दो।

किन्तु तथाकथित अनुयायियों ने तलवार तथा धन के बल पर सारे विश्व को यह पाठ सिखाना चाहा। उन्हें अपने कल्याण की अपेक्षा दूसरे के कल्याण की चिन्ता अधिक रही है। परिणामस्वरूप यहूदियों को उनके मूलस्थान से मार भगाया और तलवार भाले तथा बन्दूके लेकर सैकड़ो वर्षो तक धर्मयुद्ध के नाम से उनके पीछे पड़े रहे।

इसके बाद उसी रंगमंच पर इस्लाम आया जो अब तक अपनी पुरानी नीति को भूला नहीं है। यद्यपि भारतीय इस विषय में सहनशील रहे हैं और उन्होंने धर्म के नाम पर बड़े २ युद्ध नहीं किये फिर भी यह मानना पड़ता है कि धर्म के नाम पर पारस्परिक विद्वेष यहाँ भी पर्याप्त मात्रा में रहा है।'

उसने हमारी राष्ट्रीय शक्ति को जर्जर कर दिया तथा सभी धर्म अपने महान् लक्ष्य से विरक्त बाह्य क्रियाकांड विधिविधान एवं प्रदर्शनो तक सीमित रह गये।

धर्मों का उपयुक्त इतिहास हमें निराशा की ओर ले जाता ह और एसा प्रतीत होता ह कोई शक्ति या सस्था एसी नहीं ह जो मानवता का त्राण कर सके। किन्तु गहराई से देखा जाय तो उपयुक्त इतिहास में ही आशा के बीज छिपे हुँ। इससे दो बातों का पता चलता है।

पहली बात यह ह धम भी एक महान शक्ति ह। यह भी मानव-समूह को सगठित करके बड २ कार्यों के लिय प्रेरित कर सकता है। मनुष्य न जहाँ राजनीतिक आर्थिक एव अन्य स्वार्थों के लिए प्राण दिये ह उसी प्रकार धर्म के लिय भी दिय ह।

इसके साथ यह भी सिद्ध होता ह कि धम के नाम से मनुष्य अपनी ओर जिन परिधियों को खड़ा करता है वे कल्पित होने पर भी शक्तिहीन नही होती। उनमें उतना ही प्ररणाबल रहता ह जितना कौटुम्बिक, जातीय, राष्ट्रीय या अन्य किसी प्रकार की परिधि में। जिस प्रकार उनका उपयोग मानवता के परस्पर विनाश में हुआ ह उसी प्रकार स्वपर-कल्याण में भी हो सकता ह। आवश्यकता केवल ठीक पथ-प्रदर्शन की ह।

दूसरी बात यह है कि धम ही एक ऐसा तत्त्व ह जो मानवता ही नहीं समस्त विश्व को एकता या समानता के स्तर पर खड़ा कर सकता ह।

अपन प्रारम काल में धर्म अवश्य सकुचित रहा ह। किन्तु धीरे २ विकास करते वह कौटुम्बिक जातीय भौगोलिक एव राष्ट्रीय सभी सीमाओं को पार कर गया ह। जहाँ वही एकान्त रूप से मगलमय बन गया है।

उपनिषदो में धर्म का जो रूप मिलता ह वह मनुष्य की आहकारिक परिधियों या स्व केन्द्रितता पर या स्वकेंद्रिता को दूर करन पर ही बल देता ह। उसका कथन ह द्वितीयाद्वै भय भवति जब तक दूसरा रहेगा म और तू स्व और पर की भदबुद्धि रहेगी भय बना रहेगा।

जिस दिन सब एक ही आत्मा के रूप में प्रतीत होगे उस उस दिन कान किसीसे डरेगा?

महावीर ने कहा सभी जीव परस्पर समान ह। जब तुम किसी को मारना चाहते हो तो उसके स्थान पर अपने को मानो। जब किसी को कष्ट देना चाहते हो, पीड़ा देना चाहते हो तो उसके स्थान पर अपने को रख कर देखो।

बुद्ध ने ससार की सभी आकाक्षाओं एव अस्मिताओं को निस्सार बताकर उनसे ऊपर उठन का उपदेश दिया। उन्होंने यह भी कहा-माता जिस प्रकार

अपने एकाकी पुत्र पर स्नेह करती है इसी प्रकार असीम स्नेह सारे विश्व में फैला दो।

क्राईष्ठ ने विश्व-बन्धुत्व के नाम पर समस्त मानव-सेवा का सदेश दिया। उन्होने देश, काल, जाति आदि की किसी परिधि को नही माना उनके इस सदेश में विश्व-समस्याओ का समाधान सन्निहित है।

आवश्यकता इस बात की है– धर्म के शुद्ध प्रकाश से हम अपने पथ को आलोकित करे और उस पर चलने का प्रयत्न करे। उसे अस्मिताओ की गाँठ में बाँधकर सिर पर ढोये फिरने से कोई लाभ नही है।

वहाँ धर्म, धर्म नही रहता पथ बन जाता है, उसकी प्राण-शक्ति उड़ जाती है और निर्जीव शरीर रह जाता है।

रसल के द्वारा बताये गये तीन कारणो में दूसरा अभाव है। इसका अर्थ है खाने पीने पहिनने रहने आदि जीवन के लिए आवश्यक सामग्री की कमी।

रसल का यह कथन भी ठीक है कि इस सामग्री को अधिक से अधिक परिमाण में प्रस्तुत करना विज्ञान का कार्य है, किन्तु यह अभाव दो प्रकार का है वास्तविक व कृत्रिम। वास्तविक अभाव को दूर करना विज्ञान का काम है, किन्तु कृत्रिम अभाव को अपनी स्वार्थ-वृत्ति से प्रेरित होकर मनुष्य स्वयं खड़ा करता है और विश्व की वर्तमान समस्याओ में इसी की मुख्यता है। अमरीका में करोड़ो मन अनाज इसलिए जला दिया जाता है कि उसका भाव न गिरने पाये। दूसरी ओर अनाज की कमी गभीर समस्या बनी हुई है। कुछ वर्ष पहिले बगाल में दुर्भिक्ष पड़ा और लाखो व्यक्ति भूखे मर गये।

कहा जाता है, व्यापारियो के पास चावलो के गोदाम भरे हुये थे, किन्तु भूखो के पास पैसा न था। यह कृत्रिम अभाव तभी दूर हो सकता है जब मानव आर्थिक एव राजनीतिक स्वार्थो से ऊपर उठकर मानवता या सर्वात्मता की ओर उन्मुख हो।

यह दशा प्रदर्शित धर्म से ही प्राप्त हो सकती है। पूर्वोक्त कारणो में तीसरा अन्याय बताया गया है। वह दो प्रकार का है व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति, वर्ग का वर्ग के प्रति।

प्रथम प्रकार अन्याय स्वार्थमूलक होता है और दूसरा अस्मिता या अह-कारमूलक। पहिले को दूर करने के लिये स्वार्थ-भावनाओ से ऊपर उठने की

आवश्यकता है और दूसरे को दूर करने के लिए अस्मिता की परिधि से ऊपर उठना आवश्यक है आज ये दोनों ही कार्य धर्म में है।

किन्तु धर्म अपने लक्ष्य को तभी पूर्ण कर सकता है जब वह बाह्य वेष भूषा, क्रियाकाण्ड विधिविधान देवी देवता तथा दूसरे आवरणों से मुक्त होकर अपने उज्ज्वल प्रकाशमय रूप में मार्गदर्शन करे। ऐसा तभी हो सकता है जब हम इसे हिन्दू, बौद्ध जैन ईसाई मुसलमान यहूदी आदि किसी घेरे में बन्द न करके उसे अपने मंगलमय रूप में उपस्थित करें।

हमें यह मानना चाहिए कि प्रत्येक परम्परा में मानवहित के लिए उपयोगी तत्त्व विद्यमान है। किन्तु उनके साथ सड़ाव व विषैले कीटाणु भी मिल गये है।

अपने विचार तथा भावनाओं मस्तिष्क तथा हृदय, ज्ञान तथा इच्छा दोनों का परिष्कार करने पर ही हम उसके शुद्ध रूप का दर्शन कर सकते है।

जनधर्म में मस्तिष्क के परिष्कार को स्याद्वाद के रूप में और हृदय के परिष्कार को अहिंसा के रूप में प्रगट किया गया है।

धर्मों में भी इन शुद्धियों के विविध मार्ग बताये गये है। वर्तमान धर्म-नेताओं पर यह उत्तरदायित्व आ पड़ा है कि वे उन मार्गों का शोधन करें। उन्हें जीवन में उतारें विशाल मानवसमाज के सामने प्रस्तुत करें। विश्व को प्रलयकर युद्ध की विभीषिकाओं से बचावें।

इस प्रकार धर्म वस्तुतः विश्वकल्याण का साधन बन सकेगा।

यह कथन पूर्णतया सत्य है धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः। यदि हम धर्म को अपनी अस्मिताओं के शिकंजे में कसकर मार डालेंगे तो स्वयं भी मर जायेंगे किन्तु यदि उसे जीवन में उतार कर सच्चे अनुयायी बनकर उसकी रक्षा करेंगे तो वह भी हमारी रक्षा करेगा।



जैनधर्म और वर्णाश्रम-व्यवस्था

पं० श्री. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

बहुतों का खयाल है कि जैनधर्म प्रवृत्ति का प्रतिषेध करके एकान्त निवृत्ति का विधान करता है। किन्तु यह धारणा चाहे किसी भी कारण उत्पन्न हुई हो, तथ्यों पर अवलम्बित नहीं है। गहराई में उतरकर विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि एकान्त निवृत्ति या एकान्त प्रवृत्ति के लिए कहीं अवकाश ही नहीं है। दोनों परस्पर सापेक्ष होकर ही रह सकते हैं। जीवन एक अविकल और अखंड वस्तु है। वह न अकेली निवृत्ति के बल पर चल सकता है और न अकेली प्रवृत्ति के सहारे। दोनों के समुचित समन्वय पर ही उसका अस्तित्व टिका है और इसी में उसकी कृतार्थता है। इसी कारण जैनाचार्यों का यह सुस्पष्ट विधान है—

अमुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।

चारित्र या सदाचार की समग्रता निवृत्ति और प्रवृत्ति के मेल से ही निष्पन्न होती है। मनुष्य जब अशुभ से-अश्रेयस् से निवृत्त होता है और शुभ-श्रेयस् में प्रवृत्त होता है, तभी वह चारित्रसम्पन्न या सदाचारी कहलाता है। प्रवृत्तिशून्य निवृत्ति अकर्मण्यता है, जीवन से इंकारी है और इसी कारण वह निष्फल है। इसी प्रकार निवृत्तिशून्य प्रवृत्ति यदि संभव हो तो भी वह किसी भी स्थिति में उपादेय और स्पृहणीय नहीं।

किसी भी धर्म के शास्त्रों का अध्ययन कीजिए। उनमें प्रवृत्ति और निवृत्ति के तत्त्व अवश्य मिलेंगे। वस्तुत. जो धर्म मौलिक और स्वतन्त्र होने का दावा करता है, उसके लिए तो यह अनिवार्य है कि वह वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के समस्त पहलुओं का विवेचन करे और जीवन की प्रत्येक अवस्था संबंधी कृत्यों-अकृत्यों का परिपूर्ण चित्र अंकित करे।

यह सत्य है कि प्रत्येक धर्म के अपने मौलिक दृष्टिकोण होते हैं, विशिष्ट दर्शन होता है और इस कारण कर्तव्य-अकर्तव्य कर्मों की मीमांसा उन्हीं के इर्द-गिर्द घूमती है और उसके ब्यौरे की बातों में हमें भिन्नता दिखलाई देती है। यद्यपि उन सब दृष्टिकोणों का तटस्थ रूप से अध्ययन और विवेचन करना

बड़ा दिलचस्प है तथापि यहाँ वह प्रस्तुत नहीं है। यहाँ तो हम वर्णाश्रम धर्म के संबंध में ही संक्षेप में विचार करना चाहते हैं और देखना चाहते हैं कि जैन परम्परा में वर्णव्यवस्था और आश्रमव्यवस्था को स्थान है अथवा नहीं ? अगर है तो उसका स्वरूप क्या है ? वह वैदिक परम्परा के समान ही है या उसमें कुछ अन्तर है ? यदि अन्तर है तो उसके मूल में क्या दृष्टिकोण है ?

वर्णव्यवस्था

समाज और व्यक्ति में वैसा ही संबंध है जैसा शरीर और उसके अंगोपांगों में। शरीर की सुरक्षा उसके अंगोपांगों की सुरक्षा पर निर्भर है और अंगोपांगों की सुरक्षा शरीर की सुरक्षा पर। आज के समाजवाद का एकान्तिक आग्रह चाहे इस तथ्य को स्वीकार न करे तथापि यह निश्चित है कि दोनों में से किसी भी एक की सुरक्षा और सुव्यवस्था को जब खतरा पैदा होता है तो दूसरा भी उसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता। इसी विचार से प्रेरित होकर आर्यजाति के मनीषियों ने प्राचीनतम काल में समाज की स्थापना के साथ ही मानवजाति को चार विभागों में विभक्त किया था। वही विभाग चार वर्णों के रूप में प्रसिद्ध हुए। इस वर्गीकरण के मूल में किसी प्रकार की उच्च-नीचता की भावना निहित नहीं थी। जैसे समस्त पारिवारिक कार्यों को सुव्यवस्थित ढंग से सम्पन्न करने के लिए चार भाई अपने कार्यों का बटवारा कर लेते हैं अथवा जैसे पति और पत्नी का कार्यक्षेत्र विभक्त होने से गृहस्थी सुचारु रूप से चलती है उनमें उत्तमता-अधमता की कल्पना नहीं होती वैसे ही समाज की सुव्यवस्था की दृष्टि से वर्ण का वर्गीकरण किया गया था। इस वर्ण व्यवस्था का संबंध सिर्फ लौकिक कर्तव्यों के साथ था। लोकोत्तर कर्तव्यों के साथ नहीं। लोकोत्तर कर्तव्यों अर्थात् आत्म साधना के क्षेत्र में वर्ण का कोई भेद नहीं था।

किन्तु देखते हैं कि कितनी ही सावधानी सतर्कता बुद्धिमत्ता और दीर्घ दृष्टि से कोई स्थापना क्यों न की जाय समय बीतने पर उसमें नाना प्रकार की विकृतियाँ आ ही जाती हैं। वर्णव्यवस्था का भी यही हाल हुआ। उसमें ऊँच नीच की भावना प्रविष्ट हुई और धीरे धीरे उसने इतना विपरीत रूप धारण किया कि वर्णव्यवस्था का असली उद्देश्य ही नष्ट हो गया। एक वर्ग ने कहा--हमारा अमुक वर्ग सर्वोत्कृष्ट और पवित्र है और दूसरा अमुक वर्ग निकृष्ट और अपवित्र है। यही नहीं उस वर्ग ने जन्मजात उत्कृष्टता और पवित्रता का भी विधान किया। अर्थात् कहा कि अमुक वर्ण की सन्तान, फिर भले ही वह असंस्कारी

और आचारहीन हो, पवित्र ही है और अमुक वर्ग की सन्तान, चाहे उच्च आचार से सम्पन्न एवं सुसंस्कृत हो, अधम ही है। साथ ही एक वर्ग की उन्नति और प्रगति के समस्त द्वार अवरुद्ध कर दिये गये और उन्हें शास्त्राध्ययन तक के अधिकार से वंचित कर दिया गया। ऐसे ऐसे विधानों को परिपुष्ट करने के लिए विपुल साहित्य की सृष्टि की गई जिसका प्रभाव अद्यावधि विद्यमान है।

जहाँ तक वर्णव्यवस्था के मूल ध्येय का सबंध है, जैन परम्परा उससे असहमत नही है। कोई भी लौकिक विधि-विधान, जिससे व्यक्ति या समाज के समीचीन विश्वास या सदाचार का विघात न हो, जैन परम्परा के लिए निषिद्ध नहीं है। जैनाचार्यों की स्पष्ट घोषणा है—

सर्व एव हि जैनानां, प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्नो, यत्र नो व्रतदूषणम्॥

जो सम्यग्दर्शन मे बाधक नही है और जिससे व्रत दूषित नहीं होते है, ऐसे सभी विधि,विधान जैनो के लिए प्रमाण है।

किन्तु वर्णव्यवस्था ने जो विकृत रूप ग्रहण किया वह किसी भी निष्पक्ष और विचारशील व्यक्ति को सन्तुष्ट नही कर सकता था। कोई भी समभावी विचारक यह सहन नही कर सकता कि दुर्गुण सद्‌गुणो पर हावी हो जाएँ और अहंकार धर्म पर विजय प्राप्त कर ले। यह भी कैसे बर्दाश्त किया जा सकता है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच ऐसी दीवारे खड़ी कर दी जाएँ कि जिससे मानव-जाति का एक वर्ग हीन समझा जाय और अपनी आध्यात्मिक प्रगति से भी वंचित कर दिया जाय? वर्णव्यवस्था में धीरे-धीरे विकार आते रहे और उसकी प्रतिक्रिया के सबंध में भी यही हुआ होगा। किन्तु ज्ञात-इतिहास में भगवान् महावीर ही प्रथम ज्योतिर्धर है, जिन्होने वर्णव्यवस्था की विकृति के विरुद्ध प्रबल प्रतिक्रिया का सूत्रपात किया और उसके मूल स्वरूप की ओर इंगित किया। उन्होंने बतलाया—

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
कम्मुणा वैसिओ होइ, कम्मुणा हवइ सुद्दओ॥

अमुक जाति की माता के उदर से जन्म लेने के कारण ही कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य या शूद्र नही होता, ब्राह्मण अथवा शूद्र होना तो उन-उन कर्तव्य कर्मों पर निर्भर है। अध्ययन-अध्यापन आदि ब्राह्मण-कार्यों को करनेवाला ब्राह्मण

ह देश की रक्षा के लिए युद्ध आदि करनेवाला क्षत्रिय है, कृषि वाणिज्य आर गोपालन करनेवाला वैश्य है आर सेवाद्वारा आजीविकानिर्वाह करनेवाला शूद्र ह।

इस प्रकार वर्णभेद को स्वीकार करके भी भगवान महावीर ने उसका सबध उच्चता–नीचता के साथ नही जोडा। इस सबध में उनका स्पष्ट कथन ह कि जीवन की महत्ता आर उच्चता तो कवल तपश्चर्या द्वारा ही प्राप्त की जा सकती ह जाति से नही। मानव में जाति की कोई जन्मजात विशेषता दृष्टिगोचर नही होती किन्तु सदाचार से प्राप्त विशिष्टता प्रत्यक्ष देखी जा सकती है—

सक्ख खु दीसइ तवोविसेसो
न दीसइ जाइविसेस कोइ ॥

एक जनाचाय जातिवाद का खोखलापन प्रकट करते हुए एक नग्नसत्य हमारे समक्ष प्रस्तुत करते ह —

अनादाविह ससारे दुर्वारे मकरध्वजे।
कुले च कामिनीमूले का जातिपरिकल्पना ? ॥

जब कि ससार प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है और कामविकार दुर्वार ह तो कौन दावा कर सकता ह कि उसके कुल में कभी किंचित भी कलक की कालिमा का स्पर्श नही हुआ ह ? आर जब यह दावा नहीं किया जा सकता तो फिर जातिवाद की कल्पना का कोई आधार ही नही रह जाता।

जनदशन के अनेक ग्रन्थों में जाति की नित्यता का सबल युक्तियों से निरसन किया गया ह।

सक्षप में मूल जन परम्परा को लौकिक सुविधा और सुव्यवस्था की दृष्टि से सामाजिक दायित्वों को सुन्दरता के साथ सपन्न करने के लिए किया गया जाति विभाग तो अस्वीकाय नहीं ह, मगर उसे उच्चता–नीचता का आधार बनाना आर उसके नाम पर दुराचार की पूजा आर सदाचार का तिरस्कार होना स्वीकार नही ह।

आश्रमव्यवस्था

अब देखना ह कि जनधर्म के साहित्य में आश्रमव्यवस्था का क्या स्थान ह ? वर्ण आर आश्रम में बहुत अन्तर ह। यह अतर उनके कर्त्तव्यों की भिन्नता के कारण ही नहीं अन्यान्य बातों में भी ह। यहाँ मुख्य रूप से आश्रमव्यवस्था की दो विशेषताए उल्लेखनीय ह—

१—वर्ण समाज के चार विभाग हैं, जब कि आश्रम एक ही व्यक्ति के जीवन के चार विभाग हैं।

२—वर्णव्यवस्था में कालिक पौर्वापर्य नहीं है, जब कि आश्रमव्यवस्था में है। अर्थात् एक व्यक्ति एक साथ चारों आश्रमों का सेवन नहीं कर सकता। एक के पश्चात् दूसरे का, इस प्रकार क्रम से ही उनका सेवन किया जाता है।

वैदिक परम्परा में आश्रमों संबंधी विपुल साहित्य है। प्रत्येक आश्रम की चर्या का अपनी दृष्टि के अनुसार वहाँ विस्तृत निरूपण किया गया है। जैन दृष्टि से इस संबंध में विचार करने से पूर्व वैदिक परंपरा की कुछ जानकारी करा देना उपयोगी है।

वैदिक परम्परा का मन्तव्य है कि मनुष्य अपने जीवन-काल के चार विभाग कर ले और एक-एक विभाग में एक-एक आश्रम की चर्या का शास्त्रोक्त विधि से पालन करे। जीवन के प्रथम चौथाई भाग में ब्रह्मचर्याश्रम में रहे और अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ गुरु के संरक्षण में विद्या और कला का अभ्यास करे और अगले जीवन की तैयारी करे।

दूसरे भाग में दारपरिग्रह करके दाम्पत्यजीवन व्यतीत करे और पितृ-ऋण से मुक्त होने के लिये पुत्र उत्पन्न करे।

तीसरे भाग में, जब बालों में सफेदी आजाय और पौत्र का जन्म होजाय तब पत्नी को पुत्रों के संरक्षण में छोड़ कर या वह चाहे तो साथ लेकर वन अंगीकार करे।

चौथे भाग में, विकारों पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करके मोक्षमार्ग की आराधना करे।

मनुस्मृति के विधान के अनुसार चारों आश्रमों का क्रमशः ही सेवन करना चाहिए—

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च, मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः ॥

—मनुस्मृति ६, ३७

अर्थात् जिसने गुरुकुल में रहकर वेदों का अभ्यास नहीं किया, गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों का पालन करते हुए सेवा आदि यज्ञ नहीं किये, ऐसा पुरुष यदि मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा करता है, अर्थात् मोक्षधर्म की साधना के लिए मुनि-संन्यासाश्रम अंगीकार करना चाहता है तो मोक्ष मिलना तो दूर, उसे नरकगति में जाना पड़ता है।

ऋषि याज्ञवल्क्य भी इसी प्रकार का विधान करते हैं—

अधीत्य वेदो जपकृत्पुत्रवानन्नदोऽग्निमान ।
शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मन: कुर्यात्तु नान्यथा ॥
—याज्ञवल्क्यस्मृति

यहाँ 'नान्यथा' कह कर याज्ञवल्क्यने यह स्पष्ट कर दिया है कि वेदाध्ययन किये बिना, पुत्रोत्पत्ति किये बिना और वानप्रस्थावस्था में रहकर यज्ञ किये बिना मोक्ष की अर्थात् यतिधर्म की अभिलाषा भी नहीं करना चाहिए।

हाँ जाबालिऋषि का अभिमत कुछ भिन्न है। उनके कथनानुसार सामान्य विधि तो यही है जो मनु और याज्ञवल्क्य ने प्ररूपित की है तथापि कोई चाहे तो प्रथम या दूसरे आश्रम से भी चतुर्थाश्रम में जा सकता है।

मनुस्मृति के अनुसार चारों आश्रमों का परिपालन केवल ब्राह्मण ही कर सकता है। 'ब्राह्मणा प्रव्रजन्ति' यही श्रुतिका विधान है। मगर किसी-किसी का कथन है कि अगर वेदाध्ययन कर लिया हो तो शूद्र के सिवाय दो वर्ण वाले भी चतुर्थ आश्रम में प्रवेश कर सकते हैं। ...प्रकार

आश्रमसंबंधी वैदिक कल्पना का यह अतिसंक्षिप्त सार है। कलक करने से प्रतीत होता है कि इस व्यवस्था में मानवजीवन के लौकिक एवं ...तता कर्तव्यों का सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। मनुष्य एक कर्तव्य के पालन में इतना निरत हो जाता है कि वह उसीमें से मूल्यवान या उससे भी अधिक महत्त्व के दूसरे कर्तव्य को विस्मृत कर... ऐसा न हो, इसीलिए यह व्यवस्था की गई है। साधारणतया मनुष्य की दृष्टि में कुछ-कुछ ऐसा ही क्रम अनिवार्य भी है। बाल्यावस्था में विद्याभ्यास ... गया क्षमता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। तत्पश्चात् यदि कोई गा...प्रवेश करता है तो उसे अपनी अवस्था के अनुकूल धर्म का आचरण कर... बात भी निर्विवाद है। और फिर अन्तिम काल में त्यागमय जीवन यापन... आत्मकल्याण की विशिष्ट साधना में संलग्न होना ही चाहिए।

जैन परम्परा में भी सामान्यतः यह क्रम अस्वीकृत नहीं है। शास्त्रों में जगह-जगह वर्णन मिलता है कि अमुक कुमार या राजकुमार जब अध्ययन के योग्य वय को प्राप्त हुआ तो उसे कलाचार्य के सुपुर्द कर दिया गया। कलाचार्य के संरक्षण में उसने विद्याओं और विविध कलाओं का अभ्यास किया।

जब वह निष्णात होकर वापिस लौटा तो उसने दाम्पत्य जीवन में प्रवेश किया। तदनंतर अनुकूल निमित्त मिलने पर संसार से विरक्ति पाकर प्रव्रज्या अंगीकार की।

इतना होते हुए भी जैनसाहित्य और जैनपरम्परा आश्रमों के उक्त क्रम को अनुल्लंघनीय नहीं मानती, जिस पर वैदिक ऋषियों ने बहुत बल दिया है। यदि कोई मुमुक्षु गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये बिना ही और पुत्र उत्पन्न किये बिना ही सीधा प्रव्रज्या अंगीकार करता है तो जैन परम्परा के अनुसार वह अधिक सराहनीय है।

जैनागमों में हमें ऐसे अनेक स्थल मिलते हैं, जहाँ उक्त वैदिक विचार-धारा का निषेध और विरोध किया गया है।

उसुयार' नगर के पुरोहित के दो पुत्र विरक्त होकर प्रव्रजित होने की अपने पिता से अनुमति माँगते हैं। पुरोहित वैदिक धर्म का पंडित है। वह कहता है—

और। इमं वय वेयविओ वयन्ति, जहा न होई असुयाण लोओ।
अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया!
से मुक्त भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था॥

ते उत्तराध्ययन १४, ८-९

तब पत्नी अर्थात् सर्वप्रथम वेदों का अध्ययन करो, ब्राह्मणों को भोजन कराओ, अंगीकार के साथ भोग भोगो और जब पुत्र उत्पन्न हो जाय तब उसे अपना उत्त-
...ाधिकारी बना कर पहले आरण्यक (वानप्रस्थ) बनो और फिर मुनि (संन्यासी)
धर्मा करे, क्योंकि वेदशास्त्र के ज्ञाताओं का वचन है कि पुत्रहीन को लोक अर्थात्
...ति की प्राप्ति नहीं होती। "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति"।
करना।

पाठक देखें कि यहाँ पुरोहित के मुख से वही तथ्य प्रकट किया गया है, तथा उल्लेख हम मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति के आधार पर पहले कर ...के हैं। इस पूर्वपक्ष का शास्त्रकार पुरोहित पुत्रों के मुख से क्या उत्तर देते ..., यह भी देखिए—

वेया अहीया न भवंति ताणं,
भुत्ता दिया निन्ति तमंतमेणं।
जाया य पुत्ता न हवंति ताणं,
को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं॥

अर्थात्—वेदों का अध्ययन कर लेने से (संयम और तपश्चर्या का आचरण किये बिना) मनुष्य का त्राण नहीं हो सकता, इसी प्रकार ब्राह्मण-भोजन करा कर भी अन्धकार से नहीं बचा जा सकता। पत्नी और पुत्र भी दुर्गति से नहीं बचा सकते। ऐसी स्थिति में कौन इन सब चीजों का अनुमोदन करेगा? पुरोहित पुत्र कहते हैं—पिताजी आप भोग भोगने और पुत्र उत्पन्न करने के पश्चात् प्रव्रज्या अंगीकार करने का परामर्श देते हैं किन्तु कौन गारंटी दे सकता है कि तब तक यह जीवन कायम रहेगा ही? कल का यहाँ तक कि पल का भी तो भरोसा नहीं है और आप लम्बे भविष्यत् की योजना प्रस्तुत कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में—

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं जस्स वऽत्थि पलायणं।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया।

उत्तराध्ययन १४–२७

मौत के साथ जिसकी मित्रता स्थापित हो चुकी हो अथवा जो मृत्यु के आने पर भाग कर बच सकता हो या जिसे न मरने का परिज्ञान हो चुका हो, वही कल पर अवलंबित रह सकता है।

अभिप्राय यह है कि मानव के जीवन की कोई नियत-मर्यादा नहीं है। प्रत्येक उम्र के मनुष्य मृत्यु के ग्रास बनते प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। ऐसी स्थिति में जो काम भोगों से विरक्त हो चुका हो और प्रव्रज्या ग्रहण की पात्रता प्राप्त कर चुका हो, उसके लिए बीच के आश्रमों में कालयापन करना क्यों अनिवार्य हो? जो श्रेयस्कर है और करने योग्य है वह आज अकर्तव्य कैसे हो सकता है? यही जैनदृष्टि का अभिप्राय है।

यहाँ एक प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि जब वैदिक ऋषि भी सन्यास (प्रव्रज्या) को सर्वोत्तम धर्म मानते हैं और भोग को हेय समझते हैं तो फिर उन्होंने पुत्रोत्पत्ति और गृहस्थाश्रम की अनिवार्यता क्यों मानी है? इस प्रश्न के दो उत्तर हो सकते हैं। प्रथम यह कि वैदिकधर्म में पिण्डदान गृहस्थ का महत्त्वपूर्ण कर्तव्य माना गया है। पुत्र द्वारा प्रदत्त पिण्ड से पितरों को तृप्ति होती है। पुत्र के अभाव में पितरों को पिण्ड नहीं मिल सकता। अतएव पुत्र उत्पन्न करना पितृ-ऋण चुकाना है। दूसरा उत्तर अनुमान पर अवलंबित है। संभव है भारत वर्ष में महाभारत जैसे युद्ध के कारण पुरुषप्रजा की संख्या में

भारी कमी हो गई हो, जैसी कि प्रथम महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी में हो गई थी और ऐसी परिस्थिति में राष्ट्र की उस न्यूनता को पूर्ण करने के लिए अथवा किसी काल में अनाथ-सनाथ बढ़ती हुई सन्यासियो की सख्या को और सन्यास ग्रहण की प्रवृत्ति को नियंत्रित करने के लिए इस प्रकार का विधान बनाना पड़ा हो।

जैनशास्त्रो में ऐसा कोई युगसापेक्ष प्रयत्न दृष्टिगोचर नही होता। वहाँ गृहस्थाश्रम को 'घोराश्रम' कहकर अनुत्साहित करने की युगनिरपेक्ष प्रवृत्ति ही देखी जाती है जो लोकोत्तर शास्त्र की प्रवृत्ति के अनुकूल ही है।

एक प्रश्न और शेष रह जाता है। वह यह कि वैदिक धर्म के वानप्रस्थ और सन्यास नामक दो आश्रमो की तुलना जैन परम्परा में किस प्रकार की जा सकती है? उत्तर यह है कि वैदिक साहित्य में उक्त दोनो आश्रमो की जो चर्या प्रतिपादित की गई है, वह जैन धर्म में प्रतिपादित श्रावक और साधु की चर्या से कई बातो में भिन्न है और उसमें दृष्टिकोण का मौलिक अन्तर भी दिखलाई देता है, तथापि सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उसकी सगति प्रतिमाधारी श्रावक और साधु जीवन के साथ दिखलाई जा सकती है। प्रतिमाधारी श्रावक सासारिक कार्यों से निवृत्त होने पर भी गृहस्थ की कोटि में ही गिना जाता है। इसी प्रकार वानप्रस्थ भी यद्यपि गृह-त्याग कर अरण्य की शरण ग्रहण करता है, तथापि वह यति या प्रव्रजित नही कहलाता। सन्यासाश्रम तो जैनधर्म का साधु-जीवन ही है। यद्यपि दोनो की साधनाविधि एव चर्या में पर्याप्त अन्तर है।

विषय बहुत व्यापक है, अतएव सक्षेप का विचार रखने पर भी कुछ विस्तार हो गया है। आशा है, इससे पाठको को वर्णाश्रम संबंधी जैन दृष्टिकोण समझने मे सहायता मिलेगी।



साधु-मार्ग—मुक्ति-मंजिल—सिद्धि !

पं० श्री सूरजचन्द्रजी सत्य प्रेमी (डांगीजी)

मुक्तिमंजिल की सिद्धि करने के लिये अर्थात् संपूर्ण स्वातन्त्र्यरूप सिद्ध-स्थानकी उपलब्धि के लिये एक ही साधु मार्ग है यह निर्विवादरूप से शाश्वत सत्य माना गया है । वह सीधा रास्ता क्या है? इसे जानना, मानना और पालना ही हमारा परम धर्म है ।

साधुमार्ग को जानकर उसे मान्य करना और उसीका ध्यानपूर्वक अमल करना ही सम्यक चारित्र के नाम से प्रख्यात है । वाचकमुख्य उपाध्याय शिरोमणि भगवन्त श्री उमास्वामीजी महाराज के सब मान्य मोक्ष शास्त्रका यह मंगल सूत्र सर्वत्र प्रसिद्ध है—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग

अब हमें यह विचार करना है कि क्या जानना ? क्या मानना ? और क्या पालन करना ? जिससे हमारा लक्ष्य सिद्ध हो सके साधना सफल हो सके ।

धर्म के स्वरूप में निग्रंथ के प्रवचन ही ज्ञेय है श्रेय है और ध्येय है । इसीलिये निरंतर साधु मार्ग के लिये उपादेय हैं । उन्हीं को जानें मानें और पालें । वचन तो हम सभी बोलते हैं परन्तु प्रवचन वे ही कहे जा सकते हैं जो निग्रंथ के हों जिनके हृदय में रागद्वेष की ग्रंथि है संग्रह परिग्रह की गांठ है, उनके वचनों का साधु मार्ग में कोई मूल्य नहीं ।

जिनमें राग हो वे दोष नहीं देख सकते और जिनमें द्वेष हो वे गुण नहीं देख सकते गुण और दोष का ठीक ठीक विवेक करने के लिये वीतराग जिनदेव ही एक मात्र समर्थ है । निष्पक्ष निग्रंथ पुरुषोत्तम ही सम्यक निर्णय करनेवाले शासक हैं और उनका निर्णय ही साधु मार्ग कहला सकता है ।

जैन जयति शासनम् जिन शासन की विजय ही होती है । जैन-शासन द्वारा अर्थात् साधुमार्ग द्वारा सभी धर्मों, सभी दर्शनों और सभी समाजोंपर ठीक ठीक सुशासन हो सकता है । जो लोग जैन धर्म जैन दर्शन और जैन समाज को अलग समझकर संकुचित भाव फैलाते हैं वे शासन या न्यायाधीश को वादी प्रतिवादी या वकीलों के कठघरे में खडा करने का अपराध करते हैं । जिन्होंने

अपनी इंद्रियो और अपने मनके विकारोपर विजय प्राप्त किया है-जिन्होंने बुद्धिकी अस्थिरता दूर की है, वे ही दूसरो को बंधन-मुक्त कर सकते हैं। जो खुद बँधा हुवा है वह दूसरो को कभी नही खोल सकता।

'मुत्ताण मोअगाण॥'

जो स्वयम् मुक्त है वही दूसरो का बंधन छुड़ा सकता है।

कपडो का मैल दूर करने के लिये जैसे साबुन, पानी और धोने की किया आवश्यक है उसी प्रकार मन का मैल दूर करने के लिये भी ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य रूप साधुमार्ग की आवश्यकता है। जिस प्रकार पानी के लिये बिना हजारो टन साबुन से भी मैल दूर नही हो सकता उसी प्रकार श्रद्धा के बिना जिन-प्रवचनो को माने बिना हजारो शास्त्रो का प्रवचन सुनने जानने से भी कल्याण नही हो सकता। जिस प्रकार बिनासाबुन से केवल पानी से ही मैल दूर हो सकता है (चाहे चमक कम ही क्यो न हो) उसी प्रकार बिना शास्त्र पढे भी सम्यक् श्रद्धापूर्वक आचरण से बंधन छूट सकता है। परन्तु कपडे धोने की क्रिया अनिवार्य आवश्यक है उसी तरह आचरण की सपूर्ण जरूरत है।

अब हम यह सोचे कि साधु-मार्ग का मुकाम क्या है ? आखिर पता लिखे बिना इबारत बराबर भी हुई तो भी पत्र भ्रमता फिरेगा। उसी प्रकार जब तक हमें यह मालूम नही है कि हमारी साधना का साध्य क्या है ? यानी हमें कहाँ पहुँचना है ? तब तक हमारा साधुमार्ग भी चक्कर ही समझना चाहिए। उसको 'साधमार्ग' कहना ही गलत होगा। बिना पतेका भ्रमता हुआ वह पत्र जिस प्रकार डेड लेटर आफिस (रद्दी के सरकारी टोकरे) में जाता है, उसी प्रकार साध्यरूप सिद्धि या मोक्ष के स्वरूप का पता न हो तो साधुमार्ग की सारी क्रियाएँ रद्द कहना ही ठीक होगा, इसलिये पहले हम निर्णय करले कि हमारी मंजिल-मुक्ति क्या वस्तु है, जिसे हमें प्राप्त करना है।

मुक्ति का अर्थ है-छूटना। किससे छूटना ? हमको किसने बाँधा है ? क्या सचमुच हम बँधे हुए हैं ? कहाँ से बँधे हुए हैं ? कबसे बँधे हुए हैं ? यह सब साफ साफ समझे बिना कैसे छूटें ? किससे छूटें ? किस क्रम से छूटें यानी कब छूटें ?

अनन्त सन्तो के अनुभवो में से हमें यह एक ही आवाज सुनाई दे रही है कि शुद्ध पारमार्थिक परम निश्चय की दृष्टि से आत्मा शुद्ध-बुद्ध और मुक्त ही

है। स्वरूपतः उसमें बंधन है ही नहीं फिर भी व्यावहारिक पर्याय दृष्टि से हम स्वयं अपनी मिथ्यात्वमयी वभाविक धारणा से अनादिकाल से बद्ध हैं। उस मिथ्यात्वमयी धारणा से छूटना ही सम्यग् दर्शन है। जो साधुमार्ग में प्रथम कदम है। वीतराग जिनदेव के शासन में द्रव्य गुण और पर्याय का विचार करके सिद्धान्त का निश्चय करना ही मुक्ति–मंजिल और आगे बढ़ना है। गुण और पर्याय के बिना द्रव्य का अस्तित्व ही सिद्ध नहीं हो सकता। यहाँ तक कि द्रव्य की सत सिद्धि के लिए नास्तित्वगुण को भी स्वीकार करके ही यथार्थ बोध किया जा सकता है।

परिवर्तन के बिना एक क्षण के असंख्यातवें जितने समय के लिए भी द्रव्य की स्थिति नही मानी जाती अर्थात समय समय निरंतर अवस्थाओं का क्रमिक विकास शाश्वत है। गहना टूटनेपर भी सोना ध्रुव रहता है पर उसकी अवस्थाएं बदलती ही रहेगी। कड़ा तोड़कर कुंडल बनाया गया परन्तु सोने को छोड़कर कड़ा और कुंडल ये दोनों ही कुछ नही। कड़ा और कुंडल तो आप ले लें और सोना हम दें ऐसा कभी हो सकता है ? कंडल की उत्पत्ति हुई कड़े का नाश हुआ पर कड़े और कुण्डल के उत्पाद और व्यय के समय भी सोना तो ज्यों का त्यों रहा। उसी प्रकार हमारी आत्मा व्यावहारिक पर्याय दृष्टि से अनंत अवस्थाएँ धारण करने पर भी सदा परम स्वभाव में नित्य अवस्थित है।

इस प्रकार ध्रुव आत्मस्वभाव की तरफ दृष्टि डालने से ही हम सार्वत्रिक और सार्वकालिक सब तरह से संपूर्ण निर्भय होकर मुक्ति–मंजिल की तरफ सतत प्रगति कर सकते हैं।

रात होनेपर क्या कभी हम रोते हैं ? नहीं। क्यों कि प्रातःकाल सूर्योदय होने वाला है–यह हमें पूरा विश्वास है। इसलिए काम करना हो तो दीपक लगा लेते हैं और सूर्योदय की प्रतीक्षा करते हैं उसी प्रकार दुःख आने पर या मोक्ष मार्ग में विघ्न की अवस्था आने पर शक्ति के अनुसार पुरुषार्थ का दीपक जलाना चाहिए और यह विश्वास करना चाहिए कि आनन्द का सूर्योदय निश्चय होनेवाला है। क्योंकि कोई भी पर्याय एक अवस्था में सदा रहता नहीं है। जिस प्रकार आंखोंका नित्य नया श्रृंगार रुचिकर होता है, उसी प्रकार द्रव्य की भी नित्य नई पर्याय रुचिकर होनी चाहिए। उन पर्यायों में अरुचि होना ही राग–द्वेष का जनक है। भोजन के समय केवल मधुर ही मधुर रुचिकर नहीं होता उचित

परिमाण में खट्टा, खारा और तीखा भी—यहाँ तक कि ठीक तरह से बनाया हुआ कड़ुए स्वभावका करेला भी अच्छा लगता है, उसी प्रकार आत्मा की पर्यायों में भी एक ही तरह की पर्याय सदा सुन्दर नहीं लग सकती।

एक ही रसका नाटक कभी पसन्द नहीं किया जा सकता। नाटक में करुण रस भी अच्छा माना जाता है। करुण रस का अभिनय देखते-देखते कभी-कभी हम रोने लग जाते हैं। हास्यरस में हृदय हिलता है—शृंगार रस में दिल हिलता है, वीर रस में चित्त फलता-फूलता है और शान्त रस में मन मिलता—जुलता है किंतु करुण रस में अन्तःकरण पर इतना असर होता है कि मानो वह निचुड़ रहा हो और उसका सारा मैल धुल रहा हो। नाटक के बाहर आने पर हम कहते हैं कि आज तो इतना अच्छा अभिनय देखा कि रोना आ गया। उसी प्रकार निर्लिप्त शुद्ध-बुद्ध मुक्त शाश्वत आत्मदृष्टि करने पर घोर से घोर विपत्ति की अवस्था में भी करुण रसामृत के पान का आनन्द लिया जा सकता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण अवस्थाओं में आनन्द लेते हुए आत्मा के त्रैकालिक मुक्त स्वभाव पर दृष्टि जम जाय तो परम सन्तोष प्राप्त होता है और धीरे-धीरे निर्मोहता, कैवल्य और सिद्धि की परम शुद्ध अवस्था भी प्रकट हो सकती है।

लिखे हुये अक्षर पोछने से उनका अर्थ पोछा जा सकता है? नहीं। इसी प्रकार पर्यायों का उत्पाद व्यय होते रहने से क्या मूल द्रव्य का नाश किया जा सकता है? कदापि नहीं।

राजा सोया क्या और जागा क्या? प्रजा के काम उसकी सत्ता में ही चलते हुये कहलाएँगे, उसी प्रकार आत्मा स्वभाव में रहा तो क्या और विभाव में रहा तो क्या? उसकी सत्ता के बिना कभी नहीं चल सकता। अगर आत्मा अपने शाश्वत स्वभाव को जानता मानता रहे तो उसका विभाव भी वैभव कहला सकता है।

योगेश्वर श्रीकृष्ण की दृष्टि निरंतर त्रैकालिक आत्मस्वभाव को ही जानती-मानती थी, इसलिए उनका सारा विभाव भी वैभव ही कहला रहा है, उसी प्रकार हम भी सम्यग्दृष्टि बनकर अपने शाश्वत मुक्त स्वभाव का भान रखेंगे तो वर्तमान पर्याय की विभाव-दशा में भी वैभव का मजा ले सकेंगे और जन्म-मरण करते हुए भी आनद घनजी के स्वर में स्वर मिलाकर गा सकेंगे—

"अब हम अमर भये न मरेंगे"
या कारण मिथ्यात्व दियो तज अब देह ना धरेंगे।

यही भावना दृढ़ हुई-सम्यक हुई-निर्मल हुई कि मुक्ति मंजिल की तरफ मुंह हो गया। फिर आप शक्ति के अनुसार जितनी जल्दी चलेंगे उतनी जल्दी पहुंच सकेंगे'

दूसरा कदम है क्रोध, मान, माया और लोभ के त्याग का विशेष अभ्यास। इसे सागार धर्म कहा जाता है। परिग्रह का सर्वथा त्याग तीसरा कदम है, जो साधुमार्ग में अनगार धर्म कहलाता है। मोह का सर्वथा त्याग चौथा कदम है, जो वीतराग धर्म कहलाता है। अज्ञान का सर्वथा त्याग पांचवा कदम है जो कैवल्य धर्म कहलाता है और जब यह साक्षात् अनुभूति हो जाती है कि जड़ तत्त्वों के साथ हमारा कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं है तब छठा कदम धरते ही अयोगी अवस्था आ जाती है और सातवें कदम में मन वचन और काया की सारी प्रवृत्तियां शान्त हो जाती हों तो मुक्ति की मंजिल प्राप्त हो गई।

हमें अपना विवेक कर लेना चाहिए कि हम कहां हैं? मिथ्यात्व अव्रत प्रमाद कषाय और योग रूप पांच आश्रवों का परित्याग ही मुक्ति है। झूठी समझ का त्याग मिथ्यात्व का त्याग है। दुराचार का त्याग अव्रत का त्याग है असावधानी का त्याग प्रमाद का त्याग है। राग-द्वेष का त्याग कषाय का त्याग है और अन्त में मन, वचन काया की सम्पूर्ण प्रवृत्तियों का त्याग योग का त्याग है जो आत्मा की शुद्ध बुद्ध पर्याय है।

इस तरह हमें गुणस्थान क्रम की अन्तिम अवस्था में योग का त्याग कहीं नहीं बताया। विषय कामगुण कषाय और प्रमाद आदि का त्याग तो स्थान-स्थान पर बताया गया है पर भोग के त्याग का विधान कहीं नहीं। श्री महावीर प्रभु ने अपने उत्तर काल के उत्तर-अध्ययन में 'सल्ल कामा विस कामा कामा आसी-विसोवमा' शब्द फरमाये हैं पर सल्ल भोगा विस भोगा' आदि कहाँ कहा? जैन-शासन में भोग के अंतराय का त्याग तो स्पष्ट कहा गया है क्योंकि भोग में बाधक अंतरायकर्म के नाश हुए बिना कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। सिद्ध स्थिति में मानो मुक्ति की मंजिल पर अनन्त काल तक स्वतंत्र आत्मा का अचिन्त्य मतीन्द्रिय भोग चलता है। यह भौतिक देह भी हमारे उस भोग में अन्तराय रूप होने से उसके दूर करने की विधि बताई है। सांसारिक अवस्था में शारीरिक आवरण रहने से हमारे अपने सहज स्वाभाविक भोग में विघ्न पड़ते हैं। मीराबाई कहती है —

पचरंग चोला पहन सखी।
मैं झिरमिट रमवा जाती।
झिरमिट में मारो मोहन मिलियो,
खोल रमूं तन–गाती॥
मैं गिरिधर के रंग राती॥

शुद्ध आत्मस्वभाव के भोगों में रमण करना चाहनेवाली मीरा तन रूपी गाती (आवरण) को सहन नहीं कर सकती और यही चाहती हैं कि मोह–रहित आत्मस्वरूप "मोह–न" से अनन्तकाल तक रमण करती रहूँ। यह भक्ति की ऐसी मदिरा पीना चाहती है कि फिर कभी होश में ही न आयें। इसी भोग को शास्त्रों में आत्मरति, आत्मक्रीडा और आत्मानन्द के पवित्र नाम से कहा जाता है।

कोई तो सखी मद पी–पी माती मैं बिनपियां ही माती।
भक्ति-भटीको मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन-राती॥
पीना हराम है न पिलाना हराम है।
पीने के बाद होश में आना हराम है॥

भक्ति की भट्टी में से निकली हुई यह मदिरा पीकर फिर परतन्त्रता की इच्छा नहीं होती, क्योंकि सच्चा भक्त कभी परमआत्मा के भोग से विभक्त नहीं हो सकता। फिर उसे भोग के लिए कहीं भटकना नहीं पड़ता–आवागमन नहीं करना पड़ता। मीरा कहती है––

कोई का पिया परदेशबसत है,
लिख लिख भेजे पाती।
मेरो पिया मेरे हृदय बसत है,
नहीं कहिं आती-जाती। मैं गिरिधर के रंगराती॥

अब आप समझ सकते हैं कि आत्मतत्त्वज्ञानी भक्तजन किस प्रकार का उन्नत भोग चाहते हैं। इसलिए अगर अन्तिम मंजिल मुक्ति में ऐसे आनन्द का भोग अनन्तकाल तक न रहे तो किस बुद्धिमान् का उस ओर आकर्षण हो सकता है? श्री हेमचन्द्राचार्य देव ने वैशेषिकों की मुक्ति का खण्डन करते हुए सिद्ध अवस्था के अनन्त भोग का यत्र तत्र सुन्दर वर्णन किया है।

जब एक व्यक्ति के साथ कुछ समय के लिये निरावरण होकर मिलने पर हमें इतने आनन्द का भोग! तो फिर अनन्त द्रव्यों के अनन्तानन्त गुणों की

संपूर्ण पर्यायों के साथ युगपत अनन्तकाल तक निरावरण रूप से मिले रहने की शुद्ध सिद्ध पर्याय प्राप्त करने पर कितना अधिक आनन्द का भोग मिलता होगा? इसकी कल्पना से ही हमारा मन आनन्द से भर जाता है और उसके लिये हम विषय कषाय, प्रमाद और योग आदि के जरिये प्राप्त होने वाली सुविधाओं का बलिदान करने के लिए क्यों न तत्पर होंगे? अज्ञान अवस्था में सुषुप्ति के समय विषय कषाय और अहंकार के दबने मात्र से हमें रात्रि में इतनी शांति का भोग मिलता है कि जिसके बल पर हम जागृति में उत्साहपूर्वक कर्तव्य कर्म कर सकते हैं तो ज्ञान अवस्था में विषय कषाय आदि के सर्वथा निर्मूल होने पर मुक्ति मंजिल के सम्पूर्ण सुखोपभोग को प्राप्त करने के लिए ज्ञान दर्शन चारित्र रूप साधु मार्ग में तत्परतापूर्वक बढ़ने के लिए उमंग के साथ शुद्ध कर्तव्य क्यों न करेंगे? अवश्य करेंगे।

मैं अपने हृदयसरोवर की समस्त तरंग-मालाओं को लेकर यह भावना अभिव्यक्त करता हूं कि हम सब साधुमार्ग को जानकर-मानकर यथाशक्ति उस पर चले बढ़ें। विघ्न आयें तो घबरायें नहीं और धीरे-धीरे अपने मंजिले मक-सूद मुक्ति को उपलब्ध करें। साधु का रास्ता और सिद्धि का मुकाम-साधुमार्ग और सिद्धिस्थान सब के लिये सदा सदा सर्वथा परम मंगल हैं।



भिन्न एवं स्वतंत्र है। उसी प्रकार वर्तनालक्षण का साम्य होते हुए भी प्रत्येक काल भिन्न–भिन्न है। यह काल अणुरूप है, अस्तिकायरूप नहीं।

काल को अस्तिकायरूप न मानकर अणु रूप मानना कहाँ तक युक्तिसंगत है, इस पर जरा विचार करें। काल को अणुरूप सिद्ध करने के लिए एक हेतु यह दिया जा सकता है कि वस्तु के प्रत्येक अवयव (प्रदेश अथवा अंश) का परिवर्तन स्वतंत्र है अतः काल का प्रत्येक अणु स्वतंत्र है। इस हेतु में दो दोष हैं। पहला यह कि अवयवों में स्वतंत्र परिवर्तन के होते हुए भी जब वस्तु एक अवयवी के रूप में रह सकती है तो कालाणु एक अवयवी (अस्तिकाय) के रूप में क्यों नहीं रह सकते? दूसरा यह कि परिवर्तन प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक अंश (प्रदेश) में होता है। पुद्गल द्रव्य के अनन्त प्रदेश हैं। इसी प्रकार सभी आत्माओं के अनन्त प्रदेश हैं। ऐसी स्थिति में असंख्यात–प्रदेश–प्रमाण वाला काल अनन्त प्रदेशों में परिवर्तन कैसे कर सकता है? जहाँ तक असंख्य प्रदेशवाले आकाश (लोकाकाश) में अनन्त प्रदेशों के रहने का प्रश्न है यह बात किसी तरह मान भी ली जा सकती है कि परस्पर व्याघात के बिना दीप–प्रकाश की भाँति उनका रहना संभव है। परिवर्तन ऐसी चीज नहीं कि एक कालाणु एक से अधिक अंश में परिवर्तन कर सके। इस दोष को दूर करने के लिए यह माना गया है कि काल आकाश (लोकाकाश) के प्रत्येक प्रदेश पर स्थित है न कि आत्मा या पुद्गल के प्रत्येक प्रदेश पर जब आकाश (लोकाकाश) के प्रत्येक प्रदेश पर। कालाणु का अस्तित्व माना गया तो फिर आकाश की तरह काल को अस्तिकाय (अवयवी) क्यों नहीं माना गया? यदि यह कहा जाय कि आकाश का धर्म अवकाशदान (स्थान देना) है और अवकाश में कोई भेद या विभिन्नता नहीं होती। काल का धर्म वर्तना–परिवर्तन है। इसमें अत्यधिक विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। यदि काल आकाश की ही भाँति अस्तिकाय (अखंड अवयवी) होता तो परिवर्तन में विभिन्नता दृष्टिगोचर न होती। इसीलिए प्रत्येक कालाणु स्वतंत्र रूप से सत् है। यह समाधान युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होगा। परिवर्तन की विभिन्नता अथवा विलक्षणता का कारण काल न होकर पदार्थ स्वयं है। विभिन्नता अथवा विलक्षणता से काल का कोई सम्बन्ध नहीं। यह तो पदार्थ का निजी धर्म है। जैसे पदार्थों में विलक्षणता है वैसे ही इनके परिवर्तनों में भी विलक्षणता होती है। यह विलक्षणता काल को अस्तिकायरूप मान कर भी सिद्ध की जा सकती है। विश्वास है इस विश्लेषण से जैन विद्वानों को इस दिशा में कुछ विचार करने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

पुरुषार्थ

लेखक— शान्तिलालजी जैन वकील मुजालपुर

इस परमवैज्ञानिक उपग्रहयुग में पुरुष अपने सभी काम यन्त्रो के द्वारा करके अपने लिए केवल अकर्म-स्थिति उत्पन्न करने का ही प्रयास करता प्रतीत होता है। जैन सिद्धात-समत काल-विभाग में जो युगलिया-काल था वह भी अकर्म काल ही था। किंतु प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या आज का विज्ञान उसी ओर प्रयास कर रहा है ? विश्व मे खनिज पदार्थों का दिनो-दिन ह्रास होता जाता है। प्राचीन-काल में स्वर्णमय नगर--- लंका और द्वारका— के वर्णन तो अवश्य पढने को मिलते है किंतु आज का विज्ञान अपने विकास की उन्नत अवस्था में भी कुछ लौह नगर ही निर्मित कर सका है। स्वर्ण-नगर तो स्वप्न ही है। क्या इसका कारण यह नही है कि निरतर विकासशील मानव अपना मूल गुण मनुष्यत्व खो बैठा है और वह केवल भौतिक वस्तुओ के पीछे लक्ष्यहीन होकर अपने निजगुण को भूल कर चक्कर लगा रहा है ? मानव की इसी अन्तहीन खोज के लक्ष्य को विश्राम देने के लिए इस संसार में महापुरुषो का प्रादुर्भाव होता आया है। प्रत्येक महापुरुष की अपनी स्वतन्त्र परिधि होती है और उसी के आस पास उनके द्वारा निर्धारित सत्यान्वेषण के मार्ग की मृगवीथिका प्रकाशमान रहती है। विश्व के निराश मानव को अपनी शक्ति से मुक्त कराने का कुछ महापुरुष मानव की चेष्टा और पात्रता की सीमा का अंकन किये बिना पात्र के अपनी शरण में आने मात्र से सर्व पाप-मुक्ति का विश्वास दिलाते हुए 'मामेक शरण व्रज" का उपदेश देते है। कही कही अपनी तपस्या और साधना की शक्ति से अथवा अपनी योगसाधना की शक्ति का दान करके कुछ व्यक्तियो को अक्षय कल्याण

शक्तिमान के द्वारा-किसी समर्थ गुरु द्वारा किसी

ने की बात भी कभी-कभी सुनी गई है।

भावुक मनुष्यो पर महान् आत्माओ द्वारा की गई

ते है, किन्तु जहाँ सामूहिक कल्याण और सामूहिक

उत्पन्न होता है वहाँ प्राय सभी धर्मों में केवल

कि मनुष्य को स्वय अपने आप ऊँचा उठने और

भिन्न एवं स्वतंत्र है। उसी प्रकार वर्तनालक्षण का साम्य होते हुए भी प्रत्येक काल भिन्न-भिन्न है। वह काल अणुरूप है, अस्तिकायरूप नहीं।

काल को अस्तिकायरूप न मानकर अणु रूप मानना कहाँ तक युक्तिसंगत है इस पर जरा विचार करें। काल को अणुरूप सिद्ध करने के लिए एक हेतु यह दिया जा सकता है कि वस्तु के प्रत्येक अवयव (प्रदेश अथवा अंश) का परिवर्तन स्वतंत्र है अतः काल का प्रत्येक अणु स्वतंत्र है। इस हेतु में दो दोष हैं। पहला यह कि अवयवों में स्वतंत्र परिवर्तन के होते हुए भी जब वस्तु एक अवयवी के रूप में रह सकती है तो कालाणु एक अवयवी (अस्तिकाय) के रूप में क्यों नहीं रह सकते? दूसरा यह कि परिवर्तन प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक अंश (प्रदेश) में होता है। पुद्गल द्रव्य के अनन्त प्रदेश हैं। इसी प्रकार सभी आत्माओं के अनन्त प्रदेश हैं। ऐसी स्थिति में असंख्यात-प्रदेश-प्रमाण वाला काल अनन्त प्रदेशों में परिवर्तन कैसे कर सकता है? जहाँ तक असंख्य प्रदेशवाले आकाश (लोकाकाश) में अनन्त प्रदेशों के रहने का प्रश्न है यह बात किसी तरह मान भी ली जा सकती है कि परस्पर व्याघात के बिना दीप-प्रकाश की भाँति उनका रहना संभव है। परिवर्तन ऐसी चीज नहीं कि एक कालाणु एक से अधिक अंश में परिवर्तन कर सके। इस दोष को दूर करने के लिए यह माना गया है कि काल आकाश (लोकाकाश) के प्रत्येक प्रदेश पर स्थित है न कि आत्मा या पुद्गल के प्रत्येक प्रदेश पर। जब आकाश (लोकाकाश) के प्रत्येक प्रदेश पर। कालाणु का अस्तित्व माना गया तो फिर आकाश की तरह काल को अस्तिकाय (अवयवी) क्यों नहीं माना गया? यदि यह कहा जाय कि आकाश का धर्म अवगाहदान (स्थान देना) है और अवगाहन में कोई भेद या विभिन्नता नहीं होती। काल का धर्म वर्तना-परिवर्तन है। इसमें अत्यधिक विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। यदि काल आकाश की ही भाँति अस्तिकाय (अखंड अवयवी) होता तो परिवर्तन में विभिन्नता दृष्टिगोचर न होती। इसीलिए प्रत्येक कालाणु स्वतंत्र रूप से सत् है। यह समाधान युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। परिवर्तन की विभिन्नता अथवा विलक्षणता का कारण काल न होकर पदार्थ स्वयं है। विभिन्नता अथवा विलक्षणता से काल का कोई सम्बन्ध नहीं। यह तो पदार्थ का निजी धर्म है। जैसे पदार्थों में विलक्षणता है वैसे ही इनके परिवर्तनों में भी विलक्षणता होती है। यह विलक्षणता काल को अस्तिकायरूप मान कर भी सिद्ध की जा सकती है। विश्वास है इस विश्लेषण से जैन विद्वानों को इस दिशा में कुछ विचार करने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

पुरुषार्थ

लेखक-- शान्तिलालजी जैन वकील शुजालपुर

इस परमवैज्ञानिक उपग्रहयुग में पुरुष अपने सभी काम यत्रों के द्वारा करके अपने लिए केवल अकर्म--स्थिति उत्पन्न करने का ही प्रयास करता प्रतीत होता है। जैन सिद्धात-समत काल--विभाग में जो युगलिया--काल था वह भी अकर्म काल ही था। किंतु प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या आज का विज्ञान उसी ओर प्रयास कर रहा है ? विश्व में खनिज पदार्थों का दिनों-दिन न्हास होता जाता है। प्राचीन--काल में स्वर्णमय नगर---लका और द्वारका--- के वर्णन तो अवश्य पढने को मिलते हैं किंतु आज का विज्ञान अपने विकास की उन्नत अवस्था में भी कुछ लौह नगर ही निर्मित कर सका है। स्वर्ण-नगर तो स्वप्न ही है। क्या इसका कारण यह नही है कि निरंतर विकासशील मानव अपना मूल गुण मनुष्यत्व खो बैठा है और वह केवल भौतिक वस्तुओ के पीछे लक्ष्यहीन होकर अपने निजगुण को भूल कर चक्कर लगा रहा है ? मानव की इसी अन्तहीन खोज के लक्ष्य को विश्राम देने के लिए इस संसार में महापुरुषो का प्रादुर्भाव होता आया है। प्रत्येक महापुरुष की अपनी स्वतत्र परिधि होती है और उसी के आस पास उसके द्वारा निर्धारित सत्यान्वेषण के मार्ग की वृत्तवीथिका प्रकाशमान रहती है। विश्व के निराश मानव को अपनी शक्ति से मुक्त कराने का कुछ महापुरुष मानव की चेष्टा ओर पात्रता की सीमा का अंकन किये बिना पात्र के अपनी शरण में आने मात्र से सर्व पाप--मुक्ति का विश्वास दिलाते हुए "मामेक शरण व्रज" का उपदेश देते है। कही कही अपनी तपस्या और साधना की शक्ति से अथवा अपनी योगसाधना की शक्ति का दान करके कुछ व्यक्तियो को अक्षय कल्याण प्राप्त कराते कहे गये हैं किंवा शक्तिमान के द्वारा--किसी समर्थ गुरु द्वारा किसी पात्र को शक्ति--सपन्न किये जाने की बात भी कभी-कभी सुनी गई है।

ये समस्त बाते कतिपय भावुक मनुष्यो पर महान् आत्माओ द्वारा की गई कृपाविशेष के उदाहरण हो सकते है, किंतु जहाँ सामूहिक कल्याण और सामूहिक श्रेयस् के अनुसधान का प्रश्न उत्पन्न होता है वहाँ प्राय सभी धर्मों में केवल एक ही बात सुनाई पड़ती है कि मनुष्य को स्वय अपने आप ऊँचा उठने और

विकास करने की प्रवृत्ति अपनानी होगी। यहाँ विचारणीय बात यह हो जाती है कि यदि प्रत्येक मनुष्य को अपने विकास के लिए अपना ही प्रयास करना है तो भगवत्कृपा, अकारणदया और करुणा सागरता की जो विशाल मनोरम कल्पना है क्या उसका सहारा लेकर मनुष्य आगे बढ़ सकता है? या उसे अपने ही पैरोंपर खड़े होकर ज्ञानमार्ग पर चलना होगा? ज्ञानमयी भक्ति और भक्तिमय ज्ञान में किस को आधार मानकर मनुष्य आगे बढ़ सकता है? यह प्रश्न चिरकाल से चिन्तन का विषय रहा है। जैन सिद्धांत का मूल मंत्र है "पढमं णाणं"। बिना ज्ञान के मुक्ति का मार्ग खुल नहीं सकता। निरक्षर बालक जब सर्वप्रथम बोलना सीखता है तब उसकी वाणी अज्ञानमयी होने के कारण न तो स्वयं उस बालक द्वारा अभिप्रेत अर्थ का बोध कराती है और न उस बालक को ही अज्ञान के कारण अन्यजनों के द्वारा निवेदित वाक्यार्थों के अर्थ की प्राप्ति ही होती है। अपने अभीष्ट आशय को प्रगट करने की और अन्योक्त वाक्यों के आशय को ग्रहण करने की उत्कट अभिलाषा—भक्ति होते हुए भी ज्ञान के अभाव में वह सफल नहीं होती है। इसी प्रकार सम्यक्ज्ञान के अभाव के कारण ही विज्ञानमय—विश्व ज्ञानी यह विश्व कल्याणकर और अकल्याणकर मार्ग का चयन करने में अक्षम होने से उपग्रह युग में प्रवेश कर गया है और अपने उस लक्ष्य को भूल गया है जिसकी ओर महापुरुष चिरकाल से इंगित करते रहे हैं।

जैन सिद्धांत में इस द्वंद्व को मिटाने का स्पष्ट निर्देश किया गया है। जीव द्वारा जो अनादिकाल से कर्म-बंध होता आया है उसको पूर्णतया भोगे बिना अथवा पाप और पुण्य हिसाब का चुकता हुए बिना जीव आवागमन से मुक्त नहीं हो सकता न वह निर्बन्ध ही हो सकता है। इस विशिष्ट सिद्धांत के आधार पर जो जैन सिद्धांत की इमारत खड़ी है वह अडिग है। विश्ववंद्य भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के समय स्वयं देवराज इन्द्र ने आकर जब उन से प्रार्थना की कि वे अपना आयुष्य दो घड़ी कम करलें तो तीर्थंकर महाराज ने स्पष्ट निषेध करते हुए 'न भूतो न भविष्यति' फरमाया और कहा कि चाहे भस्मग्रह का प्रभाव कुछ भी क्यों न हो? कर्म प्रभाव को मिटाया नहीं जा सकता। जब यह अविचल सिद्धांत है कि कर्मों का लेखा जोखा जीवात्मा को स्वयं अपने ही प्रयास से बराबर करना पड़ता है, तब किसी तपस्वी द्वारा अपनी तपस्या के फल का दान करने से या किसी महान् आत्मा की कृपा से मोक्ष प्राप्ति की बात सहज ही असमंजस में डाल देनेवाली हो जाती है। फिर भी किसी को

भी आस्था को चुनौती दिये बिना यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि अपवाद स्वरूप यदि किसी कृपाविशेष से कोई महत्कार्य संपादित भी हो जाए तो भी समष्टिगत जो कर्म—विपाक का अविचल नियम है वह अबाध है और उसमें किसी व्यत्यय का अवकाश नहीं है। डार्विन ने मनुष्य का विकास वानर से सिद्ध करने का प्रयास अवश्य किया किन्तु प्रत्यक्ष में किसी वानर को मनुष्य-रूप में परिवर्तित होते देखा नहीं जा सका। कुछ संप्रदायों में तपस्या के फल दान करने की बात सुनाई पड़ती है, अपने कर्म—फल का दान करने का विधान भी कुछ संप्रदायों में विहित है किन्तु उसका सामंजस्य शास्त्रसमत तथ्यों से बैठाया जा सकना दुष्कर प्रतीत होता है। निराश मानव को भावप्रवण बनाने में वह सहायक हो सकता है किन्तु उसका उपयोग इतना हो सकता है कि एक बार अभितप्त शाप्त मानव शरण में आकर अपना उद्धार करने की ओर अग्रसर होने को उद्यत हो जाये और ऐसी तत्परता प्राप्त होने के बाद पुनः अपने कर्मनाश के प्रयास की ओर अग्रसर हो। जैन सिद्धांत में भी चार शरणों की इसी लिए व्यवस्था की गई है। इस प्रकार किसी भी सप्रदाय की दृष्टि से विचार किया जाये, इसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है-चाहे संत कृपा का आश्रय हो चाहे भगवत् कृपा का, जीव को कर्मबन्ध से छुटकारा पाने के लिए स्वयं ही प्रयास करना पड़ता है। रेशम का कीड़ा अपने ही आस-पास अपने शरीर के तत्व से जाल बुनता है और स्वयं उसमें ही बंध जाता है। उस जाल को स्वयं ही काटकर उसे बाहर आना पड़ेगा। अन्य कोई उसे लाने में समर्थ नहीं है। इसी प्रकार जीव को अपने ही प्रयास से अपने कर्मबंधों का छेद करना होगा। संत-प्रवर गजसुकुमालजी को भगवान् अरिष्टनेमी की शरण में जाकर भी और भिक्षु की सर्वोत्कृष्ट प्रतिमा अंगीकार कर के भी ९९ लाख भवपूर्व के अपने उपस्थित कर्म को भोगना पड़ा था। यह घटना इस अनुल्लंघ्य सत्य का स्पष्ट प्रमाण है। खंधक मुनि और गजसुकुमालजी के कष्टों को मिटाने के लिए क्या तपस्या थी अथवा सुकृत के फलों का दान करनेवालों की कमी हो सकती थी ? क्या स्वयं श्रीराम सीताहरण को टालने में असमर्थ थे ? क्या श्रीकृष्ण द्वारका का नाश रोकने में असमर्थ थे ? तब "मामेकं शरणं व्रज" का उद्घोष करनेवाले स्वयं क्यों कर्मबंधों के अनिवार्य नियम से बच न सके ? इसी कारण जैन सिद्धांत के विशाल इतिहास में तथा विशद साहित्य में एक भी उदाहरण इस बात का नहीं मिलता है कि किसी तपस्वी, अथवा महापुरुष ने अपनी तपस्या के पराक्रम से किसी जीव के

कर्मबंध–छेदन में सहायता की हो। संतों का और महापुरुषों का जीवन सूर्य अथवा सघन वृक्ष के समान होता है और उसका प्रकाश और छाया सब को समान रूप से मिलता है। समदृष्टि महात्मा लोग किसी विशिष्ट जीव को लाभान्वित करके अन्य जीवों को वंचित कैसे कर सकते हैं? इसीलिए जैन सिद्धांत केवल आत्मा को ही कर्ता और अकर्ता मानता है "अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य" (उत्तराध्ययन सूत्र) आत्मा ही मित्र और अमित्र होती है और आत्मा ही सुप्रवृत्ति और दुष्प्रवृत्ति में लीन होती है। ईश्वर को केन्द्रबिन्दु मान कर उस पर कर्तृत्व का आरोप कभी नहीं किया गया। इसीलिए जैनधर्म ज्ञानमयी भक्ति द्वारा पुरुषार्थ करके स्वयं परमात्मपद प्राप्ति का मार्ग है। आत्मा के अतिरिक्त किसी विशिष्ट परमात्मा के द्वारा किसी प्रकार की कृपा द्वारा परम पद प्राप्ति को इस सिद्धांत में इसीलिए प्रश्रय नहीं दिया गया है। यही आत्म जागृति–मूलक धर्म है।

आत्म–जागृति पर विचार पहुंचते ही एक प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि सोया कौन है? और जगानेवाला कौन है? जैन सिद्धांत की उपरोक्त गाथा के अनुसार आत्मा किस की मित्र और किस की अमित्र है? निश्चय ही ये सब सापेक्षिक शब्द हैं। जीव विषय–कषायों के कारण न केवल सोया ही हुआ है अपितु मोह के कारण मूर्च्छित है और ज्ञान तथा दर्शन की प्राप्ति में अन्तराय भूत निगूढ पूर्वकर्मों के कारण स्वयं जाग्रत होने में असमर्थ है। जीव को सहज मित्र आत्मा की सहायता प्राप्त होने देने में बाधास्वरूप कर्मजाल ज्ञान तथा दर्शन को आच्छादित–आवृत कर रखते हैं और जीव अपने बंधनों का छेदन करने से विषम–विष द्वारा मुग्ध होकर निश्चेष्ट रहता है। जब तक इस मोह निद्रा से जाग्रत होने का सुअवसर हठात्पूर्वक झपट लेने की उसको प्रवृत्ति न हो, वह उसी प्रकार अकर्म कर्ता रहता है जैसे गर्भस्थ शिशु। गर्भ के बाहर आने तक बालक न हाथ हिला सकता है न शब्द कर सकता है, न अन्य कोई क्रिया ही कर सकता है। कषायों के भय पिंड में जकड़ा हुआ जीव मोह निद्रा के वशीभूत हो अपने वास्तविक कर्तव्य के प्रति पूर्णतया अचेत होकर सोता है। सद्गुरु के उपदेश तथा पुण्य का उदय ही उसे मोह निद्रा से जागने का अवसर देते हैं। यहीं से उसकी जागृति प्रारम्भ होती है, किन्तु यह आत्म जागृति नहीं होती। सद्गुरु के उपदेश केवल सोते हुए व्यक्ति के मुँह पर जगाने को मारे गए ठंडे पानी के छींटों के समान होते हैं। उन से वह जीव जाग ही जायेगा यह नहीं कहा जा सकता। भगवान्

महावीर स्वामी का उपदेश सुन लेनेवाले सभी प्राणी न तो मोक्ष ही गये न सभी साधु ही हुये, न सभी धर्म-मार्ग में प्रवृत्त ही हुए। जिन जीवों का संस्कारविशेष के कारण अंतःकरण शुद्ध हो रहा था वे अवश्य छींटे पड़ते ही उठ बैठे और यथोपदेश सत्कार्य में प्रवृत्त हुए। जितने अंश तक उन्होंने अपने मित्र आत्मा से सहायता ली उतने अंशो तक उन्हें काम मिला। जिन्होंने पूर्णतया कमर कसकर अपनी आत्मा की निर्बन्ध स्थिति प्राप्त करने की ओर पग उठाया उन्हें सफलता मिली और वे शुद्ध बुद्ध और मुक्त हो गये। इसी प्रवृत्ति को उत्पन्न करनेवाली विद्या-ज्ञान वास्तविक विद्या कही गई है 'सा विद्या या विमुक्तये, शेष सब अविद्याएँ कहीं हैं। ऐसी विद्या अथवा ज्ञान की प्राप्ति ही समस्त सृष्टि में श्रेष्ठ योनि मनुष्य योनि प्राप्ति का चरम लक्ष्य है। पुरुष होने-मनुष्य जन्म प्राप्त करने का जो हेतु है वह उसी के ही भीतर समाया हुआ है। मनुष्य जाति के भौतिक प्रवृत्ति विकास में इस मूल हेतु का विस्मरण ही स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य अन्तर्मुखी प्रवृत्ति को छोड़कर जब बहिर्मुखी साधनो की ओर प्रवृत्त होता है तब वह अपने कर्मजाल को छेदन करने की अपनी प्रमुख वृत्ति से और अधिक बेखबर होकर सो जाता है और जिन कषायो ने उसे बांध रखा है उन्हें और अधिक पुष्ट करने का उपक्रम करता है। इसके विपरीत संसार के सभी धर्म और संप्रदायों ने एक स्वर से अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के द्वारा कर्मबन्ध को नष्ट करने के प्रयास को मनुष्य जन्म का मूल हेतु बताया है। इसीलिए इस आत्म-जागृति के प्रयास को ही सर्व धर्मों ने पुरुषार्थ कहा है।



स्याद्वाद अर्थात् वीतराग-दृष्टि

(पं श्री रतनलालजी संघवी-न्यायतीर्थ-विशारद छोटीसादड़ी)

दार्शनिक सिद्धांतों के इतिहास में स्याद्वाद का स्थान सर्वोपरि है। स्याद्वाद का उल्लेख सापेक्षवाद, अनेकान्तवाद अथवा सप्तभंगीवाद के नाम से भी किया जाता है। विविध और परस्पर में विरोधी प्रतीत होनेवाली मान्यताओं का एवं विपरीत तथा विघातक विचार श्रेणियों का समन्वय करके सत्य की शोध करना दार्शनिक-संक्लेश को मिटाना, अनेकविध धर्मों एवं दार्शनिक सिद्धान्तों को मोतियों की माला के समान एक ही सूत्र में अनुस्यूत कर देना अर्थात् पिरो देना ही स्याद्वाद की उत्पत्ति का रहस्य है। निःसंदेह जैन धर्म ने स्याद्वाद सिद्धान्त की व्यवस्थित रीति से स्थापना करके और युक्तिसंगत विवेचना करके विश्व साहित्य में विरोध एवं विनाशरूप विभिन्नता को सर्वथा मिटा देने का सफल और स्तुत्य सत्-प्रयत्न किया है।

विश्व के सार्वदेशिक और सार्वत्रिक मानव-समूह ने सभी देशों में, सभी कालों में तथा सभी परिस्थितियों में नैतिकता और सुख-शांति के विकास के लिए समयानुसार आचार-शास्त्र एवं नीति-शास्त्र के जो भिन्न-भिन्न नियम और परंपराएं स्थापित की हैं, वे ही धर्म के रूप में विख्यात हुए और तात्कालिक परिस्थिति के अनुसार उनसे मानव-जाति ने विकास सभ्यता और शांति भी प्राप्त की। किंतु कालान्तर में वे ही परम्पराएँ अनुयायियों के हठाग्रह से सांप्रदायिकता के रूप में परिणत होती गई जिससे धार्मिक-क्लेश मतांधता अदूरदर्शिता हठाग्रह आदि विविध विघातक दुर्गुण उत्पन्न होते गये और अखंड मानवता एक ही रूप में विकसित नहीं होकर खण्ड खण्ड रूप में होती गई। इसीलिए नये नये धर्मों की नये नये आचार-शास्त्रों की तथा नये नये नैतिक नियमों की आवश्यकता होती गई और परिणाम-स्वरूप इन सभी की उत्पत्ति हुई। फल-स्वरूप सैकड़ों पंथ और मतमतान्तर उत्पन्न हो गये और इनका परस्पर में संघर्षात्मक द्वंद्व युद्ध भी होने लगा। उचित-अनुचित रूप से खण्डन-मण्डन के हजारों ग्रंथ बनाये गये सैकड़ों बार शास्त्रार्थ हुए और यहां तक कि धर्म के नाम पर बीभत्स हत्याकांड भी हुए। मानवता धर्म के नाम पर कदाग्रह के कीचड़ में फँस कर संक्लेशमय होगई।

ऐसी गंभीर स्थिति में कोई भी धर्म अथवा मतमतान्तर पूर्ण सत्यरूप नहीं हो सकता है। सापेक्ष रूप से सत्यमय हो सकता है। इस सापेक्ष सत्य को प्रकट करनेवाली एक मात्र वचन-प्रणाली स्याद्वाद के रूप में ही हो सकती है। अतएव स्याद्वाद सिद्धान्त दार्शनिक-जगत् में और मानवता के विकास में असाधारण महत्त्व रखता है, केवल इसीका आश्रय लेकर पूर्ण सत्य प्राप्त करते हुए सभ्यता और संस्कृति का समुचित सविकास किया जा सकता है।

विश्व का प्रत्येक पदार्थ अस्ति-स्वरूप है याने सत्-स्वरूप है, जो सत्-स्वरूप होता है वह पर्याय-शील होता हुआ भी नित्य होता है याने अविनाशी होता है। पर्याय-शीलता और नित्यता के कारण से ही हर पदार्थ अनन्त धर्मों वाला और अनन्त गुणोंवाला है तथा इन्हीं अनन्त धर्म-गुणो के कारण से ही एक ही समय में और एक ही साथ उन सभी धर्म-गुणो का शब्दो द्वारा कथन भी नहीं किया जा सकता है-इसीलिए स्याद्वाद-सन्निहित भाषा की और भी अधिक आवश्यकता प्रमाणित हो जाती है।

'स्यात्' शब्द इसीलिए लगाया जाता है कि जिससे संपूर्ण पदार्थ उसी एक अवस्था रूप नहीं समझ लिया जाय। अन्य गुण-धर्मों का भी और अन्य अवस्थाओ का भी अस्तित्व उस पदार्थ में है-यह तात्पर्य 'स्यात्' शब्द से जाना जाता है।

'स्यात्' शब्द का अर्थ 'शायद है, संभवत है, कदाचित् है' ऐसा कदापि नहीं है। क्यो कि ये सभी संशयात्मक है। अतएव ऐसा अर्थ त्याज्य है। 'स्यात्' शब्द का अर्थ 'अमुक निश्चित अपेक्षा से' ऐसा है और यह अर्थ ही संशय-रहित स्वरूपवाला है। ऐसा पूर्ण-अर्थ 'स्यात्' शब्द सुव्यवस्थित दृष्टिकोण को ही बतलानेवाला है। मताधता के कारण से ही दार्शनिको ने इस सिद्धान्त के प्रति अन्याय किया है और आज भी अनेक विद्वान् इसको बिना समझे ही इसके विषय में कुछ का कुछ लिख दिया करते है। 'कपडा स्यात् रूपवान् है' अर्थात् अमुक अपेक्षा से कपडा रूपवाला है। इस कथन में केवल कपडे के रूप से ही तात्पर्य है, और उसी कपडे में रहे हुए गंध, रस, स्पर्श आदि गुण-धर्मों से अभी कोई तात्पर्य नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं है कि- कपडा रूपवाला ही है और अन्य गुण-धर्मों का निषेध है।' अतएव इस कथन में यह रहस्य है कि रूप की प्रधानता है और अन्य शेष की गौणता है-न कि निषेधता है। इस प्रकार अनेक विधि से वस्तु को क्रम से और मुख्यता-गौणता की शैली से बतलानेवाला वाक्य ही स्याद्वाद सिद्धात का अग है।

स्याद्वाद अर्थात् वीतराग-दृष्टि

(पं श्री रतनलालजी संघवी-न्यायतीर्थ-विशारद छोटीसादड़ी)



दार्शनिक सिद्धान्तों के इतिहास में स्याद्वाद का स्थान सर्वोपरि है। स्याद्वाद का उल्लेख सापेक्षवाद, अनेकान्तवाद अथवा सप्तभंगीवाद के नाम से भी किया जाता है। विविध और परस्पर में विरोधी प्रतीत होनेवाली मान्यताओं का एवं विपरीत तथा विघातक विचार श्रेणियों का समन्वय करके सत्य की शोध करना दार्शनिक-संघर्ष को मिटाना, अनेकविध धर्मों एवं दार्शनिक सिद्धान्तों को मोतियों की माला के समान एक ही सूत्र में अनुस्यूत कर देना अर्थात् पिरो देना ही स्याद्वाद की उत्पत्ति का रहस्य है। निःसंदेह जैन धर्म ने स्याद्वाद सिद्धान्त की व्यवस्थित रीति से स्थापना करके और युक्तिसंगत विवेचना करके विश्व साहित्य में विरोध एवं विनाशरूप विविधता को सर्वथा मिटा देने का सफल और स्तुत्य सत-प्रयत्न किया है।

विश्व के सार्वदेशिक और सार्वजनिक मानव-समूह ने सभी वर्षों में, सभी कालों में तथा सभी परिस्थितियों में नैतिकता और सुख-शांति के विकास के लिए समयानुसार आचार-शास्त्र एवं नीति-शास्त्र के जो भिन्न-भिन्न नियम और परंपराएं स्थापित की हैं वे ही धर्म के रूप में विख्यात हुए और तात्कालिक परिस्थिति के अनुसार उनसे मानव-जाति ने विकास, सभ्यता और शांति भी प्राप्त की। किंतु कालान्तर में वे ही परम्पराएं अनुयायियों के हठाग्रह से साम्प्रदायिकता के रूप में परिणत होती गई जिससे धार्मिक-क्लेश मतांधता अदूरदर्शिता हठाग्रह आदि विविध विघातक दुर्गुण उत्पन्न होते गये और अखंड मानवता एक ही रूप में विकसित नहीं होकर खण्ड खण्ड रूप में होती गई। इसीलिए नये नये धर्मों की नये नये आचार-शास्त्रों की तथा नये नये नैतिक नियमों की आवश्यकता होती गई और परिणाम-स्वरूप इन सभी की उत्पत्ति हुई। फल-स्वरूप सैकड़ों पन्थ और मतमतान्तर उत्पन्न हो गये और इनका परस्पर में संघर्षात्मक द्वंद्व युद्ध भी होने लगा। उचित-अनुचित रूप से खण्डन-मण्डन के हजारों ग्रंथ बनाये गये सैकड़ों बार शास्त्रार्थ हुए और यहां तक कि धर्म के नाम पर बीभत्स हत्याकांड भी हुए। मानवता धर्म के नाम पर कदाग्रह के कीचड़ में फंस कर क्लेशमय होगई।

स्यात शब्द नियामक है जो कि कथित गुण-धर्म को वर्तमान-काल में मुख्यता प्रदान करता हुआ उसी पदार्थ में रहे हुए शेष गुण धर्मों के अस्तित्व की भी रक्षा करता है। इस प्रकार स्यात ' शब्द वर्णन किये जानेवाले गुण-धर्म की मर्यादा की रक्षा करता हुआ शेष धर्मों के अस्तित्व को भी स्वीकार करता हुआ परोक्षरूप से उनका भी प्रतिनिधित्व करता है। जिस शब्द द्वारा पदार्थ को वर्तमान में प्रमुखता मिली है वही शब्द अकेला ही सारे पदार्थ को घर कर नहीं बैठ जाय बल्कि अन्य सहचारी धर्मों की भी रक्षा हो-यह कार्य स्यात शब्द करता है।

स्यात् कपडा नित्य है यहां पर कपडा रूप पुद्गल द्रव्य की सत्ता के दृष्टिकोण से नित्यत्व का कथन है पर्यायों की गणना की दृष्टि से अनित्यता की गौणता है। इस प्रकार त्रिकाल सत्य को शब्दों द्वारा प्रकट करने की एक मात्र शैली स्याद्वाद ही हो सकती है। प्रतिदिन के दार्शनिक झगडों को देखता हुआ सामान्य व्यक्ति न तो धर्म के रहस्य को ही समझ सकता है और न आत्मा एवं ईश्वर-संबंधी महान तत्त्व का ही अनुभव कर सकता है। उल्टा विभ्रम में फँसकर कषाय का शिकार बन जाता है। इस दृष्टिकोण से अनेकान्तवाद मानव साहित्य में बेजोड विचार-धारा है। इस विचार-धारा के बल पर ही जैन-दर्शन विश्व के दर्शनों में तथा धर्मों में सर्वाधिक शांति-संस्थापक और सत्य के सद्भाव का श्रेष्ठ पद प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार अनेकान्त वाद ही सत्य को स्पष्ट कर सकता है। क्योंकि सत्य एक सापेक्ष तत्त्व है। सापेक्षिक सत्य द्वारा ही असत्य का अंश निकाला जा सकता है और इस प्रकार पूर्ण सत्य तक पहुँचा जा सकता है। इसी रीति से मानव के लिये ज्ञान-कोष की श्री-वृद्धि हो सकती है जो कि सभी दिशाओं की अभिवृद्धि करती है। अहतवाद के समय और महान् आचार्य श्री शंकराचार्य तथा अन्य विद्वानों द्वारा समय समय पर किये जानेवाले प्रचंड प्रहार और प्रखर शास्त्रार्थ के कारण से ही बौद्ध-दर्शन सरीखा महान प्रबल दर्शन तो भारत से निर्वासित हो गया और लंका, बर्मा चीन जापान तिब्बत, सिक्किम भूटान और अन्य एशियाई देशों में जाकर विशेष रूप से पल्लवित हुआ जब कि जैन-दर्शन प्रबलतम साहित्यिक बाधाओं प्रचंड तार्किक आक्रमणों एवं हत्यामय राज्यक्रांतियों के सामने भी टिका रहा इस विषयक अनेक कारणों में से एक कारण स्याद्वाद-सिद्धान्त भी है। इसी स्याद्वाद सिद्धान्त का आश्रय लेकर ही जैन विद्वानों ने प्रत्येक सैद्धान्तिक-विवेचना में इसको मूल-आधार बनाया।

स्याद्वाद-सिद्धात जैन तत्त्वज्ञानरूप आत्मा का प्रखर प्रतिभासपन्न मस्तिष्क है, जिसकी प्रगति पर यह जैन-दर्शन जीवित है और जिसके अभाव में यह जैन-दर्शन समाप्त हो जाता है।

मध्य-युग में भारतीय वसुन्धरा के विस्तृत वक्षस्थल पर होनेवाले राजनैतिक तूफानो में और विभिन्न विरोधी आँधियो में भी जैन-दर्शन का हिमालय के समान अडोल और अचल बने रहना केवल स्याद्वाद सिद्धान्त का ही प्रताप है। जिन जैनेतर दार्शनिको ने इसे संशयवाद अथवा अनिश्चयवाद कहा है, निश्चय ही उन्होने इसका गम्भीर अध्ययन किये बिना ही ऐसा लिख दिया है। आश्चर्य तो इस बात का है कि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सभी दार्शनिको ने एव महामति मीमासकाचार्य कुमारिल भट्ट आदि भारतीय धुरंधर विद्वानो ने इस सिद्धान्त का शब्द रूप से खण्डन करते हुए भी प्रकारान्तर से और भावनान्तर से अपने अपने दार्शनिक सिद्धान्तो में विरोधो के उत्पन्न होनेपर विरोधात्मक विवेचन में विविधताओ का समन्वय करने के लिये इसी सिद्धान्त का आश्रय लिया है।

दीर्घ तपस्वी 'निर्ग्रंथ-ज्ञातपुत्र' भगवान् महावीर स्वामी ने इस सिद्धात को 'सिआ अत्थि, सिआ णत्थि सिआ अवत्तव्व' के रूप मे फरमाया है। जिसका यह तात्पर्य है कि प्रत्येक वस्तु-तत्त्व अपेक्षा-विशेष से वर्तमान रूप वाला होता है और अन्य अपेक्षाविशेष से वही नाशरूप वाला भी होता है। इसी प्रकार से तीसरी अपेक्षा-विशेष से वही तत्त्व त्रिकाल-सत्तारूप वाला होता हुआ भी शब्दो द्वारा अवाच्य अथवा अकथनीय रूप वाला भी हो सकता है।

जैन-तीर्थंकर रूप से विख्यात होनेवाले परम पूज्य भगवान् अरिहंतो ने इसी सिद्धात को-'उप्पन्ने वा विगए वा धुव्वे वा' अर्थात् 'उत्पन्नो वा विगतो वा ध्रुवो वा' इन तीन शब्दो द्वारा 'त्रिपदी' के रूप मे संग्रन्थित कर दिया है। इस 'त्रिपदी' रूप मूल का जैन-आगमो में इतना अधिक महत्त्व और सर्वोच्चशीलता बतलाई है कि इसके श्रवण-मात्र से ही गणधरो को चौदह पूर्वो का सपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है। द्वादशागी रूप वीतराग-वाणी का यह हृदयस्थान कहा जाता है।

भारतीय साहित्य के सूत्र रूप रचना-युग में निर्मित और जैन-सस्कृत-साहित्य में सर्वप्रथम रचित होने से महान् तात्त्विक आदि-ग्रंथ 'तत्त्वार्थ-सूत्र' में इसी सिद्धात का 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त सत्' इस सूत्र के द्वारा उल्लेख

किया है जिसका तात्पर्य यह है कि जो सत रूप है यानि भावरूप है उसमें प्रत्येक क्षण–क्षण में नवीन नवीन पर्यायों की उत्पत्ति होती ही रहती है एवं पूर्व पर्यायों का नाश अथवा परिवर्तन भी होता रहता है परन्तु फिर भी मूल द्रव्य की द्रव्यता, और मूल सत्य की सत्ता पर्यायों के परिवर्तन होते रहने पर भी ध्रौव्यरूप से बराबर अवस्थित रहती है। विश्व का कोई भी पदार्थ इस स्थिति से वंचित नहीं है।

भारतीय साहित्य के मध्य–युग में तर्क–जाल–गुम्फित घनघोर शास्त्रार्थ रूप संघर्ष–मय समय में जैन साहित्यकारों ने इसी स्याद्वाद सिद्धान्त को 'स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति और स्यात् अवक्तव्य' इस तीन शब्द–समूह के आधार पर सप्तभंगी के रूप में प्रस्थापित किया है। इस प्रकार—

(१) उप्पन्ने वा विगए वा धुवे वा नामक अरिहंत–प्रवचन

(२) 'सिया अत्थि सिया नत्थि सिया अवत्तव्व' नामक आगम वाक्य

(३) उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्तं सत् नामक संस्कृत–सूत्र, और

(४) 'स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अवक्तव्य' नामक संस्कृत–शब्द–समूह ये सब स्याद्वाद सिद्धांत के वाचक रूप हैं शब्द रूप कथानक हैं अथवा भाषा–रूप शरीर है। स्याद्वाद का यही बाह्य रूप है।

इस प्रकार विश्व साहित्य में जैन दर्शन द्वारा प्रस्तुत अनेकान्तवाद अथवा स्याद्वाद एक अमूल्य और विशिष्ट योग–दान है। जो कि सदैव उज्ज्वल नक्षत्र के समान विश्व-साहित्याकाश में अति उज्ज्वल ज्योति के रूप में प्रकाशमान होता रहेगा एवं विश्व धर्मों के संघर्ष में (Chief Justice) चीफ-जस्टिस याने सौम्य प्रधान न्याय-मूर्ति के रूप में अपना गौरव शील स्थान बनाये रक्खेगा।

प्रमाण समग्र ग्राही है और नय अंशग्राही है दोनों का समन्वय ही स्याद्वाद है। जैसा कि–तत्त्वार्थ–सूत्र में भी कहा गया है कि– प्रमाणनयैरधिगमः' अर्थात् त्रिकाल वर्ती और त्रिलोकव्यापी द्रव्य–पर्यायों का ज्ञान केवल प्रमाण और नय द्वारा ही होता है ऐसा अमोघ सिद्धांत ही स्याद्वाद है।

अपने असाधारण और अत्युच्च गुणों के कारण से ही यह सिद्धान्त 'वीतराग दृष्टि' एसे परम पद को भी अपने लिये अनायास ही प्राप्त कर लेता है। यह वीतराग दृष्टि ही यथाख्यात–चारित्र का निश्चायक बीज है, जिसके बल पर आत्मा परमात्मा होता है। एवमस्तु।



☆ जैन श्रमण की व्याख्या ☆



श्री. घेवरचन्द्रजी बाँठिया ("वीरपुत्र")

जैनागमो में 'समण' शब्द का प्रयोग बहुत स्थानो पर हुआ है। यदि यह कहा जाय कि--जैनागमो का मूल आधार ही 'समण' है 'समण' पर ही जैनागम ाधारित है, जैनागम ही समण है और समण ही जैनागम है।' यह कहना सर्वथा उपयुक्त है। समण शब्द अर्द्धमागधी एव प्राकृत भाषा का है। इसकी संस्कृत छाया--'शमन, श्रमण' समन, समण" होती है। इनका अर्थ इस प्रकार है--

(१) शमन--'शम् उपशमें' इस उपशम अर्थ वाली दिवादिगणीय धातु से शमन' शब्द बना है। 'शाम्यति क्रोधादि कषायान् इति शमन' अर्थात् जो क्रोधादि कषायो का शमन करे वह शमन कहलाता है। क्रोधादि कषाय ही ससार परिभ्रमण के मूल कारण हैं। जो कषाय का शमन करता है अर्थात् कषायो का क्षय करता है वही मोक्ष प्राप्त करता है। कहा भी है--

अनिच्छन् कर्मवैषम्य, ब्रह्माशेन शम जगत् ।
आत्माभेदेन य. पश्येदसौ मोक्षगमी शमी ॥

अर्थ-- कर्मों की विषमता को न चाहनेवाला, सम्पूर्ण चेतन रूप जगत् को अपनी आत्मा के समान समझनेवाला शमी अर्थात् क्रोधादि कषायो का क्षय करनेवाला महर्षि मोक्षगामी होता है अर्थात् सम्पूर्ण कर्म क्षय रूप मोक्ष को प्राप्त होता है। क्योकि--

'कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव'

अर्थात्-- क्रोधादि कषायो का छूट जाना, सर्वथा क्षय हो जाना ही वास्तविक मुक्ति (मोक्ष) है।

(२) श्रमण--'श्रमु तपसि खेदे च' इस धातु से 'श्रमण' शब्द बना है।

"श्राम्यतीति श्रमण श्राम्यति श्रममानयति पञ्चेन्द्रियाणि मनश्चेति श्रमण.। श्राम्यति ससारविषयखिन्नो भवति तपस्यतीति च श्रमणः।"

अर्थात्--जो पाँच इन्द्रियो को और मन को अपने वश में करता है। वह श्रमण है। जो ससार के विषयो से खिन्न होता है और जिनाज्ञानुसार तपस्या करता है वह श्रमण है।

(३) समना — सह मनसा शोभनेन निदान-परिणाम-लक्षण तापरहितेन च वर्तते इति समना,

तथा— समान स्वजनपरजनादिषु तुल्य मनो यस्य स समना '

अर्थात्— माया निदान और मिथ्यात्व इन तीन शल्यरूप ताप से रहित जिसका मन है उसे समन' कहते है। तथा शत्रु और मित्र में एव स्वजन और परजन में जिसका समान मन रहता है उसे समन कहते है। कहा भी है—

णत्थि य से कोइ वेसो पिओ य सव्वेसु चेव जीवेसु।
एएण होइ समणो एसो अन्नो वि पज्जाओ॥

अर्थात्—जिसे ससार के सभी प्राणियों में न किसी पर राग है और न किसी पर द्वेष है। इस प्रकार समान मन (मध्यस्थ भाव) वाला होने से साधु 'समन कहलाता है।

तो समणो जइ सुमणो भावेण जइ ण होइ पावमणो।
सयणे य जणे य समो समो य माणावमाणेसु॥

अर्थात्—जो शुभ द्रव्य मनवाला है और भाव से भी जिसका मन कभी पापमय नही होता है अर्थात जिसका द्रव्य मन और भाव मन दोनों शुभ हैं। जो स्वजन और परजन में एव मान और अपमान में एक-सी वृत्तिवाला है वह समन कहलाता है।

(४) समण— सम-इति समतया शत्रुमित्रादिषु अणति प्रवर्तते इति समण। सर्वजीवेषु तुल्य वर्तते इति समण

अर्थात्— जो शत्रु और मित्र में अर्थात् ससार के समस्त प्राणियों में समान बर्ताव करता है वह समण कहलाता है। जैसे कि कहा है—

जह मम न पियं दुक्खं जाणिय एमेव सव्वजीवाणं।
न हणइ न हणावेइ य सममणइ तेण सो समणो॥

अर्थात्— जिस प्रकार मुझे दुख अप्रिय है उसी प्रकार सभी जीवों को दुख अप्रिय लगता है। ऐसा समझकर तीन करण तीन योग से जो किसी जीव की हिंसा नही करता हिंसा नहीं कराता और हिंसा करनेवाले का अनुमोदन भी नही करता मन वचन काया से। तथा जो ससार के समस्त प्राणियों को आत्मवत् समझता है वह समण कहलाता है।

उपर्युक्त गुणसम्पन्न 'श्रमण' को बारह पदार्थों के साथ उपमा दी गई है—

उरग गिरि जलण सागर,
णहतल तरुगणसमो य जो होइ ।
भमर मिय धरणि जलरुह,
रवि पवण-समो य सो समणो ॥

अर्थात्—जो सर्प, पर्वत, अग्नि, सागर, आकाश, वृक्षपंक्ति, भ्रमर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य, और पवन के समान होता है वह श्रमण कहलाता है।

दृष्टान्तों के साथ दार्ष्टान्तिक इस तरह घटाये जाते हैं—

(१) उरग (सर्प)—जैसे सांप अपने लिए स्वयं घर (बिल) नहीं बनाता किन्तु चूहे आदि के द्वारा बनाये हुए बिल में रहता है। उसी प्रकार साधु स्वयं अपने लिए घर नहीं बनाता, दूसरों को उपदेश देकर अपने लिए घर नहीं बनवाता (धर्म स्थानक बनाने के लिए उपदेश नहीं देता और न धर्मस्थानक बनाने के लिए फण्ड—रुपया इकट्ठा करवाता है,) साधु के निमित्त बनाये हुए घर में भी नहीं ठहरता है किन्तु गृहस्थ के लिए बने हुए मकान में मकान मालिक की आज्ञा लेकर ठहरता है तथा जिस प्रकार सांप एक ही जगह नहीं ठहरता, उसी प्रकार साधु भी एक जगह नहीं ठहरता किन्तु अपने कल्पानुसार ठहरकर विहार कर देता है।

(२) गिरि (पर्वत) जिस प्रकार पर्वत वायु से कम्पित नहीं होता, उसी तरह साधु भी परीषह उपसर्गों से कम्पित न होवे, किन्तु संयम का पालन करते हुए जो जो अनुकूल और प्रतिकूल परीषह उपसर्ग आवे उन्हें समभावपूर्वक सहन करे और संयम में दृढ़ बना रहे।

(३) ज्वलन (अग्नि)—अग्नि में कितना भी इन्धन क्यों न डाला जाय किन्तु वह तृप्त नहीं होती, इसी तरह साधु भी ज्ञान से कदापि तृप्त न होवे अर्थात् यावज्जीवन सूत्रार्थ का अभ्यास करता रहे। "मैंने काफी पढ़ लिया है, अब मुझे विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं है" इस प्रकार साधु कभी भी ज्ञान के प्रति उपेक्षाभाव न लावे किन्तु नवीन-नवीन ज्ञानोपार्जन करने में निरंतर परिश्रम करता रहे। जिस प्रकार अग्नि अपने तेज से दीप्त होती है, उसी प्रकार साधु अपने तपरूपी तेज से दीप्त एवं शोभित होवे।

(४) सागर (समुद्र) जैसे समुद्र में अगाध जल होता है, समुद्र कभी भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। उसी प्रकार साधु ज्ञानरूपी अगाध जल का धारक बने। कभी भी तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करे। समुद्र के समान सदा गम्भीर बना रहे, छोटी-छोटी बातों में कुपित न होवे।

(५) नभस्तल (आकाश) जिस प्रकार आकाश में ठहरने के लिए कोई स्तम्भ नहीं है, किन्तु वह निराधार स्थित है उसी प्रकार साधु को गृहस्थ आदि के अवलम्बन से रहित होना चाहिए किन्तु निरवलम्बन होकर ग्राम नगर आदि में स्वच्छ विहार करना चाहिए।

(६) तरु (वृक्ष) जैसे वृक्ष शीत और तापादि दुःखों को समभावपूर्वक सहन करता है और उसके आश्रय में आनेवाले मनुष्य पशु पक्षी आदि को शीतल छाया से सुख पहुंचाता है, उसी प्रकार साधु भी सब परीषह—उपसर्गों को एवं सब कष्टों को समभावपूर्वक सहन करे और धर्मोपदेश द्वारा संसार के प्राणियों को मुक्ति का मार्ग बतलाकर उनका उद्धार करे। फल आने पर जैसे वृक्ष नम्र बन जाता है अर्थात् नीचे की ओर झुक जाता है, अपने मीठे फलों द्वारा लोगों को सुख पहुंचाता है। उसी प्रकार साधु को चाहिए कि ज्यों ज्यों वह ज्ञान रूपी फल से संयुक्त होता जाय त्यों त्यों विनय विनयवान् और नम्र बनता जाय। विद्या पढ़कर अभिमान करना तो ज्ञान गुण के बिलकुल विपरीत है क्योंकि ज्ञान तो विनय और नम्रता सिखलाता है। अपने ऊपर पत्थर फकनेवाले पुरुष को भी वृक्ष मीठे और स्वादु फल देता है उसी प्रकार साधु को चाहिए कि कोई उसकी प्रशंसा करे या निन्दा करे, सत्कार करे या तिरस्कार करे उस पर किसी प्रकार से राग-द्वेष न करे। साधु को कोई अपशब्द भी कह दे तो उस पर कुपित न होवे किन्तु समभाव रखे। समभाव के कारण ही मुनि को 'वासीचन्दनकल्प' कहा गया है। यथा—

जो चन्दणेण बाहु आलिंपइ, वासिणा वा तच्छेइ।
संथुणइ जो य निंदइ महरिसिणो तत्थ समभावा॥

अर्थात्— यदि कोई व्यक्ति मुनि के शरीर को चन्दनचर्चित करे अथवा बसोले से उसके शरीर को छील डाले। कोई उसकी स्तुति करे या निन्दा करे, महर्षि लोग (साधु) सब पर समभाव रखते हैं।

(७) भ्रमर—जिस प्रकार भ्रमर फूल से रस ग्रहण करता है किन्तु फूल को किसी प्रकार पीड़ा नहीं पहुंचाता है उसी प्रकार साधु गृहस्थों के घर से थोड़ा-थोड़ा आहार ग्रहण करे। जिससे उन्हें (गृहस्थों को) किसी प्रकार की तकलीफ न हो और फिर से नया भोजन बनाना न पड़े। श्री दशवकालिक सूत्र के पहले अध्ययन में भी साधु को भ्रमर की उपमा दी गई है। यथा—

जहा दुमस्स पुप्फेसु भमरो आवियइ रसं।
न य पुप्फं किलामेइ सो य पीणेइ अप्पयं॥

एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥

अर्थात्— जिस प्रकार भ्रमर फूल को पीड़ा पहुँचाये बिना ही उससे रस पीकर अपनी तृप्ति कर लेता है, उसी प्रकार आरम्भ और परिग्रह के त्यागी साधु भी दाता के द्वारा दिये हुए प्रासुक और निर्दोष आहार-पानी में सन्तुष्ट रहते है । जिस प्रकार भ्रमर अनियत वृत्तिवाला होता है अर्थात् भ्रमर के लिए यह निश्चित नही होता है कि वह अमुक फूल से ही रस ग्रहण करेगा । इसी तरह साधु भी अनियत वृत्तिवाला होवे अर्थात् साधु को प्रतिदिन नियत (निश्चित) घर से ही गोचरी न लेनी चाहिए किन्तु मधुकरी वृत्ति से अनियत घरो से गोचरी करनी चाहिए ।

(८) मृग (हरिण) जिस प्रकार सिंह को देखकर मृग भाग जाता है, एक क्षण भर भी वहाँ नही ठहरता । उसी प्रकार साधु को पापकार्यों से सदा डरते रहना चाहिए । पाप स्थानों पर उसे एक क्षण भर भी न ठहरना चाहिए ।

(९) पृथ्वी— जिस प्रकार पृथ्वी शीत, ताप, छेदन-भेदन आदि सब कष्टों को समभावपूर्वक सहन करती है, उसी प्रकार साधु को सब परीषह उपसर्गों को समभावपूर्वक सहन करना चाहिए । जिस प्रकार पृथ्वी अपने उपकारी और अनुपकारी तथा भले बुरे सभी को समान रूप से आश्रय देती है, इसी प्रकार साधु को चाहिए कि वह अपने उपकारी तथा अपनी प्रशंसा करनेवाले तथा निन्दा करनेवाले सभी को समान भाव से शान्ति मार्ग का उपदेश दे, किसी पर राग-द्वेष न करे । शत्रु, मित्र पर समभाव रखता हुआ सहिष्णु बने ।

(१०) जलरुह (कमल)— जिस प्रकार कमल कीचड़ से उत्पन्न होता है और जल से वृद्धि पाता है, किन्तु वह कीचड़ और जल से लिप्त न होता हुआ जल से ऊपर रहता है । इसी प्रकार साधु को चाहिए कि इस शरीर की उत्पत्ति और वृद्धि काम और भोगो से होने पर भी वह काम भोगो में लिप्त न होता हुआ सदा इसमे दूर रहे । काम-भोगो को ससार-वृद्धि का कारण जानकर साधु इनका सर्वथा त्याग कर दे ।

(११) रवि (सूर्य)— जैसे सूर्य अपने प्रकाश से अन्धकार का नाश कर ससार के पदार्थों को प्रकाशित करता है । उसी प्रकार साधु जीवाजीवादि नव तत्त्वो का स्वय ज्ञाता बने और धर्मोपदेश द्वारा भव्य जीवो के अज्ञानान्धकार को दूर कर उन्हे नव तत्त्वो का यथार्थ स्वरूप समझाकर मोक्ष-मार्ग की ओर प्रवृत्त करे ।

(१२) पवन (वायु)—जिस प्रकार वायु की गति अप्रतिबद्ध होती है अर्थात वायु अपनी इच्छानुसार पूर्व पश्चिम उत्तर और दक्षिण किसी भी दिशा में बहती है उसी प्रकार साधु अप्रतिबद्ध विहारी होवे अर्थात साधु किसी गृहस्थादि के प्रतिबंध में बंधा हुआ न रहे, किंतु अपनी इच्छानुसार ग्राम नगर आदि में विहार करे और धर्मोपदेश द्वारा जनता को कल्याण का मार्ग बतलावे।

अपेक्षा से 'श्रमण' शब्द के पर्यायवाची शब्द अनेक हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार बतलाये गये हैं—

> पव्वइए अणगारे, पासंडे चरगतावसे भिक्खू।
> परिवाइए य समणे निग्गंथे संजए मुत्ते॥
> तिण्णे ताई दविए मुणी य खंते य दंतविरए य।
> लूहे तीरट्ठे वि य हवंति समणस्स णामाइं॥

अर्थात्—प्रव्रजित जो प्रकर्ष रूप से चला गया है अर्थात् जो आरंभ और परिग्रह से दूर रहता है, इस कारण से उसे प्रव्रजित कहते हैं। अनगार जिसके आगार—घर नहीं है जिसने घर—संसार का त्याग कर दिया है उसे अनगार कहते हैं। पाखण्डी—पाखण्ड अर्थात व्रत जिसके हो उसको पाखण्डी कहते हैं। यथा—

> पाखण्डं व्रतमित्याहुस्तद् यस्यास्त्यमलं भुवि।
> स पाखण्डी वदन्त्यन्ये कर्मपाशाद् विनिर्गतः॥

अर्थ— पाखण्ड नाम व्रत का है। वह निर्मल व्रत जिसके हो उसे पाखण्डी कहते हैं। चरक—जो व्रत नियमादि का आचरण करे उसे 'चरक' कहते हैं। तापस'—तपस्या करता है, इसलिए उसे 'तापस' कहते हैं। भिक्षु—जो प्रासुक और निर्दोष भिक्षा करता है उसे 'भिक्षु' कहते हैं अथवा जो आठ प्रकार के कर्मों की ग्रंथि का भेदन करे उसे भिक्षु कहते हैं। परिव्राजक— जो सर्वथा रूप से पापों का त्याग कर देता है उसे 'परिव्राजक' कहते हैं। श्रमण—श्रमण शब्द का अर्थ ऊपर बतला दिया गया है। निर्ग्रन्थ—जो बाह्य ग्रन्थि धन धान्यादि रूप परिग्रह और आभ्यन्तर ग्रन्थि क्रोधादि कषाय से रहित है उसे 'निर्ग्रन्थ' कहते हैं। संयत—जो अहिंसादि महाव्रतों के पालने में सम्यग् रूप से सदा प्रयत्नवान सावधान है उसे 'संयत' कहते हैं। मुक्त—जो बाह्याभ्यन्तर ग्रन्थि से मुक्त अर्थात रहित है उसे 'मुक्त' कहते हैं। तीर्ण—जो संसार समुद्र को तिर चुका है उसे तीर्ण कहते हैं। त्राता—जो छह काय जीवों की रक्षा करता है

उसे त्राता—त्रायी कहते हैं। द्रव्य——जो प्रतिदिन नया-नया ज्ञान सीख कर ज्ञानादि पर्यायों को प्राप्त होता रहता है, अतः उसे 'द्रव्य' कहते हैं मुनि—— जो मौन रखे अर्थात् जो अपनी वाणी पर पूर्ण संयम रखे, कभी 'सावद्य' वचन न बोले उसे 'मुनि' कहते हैं। क्षान्त——क्रोधादि कषायोंपर विजय प्राप्त करने से क्षान्त तथा पांच इन्द्रियों और मन का दमन करने से दान्त और प्राणातिपातादि पापों से निवृत्त होने से 'विरत' कहलाता है। रूक्ष——सब प्रकार के सांसारिक स्नेह का त्यागी होने से 'रूक्ष' कहलाता है। 'तीरार्थी'——जो संसारसमुद्र के तीर का अर्थी-चाहनेवाला है तब सम्यक्त्व प्राप्ति हो जाने से जो सांसारिक परिणामों से तीरस्थ हो गया है इसलिए उसे ,तीरार्थी' या 'तीरस्थ' कहते हैं।

विवक्षाविशेष से ये 'श्रमण' शब्द के कुछ पर्यायवाची नाम बतलाये गए हैं।

'श्रमण' के सम्बन्ध में जैनागमों में विपुल सामग्री है किन्तु यहाँ परिमित लेख लिखने का स्थल है। अतः यह लेख यहीं समाप्त किया जाता है।



भारतीय वाङ्मय को जैन साहित्य की देन

गोकुलचन्द्र साहित्याचार्य एम् ए, काव्य-न्यायतीर्थ



जैन साहित्य भारतीय वाङ्मय का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। साहित्य का कोई भी विषय ऐसा अछूता नहीं जिस पर जैन विद्वानों और आचार्यों की लेखनी ने मुक्त विहार न किया हो। दर्शन, काव्य, व्याकरण, छन्द, शास्त्र अलङ्कार ज्योतिष, आयुर्वेद आदि सभी विषयों पर जैन विद्वानों एवं जैनाचार्यों द्वारा लिखित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

इस समग्र साहित्य को जैन-साहित्य कहने का एकमात्र यही कारण प्रतीत होता है कि इसके रचयिता जैनधर्म में आस्था रखने वाले रहे हैं। सम्भवतया जैन लोग भी इसे अपना साहित्य इसीलिए मानते हैं कि उनके पूर्व पुरुषों ने इसकी रचना की है। वास्तव में इस साहित्य का सर्वांगीण महत्त्व है। भारतीय साहित्य के किसी भी अंग का अध्ययन इस जैन साहित्य के अध्ययन के बिना पूर्ण नहीं कहा जा सकता। दर्शन इतिहास संस्कृति कला और भाषा विज्ञान के अध्येताओं के लिए जैन साहित्य एक अक्षय भाण्डागार है।

वर्तमान में जितना जैन साहित्य उपलब्ध होता है वह दो प्रकार का है—

(१) निग्गंठ नायपुत्त (महावीर) के वचनों के रूप में और (२) विभिन्न आचार्यों तथा विद्वानों की स्वतन्त्र रचनाओं के रूप में।

पहले प्रकार का साहित्य महावीर के बहुत समय बाद तक गुरु-शिष्य परंपरा के द्वारा सुन सुनकर चला आया। यही कारण है कि लिपिबद्ध होने के बाद भी वह 'श्रुत' अर्थात् सुना गया के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बहुत समय बाद जिस तरह बुद्ध के उपदेशों को सजाकर त्रिपिटकों की रचना की गई ठीक उसी तरह महावीर के बाद उनके उपदेशों को बारह अंगों (विभागों) में निबद्ध किया गया जिसे द्वादशांग कहते हैं। द्वादशांग इस प्रकार है—

(१) आचारांग—मुनियों के चारित्रसंबंधी नियमोंका वर्णन।

(२) सूत्रकृतांग—स्व पर समय अर्थात् जैन एवं इतर सिद्धान्तों का विवेचन।

(३) स्थानांग—तत्त्वों के भेद प्रभेदों का वर्णन (संख्या क्रम से)।

(४) समवायाग–तत्त्वो का वर्णन (द्रव्य क्षेत्र, काल व भाव की अपेक्षा)

(५) व्याख्याप्रज्ञप्ति–प्रश्नोत्तर क्रम से जीवादि तत्त्वो की व्याख्या ।

(६) ज्ञाताधर्म कथा–धर्मोपदेश तथा बहुविध कथाएँ ।

(७) उपासकाध्ययन–गृहस्थो के पालने योग्य धर्म आदि का वर्णन ।

(८) अन्तकृतदश–जो मुनियो का चरित्र, जिन्होने अनेक उपसर्ग सहन करके मोक्ष प्राप्त किया ।

(९) अनुत्तरौपपातिकदश–उन मुनियो का चरित्र, जो अनेक उपसर्ग सहन करके विजय आदि अनुत्तर विमानो में देव हुए ।

(१०) प्रश्नव्याकरण–पांच आस्रव (हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह) तथा पाँच संवर (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) का अत्यत आकर्षक विवेचन

(११) विपाकसूत्र–पुण्य और पाप के फलो का वर्णन ।

(१२) दृष्टिवाद–विभिन्न वर्णन ।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार उपर्युक्त द्वादशाग का काल-क्रम से ह्रास होता गया और छिट-फुट ग्रन्थो के रूप में केवल दृष्टिवाद ही शेष है । श्वेताम्बर-मान्यता के अनुसार अगो का सर्वथा लोप नही हुआ, प्रत्युत भगवान् महावीर के बाद उन्हे सु-व्यवस्थित करने के लिए कई बार मुनि-सघ की बैठके हुई और उनके प्रतिफल आज भी ग्यारह अंग शेष है ।

यह बहुत ही मनोरजक बात है कि जिन ग्यारह अगो को दिगम्बर नष्ट हुआ मानते है उन्हे श्वेताम्बर मौजूद मानते है और जिस बारहवे अग को श्वेताम्बर नष्ट हुआ मानते है उसे ही दिगम्बर मौजूद मानते है । लगता है–नष्ट कुछ भी नही हुआ, किन्तु आपसी मत-भेदो के कारण जब साहित्य का विभाजन सा हो चला तो उसमें अनेक परिवर्तन हुए और एक दूसरे ने एक दूसरे के साहित्य को नष्ट हुआ कहकर मानना छोड दिया ।

उपर्युक्त बारह अगो के अतिरिक्त बारह उपाग, दश प्रकीर्णक, छह छेद सूत्र, चार मूलसूत्र तथा दो चूलिकासूत्र भी है । इन आगमो पर लिखा गया चूर्णि और भाष्य नामक व्याख्यात्मक साहित्य भी विपुलकाय है जो मूल ग्रन्थो की टीका और व्याख्या होने के बाद भी मौलिकता की दृष्टि से बहुमूल्य है ।

इस साहित्य के विस्तार में न जाकर हम केवल इतना कहना चाहेगे कि उस युग के आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, सास्कृतिक, राजनैतिक

और ऐतिहासिक तथ्यों का अध्ययन करने के लिए यह समग्र साहित्य एक ऐसा चित्रपट है जिस पर एक एक चित्र उभरता चला जाता है।

दूसरे प्रकार का साहित्य अर्थात् विभिन्न विद्वानों और आचार्यों द्वारा लिखा गया साहित्य इतने प्रकार का और इतना अधिक है कि उन सब का यहाँ परिचय देना संभव नहीं। इतना अवश्य कहा जा सकता है और जैसा कि हम ऊपर भी लिख चुके हैं जैन साहित्यकारों ने ऐसा कोई भी अंग वस्तुतः नहीं छोड़ा जिस पर कुछ न कुछ लिखा न गया हो।

इस दूसरे प्रकार के साहित्य का सब से महत्वपूर्ण भाग इसका दार्शनिक साहित्य है। जैन दार्शनिकों ने भारतीय दर्शन में चिन्तन को एक नया मोड़ और गति प्रदान की। जैनदर्शन का प्राण अनेकान्त और उसका व्यावहारिक रूप स्याद्वाद या सप्तभंगी-नय जिस तार्किक दृष्टि से वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन करता है उनको और आज का बुद्धिवादी मानव आईंस्टीन के सापेक्षवाद (Theory of Relativity) के प्रकाश में आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता। समन्तभद्र ने आप्तमीमांसा युक्त्यनुशासन तथा स्वयंभू-स्तोत्र द्वारा एवं सिद्धसेन ने न्यायावतार सन्मति-प्रकरण आदि के द्वारा अनेकान्त की स्थापना की और अकलंक ने राजवार्तिक लघीयस्त्रय अष्टशती आदि तथा विद्यानन्द ने श्लोकवार्तिक अष्ट-सहस्री आप्तपरीक्षा आदि के द्वारा जैन न्याय को उच्च शिखर पर प्रतिष्ठा की। बाद के आचार्यों में प्रभाचन्द्र हरिभद्रसूरि, हेमचन्द्र तथा यशोविजय का नाम उल्लेखनीय है। इन आचार्यों ने अपने महान ग्रन्थों में समस्त भारतीय दर्शनों को पूर्वपक्ष के रूप में रखकर भारतीय वाङ्मय के दार्शनिक इतिहास को सुर-क्षित बना लिया।

सैद्धांतिक साहित्य में कुन्दकुन्द का समयसार प्रवचनसार आदि उमा-स्वाति का तत्त्वार्थसूत्र, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती का गोमटसार आदि ग्रन्थ विशेष रूप से प्रतिष्ठा को प्राप्त है।

काव्य के क्षेत्र में वसुदेवहिंडी (प्राकृत), महापुराण जसहर चरित आदि (अपभ्रंश) सोमदेव का यशस्तिलक, धनपाल की तिलकमंजरी हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय हेमचन्द्र का कुमारपालचरित आदि अनेक महत्वपूर्ण रचनाएं हैं।

यशपाल का प्रतीक नाटक मोहराज-पराजय, सिद्धर्षि की उपमितिभव प्रपंच कथा, हरिभद्र का धूर्ताख्यान आदि कुछ ऐसी रचनाएं हैं जिनका भारतीय वाङ्मय में दूसरा कोई सानी नहीं रखता।

महाकवि हस्तिमल्ल के विक्रान्तकौरव आदि संस्कृत नाटक, हेमचन्द्र का द्वयाश्रय काव्य तथा अलंकृत शैली में लिखे गये जैन महापुरुषों (शलाकापुरुष) के चरित्र काव्य-साहित्य की बेजोड़ निधि है।

पुराण साहित्य में आदिपुराण, उत्तरपुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, आदि आदि अनेक ग्रंथ हैं, जिनमें महापुरुषों के चरित्र का सुन्दर वर्णन है।

व्याकरण साहित्य में देवनन्दि का जैनेन्द्र-व्याकरण, तथा हेमचन्द्र का शब्दानुशासन विशेष प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त शाकटायन, त्रिविक्रम, गुण-नन्दि, वर्द्धमान, तथा समन्तभद्र भट्टारक आदि के व्याकरण ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

छन्दशास्त्र और अलंकार ग्रन्थों में वाग्भटालंकार, अलंकार-चिन्तामणि काव्यानुशासन आदि ग्रंथ विशेष प्रकाश में आए हैं।

कोश ग्रंथों में धनंजय तथा हेमचन्द्र आदि की रचनाएँ तथा ज्योतिष और आयुर्वेद में हेमप्रभ, हर्षकीर्ति, पद्मप्रभ, दिवाकर, चन्द्रसेन, पूज्यपाद, यशःकीर्ति, त्रिपाठ, वाहट और दामोदर भट्ट आदि के ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त इतिहास, कला योगशास्त्र, तथा मंत्र-तंत्र विषयक स्वतंत्र साहित्य उपलब्ध होता है। स्तुति तथा पूजा प्रतिष्ठा संबंधी साहित्य कलेवर की दृष्टि से विपुल काय है। अपनी स्थूलता के अनुरूप इस साहित्य में भक्ति के अतिरिक्त दर्शन, तत्त्वज्ञान और संस्कृति के महान् तत्त्व अन्तर्निहित हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि जैन साहित्यकारों ने हृदय खोलकर, मुक्त भाव से भारतीय वाङ्मय के प्रत्येक अंग को सजाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जैन साहित्यकारों को कभी भी भाषा का आग्रह नहीं रहा, उसने सदैव अपने युग की भाषा और शैली में साहित्य रचना की। प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश के अतिरिक्त भारतवर्ष की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं को जैन साहित्यकारों ने समान भाव से अपनाया। पुरानी हिंदी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, कन्नड़ तथा तामिल आदि भाषाओं में प्रचुर मात्रा में जैन साहित्य मिलता है। नई पीढ़ी के साहित्यकार विभिन्न विदेशी भाषाओं में भी जैन साहित्य का प्रणयन कर रहे हैं।

और ऐतिहासिक तथ्यों का अध्ययन करने के लिए यह समग्र साहित्य एक ऐसा चित्रपट है जिस पर एक एक चित्र उभरता चला आता है।

दूसरे प्रकार का साहित्य अर्थात विभिन्न विद्वानों और आचार्यों द्वारा लिखा गया साहित्य इतने प्रकार का और इतना अधिक है कि उन सब का यहाँ परिचय देना संभव नहीं। इतना अवश्य कहा जा सकता है और जैसा कि हम ऊपर भी लिख चुके हैं जैन साहित्यकारों ने ऐसा कोई भी अंग अछूता नहीं छोड़ा जिस पर कुछ न कुछ लिखा न गया हो।

इस दूसरे प्रकार के साहित्य का सब से महत्त्वपूर्ण भाग इसका दार्शनिक साहित्य है। जैन दार्शनिकों ने भारतीय दर्शन में चिन्तन को एक नया मोड़ और गति प्रदान की। जैनदर्शन का प्राण अनेकान्त और उसका व्यावहारिक रूप स्याद्वाद या सप्तभंगी-नय जिस तार्किक दृष्टि से वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन करता है, उसकी ओर आज का बुद्धिवादी मानव आईंस्टीन के सापेक्षवाद (Theory of Relativity) के प्रकाश में आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता। समन्तभद्र ने आप्तमीमांसा युक्त्यनुशासन तथा स्वयम्भू-स्तोत्र द्वारा एवं सिद्धसेन ने न्यायावतार सन्मति-प्रकरण आदि के द्वारा अनेकान्त की स्थापना की और अकलंक ने राजवार्तिक लघीयस्त्रय अष्टशती आदि तथा विद्यानन्द ने श्लोकवार्तिक अष्ट–सहस्री आप्तपरीक्षा आदि के द्वारा जैन न्याय को उच्च शिखर पर प्रतिष्ठा की। बाद के आचार्यों में प्रभाचन्द्र हरिभद्रसूरि, हेमचन्द्र तथा यशोविजय का नाम उल्लेखनीय है। इन आचार्यों ने अपने महान ग्रन्थों में समस्त भारतीय दर्शनों को पूर्वपक्ष के रूप में रखकर भारतीय वाङ्मय के दार्शनिक इतिहास को सुर–क्षित बना दिया।

सैद्धान्तिक साहित्य में कुन्दकुन्द का समयसार प्रवचनसार आदि उमा–स्वाति का तत्त्वार्थसूत्र, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती का गोमटसार आदि ग्रन्थ विशेष रूप से प्रतिष्ठा को प्राप्त हैं।

काव्य के क्षेत्र में वसुदेवहिंडी (प्राकृत) महापुराण जसहर चरिउ आदि (अपभ्रंश) सोमदेव का यशस्तिलक धनपाल की तिलकमंजरी हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय हेमचन्द्र का कुमारपालचरित आदि अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

यशपाल का प्रतीक नाटक मोहराज–पराजय, सिद्धर्षि की उपमितिभव प्रपंच कथा, हरिभद्र का धूर्ताख्यान आदि कुछ ऐसी रचनाएं हैं जिनका भारतीय वाङ्मय में दूसरा कोई सानी नहीं रखता।

महाकवि हस्तिमल के विक्रान्तकौरव आदि संस्कृत नाटक, हेमचन्द्र का द्वयाश्रय काव्य तथा अलकृत शैली में लिखे गये जैन महापुरुषों (शलाकापुरुष) के चरित्र काव्य-साहित्य की बेजोड़ निधि है।

पुराण साहित्य में आदिपुराण, उत्तरपुराण, पदमपुराण, हरिवंशपुराण, आदि आदि अनेक ग्रथ है, जिनमे महापुरुषो के चरित का सुन्दर वर्णन है।

व्याकरण साहित्य में देवनन्दि का जैनेन्द्र-व्याकरण, तथा हेमचद्र का शब्दानुशासन विशेष प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त शाकटायन, त्रिविक्रम, गुण-नन्दि वर्द्धमान, तथा समन्तभद्र भट्टारक आदि के व्याकरण ग्रथ प्रसिद्ध है।

छदशास्त्र और अलकार ग्रन्थो में वाग्भटालकार, अलकार-चिन्तामणि काव्यानुशासन आदि ग्रथ विशेष प्रकाश में आए है।

कोश ग्रंथो में धनजय तथा हेमचद्र आदि की रचनाएँ तथा ज्योतिष और आयुर्वेद में हेमप्रभ, हर्षकीर्ति, पद्मप्रभ, दिवाकर, चद्रसेन, पूज्यपाद, यशकीर्ति, चिमकण, वाहट और दामोदर भट्ट आदि के ग्रथ उल्लेखनीय है।

इसके अतिरिक्त इतिहास, कला योगशास्त्र, तथा मत्र-तंत्र विषयक स्वतत्र साहित्य उपलब्ध होता है। स्तुति तथा पूजा प्रतिष्ठा सबंधी साहित्य कलेवर की दृष्टि से विपुल काय है। अपनी स्थूलता के अनुरूप इस साहित्य में भक्ति के अतिरिक्त दर्शन, तत्त्वज्ञान और संस्कृति के महान् तत्त्व अन्तर्निहित है।

इस तरह हम देखते है कि जैन साहित्यकारो ने हृदय खोलकर, मुक्त भाव से भारतीय वाङमय के प्रत्येक अग को सजाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। सबसे बडी विशेषता यह है कि जैन साहित्यकारो को कभी भी भाषा का आग्रह नही रहा, उसने सदैव अपने युग की भाषा और शैली मे साहित्य रचना की। प्राकृत, सस्कृत तथा अपभ्रश के अतिरिक्त भारतवर्ष की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओ को जैन साहित्यकारो ने समान भाव से अपनाया। पुरानी हिंदी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, कन्नड तथा तामिल आदि भाषाओ में प्रचुर मात्रा से जैन साहित्य मिलता है। नई पीढी के साहित्यकार विभिन्न विदेशी भाषाओ मे भी जैन साहित्य का प्रणयन कर रहे है।

इस विपुलकाय एवं सर्वांगीण महत्त्व के साहित्य को बहुत समय तक धार्मिक साहित्य (Rehgions Titerature) कहकर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता रहा किन्तु जब से विद्वानों ने उदारतापूर्वक निष्पक्ष दृष्टि से इस ओर देखा है तब से इसकी उपयोगिता का मूल्यांकन आरंभ हो गया है। अब तो धीरे धीरे विद्वानों की यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि भारतीय वाङ्मय का अध्ययन जैन साहित्य के अध्ययन के बिना अधूरा रहता है। जैन साहित्य की यह अनिवार्य उपयोगिता ही भारतीय वाङ्मय के लिए इसकी महत्त्वपूर्ण देन है।



सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः।

ले० 'साहित्यरत्न' प. देवेन्द्रकुमार जैन 'सिद्धान्त शास्त्री'
हिन्दी-धर्माध्यापक श्री तिलोक जैन विद्यालय, पाथर्डी

सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये तीनो ही मोक्ष के साधन हैं। इन तीनो साधनो का विवेचन करने के पूर्व मोक्ष क्या है, तथा उसका स्वरूप कैसा है, इसपर प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है, कारण कि मोक्ष का स्वरूप जाने बिना उसके साधनो की व्याख्या प्रभावी नही ठहरती।

मोक्ष की व्याख्या :—बन्ध के कारणो का अभाव होने पर तथा सचित कर्मों की निर्जरा होने से समस्त कर्मो का मूलोच्छेदन होना ही मोक्ष है, कहा भी है कि "कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्ष" कर्मो का आत्यन्तिक क्षय ही मोक्ष है। कर्म क्षय के यहाँ दो कारण बताए गये है। बन्ध हेतुओ का अभाव और निर्जरा। बन्ध हेतुओ का अभाव होने से नूतन कर्म-बन्धन रुकते है और निर्जरा से पूर्वसचित कर्म दूर होते है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एव अन्तराय इन चार घाती कर्मों के पूर्ण रूप से क्षय हो जानेपर ही वीतरागत्व प्रगट होता है, किन्तु वेदनीय, आयु, नाम एव गोत्र इन चार अघाती कर्मों की सत्ता नामावशेष रह जाने से मोक्ष नही होता। जब ये चार कर्म क्षय हो जाते है तभी जीवात्मा का जन्म मरणादि चक्र बन्द पडता है और वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो जाता है इसी का नाम मोक्ष है।

ससारावस्था में आत्मा की स्वाभाविक शक्ति वैभाविक हो जाती है और यह वैभाविक अवस्था ही आत्मा के ससार में परिभ्रमण का कारण बनती है। जब आत्मा की वैभाविकावस्था नष्ट हो स्वाभाविकावस्था प्राप्त होती है, तब मिथ्या दर्शन सम्यग् दर्शन, मिथ्या ज्ञान सम्यग् ज्ञान और मिथ्या चारित्र सम्यक् चारित्र बन जाता है। आत्मा निर्विकल्प, निश्चल और चैतन्यमय हो जाता है। कहा भीहै कि—

> चित्तमेव हि ससारो, रागादिक्लेशवासितम्।
> तदेव तैर्विनिर्मुक्त, भवान्तमिति कथ्यते॥

चित्त की राग द्वेषादि अवस्था ही ससार है और इस अवस्था से विरहित होना ही मोक्ष है। मुक्तावस्था में इच्छा, द्वेष, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप आदि की

सत्ता का अभाव है कारण कि ये सब पर्याय कर्मजन्य है, अतः मुक्तावस्था में ये नहीं रहती, किन्तु चतन्यरूप ज्ञान पर्याय आत्मा की स्वाभाविकावस्था है उसकी सत्ता मुक्तावस्था में भी रहती ही है। बौद्ध ग्रन्थों में मोक्ष के स्थान पर निर्वाण माना है जिसका अर्थ है बुझ जाना, जैसे दीपक का तेल समाप्त होने पर दीपक की ज्योति नष्ट हो जाती है उसी प्रकार कर्म के क्षय हो जाने पर आत्मा भी सर्वथा नष्ट हो जाती है किन्तु जैन परम्परा उनकी इस मान्यता का खंडन करती है कारण कि आत्मा का मोक्ष होना अर्थात् आत्मा का कर्म पुद्गल से पृथक हो जाना आत्मा और कर्म पुद्गल का सब प्रकार विच्छेद हो जाना ही मोक्ष है।

मोक्ष का स्थान — आगम में वर्णन आया है कि

अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गम्मि दुरारुहं।

जत्थ नत्थि जरामच्चू वाहिणो वेयणा तहा॥

वहाँ पहुँचना बड़ा ही दुष्कर है ऐसी चौदहराजू लोक के मस्तिष्क के ऊपर ईषत प्राग्भारा नाम की एक शिला है सिद्ध की आत्मा इसके समीप होने से यह सिद्धशिला कहलाती है। इस शिला के अग्रभाग पर एक स्थान है जिसे लोकान्त कहते हैं यहीं सिद्ध परमात्मा विराजमान हैं। यह स्थान कपूर से अधिक सुगन्धित, कोमल सूक्ष्म अवयवमय पवित्र एवं अत्यन्त तेजस्वी है। इस शिला का आकार द्वितीया के चन्द्र के समान है। यहाँ बुढ़ापा, रोग मृत्यु आदि का लेशमात्र भी दुःख नहीं है। आधि व्याधि किंवा उपाधि कुछ भी नहीं है। यह महान परमपद आराधकों का आराध्य साधकों का साध्य व ध्यानकों का ध्येय है। यह पद अभव्य प्राणियों को असम्भव एवं भव्य प्राणियों को प्राप्त होना दुर्लभ एवं कष्टसाध्य है। ऐसे स्थान पर संयम एवं त्यागमय जीवन व्यतीत करनेवाला जीवात्मा ही जा सकता है। यथा आगम में कहा है।—

नाणं च दसणं चेव चरित्तं च तवो तहा।

एयं मग्गमणुप्पत्ता जीवा गच्छन्ति सुग्गइं॥

जिसे सम्यग्ज्ञान है वीतराग के वचन पर जिसकी श्रद्धा है जो चारित्रवान है तप करने की जिसकी प्रवृत्ति है वही मोक्ष पा सकता है।

मोक्ष के साधन–सम्यग्दर्शन — जिस गुण से सत्य की प्रतीति हो, हेय, ज्ञेय एवं उपादेय योग्य तत्त्व की यथार्थ आत्मरुचि हो वही सम्यग्दर्शन है। कहा भी है कि तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' वस्तु के वास्तविक स्वरूप पर श्रद्धान रखना सम्यग्दर्शन से जीव आत्मा को शरीर से पृथक समझने लगता है। संसा

रिक भोगोपभोगो को दुःखमय और निवृत्ति को सुखमय मानता है। सम्यग्दर्शन से आत्मा में प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और आस्तिक्य गुण प्रकट होते हैं, और इन गुणो से ही जीव पहचाना जाता है। सम्यग्दर्शन का अर्थ अन्ध विश्वास नही है, अन्धविश्वास का अर्थ है हित-अहित, सत्य असत्य आदि का विचार किये विना ही किसी बात का आग्रह करना, और अपनी मानी हुई बात को ही सत्य समझना, सम्यक्त्व का अर्थ है जो वस्तु सत्य है, उस पर दृढ़ विश्वास रखना। संसार में पदार्थो के जानने की रुचि प्रत्येक की भिन्न-भिन्न होती है किंतु जो जिज्ञासा आध्यात्मिक विकास का कारण हो, आत्मिक तृप्ति के लिए हो, वही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के दो कारण हैं एक निसर्गजन्य और दूसरा उपदेशादि बाह्यनिमित्तजन्य। कहा भी है कि "तन्निसर्गादधिगमाद्वा" जैसे कोई व्यक्ति किसी कला को जानना चाहे तो उसमें किसी की सहायता की अपेक्षा रहती है, बिना उसके वह कलाभिज्ञ नही हो सकता, इसी प्रकार दूसरा व्यक्ति बिना किसी की सहायता के ही कला आत्मसात कर लेता है, अत आन्तरिक कारण की समानता होने पर भी बाह्य निमित्त की अपेक्षा-अनपेक्षा से सम्यग्दर्शन के दो प्रकार माने है।

सम्यग्दर्शन को विद्वानो ने ज्ञान और चारित्र का बीज माना है, इसके बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता ही नही है तथा व्रत, नियम, तप, स्वाध्यायादि इसके बिना मोक्ष-फल के दाता नही हो सकते है। सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान, मिथ्याज्ञान और सम्यक्चारित्र कुचारित्र कहलाता है। सम्यग्दर्शन संसारजनित रोगो को नष्ट करने के लिए औषध के समान है। समस्त कल्याणो का कारण है। संसाररूपी समुद्र से तारने के लिए नाविक है। पापरूपी वृक्ष को काटने के लिए कुठार है। किसी कविने ठीक ही कहा है,

सुख अनंत की नींव है, सम्यग्दर्शन जान।
याही ते शिक्षा मिले, भैया लेहु पिछान॥
सम्यग्दर्शन अंक है, और क्रिया सब शून्य।
अंक जतन करि राखियो, शून्य शून्य दश गुण्य॥

सम्यग्दर्शन अंक के समान है, जैसे अंक के बिना शून्य की कोडी कीमत है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना सभी क्रियाओ का मूल्य शून्यवत् है। जैसे बीज बिना वृक्ष की उत्पत्ति वृद्धि एव फल की प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार समकित रूप बीज बिना सम्यग्ज्ञान व चारित्र की उत्पत्ति स्थिति और वृद्धि नही हो सकती, तथा उसका फल सत्यसुख—मोक्ष नही मिलता।

सम्यग्ज्ञान—नय और प्रमाण द्वारा होने वाले जीवादि नवपदार्थों के यथार्थ ज्ञान को सम्यगज्ञान कहते है। सम्यग्दर्शन का अधिकारी ही निग्रंथ प्रवचन एवं आत्मा पर आस्तिक के भाव रख सकता है ऐसे व्यक्ति का ज्ञान श्रद्धा मूलक होने से सम्यग्ज्ञान कहलाता है। उपयोग अर्थात ज्ञान यह जीवात्मा का असाधारण लक्षण होने से प्रतिक्षण रहता ही है चाहे वह ज्ञान मिथ्या हो या सम्यक। सम्यक्त्व की प्राप्ति पश्चात मिथ्याज्ञान में विशुद्धता आ जाती है और वह ज्ञान जीवन को प्रत्येक दिशा में शुद्धि की ओर ले जाता है। शुद्धता के बिना भाषाज्ञान एवं दूसरी पढ़ाई खूब होने पर भी वह ज्ञान मिथ्याज्ञान ही कहलाता है। सैकड़ों शास्त्र एवं कला ज्ञान पड़ा क्यों न हो यदि उसमें सद्विवेक नहीं है तो वह उन्मार्गगामी हो सकता है। जिस ज्ञान का विषय सत्य है वह सम्यग्ज्ञान और जिस ज्ञान का विषय असत्य है वह मिथ्याज्ञान है। सम्यग्ज्ञान से आत्मा का विकास और मिथ्याज्ञान से आत्मा का पतन होता है। सम्यगज्ञानी सत्य सत्य की खोज में रहता है वह अपनी मानी हुई बात का आग्रह छोड़कर पदार्थ के असली स्वरूप को जानने का प्रयत्न करता है। जैन परम्परा के अनुसार ज्ञान के मति श्रुत अवधि, मनपर्याय एवं केवल ऐसे पाँच प्रकार माने गये हैं। आदि के दो ज्ञान परोक्ष एवं अंत के तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं। प्रत्यक्षज्ञान के द्वारा आत्मा इन्द्रिय और मन के योग के बिना ही वस्तु का असली स्वरूप जान सकता है। आदि के तीन ज्ञान कभी कभी सम्यक्त्व के अभाव में अज्ञान भी कहलाते हैं। सम्यक्त्व की प्राप्ति के पश्चात् केवल जीवन शुद्धि के कारण ज्ञान अल्पमात्रा में रहने पर भी वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है, वहाँ ज्ञान की अल्पता या अधिकता नहीं देखी जाती केवलज्ञान के पीछे रहा हुआ शुद्ध भाव ही देखा जाता है। इसी शुद्ध भाव या सम्यक्श्रद्धा के कारण वह ज्ञान सम्यगज्ञान कहलाता है। सम्यगज्ञानी अपने ज्ञान का उपयोग सांसारिक वासनाओं के पोषण में नहीं करता उसे आध्यात्मिक विकास में लगाता है। सम्यग्ज्ञानी आत्मा के सत्य स्वरूप को जानता हुआ मैं बाह्य वस्तुओं से भिन्न एक अनंत सुखपूर्ण आत्मा हूँ ऐसा मानता हुआ आत्मगुणघातक तत्वों को छोड़ने में ही आनंद मानता है।

सम्यक्चारित्र—सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान के बाद जीवन में चारित्र का स्थान आता है। देवगति के प्राणी सम्यक्त्वी होने पर भी केवल आचरण के अभाव में चारित्रशील नहीं हो सकते परंतु मनुष्य गति में आगमों में उपदिष्ट चर्या का पालन करनेवाला व्यक्ति सम्यक चारित्र का अधिकारी हो सकता है। वह चारित्र भी व्यक्ति की शक्ति के अनुसार दो प्रकार का है। सर्वविरति

चारित्र और देशविरतिचारित्र। इन्ही दोनो को अनगारचारित्र और सागारचारित्र कहा जाता है। जो सब प्रकार के बाह्य वैभव एव परिग्रह का त्याग कर पचमहाव्रतो को अंगीकार करता है उसका चारित्र सर्वविरति है किन्तु जो पूर्ण त्याग की शक्ति न रहने पर मर्यादित त्याग करता है उसका चारित्र देशविरति चारित्र है। आत्मविकास के मार्गानुगामी सभी व्यक्ति समान शक्तिवाले नही होते, कोई व्यक्ति तीन करण तीन योग से अपनी सभी वासनाओ का दमन कर आत्मविकास एव कल्याण को ही अपना ध्येय बना लेता है और कोई व्यक्ति इच्छाओ के दमन करने का पर्याप्त सामर्थ्य न होने से धीरे धीरे त्याग करता है। इन्हे हम क्रमश अनगार और सागारचारित्र कह सकते है। सब प्रकार के संकल्प विकल्प छोडकर निश्चल भाव से जो सर्वविरति चारित्रधर्म का पालन किया जाय तो यह जीवात्मा आगे बढता बढता यथाख्यातचारित्र का अधिकारी हो जाता है। सम्यक्चारित्र के अभाव में सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन व्यर्थ है। कहा भी है कि 'ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष' ज्ञान और चारित्र के मेल से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। ज्ञान के बिना क्रिया और आचरण के अभाव में ज्ञान निकम्मा है। चारित्रशील व्यक्ति के ज्ञान और दर्शन स्व पर हित में कारणीभूत होते है। अतएव प्रत्येक साधक का कर्तव्य है कि जीवन को नि श्रेयस की ओर ले जानेवाले इस सम्यक्चारित्र धर्म का सुचारु रूप से पालन करे। ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीनो की त्रिपुटि ही मोक्ष की साधिका है।



कहत है तिलोकरिख—

पं. श्री सूरजचंदजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी)



पाँच विषयों के रस से वृक्ष का सिंचन हो रहा है। मोक्ष रूपी वृक्ष का सिंचन करना हो तो पंच परमेष्ठी की भाव वंदना—रस उपलब्ध करना चाहिये। अपनी प्रशंसा और मधुर सांसारिक संगीत का रस श्रोत्रेंद्रिय को नहीं देकर अरिहंत प्रभु की स्तुति का लोकोत्तर संगीत कानों को सुनाना चाहिए।

आँखों को कामिनी का रूप और चल—चित्रों की चलती-बोलती नाचती आखोंकी चराती करती नीचको हराम करती पसेकी बरबादी करती आगकी पुतलियाँ नहीं बताकर सिद्ध भगवान के स्वरूप की शान्त अवगाहना का दर्शन कराने की आदत डालनी चाहिये।

नाकको नाना प्रकार के जीवोंकी हत्या से बने हुए इत्रफुलेल नहीं सुंघाकर सुव्रतों द्वारा सुवासित आचार्य के चरणों की रज सुंघाना चाहिए।

जीभको बाजारू मिठाइयों का रस नहीं देकर उपाध्याय के मुखारविन्द से निकला हुआ प्रभु के प्रवचनों का स्वाद देना चाहिए।

स्पर्श इन्द्रियों को लौकिक कोमल स्पर्श न देकर सब साधुओं के चरणों का स्पर्श कराना चाहिए तभी मोक्ष रूपी वृक्ष को सिंचन मिल सकता है।

मोक्ष रूपी वृक्ष का मूल विनय है। जो नवकार मंत्र में 'नमो' के रूप में प्रसिद्ध है। संयम और तप पत्रपुष्प है और सिद्धि फल है।

पूज्यपाद श्री० तिलोकऋषिजी महाराज ने अपनी अमर वाणी में फरमाया है कि—

> कहत है तिलोकरिख मन, वच, काया करि
> लुलि लुलि बारम् बार वंदना हमारी है'।

अरिहन्त भगवान की भाव वन्दना करते हुए ऋषि महाराज फर्माते हैं कि उत्तम क्षमा का प्रथम धर्म प्राप्त करने के लिये क्रोध की प्रथम कषाय नष्ट करने के लिये कर्मरूपी अरियों का हनन करने के लिये अर्थात दुश्मनों का नाश करने के लिये अरिहन्त भगवान् का विनय करना ही प्रथम मंत्री भाव है जो मन, वचन और काया से बारम् बार झुक झुक कर लुलि लुलि बारम्बार मन वच काया करि हमारी भाववन्दना पहुँचने से ही बोधिबीज का वपन होता है।

दूसरे भगवान् सिद्धकी स्तुति करते हुए श्री० तिलोकऋषिजी महाराज फर्माते है कि,—

'कहत हैं तिलोकरिख बताओ ए वास प्रभु
सदा ही उगते सूर वन्दना हमारी है।'

मान कषाय को नष्ट करने के लिए मनका आवास छोडकर सिद्ध भगवान् का आवास देखना चाहिए जो सबसे ऊपर हैं जिससे मार्दव नामका दूसरा धर्म प्राप्त होता है। क्योंकि सूर्य का उदय होते ही हम जैसे बाहर का प्रकाश प्राप्त करते है उसी प्रकार सबसे ऊपर विराजमान सिद्धकी तरफ दृष्टि करने से मनका सारा अंधकार दूर होकर ऐसा ज्ञानका प्रकाश होता है कि, उनके सामने हमारी मानसिक सत्ता तुच्छ मालूम होती है इसलिये हमें उनके समान आध्यात्मिक सत्ता प्राप्त करना चाहिए। जिससे निरंतर सद्गुणो के प्रति प्रमोद भावना जागृत हो सके।

तीसरे आचार्यपद की स्तुति करते हुए श्री तिलोकऋषिजी म. फर्माते हैं कि,

'कहत हैं तिलोकरिख, हितकरि देत सिख
ऐसे आचारज ताकुं वन्दना हमारी है।'

तीसरे माया कषाय को नष्ट करने के लिये और आर्जव धर्म को प्राप्त करने के लिये कपट छोड़कर आचार्य महाराज सरलताकी समतापूर्वक शिक्षा देते है। जो सभी आचार का मूल और फल है। करुणाकी भावना इस सरलता के बिना नही आ सकती।

चौथे उपाध्याय पदकी स्तुति करते हुए श्री० तिलोकऋषिजी महाराज फर्माते है कि,—

'कहत हैं तिलोकरिख ज्ञान भानु परतिख
ऐसे उपाध्याय ताकें वन्दना हमारी है।'

पांचवे पदकी स्तुति करते हुए श्री० तिलोकऋषिजी महाराज फर्माते है कि

कहत है तिलोकरिख करमोंको टाले विख
ऐसे मुनिराज ताको वन्दना हमारी है

सब कर्मों का विष दूर करने के लिए हमें सब प्रकार के साधन का शरण लेना पड़ेगा, जिससे सब भावनाएँ पुष्ट होकर सिद्ध का साध्य प्राप्त हो सके।

पाप का नाश करने के लिए सबसे उत्कृष्ट पुण्यपद तीर्थंकर अरिहन्त प्रभु का शरण उत्तम है। जीव और अजीव का संबंध तोड़ने के लिए सिद्ध पद का शरण उत्तम है। आस्रव को रोककर संवर पद में प्रतिष्ठित होने के लिए आचार्य पद का शरण उत्तम है। बंध को काटकर कर्मों की निर्जरा के लिए उपाध्याय पद का शरण ग्रहण करना श्रेयस्कर है परंतु अंतिम तत्त्व मोक्षपद प्राप्त करने के लिए सब साधु का शरण ही परम मंगलकारी माना गया है। इसी लिये श्री० तिलोकऋषिजी महाराज कहते हैं कि ऐसे पाँचों पद ताकूं वन्दना हमारी है।



"अहिंसाप्रधान जैन संस्कृति"

श्री बन्सीलाल भगवानदास कोठारी, (अहमदनगर)

किसी राष्ट्र अथवा देश का परिचय, उसकी भौगोलिक रूप-रेखाओ में न मिलकर, उसकी सस्कृति और सदेशो में मिला करता है। किसी राष्ट्र के सास्कृतिक संदेश उसके जीवन, आदर्श, सभ्यता और सिद्धातो के लिए ऐतिहासिक पृष्ठो का काम किया करते है। भारत में कितनी ही जातियाँ अपने सन्देशो के साथ आई, पर उनसे भारत की आत्मा, उसके मन और हृदय का परिचय नही मिल सकता, क्योकि वे सदेश भोगो की आकाक्षाओ और आमोद-प्रमोद की लिप्साओ से लदे हुए थे। लेकिन भारत की आत्मा, मन और हृदय जीवन के उन सिद्धातो की तरफ झुकते रहे है, जो मनुष्य की भावनाओ और उसके जीवन के सामने आनेवाले भौगोलिक और जात-पात आदि के बंधनो को हटाते हुए, उन्हे इतने विराट और महान् बनाते हो, जो समस्त विश्व को एक कोने से दूसरे कोने तक छू रहे हो। जिस संस्कृति ने मनुष्य को इतना विराट बनाने का महान् सन्देश दिया, उसी सस्कृति में भारत की आत्मा, उसके मन और हृदय का परिचय मिल सकता है।

भोग और विलास मानव जीवन के उच्च आदर्श नही हो सकते, और न मनुष्य को विराट बनाने के वे महान् सन्देश ही बन सकते है। हिंसक विधि-विधान और बाह्य क्रिया-काण्ड भी, मानवीय हृदय और मन को इतने ऊँचे नही उठा सकते कि वे विश्व की सीमाओं को लाघ सके। जात-पात के सिद्धात तो मनुष्य को इतना छोटा बना देते हैं कि वह अपने जीवन की ऊँचाइयो का भी अनुभव नहीं कर सकता। श्रमण सस्कृति ने मनुष्य के लिए जो जीवन सिद्धांत दिए है, वे उसे एकदम जीवन की अन्तिम ऊँचाइयो पर ले जा रहे है। वे मनुष्य के आत्मा, मन और हृदय को छूकर चलते है, और मनुष्य के भावो को अपरिसीम बनाते और उनकी मलिनता को पवित्र करते हुए चलते है। इसलिए भारत की कोई मूल सस्कृति हो सकती है, तो वह श्रमण-सस्कृति है। इसका कोई

स देश हो सकता है तो वह है इस सस्कृति का मनुष्य मात्र को सत्य और अहिंसा का आदेश। जो सिद्धांत मनुष्य मात्र को यह आदेश नहीं दे सके है या जो व्यक्ति के शरीर या सामाजिक रीति रिवाजों तक अपना प्रभाव डालकर मिटते रहे हैं, उन्होंने ससार की आग न बुझाकर ससार में आग बरसाई, परमार्थ की राह न दिखाकर स्वार्थ साधना के मार्ग का निर्देश किया। श्रमण सस्कृति ने मनुष्य के लिए जो आदेश दिया है, वह सब बन्धनों से मुक्त होने के कारण उसके जीवन की अन्तभूमि को विराट बनाता हुआ उसे भी महान बनाता है। इसलिए श्रमण सस्कृति ने मनुष्य के सामने सबसे पहले विश्व के समस्त प्राणियों को अपनी आत्मीयता के समर्पण करने का आदेश दिया जिसे मानव जाति में अहिंसा के महान सिद्धात के रूप में उपस्थित किया। अहिंसा का यह महान् सिद्धांत, जीवन के सभी सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करता है। यह सबसे विश्व प्रेम न्याय समस्त प्राणियों के उत्पीडन के उच्छेद अभय और सुरक्षा का सन्देश वाहक है। उसने समस्त प्राणियों के विषय में अटल घोषणा की है—'ससार के समस्त प्राणी जीवन की प्यास से व्याकुल है।'

श्रमण सस्कृति की प्रधान शाखा जन–सस्कृति का तो सारा दारोमदार ही अहिंसा पर है। इसने अहिंसा को 'किसी को मत मारो'–जैसे छोटे छोटे वाक्यों की ही परिभाषा में समाप्त नही किया है। इसने इसे एक अगाध आध्यात्मिक दर्शन के रूप में उपस्थित किया है। विश्व की अन्य सस्कृतियाँ अहिंसा के अगाध आध्यात्मिक दर्शन समुद्र के तट तक न पहुँच सकने के कारण उसके ऊपर ही ऊपर तरती रहीं जिससे वे अहिंसा–हिंसा के सिद्धांतों को अच्छी तरह न समझ सकने के कारण बहुत गलत रूप से इन सिद्धातो के प्रचार में सहायक बनती रहीं। ये ही गलत धारणाएँ, दुनियाँ में भयकर आग बनकर भड़कती रही जिनमें मानव जातियों को अपनी सस्कृति और सभ्यताओं के बड़े बड़े बलिदान देने पड़े। यदि जन सस्कृति की तरह दुनिया न हमेशा से अहिंसा की मौलिकता और आवश्यकता अनुभव की होती तो हमें आज यह दुनियाँ इतनी अव्यवस्थित भयकर और असुन्दर रूप में नही मिलती मानव–जाति के खून से लथपथ हुए एतिहासिक पृष्ठ पढने को नहीं मिलते। बल्कि यह सारी दुनियाँ स्वर्ग से भी अधिक व्यवस्थित और सुन्दर मिलती। इसलिए जन सस्कृति ने मनुष्य के सामने अहिंसा का विराट रूप रखते हुए यह उदार सन्देश रखा है कि यदि वह दीन और हर तरह के

भय से मुक्त होने का इच्छुक है, तो वह अपने जीवन और सुख–सुविधाओ की चिंता से पहले दूसरो को मृत्यु और भय से मुक्त करने के साधनो और उपायों को शीघ्र करने का प्रयत्न करे, नही तो यह दुनियां उसे कभी भी सुन्दर रूप में न मिलेगी।

इस संस्कृति की अहिंसा का क्षेत्र जल और वनस्पति जैसे वे अत्यन्त मूक प्राणी भी है, जिनके सुख–दुखों का संसार को जरा भी ज्ञान नही है। इतनी सूक्ष्म अहिंसा का आविष्कार, मनुष्य को मनुष्य के प्रति हमेशा के लिए अहिंसक बनाए रखने की महान् योजना, और विश्व में शाश्वत शांति लाने का एक महान् प्रयत्न है। जैन संस्कृति मनुष्य के मानस को इतना अहिंसामय बनाना चाहती है कि उसके विचारो की दुनिया में किसी भी प्राणी की हिंसा के सकल्प जन्म न ले सके। उसने मानवीय स्वभावो को विश्वहितो में बदलने के लिए कुछ मौलिक संयम–सिद्धांतों का आविष्कार किया है। इसने मनुष्य के मासाहार, मदिरापान, स्वैण–जीवन जैसे दुर्गुणो पर नियत्रण लगाया है, जो मनुष्य के स्वभाव को महान् उत्तेजक बनाते है। 'जीओ और जीने दो' के अमर सन्देश देने का उत्तरदायित्व जैन संस्कृति ने हमेशा से अपने ऊपर लिया है। स्वतन्त्रता के युग से पहले बहुत से लोगो ने जैन संस्कृति पर उसकी अहिंसा के लिए भारत की गुलामी, पतन और कायरता के जो आक्षेप किये है, उनसे उन्होने अपनी बडी भारी जीवन की भूलो का प्रमाण दिया है। जहां कई संस्कृतियो ने अहिंसा को जीवन के गलत सिद्धातो में स्वीकार किया, वहां जैन संस्कृति ने उसे विश्व को एक कोने से दूसरे कोने तक बन्धुता के संबधो में जोडने के सिद्धातो मे स्वीकार किया है। दूसरी संस्कृतियां इसे कष्ट और यातनाएँ पहुँचाने दोडी, लेकिन इसकी आंखो में उनके लिए अहिंसा टपक रही थी। इसने उन्हे मित्र की आंखो से देखा। यह थी जैन–संस्कृति की अहिंसा की उत्कृष्ट एव अविचल साधना। जैन संस्कृति की समकालीन अहिंसक संस्कृतियां, भारत की सीमाओ को लांघकर जिन द्वीपो और राष्ट्रो में गई, वहां आज उनकी अहिंसा की साधना का बिल्कुल अत हो चुका है। लेकिन जैन संस्कृति आज जहां मौजूद है, उसकी अहिंसा की साधना आज भी उसी तरह से चल रही है। आज भी उसके दयालु नेत्र किसी भी जीवन की हिंसा को देख नही सकते।

९८१ और दूसरी वीरात ९९३। किन्तु जैसा कि एक पुरातन विद्वान ने स्पष्ट किया है कि नवशत विनवतितमवर्षे च कल्पस्य पषद वाचनेति—वीरात ९८० में आगम पुस्तकारूढ हुए और वीरात् ९९३ में कल्पसूत्र का ध्रुवसेन की राजसभा में व्याख्यान हुआ। अत उपरोक्त भ्रम के लिए वास्तव में कोई कारण नहीं है। द्वितीय वल्लभी वाचना की ओर देवर्धिगणि द्वारा आगमों के पुस्तकारूढ होने की तिथि वीर निर्वाण संवत ९८० ही माननी चाहिए जो सबमान्य व महावीर निर्वाण तिथि ५२७ ईसवीपूर्व के अनुसार सन ४५३ ईस्वी (वि स ५१० और श स- ३७५) बनती है। उसके १३ वर्ष बाद सन् ४६६ ई में क्षमाश्रमणजी ने आनंदपुर के राजा ध्रुवसेन की राजसभा में कल्पसूत्र का व्याख्यान किया था।

जहाँ तक वल्लभी वाचनासंबंधी अनुश्रुति का संबंध है। उसमें किसी राजा राजसभा राजधानी या राज्याश्रय का कहीं कोई संकेत नहीं पाया जाता। किन्तु दूसरी घटना से संबंधित अनुश्रुतियों से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि आनंदपुर का राजा ध्रुवसेन आचार्य देवर्द्धि का भक्त था और संभवतया उनके उपदेश से [illegible] जैनधर्म में दीक्षित हो गया था। यह बात भी ध्यान देने की है कि वल्लभी वाचना के साथ ध्रुवसेन का और आनंदपुर के साथ आगमों की वाचना एवं पुस्तकारूढ किये जाने का कोई संबंध नहीं पाया जाता।

सामान्य धारणा यही है कि वल्लभी का ही अपर नाम आनंदपुर था और उल्लिखित ध्रुवसेन वल्लभी का ही राजा था। वल्लभी में ५ वीं शती ई० के अन्त से लेकर ८ वी शती ई के मध्य तक लगभग ढाई सौ वर्ष मैत्रकवंशी राजाओं का राज्य रहा है और उस वंश में सैनांत नामवाले कई राजा हुए हैं—स्वयं ध्रुवसेन नाम के कम से कम तीन राजा हुए हैं। अतएव प्रायः यही समझा जाता है कि वल्लभी का मैत्रकवंशी नरेश ध्रुवसेन ही देवर्द्धि संबंधी अनुश्रुतियों का ध्रुवसेन था।

किन्तु ऐसा मानने में कुछ भारी बाधाएं हैं। ८ वी शती ई के अन्त के लगभग चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (ई ७९–४१३ ई) ने गुजरात सौराष्ट्र के शकों को पराजित करके उक्त समस्त प्रदेश को अपने राज्य में मिला लिया था। और एक गुप्त शिलालेख से प्रकट है कि ४५५–५६ ई में सम्राट स्कन्द-गुप्त के शासन काल के प्रारंभ में ही पर्णदत्त नाम का व्यक्ति सम्राट के आधार से गुजरात सौराष्ट्र का राज्यपाल था और उक्त वर्ष उनने सम्राट की आज्ञा से

गिरिनगर की तलैठी में सितप्राचीन सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार कराया था। इसके उपरान्त लगभग ४६५–७५ ई में सौराष्ट्र एव काठियावाड़ का राज्यपाल गुप्तो को एक अन्य सेनापति मैतृकवंशी भटार्क था। उसका पुत्र एव उत्तराधिकारी सेनापति धरसेन प्रथम हुआ। इसके उपरान्त इसका भाई द्रोणसिंह महाराज ५०७ ई में विद्यमान था। द्रोणसिंह का उत्तराधिकारी उसका भाई ध्रुवसेन महाराज (प्रथम) (५२५–४५ ई) था। यही वल्लभी प्रथम स्वतंत्र नरेश था और पर्याप्त शक्ति हीन था। इस वंश में ध्रुवसेन नाम का भी यही प्रथम ज्ञात नरेश है। इसके उपरान्त ध्रुवसेन द्वितीय (६४०) और ध्रुवसेन तृतीय (६५१–५३ ई) हुए हैं।

इन तीनो ध्रुवसेनो में से कोई भी देवर्द्धिगणि (४५३–६६ ई) के समकालीन नहीं हो सकता। प्रो जार्लचारपेंटियर ने (उत्तराध्ययन भूमिका में वीर निर्वाण की तिथि ४६८ ई. पू. मानकर वल्लभी वाचना की तिथि वीरात् ९९३ को ५२५ ई. मान लिया और इस प्रकार देवर्द्धिगणि एव मैतृकवंशी ध्रुवसेन प्रथम को समकालीन सिद्ध करके, इसी आधार को अपनी मान्य निर्वाण तिथि का पोषक बनालिया। किन्तु एक तो महावीर निर्वाण की तिथि ४६८ ई पू. होने के विरुद्ध अनेक अकाट्य प्रमाण हैं दूसरी और मैतृकवंशी राजाओ का उक्त वाचना या जैन धर्म के साथ कोई सबंध रहा यह बात भी अत्यन्त संदिग्ध है। वस्तुत जैसा कि प्रो घाटगे आदि अन्य आधुनिक विद्वानो का मत है—वल्लभी के मैतृको के अगिनत अभिलेख प्राप्त है, किन्तु उनमें कहीं भी इस महासम्मेलन का संकेत नही है और न उनसे इस वंश के किसी भी राजा का जैनधर्म की ओर झुकाव ही प्रकट होता है। दूसरी ओर जैन अनुश्रुतियो में इस वाचना को नरेश विशेष या राजवंश विशेष के साथ सम्बन्ध नहीं किया। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि जैनो को वल्लभी के किसी राजा का आश्रय प्राप्त नहीं था और इस वाचना का सम्पूर्ण श्रेय केवल स्वयं जैनसंघ को ही है। यह प्रदेश उसके बहुत पूर्व से जैन साहित्यिक प्रवृत्तियो का केंद्र रहा है। धरसेनाचार्य ने इसी प्रदेश के गिरिनगर की चन्द्रगुफा में निवास करते हुए पुष्पदन्त और भूतबलि को प्रथम शती ई में महाकर्म्म प्रकृति प्राकृत का व्याख्यान किया था जिसके फलस्वरूप उक्त आगम का उद्धार हुआ और यह पुस्तकारूढ़ हुआ। देवर्द्धि के एक शताब्दीपूर्व नागार्जुन सूरि ने वल्लभी में ही आगम संकलन का प्रयत्न किया

था। कालान्तर में श्री जिनभद्र क्षमा श्रमण आदि अनेक विद्वानों ने इस नगर में साहित्य पलायन किया है। अस्तु देवर्द्धिगणि ने भी अपने ही बल और प्रभाव से यह महान् कार्य इस नगर में साधा था। (देखिए—क्लासिकल एज पृ ४१०–४११)

अत इतिहास से तो यही प्रकट है कि वाचना के समय सौराष्ट्र-गुजरात का शासक गुप्त सम्राट का राज्यपाल पर्णादत्त था न कि कोई ध्रुवसेन। सभव है कि वल्लभी के आस पास कहीं कोई आनन्दपुर नाम का दूसरा नगर न हो जिसका छोटा मोटा स्थानीय राजा कोई ध्रुवसेन हो और वह क्षमाश्रमणजी का भक्त होगया हो। अथवा मैत्रकवशी सेनापति भटार्क (४६५–७५ ई) का ही अपर नाम ध्रुवसेन हो या उसके पूर्वज का नाम ध्रुवसेन हो। किंतु यह सब बातें इतिहास सिद्ध नही है—इन अनुमानों के पोषक कोई प्रमाण जब तक उपलब्ध न हों तब तक यह कुछ नही कहा जा सकता कि देवर्द्धिगणि का भक्त राजा ध्रुवसेन कौन था।



तिलोकऋषिजी की काव्य-कला

(ले–प्रो नरेन्द्रकुमार मानावत, एम् ए)

हिन्दी-साहित्य में काव्य-कला का स्फुरण दो रूपो में हुआ है एक ओर उसने राज्याश्रित होकर वैभव और विलास के गीत गाये है तो दूसरी ओर जनाश्रित होकर लोक मानस को आत्म–कल्याण और कर्तव्य-धर्म का उद्‌बोधन दिया है। एक में साहित्यिक कारीगरी और सजावट है तो दूसरे में भावना का स्वतः स्फूर्त उन्मेष । कहना न होगा कि जैन–काव्य–परंपरा विविध चरित्रो, विविध घटनाओ, विविध भावनाओ को –रंग–रूप देती हुई दूसरी धारा का प्रतिनिधित्व करती रही है । जहाँ उसने हिन्दी के आदिकाल की गोद को भरा है, रीतिकाल की शृगार–वाटिका में आध्यात्म–प्रेम का परिमल बिखरा है वहाँ आज भी वह मानवता का–सत्य–अहिंसा का सन्देश दे रही है ।

हमारे आलोच्य कवि तिलोकऋषि उन कवियो में है जिन्होने जीवन के विविध पहलुओ का मनन–चिन्तन और अनुभव कर उन्हे काव्य एव सगीत का स्वर दिया है । केवल सुनी–सुनाई अधकचरी बातो पर उन्होने काव्य–प्रासाद खडा नही किया। सवत् १९०४ में चैत्र कृष्ण तृतीया रविवार को रतलाम में दुलीचन्दजी सुराणा के यहाँ जन्म लेकर यह बाल–ब्रह्मचारी दस वर्ष की अवस्था में ही अयवन्ताऋषिजी महाराज का शिष्य बन गया । श्रावक से श्रमण बन गया । कर्तव्य ने कामना को दबा दिया, विराग ने राग पर विजय पा ली । दक्षिण एवं मध्यभारत में मानवता का, आत्म–कल्याण का सन्देश लेकर यह तपस्वी घूमता रहा, भटकता रहा । भूखा रहकर, प्यासा रहकर, बाईस परीषहो का समभावपूर्वक सामना कर यह कामजयी काव्य–कला को निखारता रहा, भव्य–जीवो को अनुभव–मुक्ता बाटता रहा और संवत् १९४० में श्रावण कृष्ण द्वितीया को सदा के लिये अमर हो गया इस पार्थिव देह का परित्याग कर।

काव्य–कृतियाँ––

(१) प्रकाशित रचनाऐं–ज्ञानकुजर, चित्रालंकार, अध्यात्मपर्व दशहरा तिलोकछन्द सग्रह, तिलोक काव्य संग्रह आदि ।

(२) अप्रकाशित रचनाऐं–श्री चन्द्रकेवली का रास, धर्मबुद्धि–पापबुद्धि चरित्र, समरादित्यकेवली चरित्र, पंचसमिति तीन गुप्ति का अष्टढालिया, सीता चरित्र, श्री हंसकेशव चरित्र, रात्रि भोजन निषेध, अर्जुनमाली चरित्र धन्ना

शालीभद्र चरित्र मगु पुरोहित चरित्र, श्री सुदर्शन चरित्र श्री नंदिषेण चरित्र, श्री चन्दनबाला चरित्र, श्री धर्मजय चरित्र श्री महावीर चरित्र, अमरकुमार चरित्र, नंदन मनिहार चरित्र श्री हरिवंश काव्य चरित्र आदि।

काव्य सौष्ठव —

तिलोकऋषि की रचनाओं पर विहंगम दृष्टि डालने से पता चलता है कि उनकी काव्य-धारा के दो रूप हैं —

(१) जन-हृदय से सम्बन्ध रखनेवाले आदर्श चरित्रों का रसपरक आख्यात वर्णन।

(२) मानव जीवन को उदात्त बनानेवाले लोक व्यवहारी सिद्धांतों का काव्यमय अभिव्यंजन।

पहले रूप में हमें कई सुन्दर खण्डकाव्य मिले हैं तो दूसरे रूप में मुक्तक-मोती।

हमारे आलोच्य-कवि की यह विशेषता रही है कि उसने धार्मिक विचार नैतिक शिक्षा समाज-सुधार आत्म-कल्याण जैसे गंभीर विषयों को बड़ी ललित पदावली में गाकर 'गागर में सागर' भरने का काम किया है। आपके छन्दों में हृदय में प्रभाव डालने की अद्भुत क्षमता है जो एक बार हाथ में उठाकर गाने लगता है तो फिर गाता ही रहता है। तन्मय होकर उससे एकरस होजाता है। सीधी सादी भाषा में मानव को विवेकशील बनने की जो चुनौतीपरक प्रेरणा दी है उसमें कितना बल है —

'मान तू मान तू मान तु मानव छाण ले छाण ले छाण तू तत।
जाण तू जाण तू जाण लि जीवने, आण रे आण रे आर तू सत॥
मोड दे मोड दे मोड तु मान को छोड दे छोड छोड तु अत।
धार तू धार तू धार ले अक्कल केत हु केत तिलोक के सत॥

तिलोकऋषि उन ज्ञानमार्गी संत कवियों की श्रेणी में बैठ दिखाई देते हैं जब वे भी खोलकर नारी की निंदा करते हैं पर उनका नारी निंदावर्णन सामान्य नहीं है का यत्व-भार से लदा हुआ है।

नारी है नरकवास तन है सघनवन, साडे तीन क्रोड रोम तरु कर छायो है।
कुच है पहार रहे काम चोर छग तीर अमूहकबान आन खेंचके चढायो है॥
नागन सी वेणी कटि केहरी को भयपूर मूल्क अजान जन वन में लढाये है।
कहत तिलोक कोई चतुर न चूके पथ धरम खजानो भर मोक्ष को सिधायो है॥

मन की चंचलता का और उसे वश में करने की भावना का बड़ा आलंकारिक चित्रण तिलोक के कवि-हृदय ने किया है। मन 'तोय में तरंग मानु कूदत कुरंग फुनि' है तो क्षण क्षण में 'पीपल को पान जैसे हाले'। वह कुंजर के कान की तरह अस्थिर है तो ध्वजा की उड़ान की तरह चंचल भी। उसे वश करने का तरीका है 'पणिहारी कुम्भ चिते, तैसे धर्मध्यान ध्यावे सुख दिन २ में।'

सांसारिकता का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि यह संसार अटवी है। काया रूपी नगरी में जीव रूपी बटायु ने आकर विश्राम लिया है और उसके चारों ओर काम रूपी चोर तथा पंचेन्द्रिय रूपी ठगणियाँ चक्कर काट रही हैं। अतः मुसाफिर को सतत जागरूक रहकर अपनी रक्षा करने की चेतावनी देता हुआ कवि कहता है—

'ज्ञानादिक गुण रूप रतन अमोल थर्म,
ऊंघे तो ले जाय लूट मिथ्यातम चोर है।
तिलोक कहत सद्गुरु चोकीदार सीख,
धार रे बटावु ऊंघे मती भई भोर है।'

काया रूपी नगरी की राज्य-व्यवस्था भी बड़ी भयावह है। यद्यपि राजा चेतन जीव है पर क्रोध रूपी कोतवाल, मान रूपी प्रधान, लोभ रूपी छड़ीदार और मोह रूपी फौजदार ने मिलकर राजा के विरुद्ध षड्यन्त्र रच दिया है। जबतक विवेक रूपी मित्र की सहायता से सबको पराजित नहीं कर दिया जाय तबतक सुख कैसा?

'काया रूप नगरी में चिदानंद राज करे,
क्रोध कोटवाल मानसिंह प्रधान है।
कपट हजूरयो लोभ छड़ीदार बन्यो सामें,
मोह फौजदार अति करत गुमान है।
मानत न आण कियो मुलक बेहाल सब,
भयो नृप दुःखी कियो मित्र वोधिदान है।
लेइ फौज चढ़यो मित्र, मोह परिवार घर,
कहत तिलोक जीत लह्यो सिद्धस्थान है॥'

ऐसे सिद्ध-स्थान की प्राप्ति करने के लिये राज्य-व्यवस्था में क्रांति करनी होगी। समकित को प्रधान, ज्ञान को भंडारी, शील को सारथी और क्षमा

रूपी हाथी–घोडो को एकत्रित कर सयम की सेना के हाथों में तप के हथियार देने होगे तभी कही कर्म रूपी शत्रुओं का वध होगा और मोक्ष रूपी गढ पर विजय की पताका फहरायगी।

जीव रूप राजा समकित परधान जाके
ज्ञान को भडार शील रूप रथ सारके।
क्षमा रूप गज मन हय को स्वभाव वेग
सजम की सेना तप आयुध अपार के ॥
सज्झाय वाजित्र शुभ ध्यान ध्वजा फरकत
रयन छराय सो बचाय कर्म मारके।
मोक्ष गढ जीतवा को कहत तिलोकरिख,
करिय सग्राम एसे धीरजता धारके ॥

कभी कवि आयु की नश्वरता का बोध देते हुए कहता ह कि
'छिण छिण माहे जसे अजलि को तोय घट
तल छूट दीपक की होण होत जोत है।
ओस बिंदु सूरज की तेजसु बिरलाय जाय
तसे पलपल तेरो आयु क्षय होत ह ॥

और ससार सागर में मोह रूपी जल ह भोग रूपी कीचड ह। मान रूपी फेन तथा तृष्णा रूपी तरगों में जीव डूबा जा रहा है फँसा जा रहा ह अत

कहत तिलोक भव नीप मोक्ष तीरवं
सजम जहाज अही शिव पद पाय ह।

कवि की वाणी में कबीर की क्रांति भरी हुई है वह बाह्य क्रियाकाड का विरोधी ह। उसे आत्म–कल्याण के लिये मन्दिर मस्जिद और गिरजाघर में जाने की जरूरत नहीं, उसका परमात्मा उसीके आत्म–मदिर में प्रतिष्ठित ह जिसकी पूजा करन का ढग है —

पूजा परमेश्वर की करत पडित जन,
ज्ञान निरमल जल दया–दीवो करिये।
किरिया कटोरो क्षमा-केसर को भरकर,
पाँच नवकार गुण फूलमाल वरिये ॥

तप रूप अगर उरवेविए जिनेन्द्र आगे,
ध्यान रूप नैवेद्य सो पापसेही करिये ।
कहत तिलोक ऐसी करिये सदीव पूजा,
होत है सकल सुख भव-जल तरिये ।।'

कविने कही कही शब्द क्रीडा भी की है। जहाँ उसने दशहरेपर्व की आध्यात्मिक विवेचना की है वहाँ मनुष्यो के नामो से आध्यात्मिक उपदेश भी दिया है —

प्रेमसी गुम्मारसिंह वश किया जीवराज,
मानसिंह भाईदास मिल्या चारो भाई है ।
कर्मचन्द्र काठा भया रूपचदजी से प्यार,
धनराजजी को बात चाहत सदाई है ।।
ज्ञानचन्दजी की बात सुने न चेतनराय
आवे नही दयाचन्द सदा सुखदाई है ।
कहत तिलोकरिख मनाय लीजे नेमचन्द,
नही तो कालूराम आया विपत सवाई है ।।

कवि ने वर्तमान-युग में अधिकाश पुरुषो को अपने आप को धार्मिक कहते देखा है। जब कि सच्चे अर्थो में उनमें धर्म-भावना का स्फुरण नही होता वे अपने आप को विरागी सिद्ध करने का प्रयत्न अवश्य करते है। इस मनो-स्थिति का अध्ययन कर कवि ने पाँच प्रकार के वैरागियो का स्वरूप चित्रण किया है जो बड़ा ही व्यग्यपूर्ण एवं मार्मिक है —

(१) मटक वैरागी:—

आवत तेवार तब करत है स्नान लोक, करे अलंकार केवा सवारे नरनारी है ।
पेरत भूषण निज-चित्त के मुजब सब, खावत सरस माल फिरत हुवारी है ।।
वीतत तेवार तब फिरत निज रूप ही से, आवत तेवार तब फिरे वोही त्यारी है ।
कहत तिलोकरिख मटक वैरागी रीत, आवत परब धर्म करे नरनारी है ।।

(२) चटक वैरागी —

डाम मास मच्छर ज्यू माकण रू दुष्ट जीव, तनपे चटको देत दुखत तेवारी है ।
हाथ से खुजाल कर माने समाधान सुख, घडी पल वीत्या बाद दुख न लगारी है ।
तैसी रीत चटक वैरागी नर नारीएत, पडत संकट माने संसार दुखयारी है ।।
मिटत है कष्ट तब भूलत है धर्मध्यान, कहत तिलोकरिख सो ही भी असारी है ।

(३) खीचड्यो वरागी --

लागत है भूख तब भिलत न अन्न नित्य मन में विचारे सुखी दीसे अनगारी है ॥
परदा में कर जोड कहे मुनिराजजी, दीजिये संयम मोय मसार असारी है ।
माता कहे नंदन से आशा है मेरी तुमको भोजन जीमो न फिर होवो दीक्षाधारी है ॥
खीचडी में घृत खूब जीमत ही भूल्योयम खीचड्यो वरागी रीत तिलोक उच्चारी है।

(४) मसाण्यो वरागी --

तरुण उमर माही मर जावे कोई जन होवत उदास मन झूरे नरनारी है ।
ससार असार सब स्वप्ना की माया सम, एक दिन सबही को जाणो निरधारी है ॥
छोडिये ससार फद करत विचार जन बालके सिनान कर आवे घरबारी है ।
मोह मदिरा में मग्न करे फिर घर धध मसाण्यो वरागी यों कह्यो सुविचारी है ॥

(५) असली वरागी --

किरमजी रग जसे धोवे कोई खोम देवे, तार तार होवे रग उड न लगारी है ।
वसे भव्य जीव हिये धर्म रूपी लाग्यो रग जाणत असार जग नागणीसी नारी है ॥
धन सब धूलि सम परिवार फास रूप जाणत अनित्य चित्त होय व्रतधारी है ।
करणी तो शुद्ध करे मन वच काय करी कहत तिलोकरिख वदना हमारी है ॥

तिलोकऋषि की अपार भाषा क्षमता का परिचय तब लगता है जब हम उन्हें सस्कृत की सूक्तियो पर भी कवित्त लिखते हुए पाते है। मनुष्यरूपेण मृगाश्चरति 'मनुष्यरूपेण भ वश्चरति मनुष्यरूपेण श्वानोभवति मनुष्यरूपेण खराश्चरति मनुष्यरूपेण तृणानि सति मनुष्यरूपेण भवति वक्ता 'और मनुष्यरूपेण घूकैस्व पुजा सूक्तियों पर जो उनके कवित्त है वे बड मर्मस्पर्शी और मानवत्व का बोध देनेवाले है। 'मनुष्यरूपेण खराश्चरति पर लिखा गया यह कवित्त देखिये ---

'कहत गदभ शीत-ताप सहू दिल पर
भुण गुण भार लाऊ लपटे से भारी है ।
लिडाकी सो बूटी देवे काम आवे औषधि में,
मिट्टी में मिलावे मल होवे एकतारी है ॥
शकुन सुजाव कहू तुरत ही परगट
और तो कर्वे पंगुल मान न लिगारी है ।
और भी अनेक गुण मोय में नराधिपत,
निगुणी की उपमा न लागत हमारी है ।

जैन कवियो में जितनी लोकप्रियता हमारे कवि को मिली है और किसी को नही। पच पदो की वन्दना में आये हुये सवैयो को जब प्रतिक्रमण करते समय जन समूह गाता है तब निराला ही समा बंध जाता है। कवि की भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और प्रसादगुण सम्पन्न है। कही भी जटिलता या दुर्बोधता नही है। छन्दो मे जितनी सफलता कवित्त और सवैयो को लिखने में आपको मिली है शायद ही किसी हिन्दी कवि को मिली हो। रीतिकालीन कवियो ने कवित्त सवैये अवश्य लिखे पर उद्दाम वासनात्मक शृंगारधारा बहाने के लिये ही आपकी यह विशेषता रही कि शृंगार की जगह शात रस की मन्दाकिनी ही मन्थर गति से काव्य-प्रयाग की ओर बहती रही।

तिलोकऋषि साहित्य या कला को मनोरंजन का साधन अथवा 'कला कला के लिये' माननेवाले नही थे वे तो समस्त कलाओ को जीवन से प्रेरित और प्रभावित मानते थे। कला और नीति का सुन्दर गठबन्धन उनकी काव्य-स्थली में होता है। उनका तो आदर्श ही था —

'सीखत वेद पुराण कुराण को, सीखत तान बजावत ताली।
जंतर मंतर तंतर सीखत, चोट चलाय कुचोट की टाली॥
खावण पीवण धातु रसायन, लावण्य और कला सब झाली।
रीति कोठी नही सोहे तिलोक के त्यो सब कला धर्म बिन ठाली॥

कहना न होगा कि ज्यो ज्यो रसिक-हृदय तिलोक के काव्यमहोदधि में गोते लगायेगा त्यो त्यों उसे भक्ति, वैराग्य और नीति के त्रिरत्न मिलते जायेंगे–ऐसे रत्न जिनकी चमक उसे लोकोत्तर प्रकाश से भर देगी।



*** निबन्ध–सार सपूर्ण ***







श्री तिलोक जैन विद्यालयके आद्य सदुपदेशक

श्री रत्नऋषिजी महाराज

का

संक्षिप्त-जीवन-वृत्त

चरित्रनायक श्री तिलोकऋषिजी महाराज के स्वर्गवास के समय उनके पट्टशिष्य श्री रत्नऋषिजी महाराज की अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी। श्री रत्नऋषिजी महाराजने किस उत्कट वैराग्य-भावसे अपने पिताजी स्वरूपचन्दजी के साथ घोडनदी मे पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराजके पास दीक्षा ली। इस सबका उल्लेख पहले हो चुका है।

दीक्षानतर आपश्री अपने अलौकिक गुरु के सान्निध्य में एकनिष्ठ होकर स्वाध्याय करने लगे। पर साढे चार साल ही उनकी छत्रछाया मे नही रहने पाये कि कुटिल काल-चक्र के कारण आपको अपने गुरुदेव की छत्रछाया से वंचित होना पडा। इस बीच आपने बहुत से सिद्धान्त के थोकडे, शास्त्रो का रहस्य, अनेक शास्त्रीय ढाले और साधुओ के आचार सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातो का परिचय प्राप्त कर लिया था। पर केवल इतना सा ज्ञान एक योग्य संत के लिए पर्याप्त नही था। उसके लिए पाण्डित्य की आवश्यकता थी। अपने गुरुदेव के सहवास मे यह सब सुलभ था। अब गुरुदेव के अभाव में उन्हे चारो ओर अधकार ही अधकार प्रतीत होने लगा। कही पर ज्ञान की किरण दृष्टिगोचर नही होती थी।

अपने गुरुबन्धुओ मे भी कोई ऐसे प्रतिभासपन्न विशिष्ट अध्येता नही थे, जो आपकी कामना की पूर्ति कर सकते, दक्षिण में भी उस समय अन्य किसी ऐसे सत का सचार नही हो रहा था, जिसके पास रह आप निराकुल भाव से अपना अध्ययन कर सकते। इधर आपके ससारपक्ष के पिता श्री तथा दीक्षित अवस्था के गुरु बधु श्री स्वरूपऋषिजी म भी वृद्धावस्था के कारण अशक्त हो चुके थे। उस समय भी श्री स्वरूपऋषिजी महाराजने अपनी परिचर्या की ओर बिलकुल ध्यान दिये विना बालमुनि श्री रत्नऋषिजी महाराजके विद्याध्ययन की ओर अधिक ध्यान दिया। दिवगत श्री तिलोकऋषिजी महाराज की ससार पक्ष की भगिनी महासती श्री हीराजी महाराज की भी केवल रत्नऋषिजी महाराज की

आर दृष्टि थी। महासतीजी न सोचा, हमारे सम्प्रदाय में केवल य बालमुनि ही ऐसे ह, जिन्हें योग्य वातावरणमें रखने से थोड समय में सघक आधारभूत हो सकते हैं। अतएव महासतीजीने पुन सघक हितार्थ श्री रत्नऋषिजी महाराज को मालव प्रान्तकी ओर विहार कराने का सकल्प किया। श्री स्वरूपऋषिजी महाराजने भी अपन पुत्र की उन्नतिके हेतु एकाकी रहना स्वीकार किया और अपने साथ के दो मुनियो को श्री रत्नऋषिजी म क साथ कर दिय।

मालव प्रान्त की ओर विहार

श्री रत्नऋषि जी महाराज को विशिष्ट अध्ययन कराने के हेतु महासतीजी श्री हीराजी महाराजने अपनी ९ शिष्याओं के साथ मुनित्रय के विहारानुक्रम से मालवप्रान्त की ओर पदार्पण किया। आपको कुछ दूर पहुचाने के लिए श्री स्वरूप ऋषिजी महाराज महासती श्री चपाजी महाराज, रामकुवरजी महाराज और छोटाजी महाराज भी आइ थी।

विद्याध्ययन

मालवप्रात में आने के बाद आप को श्री हीराजी महाराज के सदुपदेश से रतलाम नगरमें श्री बद्रिचदजी नामक एक एसे सुशिष्य की प्राप्ति हुई जो चालीस थोकडों के ज्ञाता शुद्धाचारी एक चादर पर अपना निर्वाह करनेवाले परम वैरागी थे। साथ म आपकी धर्मपत्नी ने भी महासतीश्री हीराजी म के पास दीक्षा ली थी।

अपने इस शिष्य के साथ आपश्रीने सुजालपुर की ओर विहार किया। उस समय वहाँ श्री सूबाऋषिजी महाराज न अपने शिष्य चेनाऋषिजी म० की शारीरिक अस्वस्थता के कारण स्थिरवास कर रखा था। उन्ही के समीप अब श्री रत्न ऋषिजी महाराज उनकी आज्ञानुसार रहने लग। श्री सूबाऋषि जी महाराज समयानुसार सब साधुओ को शास्त्र सुनाते थे और अर्थ की भी धारणा कराते थे। परतु जिस समय से श्री रत्नऋषि जी महाराज आप के सान्निध्य में रहने लग तब से आप ही से शास्त्र का वाचन कराकर अर्थ कराने लगे। मुख्य अर्थका सविस्तार विवेचन स्वय श्री सूबाऋषि जी महाराज करते थे। दूसरे दिन प्रातःकाल उसी विषय पर आपश्री से परिषद म विवेचन करवाते थे। इस प्रकार अध्ययन के साथ आपने स्थविर शास्त्रज्ञ मुनि श्री सूबाऋषि जी म० के सहवासमें व्याख्यानकला में भी प्रवीणता प्राप्त कर ली। उस समय श्री सूबाऋषि जी महाराजके शिष्य श्री केवलऋषि जी महाराज भी आपश्री के साथ विद्याभ्यास कर रहे थे। पर्याप्त समय तक श्री सूबाऋषिजी म० की सेवामें रहकर आपश्री ने प्राय सब मुख्य मुख्य सूत्रोंका अध्ययन कर लिया।

स्वाध्याय के लिए श्री खूबाऋषिजी म० के पास बहुत कुछ समय अंतेवासी के रूप से व्यतीत कर आप ने साधुचर्या के अनुसार ग्रामानुग्राम विहार करना प्रारम्भ किया। उस समय आप के साथ तपस्वी मुनि श्री केवलऋषि जी महाराज भी थे। इस मुनिश्री को समय समय पर उग्र तपश्चर्या चलती रहती थी। विहार करते-करते जब आप इच्छावर पधारे तब तपस्वी महाराज ने केवल छाछ के आधार से तेरह दिन की तपश्चर्या करने का निश्चय किया। उस समय इच्छावर से कुछ दूरी पर खेडी नामक ग्राम में श्री केवलऋषि जी महाराज के ससार पक्ष के पुत्र अमोलकचन्द जी अपने मामा स्वरूपचन्द जी के यहाँ आये हुये थे। महाराज श्री की तपश्चर्या के समाचार पाकर बालक अमोलकचन्द जी खेडी से दर्शनार्थ इच्छावर आया।

बालक अमोलक की दीक्षा

इच्छावर आने के बाद अपने पिताश्री को साधुवेष में देखकर बालक अमोलक का मन भी दीक्षा की ओर आकर्षित हुआ। दीक्षा विषय प्रकरण को लेकर रात्रि में दोनो सन्तो में बहुत ऊहापोह हुआ। बहुत विचार करने पर वे इस निर्णय पर पहुँचे कि यह बात प्रकट होने पर बालक की दीक्षा होना कठिन है।

क्यो कि इनके काका मन्दिरमार्गी है, तथा मामा आदि श्रीमत है। इस पर श्री रत्नऋषि जी महाराज ने फरमाया कि कोई कचहरी की ओर मत देखो, कर्त्तव्य की ओर पहले ध्यान दो। आपका आदेश होते ही एक वैरागी बन्धु ने रातोरात पछेवडी तथा मुँहपत्ती पर स्वस्तिक के चिन्ह बनाकर, सिरके बाल कैची से कटवा, चोलपट्टा आदि पहना कर बालक अमोलक को स्थानक के बाहर बैठा दिया। इसपर कुछ लोगो ने विरोध किया। पर अपने पिताके पास बालक के रहने के कारण न्यायाधीश ने अपना निर्णय दीक्षा के पक्ष में ही दिया। बाद में श्री खूबाऋषि जी म० की सेवा में पहुँचने पर उनके आदेश से श्री अमोलकऋषि जी म० को चेनाऋषि जी महाराज की नेश्राय में रखा।

यद्यपि श्री अमोलकऋषिजी म० श्री चेना ऋषिजी म० के शिष्य थे। पर शास्त्रो का अभ्यास आप ने श्री रत्नऋषिजी महाराज के पास ही किया। श्री रत्नऋषिजी म० का भी इनके प्रति पुत्र की तरह वात्सल्य भाव था। एक समय विहारमें चलते-चलते जब यह बालमुनि थक गये तब इन्हे अपने कधोपर उठाकर आपने विहार किया था। ऐसे वात्सल्यमूर्ति गुरु के समीप रहकर आपश्रीने शास्त्रो का यथेच्छ अभ्यास किया। अपने इन वत्सल गुरु के समीप आप करीब ११ वर्षो तक रहे। उन्ही के साथ आप ने मालवा, मेवाड, सौराष्ट्र, गुजरात आदि स्थानो में विहार कर पुन महाराष्ट्र में पदार्पण किया और गुरु-द्वारा प्राप्त विद्या को अपने मस्तिष्क में ही नही रखकर उसे स्थाई रूप दिया।

पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज

का

वैशिष्ट्य

श्री अमोलकऋषिजी महाराज शास्त्रोद्धारक रूप से प्रसिद्ध है। भगवान् द्वारा प्ररूपित आगम अर्धमागधीमें होने से केवल प्राकृत के जानकार कुछ विद्वानों तक ही सीमित थे उनका सबके हाथों हिन्दीकरण कर आपश्री ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की बहुत सेवा की है। आपके दीर्घकालीन प्रयत्न से आज हिंदी जाननेवाला कोई भी पाठक किसी भी आगम को हाथमें लेकर अच्छी तरह समझ सकता है। आगमों का अनुवाद करते समय आपश्री ने अपने साथ किसी विद्वान् को नहीं रखा। प्रति दिन एकाशन कर तीन साल तक कठोर श्रम करने के बाद आपश्री ने यह मनोरथ कार्य सम्पन्न किया। आप के द्वारा अनूदित आगमों को देखकर कोई भी पाठक इस कार्य की महत्ता का सहज ही अनुमान लगा सकता है। इस कार्य की महत्ता इससे और अधिक बढ़ जाती है कि पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज के अनुवाद करने के पहले आगमों का हिंदी अनुवाद उपलब्ध नहीं था। आज कल हिंदी आगमों के जो कुछ संस्करण प्रकाशित हो रहे हैं उन सब में पूज्य अमोलकऋषिजी म. द्वारा कृत आगमों का आश्रय लिया जाता है। आगमों के अतिरिक्त आपश्री ने और भी अनेक अमूल्य ग्रन्थों की रचना की है, जिनका पारायण कर अनेक भव्य प्राणियों ने सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर शुद्ध चारित्र धर्म को अंगीकार किया है। उनमें एक नवदीक्षित श्री यशवंतऋषिजी म० ने सर्व प्रथम अपनी पत्नी तथा पुत्रियों का वियोग होने के बाद पूज्य श्री द्वारा रचित ध्यान कल्पतरु का तीन चार बार पारायण कर ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया और उसमें बताई हुई प्रणाली के अनुसार ग्यारह वर्ष तक कठोर साधना कर संवत १९१७ कार्तिक कृष्णा अष्टमी गुरुवार के दिन उपाध्याय मुनि श्री आनंदऋषिजी म. के पास घाबोरी में भागवती दीक्षा ग्रहण की। इस दृष्टि से पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० का नाम केवल स्थानकवासी जैन परम्परा में ही नहीं जैन समाज की तीनों परम्पराओं में अमर रहेगा। जैन परम्परा का इतिहास लिखते समय पूज्य श्री अमोलकऋषिजी म० के नाम का उल्लेख किये बिना वह इतिहास अधूरा ही रहेगा। शास्त्रोद्धारक पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज के महत्त्वपूर्ण कार्यों पर स्वतंत्र रूप से एक अलग पुस्तक लिखी जा सकती है। आपके आध्यात्मिक जीवन का दर्शन करने के लिए पाठक पूज्यश्री के ग्रन्थों का पारायण करें। क्योंकि ग्रन्थकर्ता के ग्रन्थों में उसका जीवन छिपा रहता है।

संत-समागम एवं धर्म प्रचार

अपने विहारकाल में श्री रत्नऋषिजी महा० का अनेक संतो से परिचय हुआ। उनमें कई शास्त्रो के पारगामी विद्वान्, कुछ महान् क्रियाशील, एव कुछ व्याख्यान वाचस्पति थे। उनमें एक पूज्य श्री हुकमीचदजी महा० की सप्रदाय के वादीमानमर्दक पण्डित मुनि श्री नदलालजी महा० थे। दूसरे महान् तपस्वी श्री वेणीरामजी महा० हैं, जो तपस्वीजी पिछले दस वर्षसे केवल छाछ के आधार से रहते थे, उनसे आपने शास्त्रो का बहुत कुछ रहस्य प्राप्त किया। तपस्वीजी महा०के आग्रहमे आप कुछ समय तक उनके साथ रहे। इनके अतिरिक्त तेजमलजी महा० की सप्रदाय के श्री प्यारचदजी महा०, इद्रमलजी महाराज और हुकमीचदजी महा० की संप्रदाय के श्रीलालजी महा० से भी आपने समय समय पर शास्त्रीय चर्चा कर बहुत कुछ शास्त्रो का रहस्य प्राप्त किया। उस समय मालवा, मेवाड, राजस्थान और बादमें गुजरात में विराजित प्राय सब अग्रगण्य मुख्य संतो से आपने परिचय साधकर उन्हें अपने गुणो से मुग्ध किया।

गुणग्राहकता के अतिरिक्त महाराज श्री की व्याख्यान शैली अद्भुत थी। जो कोई आपका व्याख्यान सुनता, आपकी ओर आकर्षित हो जाता। अपने विहारकाल में आपने अपनी कथनी और करनी की एक वाक्यता द्वारा अनेक व्यक्तिओ को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। करजू ग्राम निवासी गमेरचदजी नामक एक वृद्ध श्रावक से ज्ञात हुआ कि जिस समय कुछ गिने गिनाए वृद्धो को छोडकर शेप श्रावक-गण मुँहपत्ती बाधनेमें भी लज्जा का अनुभव करते थे, उस समय महाराज श्रीने अपने महान् व्यक्तित्व से नवयुवको को इस मिथ्या लज्जा से पराङ्-मुख कर मुहपत्ती बाधने के लिये विवश किया। एक बार आपके व्याख्यान को सुनकर श्री प्रतापमलजी महाराजने कहा–रत्नऋषिजी! आपके पास ऐसा-कौनसा मोहनी मत्र है, जिससे जो आपका व्याख्यान सुनता है वह आपके वशमें हो जाता है। श्री रत्नऋषिजी महाराज के सदुपदेश से केवल जैन धर्मावलवी ही अपने धर्म-पर दृढ नही हुए, वरन् अन्य मतवाले अनेक लोगोने भी जैन धर्म अंगीकार किया। हिंसा मे रत रहनेवाले कुछ राजा महाराजाओ ने तो उग्र हिंसाको छोडकर उत्त-रोत्तर अहिंसाकी दिशामें प्रयाण करने का पच्चक्खाण लिया।

एक बार मेवाड प्रात में विहार करते समय वहा की पहाडी भूमि में स्थित सियाड, बयोरा के ठाकुर साहब अपने उमरावों सहित आपका व्याख्यान सुनने आये। आपका व्याख्यान सुनकर ठाकुरसाहब ने सिंह व्याघ्र आदि हिंसक प्राणियो को छोडकर अन्य पचेन्द्रिय प्राणियों को नही मारने का प्रत्याख्यान किया। एका-दशी आदि पर्व तिथियों में मासभक्षण करने का परित्याग किया।

यहा से विहार करते कुछ दिन बाद का उल्लेख है कि पुन—श्री रत्न ऋषिजी महाराज श्री अमोलक ऋषिजी महा० के साथ विहार करते करते सिहाड पधारे। वहा आप श्री के पास दीक्षा लेनेके प्रकरण को लेकर लडते झगडते देख तत्काल वहा से विहार कर दिया।

कुछ दूर जानेपर विकट जगल के कारण रास्ता भूल गये। पहाडके चक्रव्यूह में रास्ते तथा दिशा का कुछ ध्यान नही रहा। दो घटे तक इधर उधर चक्कर लगाने पर भी रास्ते का कुछ पता नही लगा। सूर्यास्त होने का समय निकट आ गया। इधर इस घने जगल मे आप दोनो को सिंह व्याघ्र आदि की शका भी होने लगा। दोनो सोचने लगे अब क्या करें और किधर जाय? तदनतर जगल में चारो ओर देखकर श्री रत्नऋषिजी महा० ने कहा इधर तीतर पक्षी बोल रहा है इसकी ध्वनि से प्रतीत होता है कि कही आस पास गाव होना चाहिए। पहाड की उपत्यका मे होने के कारण हम कोई बसती नही दिखाई दे रही है। तुम इस पहाड की चोटी पर चढकर देखो। श्री अमोलक ऋषिजी महा० ने पहाड की चोटीपर चढकर देखा, तो उसकी दूसरी ओर पास ही में एक गाव दृष्टि गोचर हुआ। फिर महाराज श्री को बुलाकर दोनों सतोंने सूर्यास्त के पहले उस गाव मे पदार्पण किया।

दोनों सतों को देखकर लोग बोले आज प्रात काल महाराज श्री ने विहार किया, रास्ता भूल जाने से सारे दिन भूखे प्यासे पहाडों में भटकते फिरे। आपको बहुत ही कष्ट हुआ। तब महाराज श्री ने कहा सिवाड से आहार पानी करके निकले थे। रास्ता भूल जाने से पहाड की दूसरी ओर चले गये थे। यह सुन लोग कहने लगे अच्छा हुआ महाराज! आप चले आये। इस जगल में तो सिंह रहता है। तत्पश्चात प्रतिक्रमण कर सो गये। रात्रि व्यतीत होने पर प्रतिक्रमण आदि कर कानोड की ओर विहार किया।

एक बार एक तुरकी वोहरा कुछ मेवा लाकर महाराज श्री के सामने उपस्थित हुआ। उसने अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा से महाराज श्री से निवेदन किया। आपका व्याख्यान सुनकर मै तृप्त हो गया हू। इसके उपलक्ष में मै आपको कुछ देना चाहता हूँ पर हमारे घर बनी हुई चीज तो आपके काम नही आती। लिये मै यह शुद्ध मेवा लाया हू। इसे लेकर आप मुझे कृतार्थ कीजिए। पर महाराज श्री ने फरमाया—मामने लाई [illegible] काम नही यदि तुम्हारी कुछ देने की इच्छा है तो आज [illegible] मारने मास भक्षण करने का त्याग कर लो। [illegible] लिये बहुत भेट होगी। महाराज श्री के कहने पर उसने [illegible] और निर्लोभी सच्चे साधु दुनिया में मिलने कठिन [illegible] चला गया।

मेवाड़ प्रान्त में ही वरियावद के रावसाहब महाराज श्री के व्याख्यान की प्रशंसा सुनकर हाथी पर सवार होकर अपने उमराव आदि परिवार के साथ महाराज श्री के दर्शनार्थ आये। व्याख्यान सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुये। रावसाहब के आग्रह से आपने वहाँ २९ दिन तक स्थिरवास किया। इस बीच अनेक बार रावसाहब ने व्याख्यान का लाभ लिया। आपके काकाजी बड़े धर्मात्मा पुरुष थे। वे तो प्रतिदिन व्याख्यान में आते थे। चारों ओर से व्याख्यान की प्रशंसा सुनकर महारानी का भी चित्त उस ओर आकर्षित हुआ। फलत राजमहल में व्याख्यान देने की प्रार्थना की गई। विशेष उपकार की संभावना से प्रेरित होकर आपने राज महल में व्याख्यान दिया। उस समय अनेक प्रकार की जीवहिंसा इत्यादि का प्रत्याख्यान हुआ। वहाँ के लोग आपके महान् व्यक्तित्व से इतने अधिक प्रभावित हुये कि रावसाहब की ओर से कामदार आदि प्रमुख व्यक्तिओं ने आप से अपने यहाँ आगामी चातुर्मास करने की प्रार्थना की, पर उस समय तक फाल्गुनी चातुर्मास समाप्त नहीं होने के कारण आपने वह प्रार्थना स्वीकार नहीं की। इधर रावसाहब भी महाराज श्री का पीछा छोड़ने वाले नहीं थे। उन्होंने दृढ निश्चय कर लिया कि किसी तरह महाराज श्री का चातुर्मास यहीं होना चाहिए। वे इस निश्चय के अनुसार अपने अनुचरों द्वारा आपके विहार के समाचार प्राप्त करते रहे। फाल्गुनी चातुर्मास समाप्त होते ही रावसाहब ने अपने प्रधानजी को ग्यारह श्रावकों के साथ महाराज श्री के पास चातुर्मास की विनति करने के लिए भेजे। उन्होंने बासवाडा पहुँचकर महाराज श्री के सन्निकट अत्याग्रह पूर्वक अपनी प्रार्थना सुनाई। स्पर्शना हुई तो इस वर्ष वरियावद में चातुर्मास करने के भाव है। महाराज श्री के मुखारविंदसे ये शब्द सुन प्रधानजी कृतकृत्य हो पुन अपने स्थानपर आये।

गुजरातकी ओर विहार एव घोर परीषह

मालवा, मेवाड आदि प्रान्तोंमें आपने शुद्ध क्रियाशील जीवन एवं अनुपम व्याख्यानों द्वारा धर्म का प्रचार कर श्री रत्नऋषिजी म एवं श्री अमोलकऋषिजी म की गुजरात की ओर विहार करने की इच्छा हुई। अपने विहार काल में आप श्री ने इससे पहले अनेक परीषहोंका सामना किया। पर गुजरात की ओर विहार करते समय आपको जिन कठिनाइयोंका सामना करना पडा, वे वर्णनातीत हैं। एक बार लीमडी से विहार करते समय आप दोनों ने यह निश्चय किया कि जब तक सूर्यास्त न हो, तब तक कहीं निवास नहीं किया जाय। चलते चलते तीसरा प्रहर व्यतीत होनेपर रास्तेमें एक ग्राम आया। कंठ सूख जाने से सतोंने वहां पानी की याचना की, पर कहीं पानी का योग नहीं लगा। फिर आगे चले। लगभग एक घडी दिन शेष रह गया, तब तक बत्तीस मील का

उग्र विहार हो चुका था। बहा रास्तेमें सडक के किनारे एक चौकी मिली। ठहरन के लिये सिपाही से याचना करनेपर कठोर उत्तर प्राप्त हुआ, यहाँ किसी को ठहरन के लिये आज्ञा नही ह। चलते चलते आप दोनों इतने अधिक थक गये थ कि अब आग एक पाव भी रखना कठिन था। पर जगहके अभाव में निरुपाय हो कुछ दूरीपर एक खत म वटवृक्षके नीचे कमर खोलकर अपना आसन जमा दोनों सत बठ गय। किसी प्रकार के आहार-पानी के बिना दिन भर विहार करने से दोनो थकावट के कारण चूर-चूर हो गये थे। ऐसी अवस्था में प्रतिक्रमण करने के बाद शयन किया। दोनो ओर पहाडकी सधि आ गई थी। सघन वृक्षलता गल्मोसे चारों ओर अधकार छाया हुआ था। निजन भूमि में भी झिल्लियो का झनकार हो रहा था। जिधर देखो उधर हिंस पशुओंका भय था। फिर भी शयन करने पर आप दोनों ने निद्रादेवी की गोद म विश्रान्ति ली।

दूसरे दिन सूर्योदय के पश्चात् प्रतिलेखन कर आप दोनों ने आग की ओर विहार किया। पहले दिन के भूखे-प्यासे तो थ ही उस पर आज दस मील का उग्र विहार हुआ था। इससे दोनों अत्यत श्रांत हो गये थे। गोधरा शहर में पहुचन पर दोनों न स्थान के लिए इधर-उधर बहुत तलाश की, परन्तु किसीने कुछ ध्यान नही दिया। अन्त में एक बढ़न मंदिरके पास एक धर्मशाला दिखाई उस में दोनो सत उतरे। इस शहर में जनों के अनक घर थ। पर उन्हें कल्पनीय अकल्प नीय का कुछ ज्ञान नही था। तीस पतीस घरों में घूमने पर बड़ी कठिनाईसे पाँच दस घरोंमें आहार पानी का कुछ योग लगा उसी पर सतुष्ट होकर दोनों सतोंने विश्रान्ति ली।

एक बार आप अट्ठाईस मीलका उग्र विहार कर बडोदा पहुँचे। वहाँ आप दोनो बहुत घूमे फिरे लोगों से कुछ पूछ ताछ भी की, पर उतरने के लिए किसी न अपन मुह से एक शब्द तक नही निकाला। इधर उधर घूमते जब लगभग चार बज गय तब हैरान होकर एक मंदिर के बाहर बैठ गय, तब कौशेय वस्त्रधारी एक यति बाहर आय उन्होंने अपन हाथो में स्वण ककण पहन रखे थ। दोनो को देखकर बोले—यहाँ क्यो बठ ह? महाराज श्री ने फरमाया—हम मालव प्रान्त से विहार कर यहाँ आय ह। इस शहर की स्थिति से हम सवथा अपरिचित ह!! इस पर यति न कहा—लिमडा की पोल में जाओ वहाँ हिम्मत लाल नामक दूढिया रहता ह यतिजी के निर्देशानुसार दोनों सत उस स्थानको पूछते-पूछते लगभग एक मील तक गय। उनका घर नजदीक ही था पर किसी के घर भोजन करने के लिए मडली बठी होन के कारण उधर का रास्ता रुका हुआ था। इस लिए पुन उल्टे पर दोनों सन्त लौटे। रास्ते में एक वृद्ध से भेंट होने पर उसने पूछा,—कहाँ से आय महाराज? और क्यों लौट रहे है?

राज श्री ने फरमाया—हम बहुत थके हुए है, दिन भी बहुत थोडा रह गया है। पहले उतरने के लिये कोई स्थान बताओ, फिर बातचित करने का भाव है। इस पर उसने कचरे से परिपूर्ण एक छोटी-सी कुटिया बताई। वहाँ पर ही दोनों सन्त उतरे। बडी कठिनाई से आहार-पानी का कुछ योग लगा। आहार-पानी चुका कर प्रतिक्रमण कर सो गये।

सुबह प्रतिक्रमण करते समय श्रावको ने आकर वदन नमस्कार किया और मकान का ताला खोल कर महाराज श्री से निवेदन किया। अन्दर की ओर सुखदायक स्थान है, यहाँ पधारिये। महाराजश्री ने पूछा—यह किसकी जगह है? श्रावको ने उत्तर दिया, यह उपाश्रय है।

महाराजश्री—तो फिर कल सन्ध्या को यह क्यो नही खोला गया? रात्रि भर जीव-जन्तु सहित कचरे के स्थान में रहना पडा। श्रावक-साहब! अपराध क्षमा कीजिये। कुछ सुनिये। कुछ दिन पहले यहाँ दो साधु मालवा से आये थे। उन्हे उपाश्रय खोलकर जगह दी थी। वे बहुत अच्छा व्याख्यान देते थे। व्याख्यान सुन हम तो घर गये। पीछे से वे भडार का ताला तोड शास्त्र निकाल कर भग गये। दोपहर को श्रावक दर्शन करने आये। इस समय वे साधु दिख नही पड और भन्डार का ताला खुला देखकर सूचना दी गई, हमने सरकार की ओर से उन्हे पकडवाये, केस चला, उन साधुओ को दो साल की सजा हुई। अभी वे कैद में है। इसलिए अन्दर की ओर आपको नही उतारे। महाराज—तो आज हम पर विश्वास किस लिए किया? श्रावक—कल रात्रि मे लीबडी से एक पत्र आया। उसमें आपके गुणो का वर्णन किया गया है। उस पर से पता चला कि आप महापुरुष है।

फिर ग्यारह दिन तक महाराजश्री ने बडोदा में स्थिरवास किया। बडे ठाट बाट से व्याख्यान आदि होने लगे। व्याख्यान में जन-समूह भी बहुत एकत्रित होता था। उस समय वहाँ आठ कोटी सम्प्रदाय की आर्याजी दिवालीबाई विराजमान थी। उनके द्वारा गुजरात की आचार-विचारविषयक बहुत सी बातो का परिचय हुआ। बडोदा से विहार करते समय कितनी ही श्राविकाएँ पहुँचाने आई। रास्ता बताने के लिए सघ ने कुछ आदमी भी दिये, परन्तु इनकार कर दोनो संत आगे बढे। आठ मील चलने पर रास्तेमें छावनी नामक एक गाँव आया। वहाँ बाजार के बीच होकर निकले। श्रावको की अनेक दुकाने थी। पर किसीने कुछ नही पूछा। उस समय दिन भी अधिक नही चढा था। इस लिये छह मील और आगे चलने पर एक गाँव आया। वहाँ धर्मशाला में ठहरे। श्री अमोलकऋषिजी महाराज गोचरी के लिए गये, पर आहार-पानी का कुछ योग नही लगा। वापिस लौटते समय एक बाईने बुलाकर थोडी-सी खिचडी वहराई। एक भाई उष्णोदक लेकर स्नान करने के लिए बैठा था। उससे लगभग दो सेर पानी लेकर महाराज श्री के समीप आये। आहार-पानी कर आप दोनों ने पुन विहार किया। बीच में

उग्र विहार हो चुका था। वहा रास्तेमें सडक के किनारे एक चौकी मिली। ठहरन के लिये सिपाही से याचना करनेपर कठोर उत्तर प्राप्त हुआ, यहाँ किसी को ठहरन के लिये आज्ञा नही है। चलते चलते आप दोनों इतने अधिक थक गये थ कि अब आगे एक पाव भी रखना कठिन था। पर जगहके अभावमें निरुपाय हो कुछ दूरीपर एक खेत में वटवृक्षके नीचे कमर खोलकर अपना आसन जमा दोनों सत बैठ गये। किसी प्रकार के आहार-पानी के बिना दिन भर विहार करने से दोनो थकावट के कारण चूर-चूर हो गये थे। ऐसी अवस्था में प्रतिक्रमण करने के बाद शयन किया। दोनो ओर पहाडकी सघि आ गई थी। सघन वृक्षलता गल्मोंसे चारों ओर अधकार छाया हुआ था। निर्जन भूमि में भी झिल्लियों का झनकार हो रहा था। जिधर देखो उधर हिंस्र पशुओंका भय था। फिर भी शयन करने पर आप दोनों ने निद्रादेवी की गोद में विश्रान्ति की।

दूसरे दिन सूर्योदय के पश्चात् प्रतिलेखन कर आप दोनों ने आग की ओर विहार किया। पहले दिन के भूखे-प्यासे तो थ ही उस पर आज दस मील का उग्र विहार हुआ था। इससे दोनों अत्यत श्रात हो गय थे। गोधरा शहर म पहुचने पर दोनों न स्थान के लिए इधर उधर बहुत तलाश की, परन्तु किसीने कुछ ध्यान नही दिया। अन्त में एक बडके मदिरके पास एक धर्मशाला दिखाई उस में दोनो सत उतरे। इस शहर म जनों के अनेक घर थ। पर उन्हें कल्पनीय अकल्पनीय का कुछ ज्ञान नही था। तीस पतीस घरों में घूमने पर बडी कठिनाईसे पाँच दस घरोम आहार पानी का कुछ योग लगा उसी पर सतुष्ट होकर दोनों सतोंने विश्रान्ति की।

एक बार आप अट्ठाईस मीलका उग्र विहार कर बडोदा पहुँचे। वहाँ आप दोनों बहुत घूमे फिरे लोगो से कुछ पूछ ताछ भी की, पर उतरने के लिए किसी न अपने मुँह से एक शब्द तक नही निकाला। इधर उधर घूमते जब लगभग चार बज गय तब हैरान होकर एक मन्दिर के बाहर बठ गय, तब कोशाय वस्त्रधारी एक यति बाहर आय उन्होन अपन हाथो म स्वण ककण पहन रखे थ। दोनो को देखकर बोले—यहाँ क्यो बठ ह ? महाराज श्री ने फरमाया—हम मालव प्रान्त से विहार कर यहाँ आय ह। इस शहर की स्थिति से हम सवथा अपरिचित ह।। इस पर यति न कहा—लिम्बडा की पोल में जाओ वहाँ हिम्मत लाल नामक ढूढिया रहता ह यतिजी के निर्देशानुसार दोनों सत उस स्थानको पूछते-पूछते लगभग एक मील तक गय। उनका घर नजदीक ही था पर किसी के घर भोजन करन के लिए मडली बठी होन के कारण उधर का रास्ता रुका हुआ था। इस लिए पुन उल्टे पर दोनों सन्त लौटे। रास्ते में एक वृद्ध से भेंट होने पर उसने पूछा,—कहाँ से आय महाराज ? और क्यो लौट रहे ह ? महा-

राज श्री ने फरमाया—हम बहुत थके हुए हैं, दिन भी बहुत थोडा रह गया है। पहले उतरने के लिये कोई स्थान बताओ, फिर बातचित करने का भाव है। इस पर उसने कचरे से परिपूर्ण एक छोटी-सी कुटिया बताई। वहीं पर ही दोनो सन्त उतरे। बडी कठिनाई से आहार-पानी का कुछ योग लगा। आहार-पानी चुका कर प्रतिक्रमण कर सो गये।

सुबह प्रतिक्रमण करते समय श्रावको ने आकर वंदन नमस्कार किया और मकान का ताला खोल कर महाराज श्री से निवेदन किया। अन्दर की ओर सुखदायक स्थान है, यहाँ पधारिये। महाराजश्री ने पूछा—यह किसकी जगह है? श्रावको ने उत्तर दिया, यह उपाश्रय है।

महाराजश्री—तो फिर कल सन्ध्या को यह क्यों नही खोला गया? रात्रि भर जीव-जन्तु सहित कचरे के स्थान में रहना पडा। श्रावक-साहब! अपराध क्षमा कीजिये। कुछ सुनिये। कुछ दिन पहले यहाँ दो साधु मालवा से आये थे। उन्हे उपाश्रय खोलकर जगह दी थी। वे बहुत अच्छा व्याख्यान देते थे। व्याख्यान सुन हम तो घर गये। पीछे से वे भडार का ताला तोड शास्त्र निकाल कर भग गये। दोपहर को श्रावक दर्शन करने आये। इस समय वे साधु दिख नही पडे और भन्डार का ताला खुला देखकर सूचना दी गई, हमने सरकार की ओर से उन्हें पकडवाये, केस चला, उन साधुओ को दो साल की सजा हुई। अभी वे कैद में हैं। इसलिए अन्दर की ओर आपको नही उतारे। महाराज—तो आज हम पर विश्वास किस लिए किया? श्रावक—कल रात्रि में लीयडी से एक पत्र आया। उसमें आपके गुणो का वर्णन किया गया है। उस पर से पता चला कि आप महापुरुष हैं।

फिर ग्यारह दिन तक महाराजश्री ने वडोदा में स्थिरवास किया। बडे ठाट बाट से व्याख्यान आदि होने लगे। व्याख्यान में जन-समूह भी बहुत एकत्रित होता था। उस समय वहाँ आठ कोटी सम्प्रदाय की आर्याजी विजलीबाई विराजमान थी। उनके द्वारा गुजरात की आचार-विचारविषयक बहुत सी बातो का परिचय हुआ। वडोदा से विहार करते समय कितनी ही श्राविकाएँ पहुँचाने आई। रास्ता बताने के लिए संघ ने कुछ आदमी भी दिये, परन्तु इनकार कर दोनो संत आगे बढे। आठ मील चलने पर रास्तेमें छावनी नामक एक गाँव आया। वहाँ बाजार के बीच होकर निकले। श्रावको की अनेक दुकानें थीं। पर किसीने कुछ नही पूछा। उस समय दिन भी अधिक नही चढा था। इस लिये छह मील और आगे चलने पर एक गाँव आया। वहाँ धर्मशाला में ठहरे। श्री अमोलकऋषिजी महाराज गोचरी के लिए गये, पर आहार-पानी का कुछ योग नही लगा। वापिस लौटते समय एक बाईने बुलाकर थोडी-सी खिचडी बहराई। एक भाई उष्णोदक लेकर स्नान करने के लिए बैठा था। उससे लगभग दो सेर पानी लेकर महाराज श्री के समीप आये। आहार-पानी कर आप दोनो ने पुन विहार किया। बीच में

पडने वाली नदी को पुल के रास्ते से पार कर आहेर नामक ग्राम में पदार्पण किया। वहाँ कुछ लोग एक स्थान पर बैठकर परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। महाराजश्री न उनके पास आ कर कहा भाई! हमें ठहरने के लिए कहीं कुछ जगह बतला सकते हो? महाराजश्री के पूछने पर उन लोगोंने अपना मुह दूसरी ओर कर लिया। फिर उनके सम्मुख जाकर पूछा। पुन उन लोगोने दूसरी ओर मुह कर लिया। इस प्रकार तीन चार बार पूछने पर एक लडका बोला। आत्मारामजी महाराज ने हमें समझाया है कि ढूंढियासे नहीं बोलना चाहिए। यह सुनकर दोनो सत आग बढ। फिर चार मील आग चलने पर विष्णुमदिर के बाहर पडसाल म किसी की आज्ञा लेकर उतरे।

इस प्रकार प्रति दिन पच्चीस, तीस मील चलने पर भी इस देश में न तो कहीं उतरने की अच्छी जगह मिलती थी और न आहार-पानी का योग मिलता था। कभी कभी रेगिस्तान में नकली स्थान की तरह सतोषजनक स्थान मिल जाता था। यहाँ पहुच प्रातःकालीन प्रतिक्रमण कर महाराजश्री ने फरमाया इधर के मनुष्य बहुत निर्दयी है। पीछे मालवे की ओर चलो। तब श्री अमोलक ऋषिजी म० बोले इतना परीषह सहकर यहाँ तक आ गये है अब खभात बदर निकट है उसे देखकर फिर लौ ग। इस प्रकार बातें करते हुए दोनो सत बाहर निकले। महाराज श्री ने मालवे की ओर अपने पर रखे और श्री अमोल कऋषिजी महा न खभात की ओर। थोडी दूर चलकर दोनों सत खड हो गय फिर श्री अमोलकऋषिजी महा० शीघ्रतासे जाकर श्री रत्नऋषिजी महा० की कमर से लिपट गय। श्री अमोलकऋषिजी म० की यह दशा देखकर महाराज श्री के नत्र आर्द्र हो गये, दोनों के नत्रोंसे हर्ष के अश्रु गिरन लगे। अन्त म लघु सत की विजय हुई। महाराज श्री ने श्री अमोलकऋषिजी महा० का अनुसरण कर खभात की ओर प्रस्थान किया।

यहाँ स विहार करन पर साथमें कुछ आदमी होने से विशेष कठिनाई नहीं हुई। रास्ते म ज्यो ज्यों आग बढते गय स्थानकवासी जनो की सख्या भी अधिक होन लगी। खभात नगरमे पदार्पण करने पर आपका धूम धामसे स्वागत हुआ उस ओर विहार करते समय रास्तेमें एक बार दरियापुरी सप्रदाय के स्थविर बहुश्रुत श्री पुरुषोत्तमजी महा ठाणा ८ से आपकी अगवानी के लिए पधारे। वे आप ही के साथ उतरे। लगभग पद्रह दिन तक उनके साथ आपकी शास्त्रीय सूक्ष्म ज्ञान की चर्चा होती रही। श्री पुरुषोत्तमजी महाराज न दो रात्रि पर्यत अखड जागरण कर आकाश में विचरण करने वाले नक्षत्र मडल का ज्ञान भी आपश्री को कराया।

महाराजश्री क खभात पहुचने पर आनदमें विराजित श्री छगनऋषिजी महा० ठाणा ४ से बडी शीघ्रता से आपके पास पधारे। दोनों सतो का बडे प्रेम से मिलन क बाद आहार-पानी, वदन व्यवहार आदि सब सम्मिलित हुआ।

उन्होंने अपना प्राचीन भंडार दिखाया। उसमें ताडपत्र पर लिखित अनेक दुष्प्राप्य शास्त्र थे।

दक्षिण की ओर विहार और धर्मप्रचार

अपने गुरु श्री तिलोकऋषिजी महा० का स्वर्गवास होनेपर संवत् १९४० में श्री रत्नऋषिजी म० ने महासतीजी श्री हीराजी महा० की प्रेरणा से विशेष अध्ययन हेतु मालव प्रांत की ओर विहार किया था। मालव प्रांत में आपश्री ने वयोवृद्ध शास्त्रज्ञ पण्डित मुनि श्री सुखाऋषिजी म० स्थविर मुनि श्री हरकाऋषिजी महा० आदि संतो के पास शास्त्रीय ज्ञान संपादन कर स्वाध्याय प्रवचन आदि के द्वारा उसे पचा लिया था। फिर अपने विहार काल में उस समय मालवा, मेवाड, गुजरात आदि प्रांत में विचरण करने वाले अनेक संत-महात्माओं से समय-समय पर शास्त्रीय चर्चा कर पूर्ण पारंगत हो गए थे। लगभग पंद्रह साल तक कठोर साधना कर श्री रत्नऋषिजी महा० श्री अमोलकऋषिजी महा० के साथ अपने गुरु की अंतिम विहारभूमि महाराष्ट्र प्रांत में आ रहे थे। एक ज्ञानी और बहुश्रुत संत के पास जो सब प्रकार के ज्ञान का भंडार होना चाहिए, वह सब आपने प्राप्त कर लिया। अध्यात्म-मार्ग के अतिरिक्त आपने व्यावहारिक जीवन का भी ठोस अनुभव किया था। गुजरात के विहारानुक्रम से अपने आदेश द्वारा अनेक भव्य प्राणियों का उद्धार करते हुए जब आप अहमदनगर पधारे तब आपके नाम से दो ठग साधु का वेष धारण कर अनेक लोगोंको ठग रहे थे। वहाँ आने के पूर्व अनेक जगहों के लोग उनके छल-प्रपंच के शिकार हो चुके थे। महाराज श्री अहमदनगर पधार कर स्थानक के सम्मुख खडे रहे। उस समय लोग पौषध व्रत लेकर बैठे हुए थ। महासतीजी श्री रामकुंवरजी महाराज धर्म-चर्चा कर रहे थे। उन्होंने श्रावकों से कहा-चाका साधुजी आय गया। संतो को देखकर ठग की भावना से कोई श्रावक नही उठा। तत्पश्चात् दोनो संतोंके स्थानक के अंदर जाने पर भी कोई नही उठा। इतने में घोडनदीवाले वयोवृद्ध श्रावक श्री छोटमलजी बोथरा महाराज श्री को पहचान कर बोले-सब बेठा बेठा काई देखो हो? रत्नऋषिजी महा० पधारिया हे ना? यह शब्द सुनते ही आर्याजी तथा श्रावक उठ खडे हुए। वंदना-नमस्कार करने के बाद हाथ जोडकर बोले,-हमारे सुनने में आया कि दो ठग साधु का वेष बना कर लोगोंको ठगते फिरते है, ये वे ही साधु हैं। अतः हमारे अविनय को क्षमा कीजिये।

महाराज श्री ने फरमाया-अनजान में बनी हुई बात अपराध की कोटि में नही आती। यहाँ से फिर महाराजश्री का उपदेश के साथ अनेक विध परोपकार रूप कार्य प्रारंभ हुआ। आपने अपने उपदेश-द्वारा अनेक जगह परंपरा

से प्रचलित मौसर आदि कुरूढियों का मूलोच्छेद किया। बत्तीस वर्षों से उग्ररूप से पड़ हुए धड़ों को मिटाकर एकता स्थापित की। इसी तरह श्री ज्ञानफंड की स्थापना कर मौसर आदि कृत्यों पर प्रतिबंध लगाया गया। उसका विनियोग शिक्षा प्रसार तथा अनाथ विद्यार्थियो की छात्रवृत्ति आदि म किया जाता था।

इस विहार–काल म आपश्री ने पूना से आग भयकर पर्वतीय उपत्यका म स्थित एसे एकात स्थलो म विहार किया। जहाँ पहले किसी सन्त का आवागमन नही हुआ था। उन स्थलो में य मुख्य ह–सासवड घराडा, वोपगाव भीवरी, परिचे आदि। इन स्थानों में स्थित जन बन्धुओं में अपने धम का कुछ भी सस्कार नही रहा था। महाराजश्री न ही सब प्रथम उन्हे नवकार मत्र सिखा कर पुन जनधम की दीक्षा दी। श्रीरामपूर निवासी श्रीमान चन्द्रभानजी डाकलिया इसी प्रान्त के थे। आप पुन जनधर्म में दीक्षित होने के लिए स्व० महाराज श्री का बहुत उपकार मानते है।

आप ही के उपदेश से घराडा वाले श्रीमान नवलमलजी शिवराजजी पारख की ओर से बीस हजार रुपय शिक्षण खाते म निकाले गय। उसी रकम के ब्याज से प० मुनि श्री गणशलालजी महाराज एव प० मुनि श्री घासीलालजी महाराज तथा प रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषी जी महाराज प० महासतीजी श्री शांतिकुवरजी म०, प० महासतीजी श्री उज्ज्वल कुवरजी म० आदि सत–सतियों का अध्ययन हुआ। आज कल भी उस रकम के ब्याज मे से औषधालय, पाठशाला आदि सत्कार्यो में विश्वस्त मडल की तरफ से सहायता दी जाती है।

महाराजश्री को सुशिष्य की प्राप्ति

दक्षिण में अनकविध धर्म–प्रचार करते हुये जब श्री रत्नऋषिजी म० चिचोडा (सिराल) पधारे, उस समय धमपरायणा श्री हुलासाबाई अपने पति श्री देवीचन्दजी गुगलिया का देहावसान हो जान से अपन दो पुत्रों के साथ धार्मिक जीवन व्यतीत कर रही थी। उसमें अपन लघु पुत्र नमिचन्द उर्फ गोटीरामजी को महाराज श्री से यह कह कर सामायिक प्रतिक्रमण आदि सीखने के लिए प्रेरित किया —

अपने गाँव में साम्प्रदायिक श्रावको के केवल चौदह ही घर है। उसमें से कोई एसा नही जिसे कि प्रतिक्रमण आता हो मेरी भी वृद्धावस्था ह। अत एव यदि तू पूज्यपाद महाराज श्री के पास इतना-सा सीख लेगा तो मुझे बहुत सतोष होगा। मुझ प्रतिक्रमण सुनन का अवसर मिलेगा।

अपनी माताके आदेश से बालक नेमिचन्द दो वर्षाकाल महाराज श्री के साथ रहकर सामायिक प्रतिक्रमण पच्चीसबोल का थोकडा सहसठबोल का थोकडा स्तवन सवाद आदि अनक विषयो का ज्ञान सपादन कर वराग्य

की ओर अभिमुख हुआ। चातुर्मास मिरि में सानद सपन्न होने पर महाराजश्री ने खरवडी कासार की ओर विहार किया। और नेमिचंद अपनी माता से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करने के लिये चिचाडी आया। माता से अनुमति माग ने पर माता ने जवाब दिया कि अभी तेरी छोटी अवस्था है। पहले ज्ञान की वृद्धि करो पीछे से देखा जायगा। खरवडी से महाराजश्री पुन मिरि पधारने पर उनकी सेवा में नेमिचन्दजी आ गये। कुछ काल तक शिक्षण लेने के पश्चात् पुत्र की संयम लेने की उत्कठा देख योग्य समझ कर माताने आज्ञा दे दी और सवत् १९७० में मार्गशीर्ष शुक्ल नवमी रविवार के रोज मिरि ग्राम में भागवती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षानतर उस बाल मुनि का नाम श्री आनन्द ऋषि जी रखा गया। श्री आनन्द ऋषि जी महाराज अपने नाम के अनुरूप आनन्द रूप ही हैं। इन बाल मुनि की शिक्षा की ओर महाराजश्री ने बहुत रस लिया। आपको पढाने के लिए बनारस तथा पूना से अनेक अध्यापक बुलाये गये। इसका सब विस्तृत वर्णन श्री रत्न ऋषि जी म० के जीवन-चरित्र में है। अन्त में श्री प० राजधारी त्रिपाठी शास्त्री द्वारा न्याय, व्याकरण, साहित्य, छन्द, चपू, पुराण, स्मृति आदि अनेक विषयो का ज्ञान सम्पादन कर पूर्ण पाडित्य प्राप्त किया। अपने गुरुदेव के स्वर्गवास के बाद से अपने अनेक विध गुणो द्वारा शासन की सेवा कर रहे हैं। श्री आनन्द ऋषि जी महाराज विनीत, सेवाभावी, व्याख्यान-पटु, कर्मठ, क्षमाशील और क्रिया-सम्पन्न हैं। आप समय का बिलकुल दुरुपयोग नही करते। जब देखो तब व्याख्यान, अध्यापन, लेखन एव धर्मचर्चा करते हुए हम उन्हे पाते हैं। गाभीर्य के साथ आपके चेहरे पर मुस्कराहट बनी रहती है। आपके इन अनेक गुणो से आकर्षित हो सघ के पूज्य श्री अमोलकऋषि जी महाराज के स्वर्गवास के बाद आपको भुसावल में युवाचार्य पद, दिया गया तत्पश्चात् पाथर्डी में पूज्य पदवी से विभूषित किया। तदनतर ब्यावर में पाँच सम्प्रदायो ने मिलकर आपको प्रधानाचार्य पद से अलकृत किया। सादडी साधु-सम्मेलन मे सब सप्रदायो की एकता होने पर आप सर्व-सम्मति से प्रधान मत्री चुने गये और भीनासर साधु-सम्मेलन मे उपाध्याय पद से विभूषित किये गये। अपने गुरु श्री रत्न-ऋषिजी महाराज द्वारा प्रारभ की हुई शुभ प्रवृत्तियाँ को स्थायित्व रूप देकर आपने और भी अनेक प्रवृत्तियाँ प्रारभ की। आपके द्वारा प्रारभ किये हुए कार्यों में श्री जैन धर्म प्रभारक सस्था नागपुर, श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी, श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी, श्री अमोल जैन सिद्धात शाला पाथर्डी और उनकी शाखाएँ श्री जैन सिद्धान्तशाला अहमदनगर तथा घोडनदी, श्री देव प्रेम स्था० जैन उपकरण भंडार पाथर्डी, श्री रत्न जैन पाठशाला बोदवड, श्री

वर्द्धमान स्था० जैन छात्रालय राणावास श्री महावीर सार्वजनिक वाचनालय चिचोंडी तथा बन्नोर इसी तरह भिंगार वांबोरी चांदा आदि ग्रामों में धार्मिक पाठशालाएं एवं सुधर्मा मासिक आदि मुख्य हैं। इन सब प्रवत्तियों से स्थानकवासी जैन समाज में शिक्षा विषयक कितनी प्रगति हुई यह किसी से छिपा नहीं है। आज कल भूतपूर्व ऋषिसम्प्रदाय में सबसे ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ संत आप ही हैं। सम्प्रदायों के विलीनीकरण से पहले ऋषिसम्प्रदाय के आचार्य भी आपश्री थे। आपकी सम्प्रदाय में अनेक प्रतिभा-सम्पन्न सुयोग्य साधु-साध्वियां विचरण कर सर्वत्र धर्म का प्रचार कर रही हैं। शासनदेव से प्रार्थना है आपके द्वारा संघ की यह उत्कृष्ट सेवा चिरकाल तक होती रहे।

धर्म-प्रचार तथा कुछ आश्चर्यजनक घटनाएँ

श्री रत्नऋषिजी म० का स्वभाव बाह्य दृष्टि से तेज होने पर भी आंतरिक दृष्टि से वे अत्यन्त सरल तथा संवेदनशील थे। वे हिंसा को मिटाकर अहिंसा स्थापित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने जगह जगह अनेक प्रयत्न किए। आपके उपदेश से कुडगांव के माधवरावजी काले पटल अतरवली के यशवंतराव पटल तथा जेऊर के मापूजी पटल आदि दस बारह घरवालों ने मदिरा मांस आदि का परित्याग कर जैन धर्म का स्वीकार किया था। पूना जिले के राहू (पीपलगाव) नामक ग्राम में श्री यशवंतराव पटल मनाजी पटल, रतनाथजी हमढेरे आदि मंडली आपके उपदेश से प्रभावित होकर विशेष धर्मप्रेमी बन गई थी। इसी तरह यहाँ किसी देवल के सामने पाँच बकरे प्रति दिन नियमित रूप से मारे जाते थे तथा मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा के रोज होनेवाली यात्रा में लगभग चार पाँच हजार बकरे मारे जाते थे। इस प्रकार हिंसा को आपने अपने सदुपदेश-द्वारा सर्वथा बंद करा दिया। आपके उपदेश से कितने ही महाराष्ट्र के मूलनिवासियों ने हिंसा-परित्याग का नियम लिया। यह महती हिंसा सतत लगभग पाँच वर्ष तक बंद रही किन्तु महाराज श्री के बाद किसी प्रबल उपदेष्टा का सचार नहीं होने से सुना जाता है कि वह पुनः जारी हो गई।

आपके स्वच्छ हृदय का पता इन दो घटनाओं से चलता है म्हसा में चातुर्मासार्थ श्री रतनचंदजी छाबड के मकान में विराजते हुए श्री रत्नऋषिजी महाराजने आठ दिन की तपश्चर्या की थी। उस समय एक बड़ा भारी भुजंग निकल कर महाराजश्री के सामने आया। लोगों ने उसे पकड़ने की इच्छा की। परंतु महाराज श्री ने उन्हें रोक कर उस पर रजोहरण रख दिया। रजोहरण रखते ही लोगों के देखते देखते वह अदृश्य हो गया।

दूसरे दिन एक मृगशावक जंगल से दौड़ता-दौड़ता आया और महाराजश्री जिस पाट पर अधिष्ठित होकर व्याख्यान फरमाते थे, उसके नीचे आकर बैठ गया। लोगों ने उसके सामने दूब तथा खाने की अनेक वस्तुएँ लाकर रखीं, पर किसी की ओर उसने देखा तक नहीं। मौन-भाव से चुपचाप बैठा रहा, यहाँ तक कि हिला-डुला तक नहीं। रात्रि को न मालूम कब उठ कर किधर चला गया। इस बात का किसी को पता तक नहीं लगा।

शिक्षा-प्रचार

जैन समाज में अधिकतर मरुधर-निवासी या वहां से चलकर व्यापार के निमित्त भिन्न भिन्न प्रान्तो में रहने वाले वैश्यवर्गीय जैन लोग धनिक हैं। उन्होंने अपनी सूझ बूझ तथा मितव्ययिता के कारण अपनी अच्छी स्थिति बनाई है, पर शिक्षा की दृष्टि से यह समाज बहुत पीछे है। इस समाज में विद्या की इतनी महत्ता नहीं, जितनी द्रव्य की है। ये लोग एक ज्ञानी तथा विद्वान् की अपेक्षा पैसे वाले धनिक की अधिक कदर करते हैं। इसी कारण शिक्षा की दृष्टि से यह समाज बहुत पीछे है। महाराज श्री समाज की इस अशिक्षित अवस्था में बहुत चिन्तित रहते थे। उनके मन में सतत ये विचार चक्कर लगाते रहते थे कि समाज में इस अविद्या का अधकार कब दूर हो? इसके लिए उन्होंने अपने उपदेश द्वारा गाँव-गाँव में वाचनालय तथा पाठशालाएँ स्थापित करने का सकल्प किया। पर यह कार्य दूसरो पर अवलंबित होने से अपनी इच्छानुसार होना अशक्य था। फिर भी अथक प्रयत्न से घोडनदी, पीपलगाव, (पिसा) माडवगण चिचोंडी, (पटेल) सुटेफल, मिरजगाव, करमाला और पाथर्डी आदि अनेक स्थानों में धार्मिक पाठशालाएँ स्थापित की। पाथर्डी में स्थापित श्री तिलोक जैन विद्यालय का इति-वृत्त अत्यन्त रोचक एवं भव्य है। उसके लिये एक स्वतन्त्र प्रकरण की आवश्यकता है। वह महाराज श्री के प्रयत्नों का मूर्तरूप है। इसलिये उसका इतिहास स्वतंत्र रूप से अलग ही दिया जा रहा है। अपने इस दीर्घकालीन प्रयत्नों द्वारा महाराज श्री ने शिक्षाविषयक जो उत्क्रान्ति की, उसे महाराष्ट्र-निवासी अच्छी तरह जानते हैं।

चिचपुर-निवासी श्रीमान् कुदनमलजी गुगलिया के सुपुत्र श्री उत्तमचदजी श्री साहेबरामजी गुगलिया के दुकान पर रहते थे। पाथर्डी में महाराज श्री का सवत १९७८ में चातुर्मास हुवा उस समय श्री रत्नऋषिजी म. की सेवा में आते-जाते थे। चातुर्मास उतरने पर महाराज श्री के साथ सेवामें रह कर ज्ञान-ध्यान

सीसा और उनकी दीक्षा लेने की भावना हुई। विचरते हुए महाराजश्री बीड होकर नांदूर पधारे। वहाँ पर संवत १९७९ ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया के रोज आप की दीक्षा हुई। दीक्षासंबंधी व्यय-व्यय नांदुर-निवासी श्रीमान् भिकचंदजी चुन्नीलालजी बोटचा एवं श्रीसंघ तथा जवा पीपरी वाले श्री हीरालालजी पन्नालालजी खिवसराने उत्साह पूर्वक किया था। आपका स्वभाव सरल था संस्कृत प्राकृत एवं शास्त्रीय ज्ञान हासिल किया था। ज्येष्ठ गुरुबंधु श्री आनंद ऋषिजी म के साथ ही बड़े प्रेम से रह कर संयम पालन किया था। आपका संवत २०१४ मार्गशीर्ष कृष्ण ८ गुरुवार के रोज सुजालपुर में समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ। आपके स्मरणार्थ धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी में उत्तम ज्ञान प्रोत्साहक पारितोषिक विभाग स्थापित है।

स्वर्गवास

दीक्षानन्तर लगभग ४८ वर्ष तक शुद्ध संयम का पालन करते हुए महाराज श्री ने अनेकविध सुकृत्य किये। उसकी किंचित् रूपरेखा ऊपर दी गई है। इस प्रकार अनेकविध परीषह सहन करते हुये आपने साठ से ऊपर वर्ष व्यतीत किये। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से आपके चेहरे पर प्रकाश झलकता था, जो कोई आपकी ओर देखता वह चेहरे की कान्ति से प्रभावित हो जाता। सत्य जीवन होने के कारण आपकी प्रकृति जरा उग्र थी पर आप में वाचा सिद्धि नामक अद्भुत गुण था। अज्ञात क्रम से अचेतन मन द्वारा आपके मुह से जो शब्द निकल जाते वे सिद्ध होते।

संवत १९८४ का समय था। महाराज श्री भुसावल का चातुर्मास पूर्ण कर हिंगणघाट की ओर विहार कर रहे थे, रास्ते में पोटी नामक स्थान पर पहुंचने पर आपने आगे चलने के लिए अपनी असमर्थता बताई। इसके पूर्व आप पाँव में दर्द रहने के कारण रालेगांव में आपने सात दिन तक स्थिरवास किया। असमर्थता के कारण उस समय आपने वहाँ विश्रान्ति ली। तदनन्तर चतुर्थ प्रहर में वहाँ से विहार कर मोजरी नामक ग्राम में पधारे। रात्रि में भयंकर ज्वर ने आप पर आधिपत्य जमा लिया। यह समाचार सुनकर रात्रि में रालेगांव से अनेक श्रावक आकर आप से पुनः अपने स्थान की ओर विहार करने के लिए आग्रह करने लगे। परन्तु महाराज श्री अपनी इच्छानुसार वहाँ से आगे विहार कर कानगांव में पहुंच विश्रान्ति ली। रात्रि में वहाँ के लोगों को धर्मोपदेश दे प्रातःकाल में विहार कर ६ मील दूर स्थित अल्लीपुर नामक ग्राम के निकट पहुंचे। वहाँ पहुंचते-पहुंचते पुनः आपकी चलने की शक्ति क्षीण हो गई और इधर ज्वर का प्रकोप भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। तब असमर्थता के कारण आप एक वृक्ष के नीचे बैठ गये।

वहाँ कुछ विश्रान्ति ले आगे बढ़ने पर आपश्री के शरीर का सतुलन नहीं रहा। चलते-चलते इधर उधर झोका खाने लगे। ऐसी परिस्थिति में महाराजश्री की अनिच्छा होने पर श्री आनन्दऋषिजी महाराज ने अपने हाथ के सहारे से उनके सतुलन को सम्हाले रखा। रुग्णावस्था के कारण लगभग साढे नौ बजे मल्लीपुर ग्राममे थी विठ्ठल मदिर के मडप में उतरे। थोडा-सा जल लेकर महाराज श्री वही लेट गये। ज्वर भी अंतिम डिग्री के पास पहुँच रहा था। इस भयकर व्याधि में भी महाराज श्री ने शात चित्त से सबसे खमत खामना किया।

महाराजश्री का शरीर अत्यन्त तप्त हो गया था, साथ साथ घबराहट भी बढ रही थी। सुधार के कोई लक्षण नही देख कर यहाँ के श्रावक तथा कुछ ब्राह्मण दो प्रसिद्ध वैद्यो को बुला कर लाये। एक वैद्य तो नाडी की गति देख कर मौन हो गया। दूसरे वैद्यने कहा—महाराजजी त्रिदोष में आ गये हैं। तब आपश्री के पट्टशिष्य श्री आनन्दऋषिजी महा० ने पूछा—परिणाम क्या दीख पडता है।

वैद्य—प्रकृति सुधरने की आशा कम है, परन्तु अंतिम क्षण तक उपचार करना हमारा कर्तव्य है।

वैद्यराज के निर्देशानुसार श्री उत्तमऋषिजी महाराज औषध लाये, देने पर तीव्र वेग से हिचकी पर हिचकी होने लगी और मुंह से अनवरत रूप से झाग पर झाग निकलने लगे। महाराजश्री की ऐसी स्थिति देख पास में बैठी हुई एक अनुभवी श्राविका श्रीमती जतनबाई ने कहा—अब औषध आदि का परित्याग कर महाराजश्री को सथारा पचखा दीजिये। मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज के लिए यह पहला ही प्रसंग था। यह सब देख सुन कर वे किंकर्तव्यविमूढ हो गये। दीक्षा लेने के बाद पिछले चौदह वर्ष से उन्होने सतत अपने गुरु के साथ विहार किया था। कभी एक दिन के लिए उनसे वियुक्त नही हुए थे। उनके सान्निध्य में ही आपकी शिक्षा-दीक्षा हुई। बचपन से आपश्री के साथ रह कर पू० उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महा० ने अनेक अनुभव प्राप्त किये थे। इस समय अपने गुरु के वे सब उपकार मूर्तरूप धारण कर उनके सामने उपस्थित होने लगे। पर महाराजश्री की शाति के लिए आपने अपने गुरुदेव की आज्ञा लेकर अश्रुपूर्ण नयनो से सागारी संथारा पचखा दिया। उस समय तक आपकी स्मृति ठीक थी। अत में इस पुण्यशाली आत्मा ने अपने इस जीर्ण शरीर को त्यागकर सवत् १९८४ ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी सोमवार के दिन लगभग बारह बजे उर्ध्व लोक की ओर प्रयाण किया।

इस प्रान्त म महाराज श्री का न तो पहले कभी आवागमन हुआ था और न वहां के लोगों से विशेष परिचय था। महाराज श्री के इस स्वर्गवास-स्थान में जन श्रावकों के केवल तीन घर थ। परतु इस पुण्यशाली आत्मा के पुण्य प्रभाव से उस ग्राम के मारवाडी ब्राह्मण माहेश्वरी तथा ग्राम की स्थानीय सारी जनता सहायतार्थ एकत्र हुई। अल्लीपुर के चांदमलजी कोठारी ने तत्काल अपने लडके को मोटर से हिंगनघाट भेजा। हिंगनघाट में यह समाचार पहुचते ही सारे सघमें शोक छा गया। वहाँ के श्रीमान् जेठमलजी लोढा चुन्नीलालजी कटारिया गणेशमलजी कासवा आदि पच्चीस तीस श्रावक शव-सस्कार की चदन आदि विविध सुगधित सामग्री लेकर अल्लीपुर पहुचे। पूज्यपाद श्री रत्नऋषिजी महाराज जिस दिन अल्लीपुर स्थित विठ्ठल मदिरम उतरे उसी दिन आपश्री का स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास होन पर भी आपका शरीर पहले की तरह कान्तियुक्त था उसमें कहीं पर भी विकृति दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। अत एव कुछ कर्मचारियो को सदेह हुआ, सभवत इन्हें कुछ दे दिला कर इस अवस्था तक पहुँचाया गया ह। महाराजश्री के पट्टशिष्य उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज से भी इस सबन्ध में पूछ-ताछ की गई। श्री आनन्दऋषिजी महाराज ने फरमाया---मेरे लिए य देव-तुल्य है इन्होंने वात्सल्य भाव से मुझे शिक्षा-दीक्षा दे कर उपकार किया ह। इतने ही में इनके पुण्य-प्रभाव से उस स्थान के माल गुजार का पता चलने पर वह दौड-दौडे चले आये। सब लक्षण देखकर उन्होंने विचार किया--- यह विठ्ठल देव का मदिर ह और आज सोमवार का दिन ह। एक महात्मा के दिवगत होने के लिए जिस प्रकार का स्थान या समय चाहिए वह सब दृष्टिगोचर हो रहा है और फिर ऐसे सेवाभावी शिष्य तो सदव इनकी छत्र छाया म रहने की इच्छा करेंगे यह सब सोच कर उन्होने कहा---य पुण्यशाली महात्मा ह।

तदनतर सस्कार के पूर्व की सब विधि सपन्न कर शव शिविका में रखा गया। इस छोटे से गाव म श्मशान-यात्रा के समय लगभग पाँच सौ अन्य मतावलम्बियो ने ताल-मृदग बजाते हुये सहयोग दिया।

ग्राम की स्थानीय जनता छुआछूत तथा पारस्परिक भेदभाव को त्याग कर अनन्य भाव से इस यात्रा में सम्मिलित हुई। यह सब आपके साधुजनोचित सयमपूर्ण जीवन का शुभ परिणाम था।

श्री तिलोक जैन विद्यालय, पाथर्डी



इस विद्यालय का इतिहास अत्यन्त रोचक, भव्य एवं आकर्षक है। एक छोटी-सी संस्था अपने ध्येय की ओर निश्चल रह सतत आगे बढ़ते-बढ़ते किस प्रकार महान् रूप धारण कर सकती है, इसका यह मूर्तिमान् रूप है। इस संस्था ने अपने आपको ध्रुव रूप देकर महाराष्ट्र में और भी अनेक स्थानों पर अपने समान संस्था खोलने के लिये मार्ग खोला है। लोकमान्य तिलक के देहावसान के बाद राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जब इस देश का सूत्र अपने हाथ में लिया। तब इस संस्था का अंकुर बोया गया। पिछले चालीस वर्षों से अनेक झंझावातों को सहन करते हुए आज इस विद्यालय ने इतना बड़ा रूप धारण कर लिया है कि उसे देखकर इसके आद्य संस्थापकों को भी आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। गगन-मंडल में सूर्य के आसपास परिभ्रमण करने वाले नक्षत्रों की तरह इस संस्था के आसपास जो अनेक विध प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ हुईं, उन्होंने इस संस्था की कीर्ति में चार चाँद लगा दिये हैं।

मूल कल्पना तथा आद्य संस्थापक

श्री रत्नऋषिजी महाराज का संक्षिप्त जीवन-चरित्र लिखते समय मैं राजस्थानियों में वैश्यवर्गीय जैन समाज की शिक्षा-विषयक निर्माल्य स्थिति पर थोड़ा बहुत प्रकाश डाल चुका हूँ। श्री रत्नऋषि जी म० ने यद्यपि किशोरावस्था प्रारंभ होने के पूर्व शैशवावस्था में ही दीक्षा ले ली थी, फिर भी वैश्य वर्ग में उत्पन्न होने के साथ उनके आसपास इसी समाज के व्यक्तियों का वातावरण होने से वे इसकी प्रत्येक गति-विधि से सुपरिचित थे। अनेक प्रकार की कुरूढियों से ग्रस्त इस समाज को अंधकार में मग्न देख कर वे मन ही मन मुरझाते रहते थे। अपने सामने इतर समाज के सुधारक वर्ग तथा शिक्षित वर्ग को देख कर वह उनसे किसी प्रकार का बोध नहीं ले रहा था। समाज के अधिकतर बालक दो तीन क्लास पढ़ने के बाद दूकान पर बैठा दिये जाते और जीवनपर्यंत अपने पिता के मार्ग का अनुसरण कर पैसा कमाने में ही अपना जीवन व्यतीत कर देते थे। आजीविका का वह साधन भी आज कल के युग में प्रशस्त नहीं कहा जा सकता। अधिकतर व्यापारी साहूकारी लेन-देन का धंधा करते थे। शिक्षाप्रेमी, समाज-सुधारक मुनि श्री रत्नऋषि जी म० समाज की दरिद्रावस्था देख कर मन ही मन घुटते रहते थे। अनेक बार लोगों के सामने अपने हार्दिक विचार प्रकट करते, पर वे उस ओर कुछ ध्यान नहीं देते थे। अपनी पुरानी परिपाटी को छोड़ने का अभी तक उनमें साहस नहीं आया।

हम इसके पूर्व श्री रत्नऋषि जी म० के इतिवृत्त मे पढ चुके है कि उन्होंने मालवा, मेवाड तथा गुजरात आदि प्रान्तों में सतत विहार कर प्रचुर अनुभव प्राप्त किया था। वे अनेक शिक्षाप्रेमी तथा शिक्षा शास्त्रियों के परिचय में आये थे। इसाई समाज में अवैतनिक रूप से काम करनेवाले पादरियों तथा रामकृष्ण मिशन के त्यागी सुधारक साधुओ के सुकृत्यों का उन्होंने अवलोकन किया था। इन मिशनरियों की तरह आपके मानस मे विद्याविषयक कुछ उत्क्रान्ति करने की इच्छा हुई। इच्छा होते ही आपश्री ने इसे पूर्ण करने का सकल्प ले लिया। अपने ध्येय के अनुसार आपश्री सारे दक्षिण प्रान्त मे पाठशालाओ का जाल बिछा देना चाहते थे। जहाँ कही जाते आपके व्याख्यान मे रूढियों के मूलोच्छेद तथा धार्मिक पाठशाला स्थापित करने का सकेत रहता। आपके व्याख्यान से प्रभावित होकर अधिकतर ग्रामशूर जन लोग तत्काल पाठशाला स्थापित कर देते पर उसकी वय मर्यादा अल्प ही रहती थी। बहुत-सी अकाल अवस्था मे ही काल-कवलित हो गई। इस प्रकार की कुल नौ दस पाठशालाएं स्थापित हुई होंगी। उनमे मुख्य ये है—पिंपलगाव पिसा माळवण चिचोडी पटेल मिरजगाव कर-माळा घोडनदी सुपकळ आदि। इनमें से कोई चार महीने कोई छह महीने कोई एक साल, कोई दो साल और अधिक से अधिक तीन साल चल कर बन्द हो गई। महाराजश्री ने अपने हाथों प्रारभ की हुई पाठशालाओ को इस प्रकार थोडे ही समय में अस्त होते देख कर उन्हें स्थायी रूप देने के लिये विचार चिंतन किया। चिंतन करते करते वे इस परिणाम पर पहुचे। किसी स्थान पर पाठशाला या सस्था स्थापित कर उसे केवल अपने ही कार्य में व्यस्त रहने वाले लोगो के भरोसे छोड देने से वह कभी स्थायी रूप प्राप्त कर नही सकती। उसके लिये प्रबन्धक एकत्रित करने के साथ कुछ ऐसे सेवाभावी व्यक्तियो की नितात आवश्यकता है कि जो उस उपक्रम को बढाने के लिए अपने समय का योग दान दे सके।

श्री जैन ज्ञान का सस्था

इस सस्था की उत्पत्ति का कारण कितना साधारण है तथा किन कार्यकलापों से प्रभावित इस सस्था ने अपना आकार धारण किया उसका विवरण इस प्रकार है — सवत् १९७७ के समय समाज-सुधारक शिक्षाप्रेमी, उग्रविहारी प्रात स्मरणीय परमोपकारी दिवगत श्री १००८ श्रीरत्नऋषिजी महाराज ठाण २ का चातुर्मास अहमदनगर हुआ। अपने चातुर्मास-कालमे एक बार स्व श्रीरत्न-ऋषिजी म गाँव के बाहर स्थडिल भूमि के लिये बाहर पधारे हुए थे। उस समय उन्होंने गाँव के बाहर इतर समाज के व्यक्तियो द्वारा स्थापित एक छात्रालय में दो अनाथ जैन विद्यार्थी देखे। इस दृश्य को देख महाराजश्री गहरे विचार में मग्न

हो गये। स्थानक में लौटकर आपश्री ने समाज की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए निराश्रित छात्रों के अध्ययनार्थ छात्रालय स्थापित करनेके लिये जोशीला उपदेश दिया। आपके प्रोत्साहन पूर्ण व्याख्यान से प्रेरित होकर स्थानीय जनता के द्वारा, तत्काल १५ हजार रुपयों की सहायताप्रीत्यर्थ आकडे लिखे गये। पर एक छोटी-सी बात के कारण वह शुभ कार्य वहीं रुक गया।

चातुर्मास समाप्त होने पर आपश्री ने अपने विहारानुक्रम से पाथर्डी पदार्पण किया। यहाँ आने पर आपश्री को ऐसा लगा, मैंने अपने जीवन-काल में अन्य स्थानों पर अनेक पाठशालाएँ स्थापित की, पर कोई ऐसी नहीं दिखाई देती, जो चिरकाल तक अपने सुयश को अक्षुण्ण रख सके। पर इस स्थान पर जैन पाठशाला स्थापित करने पर वह स्थाई हो सकती है। यहाँ आसपास के गावों में अपने समाजके बहुतसे घर हैं। अपने समाज में जो आश्रय-विहीन जैन विद्यार्थी हैं, उनके शिक्षण के लिए अन्य किसी जगह सुविधाजनक स्थान दृष्टिगोचर नहीं होता। इसलिए यहाँ सब प्रकार से पाठशाला का प्रारंभ होना सुसगत है। इस प्रकार महाराजश्री ने पाथर्डी में उपस्थित जनता को अपने व्याख्यान द्वारा उद्बोधन दिया।

व्याख्यानके बाद दूसरे दिन अर्थात् संवत् १९७७ माघ शुक्ल १४ सोमवार ता २१-२-२१ को वहाँके स्थानीय लोगों की सभामें महाराजश्री ने पुनः जैन पाठशाला की आवश्यकता बतलाई। व्याख्यान के पश्चात् दो सद्गृहस्थों ने विचार कर ऐसा प्रस्ताव किया--

"उत्तम कार्य को चिरस्थाई बनाने के लिये द्रव्य की बहुत आवश्यकता है, परन्तु अन्य व्यक्तियों के मन को कष्ट पहुँचा कर द्रव्य ग्रहण करना योग्य नहीं, और नहीं ग्रहण करने पर संस्था का चिरकाल पर्यन्त स्थायी होना शक्य नहीं। इसलिए प्रत्येक जैनगृहस्थ से कम से कम एक आने से लगाकर एक रुपये तक का मासिक चन्दा एकत्रित करना चाहिए। यदि किसी की इससे अधिक रकम देने की भावना हो तो वह पेटी खाते में जमा की जाय। इस प्रकार पाँच वर्ष व्यतीत होने पर जब योग्य रकम इकट्ठी हो जाय, तब इस स्थान पर सर्वानुमति से जैन पाठशाला खोली जाय,,

यह प्रस्ताव सर्वानुमति से पास होने पर उसी दिन पाथर्डी में "श्री जैन ज्ञान फंड संस्था" की स्थापना की गई। इस अवसर पर गाँववाले श्रावकों ने धर्मस्थानक के लिए ३१०० रुपयों का चन्दा किया। जिसमें १००० रु. श्री मोतीलालजी गुगलिया, १००० रु. श्री उत्तमचन्दजी मुथा, ५०० रु श्री माणकचंदजी गांधी और ६०० रुपयेमें बाकी सब श्री संघने भाग लिया था।

अगले साल महाराजश्री का पाथर्डी में चातुर्मास होने पर इस ज्ञान फंड की प्रगति अच्छी हुई। यहाँके चातुर्मास काल में अन्य गाँवों के अनेक श्रावक कारणविशेष एवं सेवा निमित्त घर लेकर रहे थे। और आपश्री पर अन्तर संप्रदाय के लोगों का भी प्रेम अत्यधिक था। अतः व्याख्यान में परिषद् पर्याप्त परिमाण में उपस्थित रहती थी। पर्यूषणपर्व में आपश्री के सदुपदेश से श्री जैन ज्ञान फंड संस्था में लगभग ८०० आठ सौ रुपये एकत्रित हुए।

चातुर्मास समाप्त होने पर महाराजश्री ने मेहोटा, चिंचपुर, अमलनेर, सोमलवाड़ा, शिरूर, भालगाव, खरवंडी, टाकली, शिरसमार्ग, निवगाव, बीड, मांजूर, कलस आदि स्थानों में विहार कर अपने उपदेशों द्वारा उपर्युक्त ज्ञान फंड संस्था के लिए चंदा एकत्रित करने के लिए स्थानीय लोगों को प्रेरित किया। उस समय एक आने से लेकर एक रुपये सरीखी छोटी-सी रकम देख कर अनेक भव्य लोग स्वयं प्रेरणा से यह रकम पाथर्डी श्री जैन ज्ञान फंड संस्था को भेजने लगे। इस रकम को एकत्रित करने के लिये किसी वैतनिक कर्मचारी की नियुक्ति नहीं की गई। समाजके सेवाभावी अनेक व्यक्तियों ने स्वयं यह जिम्मेवारी अपने ऊपर उठा ली। संस्थाके मेंबर आसपास के गाँवों से यह रकम एकत्रित कर पाथर्डी भेजने लगे। बाहर गाँव के ऐसे व्यक्तियों में मांजूर निवासी श्रीमान चुन्नीलालजी कोटेचा का नाम मुख्य है। उन्होंने आस पास के स्थानों में घूमकर इस संस्थाके लिए बहुत रकम एकत्रित की। इस सेवाभावी सद्गृहस्थ ने लंबा जीवन प्राप्त किया। अपने जीवन के अंतिम क्षण तक वह किसी न किसी सत्प्रवृत्ति में मग्न रहे। अंतिम समय में उन्होंने काम करते करते किसी प्रकारके रोग से ग्रस्त हुए बिना अपना यह देह छोड़ा। दिवंगत होनेके पहले इस वृद्धावस्था में भी अपने आसपास के सब स्थानों में जाकर वहाँ विराजित संत तथा सतियों का दर्शन कर लिया था।

श्री जैन ज्ञान फंड संस्था के उस समय सर्वानुमति से श्रीयुत जठमलजी मोतीलालजी गुगलिया अध्यक्ष और श्रीयुत नेमीचंदजी वख्तमलजी मुथा महामंत्री चुने गये। तथा बाहर के व्यक्तियों में श्री चुन्नीलालजी कोटेचा प्रांतीय मंत्री नियुक्त किये गये। इसके अतिरिक्त बाहर के सतरह गाँवों के सतरह मेंबर और कार्य समिति में रखे गये। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं। —

१	श्रीमान्	जीवराजजी फत्तेचंदजी लोढ़ा	मु. कलस
२	,,	उमेदमलजी हीरालालजी गुगलिया	,, लोहसर
३	,,	माणकचंदजी पूनमचंदजी	,, पाटोदिरस
४	,,	जवानमलजी मोतीलालजी	,, मिरी
५	,,	पूनमचंदजी चांदमलजी भंडारी	,, भालगाव

६	श्रीमान्	किसनदासजी मुकनदासजी मेहेर	मु. आष्टी
७	,,	गजमलजी सुखलालजी कोटेचा	,, बीड
८	,,	हीराचंदजी शिवलालजी नाहर	,, अमलनेर
९	,,	चंद्रभानजी चुन्नीलालजी मुथा	,, ,,
१०	,,	हीराचन्दजी गुलाबचन्दजी मुणोत	,, पिंपळवडी
११	,,	किसनदासजी हीरालालजी गांधी	,, पाथर्डी
१२	,,	जेठमलजी मानुलालजी कटारिया	,, खरवंडी
१३	,,	हीराचन्दजी गुलाबचन्दजी सचेती	,, शिरूर
१४	,,	लालचन्दजी रतनचन्दजी मटेवडा	,, राहू (पिंपळगाव)
१५	,,	मेघराजजी किसनलालजी कुंकुलोळ	,, कलव
१६	,,	नारायणदासजी कन्हैयालालजी काकरिया	,, पाटोदा
१७	,,	जीतमलजी ताराचन्दजी कोठारी	,, शिरसमार्ग

इन सब लोगो का इस संस्था के लिये बहुत बडा योगदान है । अपने गांव में इसी तरह आस पास के गांवों में से एक आने से एक रुपये तक की मासिक रकम प्रत्येक निश्चित व्यक्ति के पास से एकत्रित कर प्रतिवर्ष पाथर्डी भेजना कितना कठिन काम है ? पर इन सब व्यक्तियों ने इस काम को अपना काम समझ-कर परोपकार वृत्ति से यह कार्य किया ।

इस प्रकार चन्दा एकत्रित करते करते ढाई वर्ष हो गये । ढाई वर्ष की छोटी अवधि में भी यह रकम ४५०० के आस पास पहुँच गई थी । इस रकम में विवाह प्रसंग पर वर-वधू पक्ष की ओर से प्रत्येक ११-११ रुपयो की सहा-यता का भी मेम्बरोंने ज्ञान फंड संस्था में सहयोग लिया था । वह भी सम्मिलित है । तदनन्तर संस्था के सेवाभावी कार्यकर्ताओं को चन्दा देनेवालों ने कहा कि " फंड अभी तक जमा किया जा रहा है, पर उसका कुछ भी प्रत्यक्ष परिणाम दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है " इस लिये जितना फंड एकत्रित हुआ हो, उसके द्वारा जैन पाठशाला का प्रारंभ कर देना चाहिये।

यद्यपि पहले जैन ज्ञान फंड संस्था की योजना बनाते समय स्व. श्री रत्न-ऋषिजी महाराज के समक्ष यह निश्चय हुआ था कि पाँच वर्ष तक नियमित रूप से चन्दा एकत्रित हो जाय तत्पश्चात् सर्वानुमति से पाठशाला स्थापित की जाय । ढाई साल के भीतर ही जनता की जैन पाठशाला जल्दी स्थापित करने की बढती हुई भावना देखकर यह विचार स्थगित करना पडा और जन साधा-रण की इस भावना से मेम्बरों ने पाथर्डी कार्यालय के अध्यक्ष, मंत्री आदि को अवगत किया । इस पर योग्य विचार कर संवत् १९८० चैत्र शुक्ल १५ को पाथर्डी में श्री जैन ज्ञान फंड संस्था के कार्यकारिणी तथा सहायक मेंबरों की सभा

बुलाई गई। उसमे प्रान्तीय मन्त्री आदि आये परन्तु तीन चार मेम्बरो के नही आने से दिलगिरी व्यक्त की गई। इस कमेटी में दस नवीन सदगृहस्थों की मेम्बर रूप से नियुक्ति की गई और पाच प्रस्तावो मे से तीन मुख्य प्रस्ताव पास किये गये।

प्रथम प्रस्ताव– नादूर तथा पाथर्डी आफिस की रकम इस, समय साढे चार हजार रुपये के लगभग है उसके ब्याज से इस संस्था के लिये रकम खर्च की जाय।

द्वितीय प्रस्ताव –ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा तक श्रीजैन पाठशाला का उद्घाटन किया जाय।

तृतीय प्रस्ताव –खोली जानेवाली पाठशाला मे व्यावहारिक तथा धार्मिक शिक्षण दिया जाय।

इस प्रकार तीन प्रस्ताव पास हुये। दूसरे प्रस्तावानुसार द्वितीय ज्येष्ठ कृष्ण पंचमी संवत १९८० तदनुसार दिनांक ५ ५ १९२३ को जैन ज्ञान वर्द्धक पाठशाला का उद्घाटन किया गया। इस पाठशाला के प्रारंभ काल मे स्थानीय श्री मानकचंदजी गांधी ने छह महीने तक बिना किराये के अपना स्थान मुफ्त दिया। उस समय पाठशाला के लिये जब अध्यापक की नियुक्ति का प्रश्न आया तब प मुनि श्री रत्नऋषिजी म ने फरमाया कि संस्था के पास इस समय कुल ४५ रुपये है। उनका साहूकारी ब्याज ३।।। तीन रुपये बारह आना मिल सकता है इसलिये मूल रकम को कायम रखकर इसके ब्याज से पाठशाला के शिक्षक के वेतन का प्रबंध किया जाय। फलत ।।। रुपये मे बारह आने बचा कर सताईस रुपये मासिक में स्थानीय श्री गोविंदराव सीताराम बराडे नामक व्यक्ति को जैन धर्म का शिक्षण देकर उनकी अध्यापक रूपसे नियुक्ति की गई।

जिस समय इस पाठशाला की स्थापना हुई उस समय संस्था मे शिक्षण ग्रहण करनेके लिये गांवके नौ विद्यार्थी प्रविष्ट हुए। उनके नाम इस प्रकार है– (१) अमोलकचद नवलमलजी गुरुपुरिया (२) रिखबदास बापूराव रणदिवे (३) झुंबरलाल रामचदजी मुथा (४) मुगनचद सुखराजजी कुचेरिया (५) अमोलकचद मूलतानचदजी गुगलिया (६) गोकुलदास पूनमचदजी गांधी (७) सुमति बापूराव रणदिवे (८) चदनमल नवलमलजी गांधी (९) वनसीलालजी रामचदजी मुथा।

पाठशाला स्थापित होने पर चार महीने भी पूरे नही होने पाये कि इतनी थोडी सी अवधि मे गांव तथा परगांव के सशुल्क नि शुल्क विद्यार्थी मिलकर कुल ३५ के लगभग शिक्षण लेने लगे। उस समय पाठशाला तथा विद्यार्थियो के लिए जो नियम बनाये गये वे इस प्रकार है –

नियमावली

इस सस्थाका नाम " श्री जैन ज्ञान फंड पाठशाला " है।

उद्देश्य :- जैन समाज मे धार्मिक तथा व्यावहारिक शिक्षण का प्रसार करने की दृष्टि से इस सस्था का निर्माण किया गया है। धार्मिक शिक्षण को छोडकर शेष व्यावहारिक शिक्षण इस पाठशाला मे सरकारी शिक्षण के अनुसार ही दिया जायगा। व्यवस्था--इस सस्था की सब व्यवस्था " श्री जैन ज्ञान फंड कमेटी " के अधिकार में रहेगी। इस सस्थाके अध्यक्ष श्रीमान् मोतीलालजी जठमलजी गुगलिया, महामत्री श्रीमान् उत्तमचदजी नेमिचदजी मुथा, और कार्य निरीक्षक श्रीमान हीरालालजी किसनदासजी गाधी नियुक्त किये जाते है।

विद्यार्थी-सबधी नियम

(१) इस सस्था मे सशुल्क और नि.शुल्क दोनो प्रकार के विद्यार्थी लिये जायेंगे।

(२) नि शुल्क विद्यार्थियो के पास से भोजन या दूसरा किसी प्रकार का खर्च नही लिया जायगा।

(३) विद्यार्थी के सरक्षक अपने पुत्रो को नि शुल्क श्रेणीमे रखना चाहे तो उन्हे अपन गाँव के दो प्रतिष्ठित व्यक्तियो द्वारा अपनी गरीबी को प्रमाणित करना होगा। ऐसा करने पर ही छात्र नि शुल्क की श्रेणीमें रखे जायगे।

(४) इस सस्था मे प्रविष्ट होनेवाले छात्र की अवस्था कम से कम ९ वर्ष की होनी चाहिए।

(५) इस सस्था में प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थी को प्रविष्ट होने के बाद कम से कम तीन वर्ष तक यहाँ रहना आवश्यक होगा।

(६) सशुल्क विद्यार्थियो के पास से प्रतिमास सात रुपये भोजन खर्च के रूप में लिये जायेंगे। ये रुपये उनके सरक्षको को छह महीने पहले ही जमा करा देने चाहिए।

(७) इस सस्था में रहनेवाले विद्यार्थी के लिये अविवाहित रहना आवश्यक होगा। इस सस्था का यह मुख्य उद्देश है कि ब्रह्मचर्य व्रत का भग करनेवाले विद्यार्थी का इस सस्थामे प्रवेश सर्वथा निषिद्ध रहेगा।

(८) विद्यार्थी को सस्था में प्रविष्ट करते समय उनके संरक्षको को संस्था के अधिकारी के पास एक करारनामा लिख कर देना होगा। यह करारनामा लिखने के बाद उसमें लिखित शर्तों का पालन करना होगा। नही तो उसमें लिखी हुई नुकसानी की भरपाई करनी होगी।

(९) आवश्यक कारण होने पर विद्यार्थियों को उनके पालकों की अनुमति आने पर अपने घर जाने की अनुमति दी जायगी। परन्तु विद्यार्थियों के आने जाने की योग्य व्यवस्था तथा खर्च उनके संरक्षकों को करना होगा तथा अनुमति लेकर घर जानेवाले विद्यार्थी को पुनः अवधि के अंदर संस्था में आ जाना चाहिए।

(१०) विद्यार्थियों के खान पान तथा कपड़े संबंधी सब व्यवस्था एक समान होगी। सशुल्क विद्यार्थियों को कपड़े अपने खर्च से कराने होंगे। परन्तु वे सब कपड़े पाठशाला में रहनेवाले अन्य विद्यार्थियों के समान होने चाहिये।

(११) विद्यार्थी के अस्वस्थ होने पर संस्था के सामर्थ्यानुसार उसकी औषध व्यवस्था की जायगी। इस बीच यदि विद्यार्थी के पालक उसे अपने घर ले जाने की इच्छा व्यक्त करेंगे तो उसे अपने घर भी भेजा जायगा।

(१२) संस्था में शिक्षण के समय सब विद्यार्थियों का उपस्थित रहना अनिवार्य है। किसी खास विद्यार्थी या उसके पालक द्वारा इस नियम का उल्लंघन किया जाने पर वह संस्था से पृथक कर दिया जायगा।

(१३) संस्था से पृथक किये हुए विद्यार्थी को पुनः संस्था में सम्मिलित करना या नहीं ? इसका अधिकार संस्था के अधिकारियों की इच्छा पर निर्भर रहेगा।

(१४) इस संस्था में रहनेवाले किसी भी विद्यार्थी के लिये कंदमूल आदि अभक्ष्य पदार्थ का सेवन करना मना है तथा संस्था में रहते समय वे रात्रि भोजन भी नहीं कर सकेंगे।

(१५) व्यवस्थापक की आज्ञा के बिना किसी भी विद्यार्थी के अनुपस्थित रहने पर उसे दंड दिया जायगा।

(१६) विद्यार्थी की वार्षिक परीक्षा पौष शुक्ल पक्ष के मध्य में होगी तथा आगे के वर्गों में भी उसी समय चढ़ाये जायेंगे।

(१७) वार्षिक परीक्षा में अच्छी तरह पास होनेवाले विद्यार्थियों को योग्य पारितोषिक दिया जायगा।

(१८) दो बार अनुत्तीर्ण होनेवाले छात्र संस्था से पृथक कर दिये जायेंगे।

(१९) प्रत्येक चतुर्दशी के रोज विद्यार्थियों को पाक्षिक प्रतिक्रमण करना होगा तथा रात्रि में सभा कर व्याख्यान देने होंगे।

(२०) प्रत्येक विद्यार्थी के लिये प्रतिदिन नियमानुसार नियत समय पर व्यायाम करना अनिवार्य होगा।

(२१) संस्था के अधिकारी समय-समय पर विद्यार्थियों के लिये जो नियम बनाएंगे उनका पालन करना विद्यार्थियों को आवश्यक होगा।

(९) आवश्यक कारण होने पर विद्यार्थियों को उनके पालकों की अनुमति आने पर अपने घर जाने की अनुमति दी जायगी। परन्तु विद्यार्थियों के आने जाने की योग्य व्यवस्था तथा खर्च उनके संरक्षकों को करना होगा तथा अनुमति लेकर घर जानेवाले विद्यार्थी को पुनः अवधि के अंदर संस्था में आ जाना चाहिए।

(१०) विद्यार्थियों के खान-पान तथा कपड़े संबंधी सब व्यवस्था एक समान होगी। सशुल्क विद्यार्थियों को कपड़े अपने खर्च से कराने होंगे। परन्तु वे सब कपड़े पाठशाला में रहनेवाले अन्य विद्यार्थियों के समान होने चाहिए।

(११) विद्यार्थी के अस्वस्थ होने पर संस्था के सामर्थ्यानुसार उसकी औषध व्यवस्था की जायगी। इस बीच यदि विद्यार्थी के पालक उसे अपने घर ले जाने की इच्छा व्यक्त करेंगे तो उसे अपने घर भी भेजा जायगा।

(१२) संस्था में शिक्षण के समय सब विद्यार्थियों का उपस्थित रहना अनिवार्य है। किसी खास विद्यार्थी या उसके पालक द्वारा इस नियम का उल्लंघन किया जाने पर वह संस्था से पृथक कर दिया जायगा।

(१३) संस्था से पृथक किये हुए विद्यार्थी को पुनः संस्था में सम्मिलित करना या नहीं ? इसका अधिकार संस्था के अधिकारियों की इच्छा पर निर्भर रहेगा।

(१४) इस संस्था में रहनेवाले किसी भी विद्यार्थी के लिये कंदमूल आदि अभक्ष्य पदार्थ का सेवन करना मना है तथा संस्था में रहते समय वे रात्रि भोजन भी नहीं कर सकेंगे।

(१५) व्यवस्थापक की आज्ञा के बिना किसी भी विद्यार्थी के अनुपस्थित रहने पर उसे दंड दिया जायगा।

(१६) विद्यार्थी की वार्षिक परीक्षा पौष शुक्ल पक्ष के मध्य में होगी तथा आगे के वर्गों में भी उसी समय चढ़ाये जायेंगे।

(१७) वार्षिक परीक्षा में अच्छी तरह पास होनेवाले विद्यार्थियों को योग्य पारितोषिक दिया जायगा।

(१८) दो बार अनुत्तीर्ण होनेवाले छात्र संस्था से पृथक कर दिये जायेंगे।

(१९) प्रत्येक चतुर्दशी के रोज विद्यार्थियों को पाक्षिक प्रतिक्रमण करना होगा तथा रात्रि में सभा कर व्याख्यान देने होंगे।

२०) प्रत्येक विद्यार्थी के लिये प्रतिदिन नियमानुसार नियत समय पर व्यायाम करना अनिवार्य होगा।

(२१) संस्था के अधिकारी समय समय पर विद्यार्थियों के लिये जो नियम बनाएंगे उनका पालन करना विद्यार्थियों को आवश्यक होगा।

श्री तिलोक जैन पाठशाला का नामकरण

संवत् १९८१ में परमोपकारी मुनि श्री रत्नऋषिजी म० तथा शास्त्रोद्धारक श्री अमोलकऋषिजी म० आदि ठाणे ६ का चातुर्मास करमाला में हुआ। उस समय श्री जैन ज्ञानफंड पाठशाला के ४३ विद्यार्थी अपने अध्यक्ष तथा महामन्त्री के साथ दर्शनार्थ वहाँ आये। उस समय हैद्राबाद निवासी राजा बहादुर दानवीर सेठ लालाजी सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रसादजी जौहरी पर्यूषणपर्व में दर्शनार्थ आये थे। उन्होंने महाराष्ट्र में एक साथ धार्मिक अभ्यास करनेवाले इतने विद्यार्थियों को देख कर संस्था के प्रारंभिक काल में एक मुश्त २२०९ रुपये की सहायता दी। इसी तरह यादगिरि-निवासी धर्मनिष्ठ वयोवृद्ध श्रावक श्रीमान् नवलमलजी सूरजमलजी घोका जी ने एक मुश्त ३०० रुपये की सहायता दी।

महाराज श्री के सामने संस्था के नाम को लेकर बहुत कुछ चर्चा हुई। अनेक लोगों ने महाराज श्री के सामने अपने ये भाव व्यक्त किये कि, आप ही इस संस्था के मूल प्रेरक हैं। आपके सदुपदेश से ही यह पाठशाला स्थापित हुई है। इसलिये इस संस्था का नाम 'श्री रत्न जैन पाठशाला' रखा जाय। इस पर आपश्री ने फरमाया कि "मैं किसी संस्था के साथ अपना नाम देने के लिये सहमत नहीं हूँ। मेरे साथ विचरण करने वाले सेवाभावी मुनि श्री अमोलकऋषिजी कर्णाटक देश से अभी नये आये हैं। इसलिये इनके नाम से इस संस्था का नाम 'श्री अमोलक जैन पाठशाला' रखा जाय तो अच्छा है। पर उन्होंने भी कहा — मैंने कोई उपदेश आदि कार्य नहीं किया। आपके सदुपदेश से ही इस संस्था का प्रारंभ हुआ। अतएव संस्था के साथ आपका नाम रहना सर्वथा समुचित है। संस्था के नामकरण के लिये गुरु- शिष्य के इस मृदु प्रेमपूर्ण संवाद को देखकर कुछ लोगों ने कहा। पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज ने सर्व प्रथम दक्षिण देश में विचरण कर धर्म-जागृति की है और अब उनके पट्टशिष्य श्री रत्नऋषिजी म० उन्हीं के चरण-चिन्हों पर चलकर उनके द्वारा छोडे हुए कार्य को पूरा कर रहे हैं, इसलिये श्री जैन ज्ञान फंड पाठशाला का नाम "श्री तिलोक जैन पाठशाला" क्यों न रखा जाय ? इस सूचनानुसार सेक्रेटरीजी श्रीमान् उत्तमचन्दजी मुथा की प्रेरणा से सर्वानुमति से इस संस्था का नाम "श्री तिलोक जैन पाठशाला" ही रखा गया।

श्री तिलोक जैन पाठशाला पाथर्डी को पहले-पहल जो शिक्षक अध्यक्ष एवं मंत्री प्राप्त हुए, वे तीनों अपने त्यागमय जीवन के लिये सदैव प्रसिद्ध रहेंगे। श्री गोविंदराव सीताराम बराड मास्टर ने अपने कार्य-काल में इस संस्था की बहुत बडी सेवा की। प्रारंभ में वे ही इस संस्था के शिक्षक चपरासी अपलेखक आदि सब कुछ थे। जब देखो तब उन्हें संस्था के विकास की ही चिन्ता बनी रहती थी।

उस समय संस्था में किसी प्रकार का टेबल कुर्सी आदि फर्नीचर नहीं था। फिर भी यह त्यागी, सेवाभावी अध्यापक प्राचीन कलाचार्यों की तरह केवल टाटपट्टी पर बैठ कर पढाते थे। अध्यापन के समय भी अंग्रेजी गणित मराठी इतिहास भूगोल आदि विषय तो ये पढाते ही थे इसके अतिरिक्त धार्मिक विषय भी आप ही पढाते थे। आज पाथर्डी तथा आस-पास के गाँवों के हजारों विद्यार्थियों ने आप से शिक्षण लिया है। सारी जनता आपको आदर के साथ संबोधित कर बहुमान करती है। इस प्रकार यह अध्यापक संस्था के सौभाग्य से प्राप्त हुए थे। इस संस्था के कण कण में इस शिक्षक का पसीना दृष्टिगोचर हो रहा है। अभी भी यह वृद्ध अध्यापक पाथर्डी में जीवित हैं। पाथर्डी पाठशाला के निर्माण में इस सेवाभावी मास्टर की कीर्ति सदैव अक्षुण्ण रहेगी।

इसी प्रकार पाठशाला के अध्यक्ष श्रीमान मोतीलालजी चैठमलजी गुगलिया और सेक्रेटरी श्रीमान उत्तमचन्दजी भगिदासजी मुथा इन दोनों सद्गृहस्थों का इस संस्था के निर्माण में बहुत बडा योगदान है। दोनों ने २७ वर्ष पर्यन्त इस संस्था की अखंड रूप से सेवा की। १२ वर्ष पर्यंत ये दोनों बारह बारह रुपये मासिक के हिसाब से इस संस्था की आर्थिक सहायता करते रहे। इसके अतिरिक्त अध्यक्ष महोदय ने इस पाठशाला के निर्माण में आज तक चालीस हजार रुपये प्रदान किये। उनमें से पंद्रह हजार तो समय समय पर विविध प्रसंगों में हजार, पाँच सौ आदि के रूप में देते रहे और पच्चीस हजार रुपये अपनी अंतिम अवस्था में स्वर्गवास होने के पूर्व एक ट्रस्ट बनाकर एक मुश्त दिये। इसी तरह महामंत्री महानुभाव मुथाजी ने भी प्रसंग प्रसंग पर पंद्रह हजार रुपयों की सहायता पाठशाला को पहुंचाई।

ये दोनों जीवित रहे तब तक संस्था के काम को अपने घर का काम समझ कर करते रहे। उन्हें सदैव इसके विकास की चिंता बनी रही। इस पाठशाला

— श्री तिलोक जैन विद्यालय, पाथर्डी के आद्य कर्णधार —

स्व श्रीमान् सेठ उत्तमचदजी मुथा (पाथर्डी)
भू पू दीर्घदर्शी महामंत्री

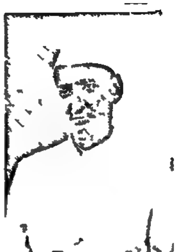
स्व दानवीर सेठ मो[illegible]लजी गुगले
(पाथर्डी) भूतपूर्व [illegible]

स्व श्री चुन्नीलालजी कोटेचा
[illegible]निवासी (पाथर्डी)
भूतपूर्व [illegible] प्रानमंत्री



देशभक्त श्री चन्दनमलजी गांधी (पाथर्डी)

भूतपूर्व कुशल महामंत्री



श्रीमान् सेठ माणकचन्दजी मुथा

(अहमदनगर)

श्री तिलोक जैन विद्यालय के

वर्तमान अध्यक्ष

तथा श्री ति र पा जन ध परीक्षा बोर्ड के

उपाध्यक्ष



श्रीमान् सेठ चुन्नीलालजी गुगले

(पाथर्डी)

विद्यालय के [illegible] पू सहमंत्री तथा

धार्मिक परीक्षा बोर्ड के वर्तमान

कोषाध्यक्ष

स्व० श्री० पन्नालालजी गुगले

श्री तिलोक जैन विद्यालय के आद्य अध्यक्ष श्री मोतीलालजी गुगले के तृतीय पुत्र, समाज के उदीयमान सेवक, विद्यालय के पदनिस्पृह कर्मठ कार्यकर्ता

श्री सुवालालजी छाजेड़

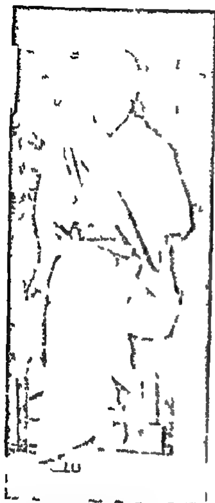
([illegible])

श्री तिलोक जैन ज्ञान प्रसारक मंडल के ट्रस्टी व भूतपूर्व सहमंत्री

श्री गोविंदराव सीताराम वराडे

आद्यप्रणेता - [illegible] श्री तिलोक जैन विद्यालय, पाथर्डी

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक



प श्री महेन्द्रकुमारजी जैन

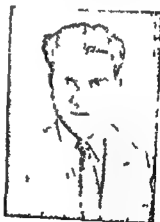
[illegible] भनगर (राज)



श्री नयनसुखजी गुगले

बी ए एलएल बी

वर्तमान सेक्रेटरी श्री तिलोक जैन ज्ञान प्रचारक मंडल पाथर्डी



डा चाँदमलजी गुगले

वर्तमान महामंत्री श्री तिलोक जैन ज्ञान प्रचारक मंडल

के कण कण मे इन दोनो का नाम अंकित है। मैंने तो इस संस्था को कभी देखा नहीं, केवल उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज तथा रिपोर्टो द्वारा इसके बारेमे कुछ जानकारी प्राप्त की है। फिर भी आशा करता हूँ कि, संस्था के वर्तमान अधिकारियो ने इन दोनो सद्गत त्यागी पोषको के तैलचित्र संस्था मे अवश्य स्थापित किये होंगे।

इसी प्रकार इस पाठशाला के आद्य प्रेरक एवं सदुपदेशक, स्वर्गीय, पूज्यपाद श्री रत्नऋषिजी महाराज को विस्मृत नही किया जा सकता। दुनिया में धनिक लोग अनेक पडे है, पर उस धन का किस दिशामें उपयोग होना चाहिए इसका मार्ग-दर्शन करने वाला त्यागी महात्मा होता है। इस दृष्टि से दान देनेवाले धनिकों की अपेक्षा एक त्यागी संत की महत्ता बहुत अधिक बढ जाती है।

परमोपकारी श्री रत्नऋषिजी महाराज ने ही समाज के बालको की ओर कारुण्य वृत्ति रखकर इस पाठशाला का प्रारम्भ किया। उसके लिए अपनी पैनी दृष्टि से द्रव्य एकत्रित करने की प्रेरणा दी। और जबतक जीवित रहे, अपने वचनानुसार तीन वर्ष पर्यन्त चाहे जहाँ होते, विहार कर साल में एक बार पाठशाला का निरीक्षण करने के लिये अवश्य पधारते थे। विहार के समय भी इस संस्था के विकास के लिये उनका सतत चिन्तन चलता रहता था। इस दृष्टि से आपश्री का इस संस्था के निर्माण में बहुत अधिक योग दान है। आपश्री के स्वर्गवास के बाद आप के पट्ट शिष्य उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी म० ने इस संस्था की बागडोर अपने हाथ में ली है और अपने कुशल नेतृत्व द्वारा इस संस्था का सदैव विकास कर रहे है। आज विद्यालय के इर्द-गिर्द श्री रत्न जैन पुस्तकालय, श्री अमोल जैन सिद्धात शाला, श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा श्री देवप्रेम स्था० जैन उपकरण भंडार, सुधर्मा मासिक पत्रिका आदि विविध प्रवृत्तिया दृष्टिगोचर हो रही है। ये सब आपकी सूझके परिणाम है। विहार या चातुर्मास काल में आप चाहे जहाँ हो, संस्था के समाचार संचालक लोग पहुँचाते रहते है और संस्था को बडी से बडी कठिनाई से निकालकर उसे सरल मार्ग की ओर गति देनेवाले आप ही है। आप ही के पुण्य-प्रभाव से समय २ पर इस संस्था को बडी सहायता मिलती रहती है।

इसके पूर्व हम उल्लेख कर चुके है कि संस्था को स्थापित हुये पूरे चार महीने ही नही होने पाये कि इतनी अल्प अवधि में वहाँ ३५ विद्यार्थियों की संख्या हो गई। उसमें बाहर के भी अनेक विद्यार्थी थे। इन बाहर के विद्यार्थियों के लिए पाठशाला के साथ एक छात्रालय खोला गया। इस समय श्री जनज्ञानफंड संस्था के पास ४५०० रुपये जितनी बहुत कम रकम थी। उसके ब्याज से केवल एक मराठ नामक शिक्षक की नियुक्ति की गई थी। अब छात्रालय के निमित्त मूल धन में से खर्च करने जैसी स्थिति इस संस्था की नही थी। इसलिये छात्रालय में रहने वाले निःशुल्क विद्यार्थियो के भोजन आदि की जिम्मेवारी समाज के उदार धनी व्यक्तियो ने अपने ऊपर उठा ली। छात्रालय में निवास करनेवाले छात्र समाज के स्थानीय प्रमुख सद्गृहस्थों के यहां भोजन करते थे। छात्रालय प्रारंभ करते समय असमर्थ विद्यार्थीयों को बिना किसी भेदभाव के भोजन कराने वाले स्थानीय उदार व्यक्तियों के नाम इस प्रकार है – (१) श्री मोतीलालजी गुगलिया (२) श्री उत्तमचन्दजी मुथा (३) श्री हीरालालजी गांधी (४) श्री मुलतानचन्दजी नवलिया इनमें से प्रथम दो सज्जनों ने दो असमर्थ छात्रो का भार अपने ऊपर उठाया और अवशिष्ट दो ने एक एक विद्यार्थी का। इस प्रकार की सहायता का क्रम सात महीने तक चलता रहा। बाद में छात्रालय स्थापित होने पर प्रतिविद्यार्थी के सात रुपये के खर्च के हिसाब से छात्रालय को सहायता प्राप्त करते रहे। इस प्रकार मूल रकम वैसी की वैसी सुरक्षित बनी रही।

इसके बाद फिर थोड़े से समय में पाठशाला में ६३ विद्यार्थी प्रविष्ट हुए। इनमें से छात्रालय में चालीस विद्यार्थी रहते थे। उनमें से भी तैवीस छात्र निःशुल्क थे पर इनके निवास भोजन आदि के खर्च का बोझ संस्था पर किसी प्रकार नहीं पडने दिया। समाज पूर्ववत् इन विद्यार्थियों की व्यवस्था करता रहा। अब अनेक सद्गृहस्थ एक एक असमर्थ विद्यार्थी के खर्च का भार अपने सिर पर लेके उक्त रकम संस्था को भेजने लगे। इस प्रकार श्री जनज्ञानफंड पेटीखाता तथा छात्रालय के खाते को अच्छी सहायता मिली।

सन १९२४ से १९२७ तक की द्वितीय वार्षिक रिपोर्ट के छठ्ठे पृष्ठ के अंत में जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसके आधार से लिख रहे है —

दिनांक ३०-४-२७ तक पाठशाला में बालकों की संख्या १२८ थी। पाठशाला की वार्षिक परीक्षा होने पर अग्रिम वर्ष में लगभग ३०-४० विद्या-

र्थियो की सख्या बढ गई। उस समय पाठशाला मे सात शिक्षक थे और शिक्षण मराठी बालवर्ग से लेकर सातवी कक्षा तथा अंग्रेजी प्रायमर से अंग्रेजी चतुर्थ कक्षा तक दिया जाता था। अभ्यासक्रम सरकारी धोरण के अनुसार होने पर भी धार्मिक शिक्षण बाल वर्ग से लेकर सब वर्गों तक दिया जाता था। दूसरी पाठशालाओ की अपेक्षा इस पाठशाला की यह एक महती विशेषता-प्रारभ से ही रही है। इसी प्रकार सस्कृत, मराठी चतुर्थ कक्षा से ही सिखाया जाता था। इसके अतिरिक्त कुछ शिक्षक विशेष परिश्रम कर एक वर्ष में दो दो वर्गों की पढाई करा कर विद्यार्थियो की एक साल की बचत करा देते थे। दिनाक ३०—३—२४ से लेकर ३०—४—२७ की अवधि के बीच वार्षिक परीक्षा के लिये श्री कुंदनमलजी शोभाचदजी फिरोदिया बी. ए. एल् एल् बीं श्री माणकचन्दजी किसनदासजी मुथा, बी ए एल् एल् बी श्री शकरराव नबाथे, एम् ए हेड मास्टर ए सोसायटी हाइस्कूल, श्री मोडक एम् ए श्री चुन्नीलालजी नेमिचन्दजी संकलेचा बी. ए एल् एल् बी. दानवीर श्री मगनमलजी गाधी, श्री उत्तमचदजी रामचदजी बोगावत—वकील इत्यादि विद्वान् मंडली वार्षिक परीक्षा के लिये आई थी। प्रत्येक बार परीक्षा का परिणाम समाधानकारक रहा। प्रतिशत ८८ विद्यार्थी सब विषयो में उत्तीर्ण हुए। उनमे से कुछ विद्यार्थियो ने तो अपने शिक्षको के परिश्रम के परिणाम स्वरूप एक ही वर्ष में दो दो वर्ग (क्लास) उत्तीर्ण कर यशस्वी परिणाम प्राप्त किया था। सरकारी धोरण को देखते हुए प्रतिशत ३३ मार्क पर उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियो की शाला साधारणत उत्तम गिनी जाती है। इस पर से इस पाठशाला का शिक्षण कैसा चलता है, उसकी कल्पना की जा सकती है।

इस प्रकार दि ३०—४—२७ पर्यत पाथर्डी जैन छात्रालय मे कुल मिलाकर १०५ विद्यार्थी थे। उनमें ६४ असमर्थ, १६ अर्द्धसमर्थ एव २५ समर्थ थे। छात्रालय की व्यवस्था करने के लिये एक छात्रालय गृहपति तथा भोजन बनाने के लिए जाति की पाँच गरीब बाइयाँ थी। श्री तिलोक जैन छात्रालय मे भोजन बनानेवाली इन बहिनो की एक विशेषता है। अन्य संस्थाओ में भोजन बनानेवाले प्राय ब्राह्मण रसोइये होते है, वे लडको के लिए भोजन बनाने पर भी चौके में दूसरो को प्रविष्ट नही होने देते। पर यहा प्रारभ से इस काम के लिए उन बहिनो की ओर विशेष ध्यान दिया गया, जो अपने पति के देहावसान के बाद अपने छोटे २ पुत्रो के साथ किसी प्रकार अपना जीवन-यापन करती थी।

ये बहिन छात्रालय में भोजन बनाती थी और इनके बालक पाठशाला में नि शुल्क अभ्यास करते थे। भोजन पकाने बनाने वाली बहने छात्रालय को अपना घर समझ कर उसी तरह काट-कसर से काम करती थी। बोर्डिंग में रहने वाले बालकों को अपने बालक समझती थी। मातृत्व की इस विशाल भावना के कारण उनके द्वारा बनाया हुआ भोजन बच्चों के शारीरिक विकास में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है और संस्था में अभ्यास करने वाले बालक घर से दूर रहने पर भी इन माताओं को अपने पास पा कर के माता का अनुभव करते थे। ये बहिन तो बच्चों के लिये भोजन पका कर भी स्वय वहाँ भोजन नही करती थी। पारिश्रमिक रूप से प्राप्त केवल ग्यारह रुपये जितनी छोटी रकम द्वारा अपना जीवन ज्यापन करती थी। इन माताओं के इस त्याग की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। उनमें मुख्य है श्रीमती कोडाबाई पारख और उनकी सुपुत्री हुलासाबाई लालवाणी। इन दोनों बहिनो ने अनेक वर्षों तक छात्रालय को अपनी यह अमूल्य सेवा प्रदान की। श्री कोडाबाईजी तो मृत्यु के समय भी इस बोर्डिंग को स्मरण करती रही। अंतिम समय में इस माता ने मेरे इस छात्रालय का सदा ध्यान रखना छात्रालय में रहने वाले बच्चो को किसी प्रकार कष्ट नही होने पावे यह कहते हुये अपने प्राण छोड़े। इसके अतिरिक्त ऊपर का काम करने के लिये नौकर आदि है। असमर्थ विद्यार्थियो के भोजन, शिक्षण आदि की सब व्यवस्था संस्था मुफ्त करती है। पाठशाला तथा छात्रालय के लिये किराये की जगह ले रखी है।

इस संस्था का प्रारंभ होते समय इसकी मकान पूर्ति की समस्या करीब छह महीने के लिये श्रीमान माणकचन्दजी गांधी ने हल की थी। फिर भी पाठशाला और छात्रालय के लिये मकान का विकट प्रश्न उपस्थित था। इसका निराकरण संस्था के तत्कालीन कार्यदक्ष अध्यक्ष एवं मंत्री महोदय ने इस प्रकार किया। उस समय पाथर्डी में मल्लाप्पा चिरेताल नामक व्यक्ति से २००० रुपयो में एक मकान इस शर्त पर लिया गया कि हम १५०० रुपये अभी देते है, इन पद्रह सौ रुपयो पर किसी प्रकार का ब्याज नहीं लिया जायगा और अवशिष्ट पाँच सौ रुपयों का ब्याज देना होगा। यह मकान इतना विशाल था कि उसमें विद्यालय चलता ही था। उसके अतिरिक्त छात्रालय में रहने वाले छात्रो के निवास तथा भोजन आदि की व्यवस्था भी इसमें की गई। इस मकान में बीस साल की लंबी अवधि तक छात्रालय तथा विद्यालय चलता रहा। यह सब संस्था के आद्य अध्यक्ष एवं मंत्री महोदय की दीर्घ दर्शिता का परिणाम था कि यह संस्था अपनी परिमित सामग्री में भी निरंतर आगे बढ़ती रही।

पाठशाला तथा छात्रालय के लिए अलग-अलग जगह होना नितांत आवश्यक है, परंतु संस्था की वर्तमान-स्थिति उतना बड़ा खर्च करने जैसी नहीं है। संस्था को पाठशाला तथा छात्रालय का खर्च मिलाकर कुल खर्च मासिक एक हजार रुपये आता है। इतना महान् खर्च संस्था के स्थायी फंड पर हाथ नहीं लगाते हुए अत्यंत परिश्रम से समाज के उदार धनी व्यक्तियों की सहायता से किया जाता है। स्थायी फंड आज केवल बीस हजार रुपये अर्थात् बहुत थोड़ा है। किसी भी संस्था का चिरस्थायित्व उसके स्थायी फंड पर अवलंबित है। बाहर की सहायता पर कुछ दिन अच्छी तरह से चली हुई संस्था वह सहायता बंद होने पर डूब जाती है। ऐसे सैकड़ो उदाहरण हमारे सामने उपस्थित हैं, यह तत्त्व कुछ अप्रिय होने पर भी अनुभव की दृष्टि से सत्य है। इस प्रकार विचार करने पर संस्था का स्थायी फंड बीस हजार रुपये तथा खर्च प्रतिवर्ष बारह हजार रुपये, क्या यह वर्तमानकालीन स्थिति समाधान-कारक है? इस संकटापन्न स्थिति से संस्था को बाहर निकालने के लिये यह आवश्यक है कि संस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये कम से कम एक लाख रुपये इकट्ठे किये जायें और उसकी समाज के न्यायपटु तथा व्यवहारदक्ष सद्गृहस्थों द्वारा योग्य व्यवस्था की जाय। हमें अनुभव है कि यह काम अत्यंत कठिन है परंतु साधु संतों के पूर्ण आशीर्वाद, समाज के धनिक वर्ग की दानशूरता तथा इस शुभकार्य के लिये संस्था के हितचिंतक और आश्रयदाताओं द्वारा मिलने वाली सहायता, इन सब पर हमारा पूर्ण विश्वास होने से यह काम कुछ कठिन नहीं है।

यहाँ पाठकों के मन में यह शंका होना स्वाभाविक है कि मूल धन पर हाथ नहीं लगाते हुए संस्था इतना बड़ा खर्च कैसे उठा लेती है? यह शंका वास्तविक है, परन्तु इस का उत्तर यह है कि समाज के धनिक वर्गों का शिक्षण-प्रेम, उनके अंतःकरण में दीन दुर्बल असमर्थ विद्यार्थियों की करुणा-जनक स्थिति देखकर उत्पन्न होने वाली अनुकंपा, ये दोनों ही उन्हें समय-समय पर सहायता करने के लिए प्रेरित करते रहे हैं। वस्तुतः इस धनिक वर्ग ने अपने समर्थ हाथों द्वारा संस्था की सहायता न की होती तो संस्था के इस महान् खर्च का चलना अशक्य था।

इस प्रकार के सहायकों में प्रथम व्यक्ति हैं श्री मगनमलजी गांधी पारनेरवाले। आप संस्था में असमर्थ विद्यार्थियों के प्रविष्ट होने पर अपनी ओर से पहले पहल चार विद्यार्थियों के भोजन का खर्च मासिक अट्ठाईस रुपये देने लगे। आप अपनी ओर से तो देते ही थे, दूसरे उदार व्यक्तियों को भी प्रेरित कर उनकी ओर

से बराबर दिलाते रहते । आपकी प्रेरणा से समाज के अनेक व्यक्तियों ने इन असमर्थ छात्रो के लिये बहुत-कुछ दान दिया। धीरे धीरे जसे जसे इन असमर्थ विद्यार्थियों की सख्या बढती गई। श्री मगनमलजी गांधी का औदार्य भाव भी बढता गया। उन्होंने चार से बढकर दस-पद्रह असमर्थ विद्यार्थियों की जिम्मेदारी अपने ऊपर उठा ली और प्रत्येक विद्यार्थी की सात रुपयें की सहायता के हिसाब से मासिक एक सौ पाँच रुपय सस्था को देने लग। किसी किसी समय तो आपने एक साथ पच्चीस विद्यार्थियों का भार अपने सिर पर उठाकर हस्ते पर-हस्ते सस्था को १७५ रु मासिक तक दिय है।

श्रीमान मगनमलजी गाँधी साल में नियमित रूप से दो बार छात्रालय का निरीक्षण करने आते थे और अपना खर्च करने में असमर्थ नि:शुल्क छात्रों को अनेक वर्षो तक कपडों की सहायता देते थ।

अनेक बार तो ऐसा होता था कि बाहर से सस्था का निरीक्षण करने के लिए आनवाले दयालु सज्जन निराश्रित छात्रों की स्थिति देख किसी की प्रेरणा के बिना स्वय प्ररणा से सहायता देना प्रारम्भ कर देते। एक बार का समय है एक अनाथ विधवा बहिन अपने तीन बालकों को पाठशाला मे प्रविष्ट कराने आई। उस समय वहाँ गुलेदगडवाले रावसाहब श्रीमान लालचदजी मुथा उपस्थित थे। उन्होंने देखा इस बहिन ने अपने शरीर पर फटे कपडे पहने हुए है, लडको के शरीर पर भी फटे पुराने कपडे है। बाहर आने पर तो प्रत्येक व्यक्ति अच्छे कपडे पहन कर आता है। इस की दशा देखते हुए यह किसी भी परिस्थिति में अपने बच्चों के भोजन आदि के खर्च का भार उठा नहीं सकती। यह सब सोचकर उन्होंने किसी की प्ररणा के बिना स्वेच्छा से तीनों बालकों के खर्च का भार पहले तीन वर्ष तक देने का आश्वासन दिया परतु योग्य स्थल जानकर पाँच वर्षों तक सहायता दी।

यह तो एक उदाहरण है, इस प्रकार अनेक सदगृहस्थों ने अनुकपा से प्रेरित होकर बहुत-से असमर्थ बालकों का भोजन विषयक भार स्वेच्छा से अपने ऊपर उठा लिया। पुण्यश्लोक श्री रत्नऋषिजी महा० के सक्षिप्त जीवन-चरित्र में जिन स्वनामधन्य गराडानिवासी श्रीमान् नवलमलजी सिवराजजी पारख का उल्लेख हो चुका है, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती फूलाबाई एक बार पाथर्डी में विराजमान स्वर्गीय पूज्यपाद श्री रत्नऋषिजी म० का दर्शन करने के लिये घोडनदीनिवासी वयोवृद्ध श्रावक एव ट्रस्टी श्रीमान् नानचदजी दूगड के साथ आई थी। दर्शन करने के बाद पाथर्डी में महाराजश्री के उपदेश से स्थापित

पाठशाला को देखकर श्रीमती फूलाबाई की संस्था के निमित्त कुछ देने की इच्छा हुई। अभी तक आपके स्व पति द्वारा निकाले हुए द्रव्य के व्याज में संत-सतियों का अध्ययन-क्रम चल रहा था। पर अब उस द्रव्य का इस प्रकार के उत्कृष्ट कार्य में उपयोग नहीं होने के कारण पहले शिक्षण खाते में निकाले हुए बीस हजार रुपयों का व्याज सौ रुपये मासिक के हिसाब से देने का वचन दिया और वह रकम अनेक वर्षों तक संस्था को प्राप्त होती रही।

अहमदनगर जिले के अंतर्गत मिरीनिवासी श्रीमान् स्व० पन्नालालजी मेहेर के स्मरणार्थ उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूराबाई तथा सुपुत्री जड़ावबाई ने इस पाठशाला को एक बहुत बड़ी स्थावर संपत्ति अर्पित की। उसकी बिक्री में विद्यालय को साढे आठ हजार रुपये प्राप्त हुए।

संवत् १९८४ में परमोपकारी श्री रत्नऋषिजी म० का स्वर्गवास होने के पश्चात् दूसरे वर्ष संवत् १९८५ ज्येष्ठ कृष्ण सप्तमी के रोज नागपूर सदर बाजार में पं० रत्न मुनि श्री आनन्दऋषिजी म० ने अपने गुरुवर्य के स्मरणार्थ श्री जैनधर्म प्रसारक संस्था स्थापित की। इसमें बाहर की सहायता, व्याज तथा पुस्तक प्रकाशन से जो कुछ आमदनी होती थी, उसका तृतीयांश यह संस्था श्री तिलोक जैन विद्यालय पाथर्डी को प्रदान करती रही।

इस संस्था के निर्माण में जिन श्रेष्ठ पुरुषों का स्थान है, उनमें बाघे बाभुलगांवनिवासी श्रीमान् प्रेमराजजी छाजेड को विस्मृत नहीं किया जा सकता। श्री प्रेमराजजी छाजेड अपने गाँव में सपन्न व्यक्ति थे। पर उनके कोई संतति नहीं थी। उन्होंने नाहूरनिवासी सेवाभावी शिक्षाप्रेमी प्रांतीय मंत्री श्रीमान् भीकचंदजी चुन्नीलालजी कोटेचा की प्रेरणा से अपनी सारी संपत्ति श्री तिलोक जैन विद्यालय (पाथर्डी) को सन् १९२५ में बक्षीस रूपमें दे दी। उस समय इस स्थावर संपत्ति की कीमत २०००० बीस हजार रुपयों से भी अधिक की आकी गई थी। पर सन् बत्तीस के बाद इस स्टेट पर संस्था का अधिकार करने के लिए स्व० श्रीमान् प्रान्त मंत्री जी चुन्नीलालजी कोटेचा और उनके ज्येष्ठ बंधु श्रीमान् भीकचंदजी कोटेचा को बहुत परिश्रम करना पड़ा। उसके लिये उन्हें अनेक बार केज, बीड, औरंगाबाद और हैदराबाद के न्यायालयों के द्वार खटखटाने पड़े। यहाँ तक कि इस दौड़-धूप में उन्होंने केवल संस्था के विकास हेतु अनेक रुपये अपनी ओर से खर्च किये। अंत में सन् १९५६ में स्व० श्री चुन्नीलालजी कोटेचा और उनके ज्येष्ठ बंधु श्री भीकचंदजी कोटेचा के अथक परिश्रम से संस्था को आधी स्टेट प्राप्त हो गई। उसकी बिक्री के रूप में श्री तिलोक जैन विद्यालय को करीब चालीस हजार रुपये प्राप्त हुए। अब आधी स्टेट पर और

अधिकार करना अवशिष्ट रह गया था। पर संस्था के ट्रस्टी-रूप मे नियुक्त चार ट्रस्टियो में से एक ट्रस्टी के विमुख हो जाने से इस काय में कुछ विलब हुआ। अत में बहुत कुछ ऊहापोह के बाद यह निश्चित किया गया कि बची हुई आधी स्टट में से आधी कक्षा विद्यालय को प्रदान की जाय और आधी श्री तिलोक जन विद्यालय को दी जाय। वाम्बुलगाव निवासी श्रीमान् प्रेमराजजी छाजड का तो कभी का स्वगवास हो चुका है, पर उन्होंन श्रीमान् चुन्नीलालजी कोटचा की शुभ प्रेरणा से अपना सवस्व इस सस्था को अपण कर दिया इसके लिये पाठशाला के सचालक उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे।

इसी प्रकार भुसावलनिवासी श्रीमान दानवीर केसरीमलजी कोटेचा ने इस सस्था के विकास-हेतु ५००० पाँच हजार रुपयो का अभिवचन दिया। पर वचन देन के थोड समय बाद ही उनका स्वगवास हो गया। उसके बाद उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुवरबाई ने अपन स्व पति के वचन का पालन करने के लिय स्थानीय व्यक्तियों का एक ट्रस्ट बनाकर वह रकम सस्था को अर्पित की। सस्था की आवश्यकता के अवसर पर अपण की गई पाँच हजार रुपयों जसी इस महती सहायता के लिए स्वर्गीय श्री केसरीमलजी कोटचा, उनकी धमपत्नी श्री सुवरबाई तथा उनके दत्तक पुत्र श्रीमान मांगीलालजी आदि कोटचा-परिवारकी यह सस्था ऋणी ह।

जालना (जामनगर) निवासी दानवीर श्रीमान केशवजी भाई जवेर चद शाह भी इस सस्था के आधार-स्तभो में एक ह। जिन्होंने श्री तिलोक जन विद्यालय के इस विशाल भवन-निर्माण के लिए दो किस्तो में ११००० ग्यारह हजार रुपये देकर समाज के और भी अनक सपन्न व्यक्तियों को इस महान कार्य में दान देन के लिए प्रेरित किया ह।

ऊपर अकित सदगृहस्थों के अतिरिक्त गाँव के बाहर स्थित श्री तिलोक जैन विद्यालय क भवन-निर्माण के लिए निम्नलिखित उदार व्यक्तियां द्वारा एक हजार रुपयो से लेकर तीन-चार हजार तक की सहायता प्राप्त हुई ह। उनक नाम इस प्रकार ह।

१	श्री दौलतरामजी बोरा श्रीसिमरतमलजी) बोरा तथा श्री उत्तमचदजी मुगळ फम)	अहमदनगर	४००१ रु.
२	श्रीमान मनसुखलालजी चन सुखलालजी काठड	मालेगांव	३१०० रु
३	चद्रमानजी रूपचदजी डाकलिया	श्रीरामपुर	३१०१ रु
४	अभयराजजी हीराचदजी बल्दोटा	मुबई	३१०१ रु

५	श्रीयुत तखतमलजी फत्तेचंदजी मुणोत द्वारा	अमरावती	३१०१ रु.	
	,, जवाहरलालजी मुणोत।			
६	श्रीमती पुतलाबाई ध्र. बद्रीलालजी देसरडा	टाकली भालोर	३००० रु	
७	,, हेमराबाई ध्र. सुखराजजी बोहरा मूलचंदजी हम्मीरमलजी सुराणा के स्मरणार्थ।	औरंगाबाद	२००० रु	
८	श्रीमती हरकूबाई ध्र. चुन्नीलालजी मुथा द्वारा श्री मोहनलालजी, उत्तमचंदजी सिमरतमलजी मुथा।	घावोरी	१५०० रु	
९	श्रीमान् राजाबहादुर सुखदेव सहायजी	हैदराबाद	१००१ रु	
	,, ज्वालाप्रसादजी जौहरी			
१०	,, इंदरचंदजी पुत्र लालजी लूणावत	धामणगाव	,,	,,
११	,, बाबूलाल डाह्याभाई बदाणी	अमरावती	,,	,,
१२	,, गुलाबचंद ओधडभाई गोसलिया	बडनेरा	,,	,,
१३	,, मयाशंकरभाई चतुरभुज	अमरावती	,,	,,
१४	,, देवराज देपार शाह द्वारा—फूलचंद जवेरचंद गोसर।	आलना	,,	,,
१५	,, कुंदनमलजी शोभाचंदजी फिरोदिया	अहमदनगर	,,	रु
१६	,, उत्तमचंदजी रामचंदजी बोगावत	,,	,,	,,
१७	,, रतनचंदजी भिकमदासजी बाठिया	,,	,,	,,
१८	,, केसरीमलजी बस्तीमलजी गुगलिया	मलाड (मुंबई)	,,	,,

उस समय स्व. श्री रत्नऋषिजी महाराज ने भी अपने विहार—काल में अनुभव किया। समाज में दो श्रेणियाँ है। धनिक और निर्धन। निर्धनो मे भी अनेको की तो ऐसी दयनीय स्थिति है, जो जंगल में जाकर ढोर पशु आदि चराते है। इन में से धनिक बालक तो ऐश—आराम में लिप्त रहने के साथ अपने परिवार की अशिक्षित अवस्था के कारण पढ नही पाते और निर्धन बालको के लिए तो पैसे के अभाव के कारण स्कूल का द्वार सदैव के लिए बंद रहता है। धनिक बालक नहीं पढे, तो भी पूर्वजो द्वारा उपार्जित संपत्ति के कारण उनका निर्वाह हो सकता है। पर असमर्थ बालको के लिए स्कूल में गये विना गति नहीं। इस लिये आपने इन असमर्थ बालको को विद्याध्ययन के लिए अत्यधिक प्रेरित किया। आपकी प्रेरणा से ये बालक विद्याध्ययनार्थ संस्था में प्रविष्ट होने लगे और समाज उनकी बढती हुई सख्या की चिंता किये विना सारा भार अपने ऊपर उठाता रहा।

सन् १९२९ से १९३३ की रिपोर्ट के अनुसार ऐसे कितन सज्जन असमथ विद्यार्थियों की सहायता कितम बडे पमान पर करते थ, उसकी सूची निम्नाकित ह।

क्रमांक	नाम	गाव	असमर्थ बालक	प्रतिमास रु
१	श्री मगनमलजी निहालचदजी गाधी	पारनेर	१५	१०५
२	मोतीलालजी जठमलजी गुगलिया	पाथर्डी	१	७
३	उत्तमचदजी नमिदासजी मुथा	,	१	७
४	माणकचदजी किसनदासजी मुथा	अहमदनगर	१	७
५	फत्तेचदजी श्रीमलजी	गुलेजगड	३	२१
६	, फत्तेचदजी चादमलजी	,	१	७
७	,, कस्तूरचदजी सूरजमलजी गाधी	कोळगाव	१	७
८	पूनमचदजी कुदनमलजी चगडिया	सोनई	१	७
९	उमेदमलजी सागरमलजी गुगलिया	लोहसर	१	७
१०	सुखलालजी मोतीलालजी कोटेचा	बीड	१	७
११	, धोंडीरामजी दलीचदजी खिवसरा की मातुश्री राजुबाई	पुणे	२	१४
१२	, हसराजजी धनराजजी	सूरत	१	७

असमर्थ विद्यार्थियो के लिए प्रति माह सहायता देने वाले इन उदार सज्जनो के सिवाय समाज के अन्य व्यक्तियों द्वारा छात्रालय के लिए इस बीच १५००० पद्रह हजार रुपयों से अधिक सहायता मिली थी।

छात्रालय की सहायता करन के अतिरिक्त अध्यापकों के वेतन के लिए भी कुछ व्यक्ति प्रतिमाह कुछ सहायता देते थे। उनके नाम इस प्रकार है।

क्रमांक	नाम	गाव	प्रतिमाह सहायता
१	श्रीमान् मोतीलालजी जठमलजी गुगलिया	पाथर्डी	५ रु
२	उत्तमचदजी नमिदासजी मुथा		५
३	किसनदासजी माणकचदजी मुथा	अहमदनगर	५
४	, नवलमलजी मूलचदजी मुणोत	कुकाणे	१५ ,
५	,, नवलमलजी सोभराजजी की धमपत्नी जडावबाई	घराडा	५० ,
६	,, फत्तेचन्दजी चान्दमलजी	गुलेजगड	५
७	धनराजजी मगनलालजी	,	२५१ वार्षिक

इनके सिवाय "श्री जैन ज्ञानफंड संस्था" के पेटी खाते में दान देनेवालो की संख्या साढे छ सौ के लगभग है। उसमे छोटी रकम पाँच से लगाकर ६०० रुपये तक की सहायता प्राप्त हुई है।

इस प्रकार चारो ओर से बडे पैमाने पर दान मिलने पर भी संस्था में असमर्थ विद्यार्थियो की संख्या उत्तरोत्तर इतनी अधिक बढती गई कि वहा तक पहुँचना कठिन हो गया। अत एव छात्रालय को चिरकाल के लिए सुचारु रूप से चलाने के लिए असमर्थ छात्रो की संख्या नियत कर देना चाहिये और संस्था की आर्थिक मर्यादा के बाहर असमर्थ छात्र छात्रालय में प्रविष्ट नही करना चाहिये, ऐसा विचार संचालक वर्ग करने लगा।

एक बार संवत् १९८४ मे प० रत्न मुनि श्री आनदऋषिजी महाराज ठाणे २ का चातुर्मास हिंगणघाट मे हुआ। उस समय पर्यूषण पर्व मे प्रतिवर्ष की तरह संस्था के अध्यक्ष, मंत्री, मेम्बर, एव मुख्य अध्यापक आदि आपश्री के दर्शनार्थ आये। यहा पाठशाला के विद्यार्थियो ने अपना व्यायाम प्रदर्शन, धार्मिक शिक्षण एव संगीत आदि के प्रयोग दिखाये। उससे आकृष्ट होकर हिंगणघाट के श्री संघ ने ६०००, छ हजार रुपये प्रदान किये। उसी वर्ष हिंगणघाट के सन्निकट वरोरा क्षेत्र मे तपस्वीराज पू० देवजीऋषिजी महाराज की सेवा में दर्शनार्थ जानेपर वहाँ देखते ही देखते एक दिन में लोगो ने १५००, पद्रह सौ रुपयो की सहायता दी।

यहाँ चातुर्मास काल मे प० रत्न मुनि श्री आनदऋषिजी महाराज के साथ मुख्य रूप से संस्था के भावी विकास के संबध में बातचीत हुई। उस समय संस्था मे अत्यधिक विद्यार्थियों के कारण ध्रुवफंड मे से दो हजार रुपयो तक की रकम संस्था के छात्रो के लिए खर्च की जाती थी। यह सुनकर महाराज श्री ने कहा-चाहे संस्था में विद्यार्थी कम कर दिये जायँ, पर ध्रुवफंड में से कुछ भी खर्च नही होना चाहिये। ध्रुवफंड के व्याज की सारी की सारी रकम खर्च कर सकते हैं। महाराजश्री द्वारा इतने सावधान किये जाने पर भी संस्था के मुख्य संचालक कुछ वर्ष तक कारणवश इसमें कुछ कमी नही कर सके। अत में उक्त महाराजश्री के मार्गदर्शन का ही अनुसरण करना पडा।

संवत् १९८८ में बोदवड चातुर्मास के समय महाराजश्री ने फिर सावधान किया। तदनतर एक प्रस्ताव ऐसा पास किया गया। वर्तमान स्थायीफंड को सुरक्षित रखते हुये उसे उत्तरोत्तर बढाने के हेतु से यह फंड ट्रस्टी-मडल को सौप दिया जाय। उस समय संस्था के पास ३९०००, उन्तालीस हजार रुपया जितना स्थायी फंड था। यह ट्रस्ट कैसे बनाया जाय और उसकी धारा कैसी

हो ? उसकी जानकारी के लिये अहमदनगर निवासी श्रीमान उत्तमचन्दजी राम चन्दजी बोथरा वकील-साहब दो बार बबई जाकर श्री चिमनलाल चकुभाई शाह सोलिसिटर आदि व्यक्तियो से मिले और वहां से जो जानकारी प्राप्त की तद-नुसार ट्रस्ट बनाने का निश्चय किया गया।

फिर दूसरे प्रस्तावानुसार उस समय महाराष्ट्र जैन समाज और इस समय सारे जैन समाज के विश्वासपात्र श्री कुन्दनमलजी शोभाचन्दजी फिरोदिया B A. L L B अहमदनगर, श्री किसनदासजी माणकचन्दजी मुथा अहमदनगर श्री मगनमलजी निहालचन्दजी गांधी (पारनेर) अहमदनगर श्री मोतीलालजी जठ मलजी गुगलिया पाथर्डी, श्री उत्तमचन्दजी नेमिदासजी मुथा पाथर्डी इन पांच व्यक्तियो का एक ट्रस्ट मडल-बनाया गया और अभी तक अध्यक्ष तथा मत्री महोदय सस्था के जिन रुपयो को बडी सावधानी से रखा करते आ रहे थे उस स्थायी फड में वृद्धि करने के लिये यह रकम ट्रस्टी मडल को सौप दी। इस ट्रस्टी-मडल ने दो हो पूर्व के अध्यक्ष तथा मत्री महोदय ही थे। शेष तीन भी एस ही व्यक्ति चुने गये, जो सस्था के प्रारभ काल से उसकी प्राण-पण से सेवा करते आ रहे थे। इन तीनो की उदारता का परिचय पाठक पूर्व के प्रकरणो में प्राप्त कर चुके है।

पूज्यपाद श्री रत्नऋषिजी म० का सवत् १९८४ ज्येष्ठ कृष्ण सप्तमी को स्वर्गवास होने के बाद प मुनि श्री आनन्दऋषिजी म० ठाण २ हिंगणघाट नागपूर अमरावती चादूर बाजार, बोदवड आदि क्षेत्रों में चातुर्मास कर के और मध्यवर्ती क्षेत्रो को स्पर्श करते हुए पाथर्डी में पधारे। यहां सस्था की गति विधि को देखकर आपको परम सतोष हुआ। पर इधर पाथर्डी की स्थानीय जनता अपने गुरुदेव के आकस्मिक स्वर्गवास से अत्यत दु खित थी। क्योंकि श्री तिलोक जैन विद्यालय के आद्य प्रेरक स्व श्री रत्नऋषिजी महाराज ही थे। इस सस्था की स्थापना के समय लोगो ने इस सस्था का नाम आपश्री के नाम से अलकृत करने का बहुत प्रयत्न किया परतु उन परोपकारी सत ने अपने स्वर्गीय गुरुदेव के नाम को यह यश प्रदान किया था। अब आपके स्वर्गवास के बाद इस सस्था के साथ आपके स्मारक रूप से कुछ ठोस कार्य करने का निश्चय किया गया। फल स्वरूप सर्वानुमति से एक योजना बनाकर स्वर्गीय श्री रत्नऋषिजी महा-राज के नाम से 'श्री रत्न जैन पुस्तकालय' की स्थापना की गई।

इस पुस्तकालय की स्थापना हुए ३३ वर्ष हो गये। पिछले इन वर्षों में इस में पुस्तको की सख्या बराबर बढती रही है। दक्षिण प्रात के आस पास के क्षेत्रो में स्थानकवासी समाज के लिये पाथर्डी का यह 'श्री रत्न जैन पुस्तकालय'

यह आदर्श पुस्तकालय कहा जा सकता है। इसमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखते हुए जैनसमाज के तीनों संप्रदायों के श्रेष्ठ ग्रन्थों का संग्रह किया गया है। इस के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के विकास में कारणभूत अन्य दर्शनों के ग्रन्थों का भी अच्छा चयन किया गया है। इन मुद्रित ग्रन्थों के अतिरिक्त यहाँ हस्त-लिखित ग्रन्थों का भी अच्छा संग्रह है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त यहाँ हिंदी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी ग्रन्थों का संग्रह करीब आठ हजार के ऊपर है। विद्यालय एवं धार्मिक परीक्षा बोर्ड के प्राण-स्वरूप यह पुस्तकालय अवश्य दर्शनीय है। पुस्तकालय को देखने से ही इस संस्था की श्रेष्ठता का पता सहज ही चल सकता है।

इस पुस्तकालय की एक शाखा पूज्य उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म० के जन्मस्थान चिचोंडी में भी खोली गई है। उसका नाम "श्री महावीर सार्वजनिक वाचनालय" है। पर पुस्तकालय का सारा खर्चा स्थानीय जनता उठाती है। पाथर्डी पुस्तकालय से इस पुस्तकालय को ग्रांट-स्वरूप वार्षिक ६१ इकसठ रुपये प्रदान किये जाते हैं। पिछले १२ वर्षों से यह पुस्तकालय समाज की बहुत अच्छी सेवा कर रहा है। पुस्तकालय में संगृहीत पुस्तकों का पारायण कर स्थानीय और आस-पास की जनता अपने ज्ञान का विशेष विकास कर रही है। चिचोंडी जैसे छोटे से गांव में ऐसे समृद्ध पुस्तकालय का होना वहाँ के लिये गौरव रूप है।

छात्रालय के बालकों के शारीरिक विकास के लिये यहां एक व्यायाम-शाला भी है। इस व्यायाम-शाला का उद्घाटन संस्था के प्रारंभ के साथ ही हुआ। अब तो इस व्यायाम-शाला ने भी संस्था में बढ़ती हुई छात्रों की संख्या के अनुसार बड़ा आकार धारण कर लिया है। इसमें व्यायाम की प्रायः सब पद्धतियाँ सिखाई जाती हैं। सूर्य-नमस्कार, आसन, लाठी, काठी, बोथाटी, लेझिम, भाला फरीगदगा इत्यादि पौरुष-प्रधान खेल इसमें सिखाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त छात्र फूटबाल, वालीबाल, पिंगपोन और कबड्डी आदि देशी खेल भी खेलते हैं। इस शिक्षण के लिये भी मासिक खर्च दो सौ से अधिक आता है।

पाठशाला का प्रारंभ होते समय एक सद्गृहस्थ ने कुछ समय के लिये अपना मकान दिया था। उसके बाद यह संस्था किराये के मकान में ही यह सब प्रवृत्तियां चला रही थी, पर किराये के मकान में इन सब प्रवृत्तियों का चलाना सर्वथा अशक्य था। संस्था के पास इतना स्थायी फंड भी नहीं था, जिसके बल पर वह भवन-निर्माण जैसे महान् कार्य को अपने कंधेपर उठा सकती। इस अभाव की पूर्ति के लिये संस्था की प्रारंभ से सेवा करने वाले दानवीर श्रीमान् सेठ श्री

मगनमलजी निहालचन्दजी गांधी ने अपनी पूज्या माताश्री के स्मरणार्थ पाठशाला और छात्रालय का समावेश हो सके ऐसी एक भव्य इमारत के आधे भाग के लिए संस्था के अस्तित्वपर्यन्त अर्पण करने के निमित्त पाँच हजार रुपये प्रदान किये और अवशिष्ट आधे भाग के लिए संस्था की तन-मन-धन से सेवा करने वाले अध्यक्ष महोदय श्रीमान मोतीलालजी मुथलिया ने अपनी पूज्या माताश्री के स्मरणार्थ संस्था के अस्तित्वपर्यन्त पाँच हजार रुपये देकर पाठशाला और छात्रालय की कमी को संपूर्ण रूप से दूर कर दिया। इस पर भी आठ हजार की कमी रह गई थी। इस अवशिष्ट आठ हजार रुपयों की कमी को दूर करने के लिए स्थानीय श्रीसंघ ने यह जिम्मेवारी अपने ऊपर उठा ली। उनमें से अपनी कुशलता से ३१०० रुपये के ब्याज तथा व्यापार आदि के द्वारा ५००० पाँच हजार बनाकर दे रुपये दिये जो कि सर्वप्रथम भी जब बालक संस्था की योजना बनाते समय स्थानीय व्यक्तियों ने धर्मस्थानक के लिए ३१०० तीन हजार एक सौ रुपये दिये थे। इन पाँच हजार के अतिरिक्त तीन हजार रुपये और अवशिष्ट रह गये थे। उसकी पूर्ति सभा की तरफ से हुई। इस प्रकार अठारह हजार रुपयों में संस्था को एक ऐसा विशाल एवं भव्य मकान प्राप्त हो गया जिसने उस समय विद्यालय एवं छात्रालय की कमी को दूर कर दिया।

धुलिया-निवासी श्रीमती जड़ावबाई शिवलाल श्रीश्रीमाल ने संस्था को एक श्लाघनीय दान दिया। जड़ावबाईजी ने श्रीमान् पन्नालालजी के दत्तक-विधान के प्रसंग पर कालमटाकलीनिवासी सुश्रावक श्रीमान दीपचन्दजी छाजेड़ के सहयोग से पाथर्डी पाठशाला के लिए हाईस्कूल होने की शर्त पर दस हजार रुपयों का ट्रस्ट बनाकर उसके ब्याज की रकम संस्था को देने का अभिवचन दिया।

इन तेरह वर्षों की अवधि में संस्था से कुल ७०० से अधिक विद्यार्थियों ने लाभ उठाया। इन में ५०० असमर्थ और २०० समर्थ छात्र थे। संस्था में रहकर शिक्षण ग्रहण करनेवाले ये विद्यार्थी अधिकतर आस-पास के छोटे गाँवों के थे। इनमें से कितने ही सुयोग्य विद्यार्थियों ने संस्था से बाहर निकल बहुत अधिक प्रगति की। कुछ विद्यार्थी तो हाईस्कूल की परीक्षा पास कर वहाँ से आगे बढ़ते हुए बी. ए. एम. ए. एल. एल. बी. तक पहुँच गये। उनमें से एक श्री अमोलकचंद नवलमल सुरपुरिया नामक विद्यार्थी सन १९३५ में मुंबई युनिवर्सिटी की बी. ए. सरीखी उच्च परीक्षा अर्द्ध मागधी विषय लेकर प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। इस सफलता के निमित्त श्री अमोलकचंदजी का अभिनंदन करने के

लिए श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया के सभापतित्व में एक सभा की गई । सभा में ४००-५०० व्यक्ति थे । श्री भाऊसाहब ने अध्यक्ष-स्थान से विद्याका महत्त्व बताते हुए ऐसा ओजस्वी भाषण दिया कि सारी सभा चित्रवत् स्तब्ध रही । इस आयोजन का जन-साधारण पर अच्छा प्रभाव पडा । परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के उपलक्ष्य में श्री अमोलकचद को स्वर्ण-पदक प्रदान करने के साथ आगे एम् ए का अभ्यास करने के लिए सरकार की ओर से पचास रुपये की मासिक छात्र-वृत्ति दी गई ।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है- संस्था का विकास होने के साथ-साथ अनेक नई प्रवृत्तियां बढती गईं, जो कि संस्था के गौरव को बढानेवाली है । उनमें मुख्य हैं—श्री अमोलक जैन सिद्धातशाला, बालवाचनालय, आयुर्वेदिक औषधालय, और श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड ।

श्री अमोलक जैन सिद्धांतशाला,

अल्प समय और अल्प व्यय में बहुत अधिक काम हो, तथा दूर-दूर विचरण करनेवाले सत-सती वृन्द एक स्थान पर एकत्रित होकर एक सुयोग्य अध्यापक से दार्शनिक एवं आगमिक अध्ययन कर सके । इस अभिप्राय से शास्त्रोद्धारक पूज्य श्री १००८ श्री अमोलकऋषिजी महाराज साहब के स्मारकस्वरूप सन् १९३६ में इस सस्था की स्थापना की गई । इस सिद्धातशाला में अध्ययन कर संत-सतियो ने शास्त्री आचार्य तक की उच्च परीक्षा दी है ।

इस सिद्धान्त-शाला में अध्ययन कर ऐसे अनेक सत-सतीगण ने विद्या में पारंगतता प्राप्त की है, जो आज अपनी शास्त्रीय विद्वत्ता के साथ युगानुरूप जनकल्याण करने की दृष्टि से सारे देश में प्रसिद्ध है । उन्होने अपने पाद-विहार द्वारा दूर-दूर प्रातो में भ्रमण कर अनेक व्यक्तियो को जैनधर्म के प्रति श्रद्धाशील बनाया है । वे चारित्रशील, जैन सिद्धात के पारगामी एवं अपनी व्याख्यान-पटुता से सर्वत्र प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाले सत-सतीवृद थे हैं—१ विदुषी सती श्री सुमतिकुवरजी म०, २ प मुनिश्री मोतीऋषिजी म०, ३ पंडिता सती श्री सज्जनकुवर जी म०, ४ प सती श्री प्रभाकुवर जी म०, ५ प. सती श्री अमृतकुवरजी म०, ६ प. सती सुशीलकुवरजी म०, [redacted] पं सती श्री अजितकुवरजी म० तथा प सती श्री विमलकुवरजी म० आदि। इस अमोलक जैन सिद्धात शाला, पाथर्डी की दो शाखाएँ क्रमश अहमदनगर तथा घोडनदी में भी जैन सिद्धात शाला-के नाम से स्थापित की गई है । इन दोनो सिद्धात-शालाओ में भी अनेक सत-सतियो ने अभ्यास किया है।

आयुर्वेदिक औषधालय

संस्था के निरीक्षक अहमदनगर निवासी श्रीमान् सेठ श्री किसनदासजी माणकचंदजी मुथा को उदारतापूर्ण सहायता से श्री प्रेमराजजी के स्वर्गीय पुत्र श्री सरदारमलजी के स्मरणार्थ सन १९३८ में एक औषधालय खोला गया। इस में विद्यार्थियों के अतिरिक्त बाहर के अन्य व्यक्ति भी चिकित्सा कराकर आरोग्य लाभ प्राप्त करते थे।

धार्मिक परीक्षा बोर्ड

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड का इतिवृत्त बहुत विस्तृत है। उसने एक विशेष विद्यालय का रूप धारण कर लिया है। समय की गति के साथ इस में अनेक प्रवृत्तियाँ बढ़ती रही हैं। इसलिए इस संस्था के संबंध में विद्यालय के परिचय के बाद एक स्वतंत्र प्रकरण लिखा गया है। पाठक वहाँ पर ही इस बोर्ड के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त करें।

ऊपर का यह सारा विवरण सन १९४० तक का है। उस समय संस्था के पास केवल ४००८५ रुपये थे। इस के पश्चात देश की परिस्थिति ने पलटा खाया। युद्ध के कारण दिन ब दिन हमारे सामने अनेक समस्याएं उपस्थित होने लगी। वह काल कितना भयंकर तथा कठिन रहा इसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। सन् १९४० से १९४९ तक संस्था ने इन नौ वर्षों में विद्यालय विभाग में ५९९२० रु तेरह आने तीन पाई, छात्रालय में ६८०१९ रु तीन आने ९ पाई ध्रुव फंड खर्च ३५९० रु तेरह आने तीन पाई अर्थात कुल १२८०३७ रु चौदह आने का खर्च करते हुए भी ध्रुव फंड में ११५९ रु पंद्रह आने पाँच पाई की वृद्धि कर दिखाई। सन १९४९ में ट्रस्ट-मंडल के पास ४१२४२ रु नौ आने का ध्रुव फंड था।

सन १९ ५ से सन १९४९ पर्यन्त इस विद्यालय में अंग्रेजी आठवीं कक्षा तक ही शिक्षा दी जाती थी। इसका कारण यह था कि इतनी अवधि तक संस्था ने सरकार द्वारा अपना संबंध स्थापित कर अपने पर किसी प्रकार की जिम्मेवारी लेना पसंद नहीं किया था। इधर समय की गति ने नया मोड़ लिया। शिक्षा का स्तर उच्च और विस्तृत हुआ। जनता ने विद्यार्थियों को संस्था में हाईस्कूल तक की शिक्षा देने की माग की। सन् १९४५ में संस्था सरकार द्वारा संबंधित हुई। अब अंग्रेजी नवमी तक की शिक्षा दी जाने लगी और हाईस्कूल का पूर्व प्रयत्न चालू रहा। परंतु कतिपय सरकारी अपरिहार्य प्रतिबन्धों के कारण उस समय सफलता प्राप्त न हुई। सन १९४८ में दसवीं कक्षा को स्वीकृति मिली और

संस्था के संचालकों का कई वर्षों का प्रयत्न सफल हुआ। संस्था के कार्य के प्रति शिक्षा विभाग के उच्च कर्मचारियों ने संतोष व्यक्त किया और सन् १९४९ से हाईस्कूल तक शिक्षण देने की स्वीकृति दे दी गई। उस वर्ष संस्था के अहोभाग्य से शिक्षाशास्त्री, सेवाभावी, उत्साही एवं योग्य व्यक्ति श्रीयुत परशुराम पुरुषोत्तम-जी मेहेंदले एम्. ए. बी. टी. एस्. टी. सी. जैसे प्रधानाध्यापक एवं अनुभवी कर्त्तव्य-निष्ठ ट्रेंड शिक्षक प्राप्त हुए।

संस्था पर वज्रपात

उपरोक्त दोनों संस्थाएँ दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति पथ पर अति वेग से बढ रही थी कि इतने में दुर्दैव से संस्था की स्थापना से लगाकर २८ वर्ष पर्यंत निरंतर, निःसीम, निःस्वार्थ सेवा करनेवाले पाथर्डी के लोकप्रिय, कुशल, कर्मठ कार्यकर्ता, सद्व्यवसायी, शांतस्वभावी, अनुभवी, अवैतनिक मंत्री श्री उत्तमचंद-जी मुथा उनाम बाबू सेठजी का कॅन्सर की बीमारी से अहमदनगर में असामयिक देहावसान हो जाने से संस्था पर जो वज्राघात हुआ, उसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। इसका घाव अभी सूखने भी नहीं पाया था कि इतने में क्रूर काल का संस्था पर दूसरा प्रहार हुआ, जिसने सब को किंकर्तव्यविमूढ बना दिया। संस्था के सामने चारों ओर अंधकार ही अंधकार भासित होने लगा, अर्थात् पाठशाला की स्थापना से लगाकर आज तक हजारों रुपयों का दान दे संस्था की नींव दृढ करनेवाले, संस्था के प्राण, आधारस्तंभ एवं अध्यक्ष दानवीर सेठ श्रीमान् मोतीलालजी गुगलिया पाथर्डी-निवासी का दि. ३-८-४९ को असाध्य रोग से अवसान हो जाना संस्था के लिए विशेष दुर्भाग्य का कारण हुआ। आपने अपना मृत्युकाल सन्निकट जान विद्यालय के लिए २५००० पच्चीस हजार रुपयों का ट्रस्ट कराया था।

इसके अतिरिक्त एक और दुःखद घटना इसी वर्ष हुई। वह यह कि संस्था की अहर्निश बौद्धिक सेवा करनेवाले विनीत, सरलस्वभावी, उद्भट विद्वान्, विद्या-वारिधि पं. राजधारी त्रिपाठी शास्त्री, (रजिस्ट्रार श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी) का चैत्र शुक्ल त्रयोदशी महावीर जयंती के दिन भाषण देते समय सहसा हृदय-गति बंद हो जाने से देहावसान हो गया। अपने संयमपूर्ण जीवन, शुद्ध क्रिया और पांडित्य से स्थानकवासी समाज को प्रकाशित करनेवाले उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज आपके ही अध्यापन के परिणाम हैं। इसी प्रकार देश में अपनी अद्भुत वक्तृत्व-शक्ति से चैतन्य का संचार

करनेवाली महासती श्री सुमतिकुंवरजी म० ने आप से ही शिक्षा प्राप्त की है। आपसे शिक्षण लेकर अपनी योग्यता का परिचय देनेवाली ऐसी अनेक सतियाँ है।

इस प्रकार संस्था की बढती हुई अनेक प्रवृत्तियों को लक्ष्य में रख संस्था की बढती हुई आवश्यकता और नम्र निवेदन के रूप में एक अपील भी गई। वह निम्नलिखित है।

माननीय सज्जनो! संस्था की स्थापना- काल से ही कार्यकर्ताओं के समक्ष दो प्रश्न उपस्थित थे। एक तो हाईस्कूल तक की शिक्षा की व्यवस्था और द्वितीय निजी भवन निर्माण। इनमें से हम अपने एक उद्देश्य की पूर्ति में तो सफलता प्राप्त कर चुके है, पर दूसरा भवन-निर्माण का कार्य ज्यों का त्यों सामने खड़ा है। इसके लिये सन १९४९ में संस्था के सदस्यों ने एक प्रस्ताव पास कर भवन-निर्माण फंड एवं बोर्डिंग के लिये वार्षिक वात्सल्य निधि २५ रु की योजना प्रारंभ की थी। फल स्वरूप भवन-निर्माण फंड में २७००० सत्ताईस हजार रुपये भी प्राप्त हो चुके थे। किंतु कितने ही विशेष कारणों से यह विचार स्थगित कर कुछ समय के लिए रुक जाना पड़ा। अब जब कि हाईस्कूल तक की शिक्षा दी जा रही है कक्षाओं के साथ छात्रों की संख्या उत्तरोत्तर विशेष बढ रही है, इस समय जिस भवन में विद्यालय है वह यद्यपि विशाल है फिर भी सरकारी नियमानुसार इस में चार वर्ग से अधिक नहीं चलाये जा सकते। साथ ही हाईस्कूल तक की शिक्षा की स्वीकृति देते समय सरकार की पहली शर्त यही है कि सन् १९५१ मार्च पर्यन्त नूतन भवन-निर्माण होना ही चाहिए। ऐसी परिस्थिति में निजी भवन की महती आवश्यकता है। सरकार के साथ वचन बद्ध होने के कारण दिन रात यह प्रश्न हमें चैन नहीं लेने देता। वैसे भी संस्था का वार्षिक व्यय महंगाई के कारण पहले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ गया है। ट्रस्ट मंडल की मिटिंग में सन् १९४९-५० का विद्यालय एवं बोर्डिंग का वार्षिक बजट ३२००० रुपयों का पास किया है। जिस की पूर्ति के लिये भी हमें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। हमें हाईस्कूल एवं छात्रालय इस प्रकार दो भवन निर्माण करने है। दोनों के लिये कम से कम २०० ०० दो लाख रुपयों की आवश्यकता है। यह बहुत बड़ी रकम है। एक साथ इतना फंड एकत्रित होना असंभव है अतः वर्तमान में हम एक हाईस्कूल-भवन ही बनाना चाहते हैं। इसके लिये कम से कम १० ०० एक लाख रुपय तो लगेंगे ही। यह सब भार समाज के उदार दानी कर्णधारों के कंधों पर ही है। जब तक समाज का

हमारी और सस्था की सच्चाई पर विश्वास है, हमारी यह भावना शीघ्र ही पूर्ण होगी, इस मे जरा भी सदेह नही। भवन-निर्माण के लिये कमबे से कुछ दूरी पर शुद्ध एव प्रशात वातावरण में चोवीस एकड का चार हजार रुपयो मे एक विशाल प्लांट बहुत समय पहले से ही खरीदा जा चुका है। किंतु अब आगे का कार्य चालू करने के लिये सस्था आर्थिक कमी का अनुभव कर रही है।

हम सस्था को अपनी निज की संपत्ति नही समझते। वरन् समग्र भारत वर्ष के स्थानकवासी समाज की समझते हुए समाज के धनी, मानी, दानी, विद्यानुरागी सज्जनो से प्रार्थना है कि हमारे इस विद्या-मदिर के निर्माण जैसे शुभ कार्य में मुक्त मन से उदारतापूर्वक सहायता देकर अक्षुण्ण यश एव पुण्य का उपार्जन करे एव हमारा उत्साह बढावे। कहा भी है कि "पढम णाण तओ दया" अर्थात् दया का सच्चा स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति पर निर्भर है। ज्ञान प्राप्त किये बिना सदसद्-विवेक नही हो सकता। सदसद्-विवेक के बिना दया का पालन नही किया जा सकता और उसके बिना मोक्ष प्राप्त नही होता। तात्पर्य यह है कि ज्ञान ही इहलौकिक एव पारलौकिक सपत्ति का भडार है राष्ट्र, समाज एव धर्म की बुनियाद ही विद्या है। जहा विद्या का अभाव है, वहा मनुष्यता का अभाव भी निश्चित है। कहा भी है "ज्ञान बिना पशुः" अत ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। इसी का उपार्जन करना चाहिए और इसकी प्राप्ति के लिए सब साधन सुलभ होने चाहिए। अत हमारी आग्रहपूर्वक विनम्र विनति है कि महाराष्ट्र प्रान्त में सब से पुरानी, परिचित, प्रगतिशील एव विकसित अपनी इस सस्था के नूतन-भवन-निर्माण कार्य में तन, मन एव धन से पूर्ण सहयोग दें।

इसी प्रकार विद्यालय के भूतपूर्व विद्यार्थियो से भी इसी वर्ष जोरदार अपील की गई। वह इस प्रकार है——

विगत सत्ताईस वर्षों की अवधि मे पाठशाला से हजारो छात्र अपना अध्ययन पूर्ण कर व्यावहारिक क्षेत्र में दक्षतापूर्वक कार्य कर रहे है। उनमे से अनेक अपने कौशल से लक्षाधिपति भी बन गये है और बहुत से वकील डॉक्टर, प्रोफेसर आदि पदो पर प्रतिष्ठापूर्वक काम कर रहे है। सस्थाने उनकी शिक्षा के लिये लाखो रुपयो का व्यय किया है। आज उनके सामने अपना उत्तर-दायित्व समझने का सुअवसर है। यदि प्रत्येक छात्र हमें अत्यल्प भी सहयोग देने का वचन दे, तो भवन-निर्माण तो क्या ? हमारा जटिल से जटिल प्रत्येक कार्य बहुत-सी आसानी एव बिना किसी बाधा के अल्प काल ही मे पूरा हो सकता है। यह

संस्था आप के जीवन विकास में पूर्ण सहायक बनी है। उसकी प्रत्येक प्रकार से सेवा करना आपका परम कर्तव्य है। भवन निर्माण जैसी समस्या आपको अपने कधों पर उठा लेनी चाहिए। ऐसा करके ही आप संस्था के ऋण से उऋण हो सकते हैं।'

इस जोरदार अपील पर भी संस्था के भूतपूर्व विद्यार्थियों में से अधिक तर विद्यार्थियों ने संस्था के विकास-हेतु कुछ योगदान नहीं दिया। उनकी ओर से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं हुई। विद्यार्थियों के इस व्यवहार से संस्था के संचालकों को कुछ लगा और उन्होंने मन ही मन अपना दुःख प्रगट किया। यह बात तो पुरानी है पर अब भी भूतपूर्व विद्यार्थी संस्था के विकास की ओर कुछ सचेत होकर योगदान देंगे तो वे संस्था के ऋण से कुछ अंश में उऋण हो सकते हैं।

साधारण सभा

संस्था के प्रारंभिक काल से उसकी तन मन धन से सेवा करने वाले अध्यक्ष एवं मंत्री महोदय के स्वर्गवास के पश्चात संस्था की एक साधारण सभा जामखेड निवासी श्री राजमलजी लकवाणी की अध्यक्षता में हुई। उसमें पाँच सौ के लगभग उपस्थिति थी। इस सभा में समयोचित योग्य प्रस्तावों द्वारा ट्रस्ट-मंडल का मार्गदर्शन किया गया एवं श्री तिलोक जैन ज्ञान प्रसारक मंडल द्वारा किया हुआ सब व्यवहार सब सम्मति से पास हुआ। संस्था के अध्यक्ष एवं मंत्री के स्थान पर क्रमशः श्री माणकचंदजी किसनदासजी मुथा अहमदनगर तथा श्री चंदनमलजी नवलमलजी गांधी पाथर्डी नियुक्त किये गये। इसी प्रकार श्री मोती लालजी गुगलिया के स्थान पर उनके सुपुत्र श्री बंशीलालजी गुगलिया और दीप चंदजी छाजेड के स्थान पर उनके सुपुत्र श्री सुवालालजी छाजेड वकील ट्रस्ट-मंडल में सर्वसम्मति से नियुक्त किये गये। उस समय नियमावली में भी बहुत कुछ परिवर्तन कर समोचित नियमावली स्वीकृत की गई।

विद्यालय के नवीन भवन का शिलान्यास समारंभ

उसी समय विद्यालय के नये भवन की नींव भरने के साथ भवन का शिलान्यास-समारंभ बड़े समारोहपूर्वक मनाया गया। उस समय जैन जनताओं की संख्या लगभग दो हजार से भी अधिक थी। यह समारंभ वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध भाऊसाहेब श्रीमान कुंदनमलजी सोभाचंदजी फिरोदियाजी की अध्यक्षता में हुआ। बाहर से समाज के अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों ने इस समारोह में भाग लिया। अनेक व्यक्तियों के स्फूर्तिदायक व्याख्यानों द्वारा इस कार्य में बड़ी गति मिली।

भूतपूर्व विद्यार्थी–सम्मेलन

उसी अवसर पर भूतपूर्व विद्यार्थियो का एक सम्मेलन श्री अमोलकचदजी सुरपुरिया M A L L B की अध्यक्षता में हुआ। इस सम्मेलन के आयोजन का मुख्य हेतु यही था कि भूतपूर्व विद्यार्थी अपना कर्तव्य समझकर सस्था की सर्वांगीण उन्नति के लिए सामुदायिक रूप से प्रयत्न करे। इस समारंभ मे भूतपूर्व विद्यार्थियो की एक समिति स्थापित हुई और सस्था के लिए सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न भी प्रारभ हुआ। पर वह प्रयत्न वहा तक ही सीमित रहा।

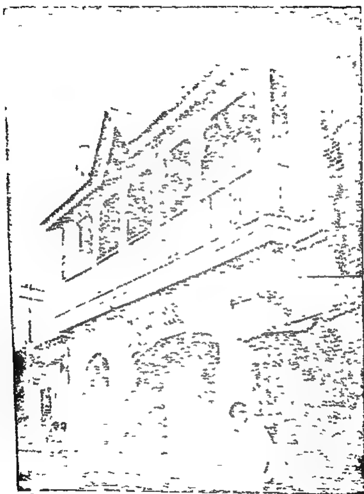
ऊपर मै विद्यालय के विकास की सन् १९४९ तक की घटनाओ का उल्लेख कर चुका हूँ। तब तक सरकार की ओर से संस्था के सचालक हाईस्कूल तक की स्वीकृति प्राप्त कर चुके थे और अपने इस ध्येय को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए विद्यालय में दसवी कक्षा तक का अध्यापन प्रारभ कर दिया था। फिर आगे बढते बढते सन् १९५१ तक ११ वी कक्षा तक अर्थात् मैट्रिक तक के वर्ग लिए जाने लगे और सस्था के छात्र–गण बबई विश्वविद्यालय की मैट्रिक की परीक्षा में अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण होकर आगे विश्वविद्यालय के कॉलेज या महाविद्यालय मे अनेक विषयो का अध्ययन कर पारगतता प्राप्त करने लगे।

अभी कल दि. २२।११।६० की ही बात है, मै श्री तिलोक जैन विद्यालय में वहा के प्रधानाध्यापक के पास सस्था का परिचय प्राप्त करने के लिए बैठा हुआ था। उन्होने प्रसगवश उसी समय डाक से प्राप्त एक विद्यार्थी का पत्र बताया, जिसमें उसने B S C परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के साथ सारे विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान प्राप्त करने के लिए सस्था के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की थी। उस पत्र का साराश यह था–" मैने अपनी प्रारंभिक शिक्षा श्री तिलोक जैन विद्यालय में प्राप्त की है, अतएव इस सफलता का यश विद्यालय को ही है। मैट्रिक तक के वर्ग प्रारभ होने पर किस प्रकार विद्यार्थी उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त करते गये, उस की तालिका अंत में दी गई है।

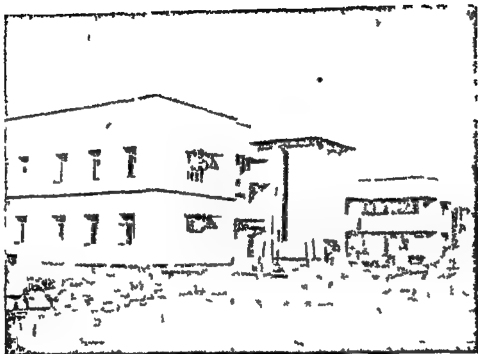
जिस समय सरकार ने विद्यालय को मैट्रिक तक का अभ्यास करने की स्वीकृति दी, उस समय उसके साथ एक प्रतिबध यह भी रखा था कि हाईस्कूल के उपयुक्त एक भव्य मदिर का निर्माण शीघ्रातिशीघ्र किया जाय। उसके लिए संस्था के सचालको ने पाथर्डी ग्राम से कुछ दूरी पर प्रशात वातावरण में चौबीस एकड भूमि खरीदी। विद्यालय के भवन-निर्माण के लिये समाज के उदार व्यक्तियो द्वारा सस्था को २७७०५ रु. प्राप्त हुए। पहले पहल भावी विद्यालय भवन के प्लाट में एक कुआं खोदकर पानी की सुविधा की गई। किंतु यह प्लाट खेती

का सर्वे नंबर होने से भवन जैसे बिन खेती के काम में लाने के लिये सरकार की ओर से आज्ञा प्राप्त करने में कुछ कठिनाई हुई। अतएव भवन निर्माण का कार्य कुछ समय के लिए स्थगित रखना पड़ा। अंत में बहुत प्रयत्न के पश्चात सन १९५२-१९५३ में भवन निर्माण के लिए सरकार की ओर से आज्ञा प्राप्त हुई। सम्मति प्राप्त होते ही नींव और चबूतरे के आयटम रेट टेंडर मंगवाये गये तथा विद्यालय भवन की नींव तथा चबूतरे का कार्य तत्काल पूर्ण कर दिया गया। इतने से ही कार्य में अभी तक भवन निर्माण फंड के ३३९५० रु खर्च हो गये। ये सब रुपये विद्यालय भवन की नींव चबूतरा प्लाट तथा कम्पाउंड आदि कार्यों में खर्च हुए। इसके आगे का कार्य पैसे के अभाव के कारण तीन-चार वर्ष तक स्थगित रखना पड़ा। फिर सन् १९५४ से १९५६ के बीच विद्यालय-भवन की एक मंजिल पूरी हो गई। उसमें लगभग ८५००० पच्चासी हजार रुपये व्यय हुए। पहली मंजिल तैयार होने पर अभीतक विद्यालय के छात्र गांव में छात्रालय के लिए खरीदे हुए जिस मकान में अभ्यास करते थे, अब विद्यालय के नव निर्मित इस विशाल भवन में उनके वर्ग चलने लगे और श्री तिलोक जैन छात्रालय के छात्र संस्था के भूतपूर्व अध्यक्ष तथा श्री मगनमलजी गांधी एवं स्थानीय श्रीसंघ की उदारता पूर्ण दान से खरीदे हुए छात्रालय में जैन आचार के अनुकूल शुद्ध नियमों का पालन करते हुए रहने लगे। इधर विद्यालय की पहली मंजिल तयार हो जाने पर भी दूसरी मंजिल के लिए और साठ हजार रुपयों की आवश्यकता थी। रुपयों के अभाव के कारण यह कार्य भी कुछ समय के लिये स्थगित रखना पड़ा। फिर सन् १९५६ से १९५८ तक के विवरण के अनुसार दूसरी मंजिल का कार्य भी प्रारंभ कर दिया गया और दूसरी मंजिल की चारों ओर की दीवारें बनाकर तैयार कर दी गई। इस कार्य में भी लगभग १२००० बारह हजार रुपये खर्च हुए। उसके बाद भी ऊपर के स्लैब तथा प्लास्टर के लिए ४०००० चालीस हजार रुपयों की और नितांत आवश्यकता थी। अंत में बहुत प्रयत्न के बाद सन् १९६० तक यह भवन पूर्ण रूप से तयार हो गया। इसके निर्माण में कुल १३५००० एक लाख पतीस हजार रुपये खर्च हुए।

आज सारे अहमदनगर जिले में "श्री तिलोक जैन विद्यालय" के इस भव्य विद्यामंदिर का स्वतंत्र अस्तित्व है। अहमदनगर से एस् टी बस से आते समय गांव के बाहर कुछ दूरी पर इस रमणीय भवन का दर्शन करते ही बरबस दर्शक का ध्यान इस ओर आकर्षित हो जाता है। संस्था को देखे बिना ही कम से कम



श्री तिलोक जैन छात्रालय का विशाल-भवन



श्री तिलोक जैन विद्यालय पाथर्डी का भव्य विद्या-मन्दिर

शिक्षित व्यक्ति के हृदय में तो ये ही विचार-तरंगें उठती है कि अवश्य यहाँ छात्रो को सुसस्कृत बनानेवाली कोई योग्य संस्था होनी चाहिए। जिसका कि निर्माण चारित्र-सपन्न, विद्याप्रेमी, किसी मुमुक्षु संत की अथक प्रेरणा से हुआ है। बाद में सस्था का सदर्शन करने पर अपनी इस भावना को साकार रूप में देखकर अत्यत सतोष होता है। अनेक लोगो के कथनानुसार अहमदनगर जिले में चलने-वाले कुल ७२ हाईस्कूलो में इस हाईस्कूल का द्वितीय नबर है। कुछ लोग तो इसे प्रथम नबर भी देते हैं।

श्री तिलोक जैन विद्यालय में प्रचलित मुख्य प्रवृत्तियाँ

बाल-पुस्तकालय—विद्यालय में एक पुस्तकालय है। जिस में वर्तमान में भिन्न-भिन्न विषयो की १२०० बारह सौ से अधिक पुस्तके है। जिनसे छात्र अपने व्यावहारिक एव मानसिक विकास में पर्याप्त लाभ उठाते है।

बाल-वाचनालय—छात्रो की साहित्यिक एव सामाजिक ज्ञानवृद्धि के लिए विद्यालय में विभिन्न स्थानो से निम्नलिखित पत्र मंगाये जाते हैं। नवभारत, किर्लोस्कर, चित्रमयजगत, उद्यम, अमृत, अध्यापक, बालसखा, राष्ट्रभाषा आदि मासिक और मॉडर्न रिव्यु, लोकमान्य, लोकसत्ता, सकाळ, फ्री प्रेस, टाइम्स्, गावकरी, साधना, धर्मयुग, आदि वर्तमान पत्र आते हैं।

वाद-विवाद मंडल—इसमें छात्रो की वक्तृत्व-कला के विकास की ओर पूर्ण ध्यान दिया जाता है। प्रति मगलवार को एक सभा होती है। जिस में प्रत्येक वर्ग के चुने हुए विद्यार्थियो को अनिवार्य रूप से बोलना पडता है।

हस्त लिखित पत्रिका—छात्रो की लेखन-कला के विकास एव भविष्य में वे सपादन की कला में प्रवीणता प्राप्त कर सके, इस हेतु से एक विकास नामक त्रैमासिक पत्रिका विद्यालय की ओर से प्रकाशित की जाती है। इस में छात्र कविता, कहानी, निबध, नाटक आदि लिखते है। अपनी इस पत्रिका को सुदर बनाने के लिए छात्र अनेक प्रकार के चित्रो द्वारा भी इसे सजाते है।

बाल-वस्तु भडार—छात्रो को पुस्तक, स्टेशनरी आदि सब वस्तुएँ एक स्थान पर सस्ती एव यथा समय प्राप्त हो सके, इसके लिए उनके नियत्रण में एक वस्तु-भडार है। इस समय इस भंडार में लगभग छ सौ रुपयो की वस्तुएँ संग्रहीत है।

भ्रमण—छात्रो को ज्ञानवृद्धि के साथ उन्हे प्रकृति-देवी के अद्भुत दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हो, इस हेतु से छात्र एव अध्यापक प्रति माह पाँच दस मील की दूरी पर भ्रमणार्थ जाते है। इस आयोजना द्वारा छात्रो को अत्यधिक लाभ पहुँचा है।

श्रमदान-शिविर—प्रतिवर्ष विद्यालय की ओर से चार-चार दिन के श्रमदान शिविर मनाये जाते हैं। इन शिविरों में सब अध्यापक तथा छात्र सम्मिलित होते हैं। शिविर की इस योजना द्वारा आस-पास के गाँवों को बहुत लाभ पहुँचा है। इसकी कल्पना पिछले तीन साल के शिविरों के विवरण से आ सकती है। प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष (१९५८) में भी चार दिन का सातवाँ श्रमदान शिविर विद्यालय के नूतन भवन में मनाया गया। इसमें विद्यालय के सब छात्र तथा आध्यापकों ने भाग लिया था। इन चार दिनों में विद्यालय के नूतन भवन में ही दो पक्के रास्ते बनाये एवं खेल के लिए एक सम चौरस मैदान तयार करने की योजना आंकी गई। पास ही के पहाड़ी भाग से पत्थर फोड़कर लगभग १५० गाड़ी कंकड़ एवं पत्थर लाये गये। और दोनों योजनाएं पूरी की गई।

श्रमदान शिविर के उद्घाटक अहमदनगर निवासी सम्माननीय श्री कुंदनमलजी सा. फिरोदिया एवं समारोपक श्री के. म. दाभोळकर प्राध्यापक बंबई कॉलेज मुंबई थे। इन चार दिनों में छात्र एवं आध्यापकों ने लगभग ५००—७०० रुपयों की लागत का श्रमदान किया। इसी प्रकार इसके बाद के दो वर्षों में भी प्रतिवर्ष की भाँति चार-चार दिन के दो श्रमदान शिविर मनाये गये। पहला शिविर ब्राह्मणगांव में मनाया गया। जहाँ चार सौ पचास छात्र एवं बारह अध्यापकों ने मिलकर दो मील के लगभग पाँच सौ रुपयों की लागत की एक सड़क तयार की। इस वर्ष का शिविर बाबुलगांव में मनाया गया। इसमें भी पाँच सौ छात्र एवं पंद्रह आध्यापकों ने तालाब बांधने का काम किया। श्रमदान शिविर यह विद्यालय के जीवन का एक मुख्य अंग-सा हो गया है।

उपरोक्त विभागों के अतिरिक्त विद्यालय में पिछले चार वर्षों से एक नवीन दृष्टिकोण दृष्टि में रखकर विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास हेतु कुछ विशेष उपक्रम प्रारंभ किये गये। जिन का विवरण इस प्रकार है।

सांस्कृतिक विभाग—इस विभाग के अंतर्गत छात्रों की विभिन्न रुचि को ध्यान में लेकर रुचि-केंद्र स्थापित किये गये हैं। वे हैं—वक्तृत्व गायन वाद्य अभिनय लेखन श्रमदान एवं रुचि केंद्र आदि। इन केंद्रों का संचालन आध्यापकों द्वारा किया जाता है। शनिवार के अंतिम दो पीरियड जिस छात्र की जिस कार्य में रुचि होती है, वह छात्र उसी विभाग में जाता है। पहले कुछ नियतकाल के लिये छात्र को अपनी इच्छानुसार किसी भी केंद्र में प्रवेश किया जाता है किंतु एक निश्चित



श्री तिलोक जैन विद्यालय की छात्राएँ

श्री तिलोक [redacted] विद्यालय के विद्यार्थी

काल-मर्यादा के पश्चात् उसके लिये अपनी इच्छानुसार एक विभाग चुनना अनिवार्य होता है। सचालक उसका सूक्ष्मतापूर्वक निरीक्षण करता है और उस विषय पर अपने अनुभव का विवरण अकित करता रहता है। यह प्रयोग विद्यार्थियो की प्रगति के लिये अत्यत स्फूर्तिदायक एव अमोघ सिद्ध हुआ है।

शासन मंडल—विद्यालय में सन् १९५८ से प्रजातत्र प्रणाली के अनुसार प्रत्येक वर्ग की ओर से एक एक प्रतिनिधि चुनकर आठ छात्रो का एक मडल बनाया गया है। उनमें एक प्रधान-मंत्री और अवशिष्ट सात सहायक मत्री होते है। अनुशासन, प्रार्थना, खेल, स्वच्छता, उपस्थिति आदि कार्यभार एक एक मत्री के जिम्मे सौंपा जाता है। छात्र मंत्री ही छात्रो का मार्गदर्शन कर उन्हे कार्यक्षम बनाते है। इस प्रवृत्ति से बहुत कुछ अशो में विद्यार्थियो में स्वय प्रेरणा से अपनी सर्वांगीण उन्नति करने की जिज्ञासा दृष्टिगोचर हुई है।

अनुशासन योजना—छात्र स्वय प्रेरणा से अनुशासन प्रिय होकर विद्यालय के नियमो का पालन करते रहे और प्रतिदिन घर से अपना अभ्यास व्यवस्थित रूप से करके लाते रहे, इस हेतु से प्रत्येक वर्ग में एक-एक नोट बही रखी जाती है। जिसमें प्रत्येक अध्यापक सूक्ष्म निरीक्षण कर अपना अभिप्राय व्यक्त करता है। इसके साथ प्रत्येक वर्ग में एक दर्शिका पेटी रखी जाती है। जिस में छात्र नवीन पुस्तको तथा मासिक, साप्ताहिक एव दैनिक पत्र–पत्रिकाओ के अध्ययन के परिणाम स्वरूप विभिन्न विषयो की जानकारी अकित कर रखते है। इस प्रकार महीने भर में की गई प्रगति के लिए प्रत्येक वर्ग को एक ध्वज देने की प्रथा प्रारंभ की गई है। सर्वप्रथम आनेवाले वर्ग को प्रतीक स्वरूप वह ध्वज दिया जाता है। जो कि प्रतिमाह प्रथम आनेवाले वर्गों में फिरता रहता है। इससे प्रत्येक वर्ग के विद्यार्थियो में अपना कार्य व्यवस्थित रूप से करने की रुचि उत्पन्न हुई है।

प्रश्न पेटी:—विद्यालय में एक प्रश्नपेटी रखी गई है। इसमें छात्र अपने उलझे हुए प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करने के लिये विवादास्पद प्रश्न तैयार करके डालते है। इन प्रश्नो का उत्तर उच्च कक्षा के छात्रो एवं अध्यापको द्वारा दिये जाते है। किसी जटिल प्रश्न का उत्तर देने की क्षमता स्थानीय छात्र एव अध्यापको मे नही होने पर उसका निराकरण करने के लिए बाहर के उच्च कोटि के विद्वानो द्वारा सहयोग लिया जाता है।

सूक्ति सग्रह योजना—विद्यालय के पुस्तकालय से जो छात्र लाभ उठाते है, उनमें जो अच्छी सूक्तियाँ पढते है, उन्हे अंकित कर एक जगह सकलन करते है। इससे छात्रालय में विद्यार्थियो द्वारा सगृहीत सूक्तियो का एक अच्छा संकलन तैयार होगया है।

विद्यालय का पाठ्यक्रम

धार्मिक--श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जन परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की प्रवेश, प्रथमा विशारद, एव प्रभाकर" तक की परीक्षाओं की पढ़ाई होती है।

हिंदी--राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की प्रारंभिक परीक्षा से लेकर कोविद तक का अभ्यास कराया जाता है।

अंग्रेजी--पूना विश्व विद्यालय की S S C Examination अर्थात् मेट्रिक ग्यारहवीं कक्षा तक की पढ़ाई होती है।

ड्राइंग--बम्बई बोर्ड की एलिमेंटरी एव इंटर मिजिएट तक का शिक्षण दिया जाता है।

शारीरिक शिक्षण--सरकारी कोर्स के अनुसार डी पी एड सी पी एड और ट्रेड शिक्षकों द्वारा ड्रील आसन, लाठी लेझीम डायजप, देशी विदेशी खल पैरिमिटस आदि की शिक्षा दी जाती है। ए सी सी की (मिलिटरी) शिक्षा भी दी जाती है।

विद्यालय के अध्यापक एवं कर्मचारी

(१) श्री पी पी मेहेंदले एम ए (हिंदी अंग्रेजी) बी टी एम एड राष्ट्रभाषा रत्न प्रधानाध्यापक

(२) श्रीमती एन पी मेहेंदले बी ए (आनर्स) राष्ट्रभाषा कोविद टी डी

(३) श्री डी एस् देशमुख मेट्रिक, एस् टी सी रा „ आर्ट टर्मर

(४) श्री डी के जन मेट्रिक साहित्यरत्न, सिनियर, एम एस् एस् एस् टी सी

(५) श्री व्ही बी जीते इन्टर आर्टस, एस टी सी सी पी एड रा भा को सा वी

(६) श्री आर् एम् वग्रहाकर मेट्रिक जी डी आर्ट

(७) श्री बी बी पत्तुर बी ए बी टी

(८) श्री एस एन् देशमुख इन्टर आर्टस

(९) श्री जी व्ही कल्ट, मेट्रिक एस टी सी

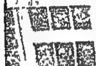
(१०) श्री पी आर श्रोत्रिय मेट्रिक एस टी सी काव्यतीर्थ

(११) श्री बी डी गायकवाड़, इन्टर सायन्स

(१२) श्री आर आर् नागरजोज

(१३) श्री आर. म फुदे इंटर सायन्स

(१४) श्री ही एम कोठावले बी ए



मंत्री, गृहपति एवं कर्मचारी समवेत छात्रवृन्द श्री तिलोक जैन छात्रालय पाथर्डी

(१५) श्री आर एस देशमुख, क्लर्क
(१६) श्री बी. एस लबाडे प्यून
(१७) श्री आर बी. शेटे माली

प्रस्तुत श्री तिलोक जैन विद्यालय का अभिन्न अग श्री तिलोक जैन छात्रालय है। इन दोनो का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनो में से किसी को पृथक् नही किया जा सकता। श्री तिलोक जैन विद्यालय का इतिवृत्त लिखते समय मैं प्रसगानुसार छात्रालय की विविध प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालता रहा हूँ। उससे पाठक छात्रालय के संबध में सपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते है। फिर भी जो कुछ विवरण लिखना रह गया है, उसे संक्षेप में देने का प्रयास करता हूँ।

श्री तिलोक जैन छात्रालय

पहले छात्रालय का विवरण लिखते समय छात्रालय के उद्देश तथा प्रवेश पर प्रकाश डाला जा चुका है। इस समय छात्रालय में निम्नलिखित कर्मचारी है।

नाम	पद	
श्री आर् एन् देशमुख	व्यवस्थापक	
,, ह्वी पी भोसे शिक्षक भूतपूर्व विद्यार्थी.	गृहपति	अवैतनिक
,, प देवेंद्रकुमार जैन	धार्मिक शिक्षक	
, शकर विश्वनाथ बोरडे	पानीवाला	
श्रीमती पतासाबाई चंदनमलजी बाफना	रसोइन	
,, प्यारीबाई मोहनलाल सोळकी	,,	
,, वसताबाई विट्ठलदासजी बाफना	,,	
,, निमाबाई बाबूराव दाणी	फरासीन	

भोजन व्यवस्था

यता प्राप्त करने का अत्यधिक प्रयत्न करते है। प्रतिदिन प्रातःकालीन सार्वजनिक प्रार्थना स्थानक में होती है। इस सार्वजनिक प्रार्थना में छात्रालय के विद्यार्थी सम्मिलित होते है।

छात्रालय मे बालक बलवान धार्मिक, सदाचारी स्वदेशाभिमानी विद्वान् कलादक्ष स्वावलंबी एवं योग्य नागरिक बनें इस बात पर पूर्ण ध्यान दिया जाता है।

छात्रालय में छात्रो को पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ सामान्य एवं बाह्य ज्ञान की भी पूर्ण जानकारी प्राप्त हो इसके लिये वाचनालय एवं पुस्तकालय का प्रबंध किया गया है। छात्रगण साधारण रोगों की जानकारी स्वयं प्राप्त कर उसका उपचार कर सके इसके लिए छोटा देसी–विदेशी औषधयुक्त औषधालय की व्यवस्था की गई है।

इस छात्रालय की विशेष उल्लेखनीय एवं बात यह है कि छात्रालय के छोटे बड़े सब छात्रो में प्रेम एकता एवं समानता बनी रहे, इस दृष्टि से छात्रो के सप्ताह के सात दिनो की दृष्टि से सात गुट बनाये गये हैं। प्रत्येक गुट का एक नायक होता है। इन गुटो के नाम भी ऐतिहासिक दृष्टि से रखे गये है। जैसे महावीर बुद्ध चन्द्रगुप्त अशोक प्रताप शिवाजी एवं सुभाष। प्रतिदिन छात्रालय की समस्त व्यवस्था क्रमानुसार एक-एक समूह के अधीन रहती है। प्रत्येक गुट की व्यवस्था पर अंक दिये जाते है। साल में जिस गुट का काम सब से अधिक सतोष जनक होता है उसे पुरस्कार देकर विशेष प्रोत्साहित किया जाता है।

छात्रालय में व्यवहारिक शिक्षण के साथ साथ धार्मिक शिक्षण की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। छात्रालय के सब छात्रों के लिए धार्मिक परीक्षा बोर्ड (पाथर्डी) की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना अनिवार्य है।

छात्रालय की व्यवस्था बराबर बनी रहे इसके लिये फुटकर सहायता के साथ नियमित रूप से सहायता प्राप्त करने के लिए एक वात्सल्य-मिति योजना चालू है। वह योजना इस प्रकार है।

स्थाई वात्सल्य मिति योजना

एक दिन का सादा भोजन	रु २९	एक समय का सादा भोजन	रु १५
एक मिष्टान्न भोजन	रु ९१	एक दिन का दूध	रु १०

इस छात्रालय की प्रारंभिक काल से सब से अधिक विशेषता यह है कि इस में असमर्थ विद्यार्थियो को प्राथमिकता दी जाती है। प्रत्येक वर्ष सशुल्क तथा अर्द्ध शुल्क विद्यार्थियों की अपेक्षा निःशुल्क अर्थात असमर्थ विद्यार्थियो की संख्या दुगनी या अधिक रही है। संस्था इन विद्यार्थियो के लिय सब प्रकार का खर्च करती है।

उपर्युक्त विवरण से पाठक भली भांति समझ सकते हैं कि जिस "जैन पाठशाला" का प्रारंभ केवल नौ विद्यार्थियों से हुआ था, वह पाठशाला क्रमशः "श्री तिलोक जैन पाठशाला" और "श्री तिलोक जैन विद्यालय" के रूप में परिवर्तित होकर इतनी बड़ी हो गई है कि आज उस विद्यालय की आठवीं कक्षा से लेकर ग्यारहवीं कक्षा में पाँच सौ के करीब छात्र-छात्राएँ अभ्यास करती हैं। प्रारंभ में जिस पाठशाला में केवल एक अध्यापक द्वारा विद्यालय का सब काम चलाया जाता था, आज उसमें १७ अध्यापक एवं कर्मचारी हैं। प्रारंभ में जिस "श्री जैन ज्ञानफंड" संस्था के पास केवल ४५०० चार हजार पाँच सौ रुपये थे, आज उस विद्यालय के ट्रस्ट मंडल के पास विद्यालय एवं छात्रालय के लिए लाखों रुपये खर्च करने पर भी लगभग एक लाख ध्रुवफंड है।

ऊपर मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि श्री तिलोक जैन विद्यालय के आद्य मंत्री श्री मुथाजी के अवसान के पश्चात् श्री चंदनमल जी गांधी की मंत्री-पद पर नियुक्ति की गई। मुथाजी के अवसान के पूर्व ही चंदनमल जी सहायक मंत्री के रूप में कार्य कर रहे थे। संस्था का सूत्र-संचालन अपने हाथ में लेने के बाद इन्होंने पूरे एक तप अर्थात् बारह वर्ष तक इस संस्था की जी-जान से सेवा की। इस बारह साल की अवधि में संस्था के विकास की दृष्टि से बहुत अधिक कार्य हुआ। श्री बाबू सेठ बहुत समय से विद्यालय को हाईस्कूल के बृहद् रूप में देखना चाहते थे। जिस समय वे मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए थे, उस समय श्री चन्दनमल जी गांधी ने अपने प्रयत्न से हाईस्कूल का रूप दिलाकर उनकी अंतिम इच्छा की पूर्ति की। यह सुखद समाचार सुनकर बाबू सेठ ने शांतिपूर्वक अपने प्राण छोड़े। भवन-निर्माण जैसा महत्वपूर्ण कार्य पिछले कई वर्षों से खटले में पड़ा हुआ था, उसे अपने कार्य-काल में इन्होंने पूर्ण किया। श्री चन्दनमल जी के साथ उनके कनिष्ठ बन्धु श्री कुन्दनमल जी को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिन्होंने किसी पद-पर नहीं रहते हुए भी अपने ज्येष्ठ बन्धु की गंभीर बीमारी के समय खड़े पाय रहकर उनके अभिलषित भवन-निर्माण के कार्य को पूर्ण कर संस्था की तन-मन से सेवा की है। इसी प्रकार श्री सुगनचन्द जी कुचेरिया भी इस यश के भागी हैं।

विद्यालय के भूतपूर्व मंत्री की तरह ही श्री चन्दनमल जी गांधी ने संस्था की अवर्णनीय सेवा कर इसे बहुत आगे बढ़ाया है। विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री महेन्दले का अनुशासन और श्री चन्दनमल जी गांधी के शासन को ही इस सबका यश प्राप्त है। श्री चन्दनमल जी गांधी राष्ट्रीय वृत्तिवाले उदार व्यक्ति

है। इन के इस व्यापक दृष्टि कोण से विद्यालय के छात्र भी बहुत प्रभावित हुए ह। फलस्वरूप संस्था में धार्मिक वृत्ति के साथ राष्ट्रीय वृत्तिका भी बहुत पोषण हुआ ह। श्री चन्दनमल जी के मंत्रित्व—काल में श्री चुन्नीलाल जी गुगले तथा श्री सुवालाल जी छाजेड वकील ने सहायक मंत्री रूप से कार्य किया। प्रधानाध्यापक श्री महेन्द्रजी तथा महामंत्री श्री चन्दनमल जी गांधी के नेतृत्व-काल में यह विद्यालय बहुमुखी प्रगति कर रहा था कि एकाएक अपनी अस्वस्थता के कारण श्री गांधीजी को विवश होकर सन १९६० क अप्रैल मास में मंत्रीपदसे मुक्त होना पडा। उनके बाद भूतपूर्व अध्यक्ष श्री मोतीलाल जी मुगले क सुपुत्र श्री नमसुखजी गुगल वकील और स्थानीय डॉ चांदमल जीमुणक विद्यालय का काय संभाल रहे ह। य भी अपन पूर्वपूव मंत्रियों की तरह बडी लगन से संस्था की सेवा कर रह है। पाथर्डीनिवासी इन दोनों तरुण उत्साही एव शिक्षित मंत्रियों से हमें बहुत आशा ह। इनके काय—काल में भी संस्था की प्रगति अधिकाधिक होती रहगी।

इस संस्था के आद्य प्रेरक, परमोपकारी शिक्षाप्रेमी पूज्यपाद श्री रत्न-ऋषिजी महाराज थे। उनके स्वर्गवास के बाद उन्ही के पट्ट शिष्य बालब्रह्म-चारी, विद्यारसिक शांतमूर्ति पंडितरत्न उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज न अपने उपदेशों द्वारा इस संस्था को महान् रूप प्रदान करने में स्फूर्ति प्रदान की ह अतएव यह विवरण संस्था के वर्तमान प्रेरक उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषि जी महाराज के चरणों में समर्पित करता हूं।

महेन्द्रकुमार जैन



श्री तिलोकरत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड

पाथर्डी, अहमनदगर

जहा तक मुझे ज्ञात है, जैन धर्म के तीनों सम्प्रदायों में दिगंबरी सम्प्रदाय के श्रावक वर्ग में चिरकाल से धार्मिक ग्रन्थों का पठन-पाठन प्रचलित है। उस सम्प्रदाय में साधुओं की संख्या नगण्य होने से श्रावक वर्ग में शास्त्रज्ञ विद्वान पंडितों की भी प्रचुरता है। इस पिछली शताब्दी में परीक्षाओं की परिपाटी प्रारंभ होकर दिगंबर सम्प्रदाय में धार्मिक परीक्षाएँ भी प्रारम्भ कर दी गई थीं। उसके अनुकरणस्वरूप बाद में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में भी श्रावक-वर्ग को शास्त्रीय ग्रन्थों से परिचित कराने के लिये बम्बई में जैन एज्युकेशन बोर्ड की स्थापना की गई। उस बोर्ड की विभिन्न परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में प्रायः सब मुख्य ग्रन्थ रखे गये थे। पर स्थानकवासी समाज में इस ओर सबके बाद ध्यान दिया गया। जहां तक मुझे ज्ञात है, इस बीसवीं शताब्दी में तत्कालीन स्थानकवासी सम्प्रदायों में प्रसिद्ध आचार्य पूज्य श्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज के हितेच्छु श्रावक मंडल ने रतलाम में धार्मिक परीक्षाओं का केंद्र स्थापित किया। इस बोर्ड के परीक्षा-मंत्री श्री मोतीलालजी श्रीश्रीमाल बी० ए० थे। परीक्षाओं का आयोजन अच्छा था और उसमें प्राथमिक परीक्षा से लेकर जैन सिद्धान्त शास्त्री तक की परीक्षाएँ ली जाती थीं। इस बोर्ड की परीक्षाओं में सम्मिलित होकर अनेक वर्षों तक समाज के विद्यार्थी धार्मिक ज्ञान प्राप्त करते रहे।

रतलाम परीक्षा बोर्ड की परीक्षाओं में उत्तीर्ण स्नातकों में आज अनेक स्नातक समाज की बहुत सी संस्थाओं में कुशल धर्माध्यापक के रूप में कार्य कर रहे हैं। उनमें से कुछ लोग तो अनेक जगहों पर सिद्धान्तशालाएँ तक चलाते हैं।

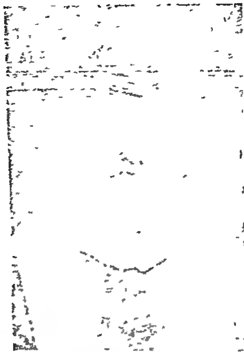
इस प्रकार रतलाम धार्मिक परीक्षा बोर्ड की परीक्षाओं का कार्य तीव्रगति से चल रहा था। इसी बीच बोदवड (खानदेश) में पंडितरत्न मुनि श्री आनंद ऋषिजी महाराज के पास श्री प्रेम ऋषिजी म० ने संवत् १९९० माघ शुक्ल दशमी के रोज भागवती दीक्षा अंगीकार की नवदीक्षित श्री प्रेम ऋषिजी म० का जन्म कच्छ देश में हुआ था। वे मूलतः मंदिरमार्गी आम्नाय के थे। उनका सारा परिवार भी श्वे० मूर्ति-पूजक था। पर उनकी स्वर्गीय श्री रत्नऋषिजी म० के प्रति बहुत भक्ति एवं श्रद्धा थी। श्री रत्नऋषिजी म० का स्वर्गवास होने के पश्चात् भी वे प्रतिवर्ष पं० रत्न मुनि श्री

आनन्द ऋषिजी म० सा० के दर्शनार्थ आते रहे। यहां तक कि चातुर्मासकाल में वे महाराज श्री की सेवा में एक वृद्ध महिला अपना स्वतंत्र मकान लेकर रहते थे। निरंतर सहवास से इनकी धर्म की ओर रुचि बढ़ती गई और धीरे-धीरे श्रावक के व्रतों की मर्यादा अंगीकार करते हुए बारहव्रतधारी श्रावक हो गये।

संवत् १६६६ के मन्दसौर चातुर्मास में आपने पहले रोज बारहव्रत अंगीकार किये। दूसरे रोज उन्होंने पं० रत्न मुनिश्री आनन्द ऋषिजी म० से पूछा-इस समय मेरी ५७ साल की अवस्था है। क्या मेरे जैसा व्यक्ति दीक्षा अंगीकार करे तो आप उसे अनुमति दे सकते हैं? इस पर महाराजश्री ने फरमाया-और के लिये तो नहीं कह सकता, पर आप यदि दीक्षा लेना चाहते हैं, तो दी जा सकती है। क्यों कि हम आप को अनेक वर्षों से पहचानते हैं। उन्हें एकाएक दीक्षा लेने के संबंध में पूछने पर कहा—"मुझे स्व० श्रीरत्नऋषिजी म० ने स्वप्न में दर्शन देकर आदेश दिया है कि तुम श्रीआनन्दऋषिजी के पास दीक्षा अंगीकार करो, यही आवश्यकता है,,। तत्पश्चात् पं० रत्न महाराज श्री की अनुमति मिलने पर आपने बड़ी कठिनाई से अपने स्वजनों की आज्ञा प्राप्तकर दीक्षा अंगीकार की।

इस दीक्षा-महोत्सव के शुभ प्रसंगपर दूर दूर से अनेक व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। उस समय ब्यावर जैन गुरुकुल के अधिष्ठाता श्री धीसूलालभाई सुराणिया भी आए हुए थे। उन्होंने अपना प्रसंगोचित भाषण करते हुए यह सुझाव रखा कि कितनेक वर्षों से रतलाम में स्थानकवासी समाज का धार्मिक परीक्षा-बोर्ड चल रहा है, पर उस बोर्ड से दक्षिणनिवासी जैन जनता पर्याप्त-लाभ नहीं उठा रही है, अतएव दक्षिण के श्रावक समुदाय में जैनधर्म के शास्त्रीय ग्रन्थों के ज्ञान की वृद्धि करने के लिए एक धार्मिक परीक्षा बोर्ड चलाया जाय तो समाज का बहुत हित हो सकता है। पं० रत्न श्री आनंद ऋषिजी म० के हृदय में यह बात घर कर गई। आप पाथर्डी में ही एक धार्मिक परीक्षा केन्द्र पहले से ही स्थापित करना चाहते थे, पर उसके लिए अभी काल परिपक्व नहीं हुआ था। अंत में उसका समय विक्रम संवत् १६६३ में इस प्रकार प्राप्त हुआ।

घोड़नदी जि० (पूना) निवासी धर्मप्रेमी दानवीर श्रीमान् नानचंदजी दूगड़ तथा आपकी धर्मपत्नी धर्मपरायणा श्रीमती सुन्दरबाई ने पंडितरत्न मुनि श्री आनंदऋषिजी म० के अध्ययन में बहुत सहयोग दिया था। वे दोनों वृद्ध हो चुके थे। उनके हृदय में बहुत दिनों से यह लालसा थी कि पंडितरत्न मुनिश्री जी का चातुर्मास हमारी जिंदगी में यहाँ पर हो जाय तो हमारे मनोरथ सफल हो जायँ। अतः सेठजी ने अवसर पाकर विक्रम संवत् १६६२ में होली के दूसरे दिन प्रातःकाल ही श्रीसंघ घोड़नदी के साथ पूना जाकर पंडितरत्नजी का चातुर्मास अपने स्थान के लिए निश्चित करा लिया।



श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के संस्थापक एवं भूतपूर्व अध्यक्ष
स्व. दानवीर सेठ नानचन्दजी बुगड, मु. राजनदी (पूना)



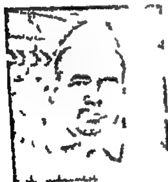
बोर्ड के वर्त्तमान अध्यक्ष 'युवकरत्न' श्रीमान
सेठ रतनचन्दजी बांठिया (पनगर)



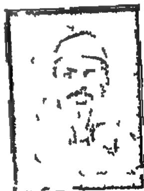
बोर्ड व्यवस्थापक
श्रीमान् हिरालालजी गांधी (पाथर्डी)



बोर्ड के आद्य रजिस्ट्रार
स्व० विद्यावारिधि प० रामधारी त्रिपाठी शास्त्री



बोर्ड के वर्तमान रजिस्ट्रार
पं० चन्द्रिकानारायण शास्त्री
सम्पादक सुधर्मा पत्रिका एव
मैनेजर श्री सुधर्मा मुद्रण एवं पावर्डी



बोर्ड मंत्री
प० चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी

उस चातुर्मास में एक बार प्रसंगवश पं रत्न जी ने सुश्रावक श्रीमान् सेठजी नानचन्दजी दूगड को उपदेश दिया। आपने मेरे शिक्षण-काल में उदारतापूर्ण सहयोग दिया है, उसे मैं भूल नहीं सकता। इस समय आप दोनों की भी वृद्धावस्था है, पूर्व पुण्योदय से घर में भी पर्याप्त सपत्ति है, पर उसे भोगनेवाली कोई सन्तति नहीं, इसलिये इस सपत्ति का अपने जीवन-काल में कुछ ऐसा सदुपयोग कीजिये, जिस से समाज के अनेक बालकों को धार्मिक शिक्षा-दान का पुण्य उपार्जन कर सकें।

यह बात सेठजी को जंच गई। उन्होंने तत्काल महाराजश्री से अपने द्रव्य का सदुपयोग करने की दिशा का संकेत करने के लिए कहा। उसके उत्तर में आपश्री ने बोलपट में सकल्पित विचार व्यक्त किये। परीक्षा के लिये खर्च का संकेत किया जाने पर महाराजश्री ने २००, दो सौ रुपये वार्षिक बताये। दक्षिणप्रांतीय विद्यार्थियों के हित की दृष्टि से दो सौ रुपये वार्षिक देना, आप के लिये सहज था। तत्पश्चात् आपने अपनी धर्मपत्नी से मन्त्रणा कर महाराजश्री के पास आकर कहा, फिल हाल मैं धार्मिक परीक्षा बोर्ड के लिये प्रतिवर्ष दो सौ रुपये देने का अभिवचन देता हूँ। पर महाराजश्री द्वारा प्रतिवर्ष दो सौ रुपये व्याजरूप में नियमित मिलते रहें, ऐसा सुझाव प्रकट करने पर आपने उसी समय कहा,— आप का सुझाव मुझे शिरोधार्य है और धार्मिक परीक्षा बोर्ड के लिये पाच हजार रुपये निकालता हूँ तथा इस द्रव्य की रक्षा के लिये जीवनपर्यन्त स्वय अर्थात्—

(१) श्री	नानचन्दजी भगवानदासजी दूगड	घोडनदी (पूना)
(२) ,,	रतनचन्दजी मिश्रमदासजी बाठिया	पनवेल (कुलाबा)
(३) ,,	हीरालालजी फूलमचन्दजी नवलखा	पिसोरा (पूना)
(४) ,,	ताराचन्दजी नन्दरामजी भणसाली	कुंडेगव्हाण (अ नगर)
(५) ,,	उत्तमचन्दजी नेमिदासजी मुथा	पाथर्डी (अ नगर)

इस प्रकार पाच ट्रस्टी नियुक्त करता हूँ। वे ट्रस्टी लोग मेरे बाद भी मूल रकम की रक्षा करते हुए नियत समय पर व्याज की रकम धार्मिक परीक्षा बोर्ड के व्यवस्थापक के पास भेजते रहेंगे। इस तरह सेठजी ने मिति आश्विन शुक्ल पूर्णिमा स. १९९३ वीर स २४६३ ता ३०-१०-३६ को अपने ट्रस्टी-मण्डल की मीटिंग घोडनदी में कर के ऊपर अकित व्यवस्था का लेख अपने तथा ट्रस्टी-मण्डल के हस्ताक्षरसहित धार्मिक परीक्षा बोर्ड के व्यवस्थापक को सुपुर्द कर दिया।

दान देनेवाले दाता की यह इच्छा रहा करती है कि अपने दान का सदुपयोग अपने स्थान के विकास के लिए ही हो, वे अपने दान से अपने गाव में ही कोई नवीन संस्था स्थापित करना चाहते हैं, ऐसा अधिकाश में देखा जाता है, परन्तु श्रीमान् सेठ नानचन्दजी ने स्थान-विशेष का मोह रखे बिना किसी भी स्थान पर धार्मिक परीक्षा बोर्ड स्थापित करने के लिए यह रकम दी। आप की यह भावना विश्वबन्धुत्व की सूचक थी।

उपरोक्त व्यवस्था लेख मात्र ज्ञान के पश्चात् प. रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म. की प्रेरणा से दि. ७ दिसम्बर सन १६३६ ई. को पाथर्डी में श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना की गई। क्यों कि पहले से ही यहां स्वर्गीय परमोपकारी पूज्यपाद श्री रत्न ऋषिजी म. की प्रेरणा से स्थापित श्री तिलोक जैन विद्यालय अच्छी तरह चल रहा था। आरम्भ परीक्षा बोर्ड के सम्पादक श्री आनन्द ऋषिजी म. थे, अतः इस के साथ आपश्रीने अपने गुरु पितामह श्री तिलोक ऋषिजी म. तथा अपने गुरुदेव श्री रत्नऋषिजी म. का नाम जोड़कर उनका नाम अमर बना दिया।

इस धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना के पूर्व संस्था के संस्थापक श्रीमान् सेठजी नानचन्दजी तथा उनके मित्रमंडल के समक्ष बोर्ड के कुछ नियमोपनियम बनाकर प्रकाशित हो चुके थे। उन नियमोपनियमों के अनुसार बोर्ड का कार्य प्रारंभ किया गया। पर वे जल्दी में किए जाने के कारण कुछ अपूर्ण थे। आरम्भ में दो तीन बार विद्वत् परिषद् के पश्चात् उन्हें अंतिम रूप दिया गया। उन नियमों को यहां देने में कहीं पुनरुक्ति न हो, इसलिए परीक्षा सबंधी यह विवरण उसी स्थानपर दे रहे हैं कि जहाँ उन्हें अंतिम रूप दिया गया था। पाठक उस स्थान पर ही यह प्रकरण पढ़ें।

इस श्री तिलोक रत्न जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना होनेपर पं. रत्न मुनिश्री आनन्दऋषिजी म. की सूचना के अनुसार सिरोंनी (जि. सहारनपुर) निवासी विद्यावारिधि श्री राजधारी त्रिपाठी जी ने अवैतनिक रूपसे धार्मिक परीक्षा बोर्ड का कार्य करना प्रारम्भ किया।

श्री तिलोक जैन विद्यालय की स्थापना होनेपर जिस प्रकार उसे विकास की उच्च अवस्था तक पहुंचाने वाले त्यागी, सेवाभावी धराड मास्टर प्राप्त हुए उसी प्रकार वह विद्यावारिधि पं. श्री राजधारी त्रिपाठी जी धार्मिक परीक्षा बोर्ड के विकास में सहायक सिद्ध हुए। उन्होंने इस संस्था के प्रारंभिक काल से जीवन-पर्यन्त जो सेवा की, उसके लिए यह बोर्ड सदैव कृतज्ञ रहेगा। वे उस समय धार्मिक परीक्षा बोर्ड के रजिस्ट्रार के साथ साथ श्री रत्न जैन पुस्तकालय, श्री अमोल जैन सिद्धांतशाला आदि अनेकविध कार्य संभालते थे।

उस समय महासतीजी श्री सुमतिकुंवरजी म. का अध्ययन चल रहा था, उन्हें तीन घण्टे पढ़ाने के पारिश्रमिक स्वरूप तीस रु. प्राप्त होते थे और अवशिष्ट तीन घण्टे श्री तिलोक जैन विद्यालय के छात्रों को धार्मिक अभ्यास कराने के पारिश्रमिक स्वरूप तीस रुपये प्राप्त करते रहे। उन्होंने इस संस्था के निर्माण में दिन-रात कुछ नहीं देखा। केवल थोड़े से वेतन में इस प्रकार संस्था की सेवा करनेवाले विरले व्यक्ति ही होते हैं।

परीक्षा बोर्ड की स्थापना होने के पश्चात् पं० श्री राजधारी त्रिपाठीजी तत्काल इसे मूर्त रूप देने के लिये जुट गये। इस संबंध में आपने सर्व प्रथम दो तीन इष्ट मित्रों से सम्मतियाँ मंगवाईं। उनकी राय यह थी कि आगामी वर्ष से परीक्षा प्रारम्भ की जाय परन्तु कार्य-कर्ताओं का यह निर्णय रहा कि "शुभस्य शीघ्रम्", इस न्याय के अनुसार इस कार्य को अग्रिम वर्ष के लिये नहीं रखकर तत्काल प्रारम्भ कर दिया जाय। अतः ता० २८ जनवरी सन् १९३७ के रोज भुसावल (खानदेश) में तपस्वीराज मुनि श्री देवजी ऋषिजी म० को आचार्य पद एवं पंडितरत्न मुनि श्री आनन्दऋषिजी म० को युवाचार्य पद देने के महोत्सव प्रसंग पर वहां विराजित आत्मार्थी मुनि श्री मोहनऋषिजी म० व मुनि श्री विनय ऋषिजी म० श्री कल्याण ऋषिजी म० आदि मुनिराजों एवं शास्त्रज्ञ श्रावक श्री सागरमलजी ओसवाल द्वारा धार्मिक परीक्षा बोर्ड का पाठ्य क्रम तैयार किया गया। उस समय की निर्धारित कार्यावली के अनुसार प्रथम वर्ष की परीक्षा तारीख २५-२६ अप्रैल सन् १९३७ में ली गई।

यद्यपि बोर्ड के स्थापन-काल तथा परीक्षा-तिथि का बहुत ही निकट समय था फिर भी संत-सतियों के शुभ आशीर्वाद और बोर्ड के सद्भाग्य से दक्षिण, मेवाड़, मारवाड़, आदि स्थानों से मिलकर पांच संस्थाएँ इस बोर्ड में सम्मिलित हुईं। एक सौ उन्नीस छात्र परीक्षा में सम्मिलित हुए। जिन में ६१ उत्तीर्ण हुए। उन्हें ७४ रुपये पारितोषिक स्वरूप दिये गये।

परीक्षा का कार्य बहुत जल्दी प्रारम्भ किया जाने के कारण बाद में अनेक अच्छे अच्छे विद्वानों की सूचनाएँ आने लगी कि आपका अभ्यासक्रम और नियमोपनियम शीघ्रता के कारण अधूरे रह गये हैं। पुनः उनका संशोधन होना अत्यावश्यक है। उसके लिए कांदावाड़ी (बम्बई) में चातुर्मासार्थ विराजित युवाचार्य श्री आनंदऋषिजी म० की सेवा में प्रार्थना की गई। परन्तु बोर्ड की आर्थिक परिस्थिति अनुकूल न रहने के कारण उस समय मौन रह जाना पड़ा। फिर भी यह कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था, अत- एव बाहर के विद्वान लोग स्वयं युवाचार्य श्री से पत्र व्यवहार करने लगे। फलतः ६० जून सन् १९३८ को घाटकोपर उपाश्रय में विद्वत्-परिषद् बुलाई गई। इस वर्ष चातुर्मासस्थित पं० रत्न युवाचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० के तत्त्वावधान में इस परिषद में मारवाड़,मेवाड़, गुजरात, मालवा इत्यादि दूर दूर के स्थानों से अनेक विद्वान लोग पधारे थे। इस सभा में बोर्ड की विद्वत्परिषद् नियुक्त करके नियमोपनियम के साथ अभ्यासक्रम निश्चित किया गया।

इस विद्वत्परिषद् ने जो नियमोपनियम बनाकर पाठ्यक्रम निश्चित किया उसका बाद में दि० ८-१०-४७ के रोज श्रीरामपुर (अहमदनगर) में होनेवाली विद्वत्परिषद् ने संशोधन एवं परिवर्द्धन किया गया। ४७ में होनेवाली उस परिषद् में अधिकतर इस समय के नियमोपनियमों आदि की पुनरावृत्ति हुई है, अतएव पाठक उस स्थान पर ही यह प्रकरण देखें।

इस प्रकार विद्वत्परिषद् का कार्य संपन्न हुआ। द्वितीय वर्ष में नौ संस्थाओं से २६१ छात्र परीक्षा में सम्मिलित हुए। उनमें १६८ छात्र उत्तीर्ण हुए। उन्हें ११० रु० पारितोषिक स्वरूप दिये गये। अभी तक स्व० पं० श्री राजधारी त्रिपाठीजी बोर्ड के मंत्री पद पर अवैतनिक रूपसे कार्य कर रहे थे। पर उनके वेतन की पूर्ति अन्य संस्थाओं से कर दी जाती थी। इधर बोर्ड की भी उनके ऊपर अधिक जिम्मेदारी के कारण रजिस्ट्रार के पद पर उन्हें नियुक्त कर के साथ ही उनके सुपुत्र पं० श्री चन्द्रभूषण त्रिपाठीजी की मंत्री-रूप से भी नियुक्ति की गई। उनका वार्षिक वेतन ३६० रुपया नियत किया गया, जो उस समय की बोर्ड परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल था।

इसके पश्चात् सन् १९३८-३९ में क्रमशः पनवेल एवं अहमदनगर में कार्यकारिणी समिति की बैठकें हुईं। इन दोनों बैठकों में ग्यारह एवं तेरह महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। पहले दो वर्षों की अपेक्षा इन दो वर्षों में और अधिक परीक्षार्थियों की वृद्धि हुई। तृतीय वर्ष में विभिन्न प्रांतों के १७ स्थानों से ३४४ परीक्षार्थी परीक्षा में आवेदित हुए। २५९ उत्तीर्ण हुए जिन्हें १८६॥ पारितोषिक स्वरूप दिये गये। चतुर्थ वर्ष में बीस स्थानों से ३८४ परीक्षार्थी आवेदित हुए, जिनमें से ३१८ उत्तीर्ण हुए और उन्हें १६० रुपये और तीन रौप्य पदक पारितोषिक स्वरूप प्रदान किये गये।

पदक–योजना

ऊपर चतुर्थ वर्ष का परीक्षा–परिणाम प्रकाशित होने पर अधिक अंक प्राप्त करने वाले छात्रों को पारितोषिक के साथ रौप्य पदक प्रदान करने का जो संकेत किया गया उस पदक-योजना के पीछे एक छोटी सी घटना अत्यधिक प्रेरक रही है। जब यह धार्मिक परीक्षा बोर्ड प्रारंभ ही हुआ था, उस समय समाज भूषण धर्म एवं विद्याप्रेमी उत्साही, सुश्रावक जयपुरनिवासी श्री दुर्लभजी भाई जौहरी का देहावसान हो जाने से इनके स्वजनों ने सद्गत आत्मा के स्मरणार्थ २५००० (पच्चीस हजार) रुपये सुकृत खाते में निकाले। उन पच्चीस हजार रुपयों में से केवल ५१ रुपये पाथर्डी स्थित श्री ति० र० स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के व्यवस्थापक को इस आशय का पत्र लिखते हुए भेजे—ये ५१ रुपये ऐसे ही कायम रखे जायँ। इनकी वार्षिक आय से जो प्राप्ति हो, उसमें एक रौप्य पदक बनाकर परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थी को "दुर्लभ-पदक के नामसे प्रतिवर्ष पारितोषिक स्वरूप दिया जाय।

स्वर्गीय श्री दुर्लभजी भाई के स्वजनों द्वारा प्रदत्त यह सहायता समाज के अन्य शिक्षा प्रेमी व्यक्तियों के लिये अत्यंत प्रेरक सिद्ध हुई। उन्होंने इसे एक बृहद् योजना का रूप दे दिया। इस योजना से आकर्षित होकर सैंकड़ों व्यक्ति अपने स्वजनों के (जैसे माता पिता, बन्धु, भगिनी, पत्नी आदि) स्मरणार्थ विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करनेके लिये ५१ ५१ रुपये पदक निर्माण खातेमें जमा कराने लगे। आज समाज के ऐसे शिक्षाप्रेमी व्यक्तियों द्वारा दिए हुए दानसे कुल छः सौ से अधिक

पदक प्रतिवर्ष दिये जाते हैं। इससे परीक्षार्थियों की सख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। प्रतिवर्ष हजारों विद्यार्थी बोर्ड की परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने पर पदक पाकर गौरव का अनुभव करते हैं।

विद्यार्थियों की धार्मिक शिक्षण के प्रति विशेष अभिरुचि हो, इस दृष्टिकोण से परीक्षा में परमाक प्राप्त करनेवाले छात्रोंको पदक द्वारा सम्मानित करने के लिए ऊपर लिखित यह पदक-योजना बनाई गई हैं। शिक्षाप्रेमी धर्मबंधु इस योजना में ५१ रुपया एक बक्त प्रदान कर अपने अभीष्ट नाम का पदक स्थापित कर सकते हैं। दान की रकम स्थायी (ध्रुव) रखकर उसकी आय से प्रतिवर्ष एक छात्र को रौप्य पदक पुरस्कार में दिया जायगा और छात्र का क्रमांक, पदक-नाम और दाता-नाम, वार्षिक फल के साथ प्रकाशित करके दाता के पास एक प्रति भेज देने का नियम रखा गया हैं।

विशिष्ट-पदक

बोर्ड की परीक्षा में सर्वप्रथम आनेवाले प्रथम श्रेणी के छात्र और छात्राओं के लिए एक एक विशिष्ट पदक देने की योजना बनाई गई है। इस योजना के अनुसार जैनसिद्धात प्रवेशिका परीक्षोत्तीर्ण छात्र के लिए सर्व प्रथम पदक देने हेतु ७५ रु. की मूल रकम, प्रथमा परीक्षा के लिये १०१रु विशारद के लिये १५१रु प्रभाकर के लिये २०१ रु और शास्त्री के लिए २५१ रु नियत किये गये है। जैनसिद्धाताचार्य परीक्षा में सर्व-प्रथम आनेवाले छात्र के लिये परीक्षा बोर्ड की ओर से एक स्वर्ण-पदक देने की योजना है। हर्ष है कि योजनानुसार सब विशिष्ट पदकों के लिए नियत राशि के कोष्ठक दाता-ओं ने उत्साह के साथ पूरे कर दिये है।

ऊपर जिन पदकों का नाम-निर्देश किया गया है,वे केवल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रों को ही दिये जाते थे। इससे द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होनेवाले पुरस्कार से वंचित रह जाते थे। इसलिए उन्हें प्रोत्साहित करने के लिये बोर्ड ने संस्था से संबंधित अन्य संस्थाओं से सहायता लेकर द्वितीय श्रेणी में परीक्षोत्तीर्ण छात्रों को पुस्तकें प्रदान करने का क्रम प्रारंभ किया। यह क्रम कुछ वर्षोंतक चलता रहा पर इससे ध्रौव्य-फण्ड में कुछ कमी होने की सम्भावना बनी रहती थी।

द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रों को पुस्तकें पुरस्कार स्वरूप देने की यह योजना भी गुरुदेव की कृपा से अन्त में इस प्रकार सफल हुई। एक बार पंडित रत्न उपाध्याय मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म० आदि ठाणे ६ का चातुर्मास शुजालपुर में हुआ था। चातुर्मास का समय सानंद-सपन्न होनेके पश्चात् आपश्री के लघु गुरु-बंधु महात्माजी मुनि श्री उत्तम ऋषिजी म का संवत् २०१४ मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी के रोज स्वर्गवास हो गया। उस समय स्व मुनि श्री के स्मरणार्थ एक "उत्तम ज्ञान प्रोत्सा-हक पारितोषिक-विभाग" खोला गया। उस विभाग के लिए सर्वप्रथम जालनानिवासी दानवीर श्रीमान् केशवजी भाई जवेरचन्द शाह ने उदार अतःकरण से एक मुश्त

दस हजार रुपयों का सराहनीय दान दिया। उस विभाग में अनेक शिक्षा प्रेमी बंधु-भगिनियों ने आर्थिक सहायता पहुंचाई है। पदक विभाग के समान कम से कम ५१ रु देने वाला ही उस विभाग में सहायक हो सकता है। इस फन्ड की आय से प्रतिवर्ष द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रछात्राओं को पुरस्कार स्वरूप पुस्तकें दी जाती हैं।

पुस्तक-प्रकाशन-योजना

प्रत्येक परीक्षा बोर्ड के अभ्यास-क्रम में पाठ्यपुस्तकें अनिवार्य रूप से रखी जाती हैं। उनके बिना वह बोर्ड अपने असली नाम को चरितार्थ नहीं कर सकता। फलतः इसके अभ्यास क्रम में भी प्रारंभ से ही बहुत उच्च कोटि के ग्रंथ रखे गये और पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकें के लिए परीक्षार्थियों को यह सूचना दे दी गई कि वे पुस्तकें जहां कहीं उपलब्ध हों, परीक्षार्थी उस उस स्थानसे मंगा लें। पर जिस जिस स्थान से वे निर्धारित ग्रन्थ प्रकाशित हुए थे, उन स्थानों का पता लगाकर पुस्तकें मंगाना परीक्षार्थियों के लिए कठिन था। उनमें से अनेक पुस्तकें तो अप्राप्य थीं। अतः ज्यों परीक्षा बोर्ड स्थापित होने के बाद थोड़े ही समय में आवेदकों के पाठ्य पुस्तकों के संबंध में पत्र पर पत्र आने लगे। पर उस समय बोर्ड पर इतना बहुत अधिक आर्थिक भार होने के कारण वह इस आवश्यक योजना को कार्यान्वित नहीं कर सकता था। अन्त में संवत् १९९९ में यह योजना भी इस प्रकार सफल हुई।

संवत् १९९९ के माघ कृष्ण ६ बुधवार को पाथर्डी (अहमदनगर) में चतुर्विध श्री संघ के समक्ष पंडितरत्न युवाचार्य श्री आनन्द ऋषिजी म. को ऋषिसम्प्रदाय की ओर से पूज्य (आचार्य) पदवी दी गई। उस प्रसंग पर बोर्ड के रजिस्ट्रार स्व. पं श्री राजधारी त्रिपाठी शास्त्रीजी ने अपने वक्तव्य में यह संकेत किया कि जैसे राजा-महाराजाओं के राज्याभिषेक प्रसंग पर दानोत्सव आदि शुभ कार्य किये जाते हैं। वैसे ही आज के इस महत्त्वपूर्ण धार्मिक अवसर पर दान धर्म जैसा उत्कृष्ट मंगलकार्य भी होना चाहिये। पंडितजी के इस उद्गार से प्रेरित होकर पीपला (बीड) निवासी (वर्तमान में अहमदनगर) श्रीमान् शोभाचन्दजी बोरा ने "श्री चांदमलजी बोरा" इस नाम से श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के अन्दर पुस्तक प्रकाशन के लिये २१०० इक्कीससौ रुपयों का दान घोषित किया। आप के इस दान से सर्वप्रथम "नवतत्त्व" नामक पुस्तक बोर्ड से प्रकाशित हुई।

इस पुस्तक-प्रकाशन-योजना के अंदर जिस महानुभाव या जिन महानुभावों के आर्थिक आश्रय से जिस पुस्तक का प्रकाशन होता है, उस पुस्तक में उस महानुभाव या उन महानुभावों के नाम और उनके द्वारा प्रदत्त दान का उल्लेख किया जाता है। पुस्तक प्रकाशित होने पर उसकी दो प्रतियां आश्रय-दाता के पास भेजी जाती हैं और

प्रथम संस्करण प्रकाशित होनेपर उसकी बिक्री से जो आय होती है उस आय से अग्रिम (द्वितीय, तृतीय आदि) संस्करण प्रकाशित होते रहते हैं। इस प्रकार पुस्तक प्रकाशन के लिए दाता द्वारा दिया हुआ मूल धन बराबर सुरक्षित बना रहता है।

यदि किसी एक ही व्यक्ति की उदारता से वह सारी पुस्तक प्रकाशित होती है तो उस व्यक्ति का संक्षिप्त परिचय भी त्रिभागीय समिति से सम्मत होकर प्रकाशित किया जाता है।

पण्डितरत्न मुनि श्री आनन्दऋषिजी म., सरलस्वभावी महाराजजी श्री उत्तम ऋषिजी म., व्यवहारदक्ष वयोवृद्ध मुनि श्री प्रेमऋषिजी म आदि ठाणे ३ ने विक्रम संवत् १९९७ का चातुर्मास पूना में किया, उस समय पंडित रत्नधारी त्रिपाठी शास्त्रीजी की समुपस्थिति में अनेक ज्ञान-वृद्धिके इच्छुक महानुभावों द्वारा प्राप्त सहायता से आवश्यक सूत्रमूल, आवश्यक सूत्र सार्थ, सामायिक सूत्र सार्थ इन तीन पुस्तकों की ग्यारह हजार प्रतियां प्रकाशित कराकर श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी को भेंट स्वरूप समर्पित की गई। उनकी आय से आगे भी तीन चार संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। श्री रत्न जैन पुस्तकालय स्थित इन तीनों पुस्तकों से इसीतरह स्तोत्र-संग्रह अर्थात् जिसमें मांगलिक श्लोक श्री भक्तामरस्तोत्र श्री चिंतामणि स्तोत्र, श्री महावीराष्टक, श्री तिलोकाष्टक, श्री रत्नाष्टक आदि स्तोत्रोंका सार्थ संग्रह है, उससे घोरोबुद्रुक (पूना) निवासी श्रीमान् पन्नमचन्दजी चोरडिया तथा श्रीमान् हीराचन्दजी मोतीलालजी चोरडिया और अहमदनगरनिवासी रीधकरणजी मुलतानमलजी सिंगी के आर्थिक आश्रय से प्रवेशपुस्तक प्रकाशित होनेसे बोर्ड को बहुत बल मिला है। क्योंकि धार्मिक परीक्षा बोर्ड के बाल्यकाल में उसके पास पुस्तकप्रकाशन की कोई योजना नहीं थी।

बोर्ड के प्रारंभिक कालसे पाठ्य पुस्तकों की नितांत आवश्यकता थी। केवल किसी के मार्गदर्शन की अपेक्षा थी। पाथर्डी में प रत्नजी की पूज्य पदवी के अवसरपर श्री सोभागचन्दजी बोरा द्वारा यह स्तुत्य उदाहरण उपस्थित करने पर अनेक लोगों ने इस योजना को अपना लिया। इसमें जालनानिवासी दानवीर श्रीमान् केशवजी भाई जवेरचन्द शाह, श्रीमती राजीबाई ओस्तवाल राहुरी और अमरावतीनिवासी श्रीमान् हरिरामजी भाई हेडा का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इस में जालनानिवासी श्रीमान् केशवजी भाई जवेरचन्द शाह के नाम का पहले भी अनेक वार उल्लेख हो चुका है। उन्होंने प्रत्येक पारमार्थिक विभाग में दस ग्यारह या पंद्रह हजार रुपयों से कम दान नहीं दिया। श्री उत्तम ज्ञान प्रोत्साहक पारितोषिक विभाग, श्रीतिलोक जैन विद्यालय भवन विभाग, श्रीतिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड भवन विभाग और श्री अमोल-जैन-सिद्धांतशाला विभाग में भी उन्होंने

बड़ी रकमें दीं, इसका पहले उल्लेख हो चुका है। आपने इस पुस्तक प्रकाशन विभाग में अमीर गुजराती पुस्तकों के प्रकाशन के लिए दस हजार रुपये दिए हैं। इस दान से बोर्ड में निर्धारित पाठ्य पुस्तकों में जो पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित हो चुकी हैं, उनका गुजराती अनुवाद करके प्रकाशन किया जायगा। इसी प्रकार वयोवृद्ध अनुभवी श्रीमान् हरिरामजी इढा न माहेश्वरी कुल में उत्पन्न होनेपर भी पुस्तक प्रकाशन विभाग में ज्ञान प्रचार की सद्भावना से प्रेरित होकर उदार अन्तःकरण से १० एक हजार रुपये की प्रशंसनीय सहायता देकर सामाजिक समन्वय का एक सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है।

इस विभाग में जिन जिन श्रावकोंने आर्थिक आश्रय देकर बोर्ड से पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित कराई हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं।

नाम	रकम	पुस्तक नाम
१ श्री चाँन्मलजी शामायरनी वाला पीपला (अहमदनगर)	१००१	नव-तत्त्व सार्थ (इसका द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित हो चुका है)
२ श्रीमती राजीबाई बोलवाल, राहुरी	२५० रु.	सो सतियाँ (प्रथम और द्वि आवृत्ति)
३ विदुषी महासतीजी श्री चन्दनकुमारीजी की दीक्षा के उपलक्ष्य में उनके संसार पक्ष के काका तथा दो अन्य महाशयों के शुभ दान से	२५० रु.	जैन तत्त्व दीपिका प्रथम और द्वितीय आवृत्ति
४ छत्तीस व्यक्तियों द्वारा सहायता लगभग	१ ००	जैन पाठावली भा. १ प्रति १० ०० चार संस्करण
५ चाँदानिवासी श्री तिलोकचन्दजी सूरजचन्दजी गुंदेचा की सहायता से		जैन पा. भा. २रा प्रति ३००० तीन संस्करण
६ लासलगाव निवासी श्रीमान् फूलचन्द जवेरचन्द शाह की सहायता से		जैन पा. भा. ३रा प्रति ०० ०, दो संस्करण
७ श्रीमान् सी. पी. डोसी मगनलाल भाई बम्बई	५०१	जैन पा. भा. ६ प्रति १० ०
श्रीमान् गोकुलदासजी अजमेरा बम्बई अपने पुत्र के स्मरणार्थ	२५१	

गुजराती पुस्तक-प्रकाशन-विभाग

१) लासलगाव निवासी श्रीमान् फूलचन्द जवेरचन्द शाह तर्फे हस्ते श्रीमान् केशवजी भाई द्वारा प्राप्त सहायता से	जैन पाठावली भाग २
	,, ,, ,, ३
	,, ,, ,, ४

इस श्री ति. रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड में कन्याओं एवं महिलाओं के लिए भी एक स्वतंत्र विभाग है। उनके लिए अलग ही पाठ्यक्रम रखा गया है। जो बहिनें परीक्षा में निर्धारित उक्त अभ्यास क्रम को नहीं कर सकती, वे महिलाओं के

लिए निर्धारित पाठ्यक्रम का अभ्यास कर जैन धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकती है। बोर्ड की ओर से इस विभाग की जो पुस्तकें प्रकाशित हुई है उनकी सहायिकाएँ प्राय सब महिलाएँ ही है।

१) श्रीमती सूरजबाई ध्र लालचन्दजी डोसी ध्र नगर		२०१	कन्या सुबोधिनी
१ श्रीमती सौ हामीबाई ध्र माणकचन्दजी मुथा	"	१०१	भाग पहिला
२ " धमताबाई ध्र प्रेमराजजी मुथा	"	१०१	द्वितीय तृतीय
४ " रतनबाई " रूपचन्दजी गुन्देचा	"	१०१	संस्करण
५ " लडाबाई " हेमराजजी फिरोदिया	"	१०१	८००० प्रतियाँ
६ " मोतीबाई " हरकचन्दजी कोठारी	"	५१	
७ " रतनबाई " उत्तमचन्दजी मुथा	पाथर्डी	२०१	
१ रतनचन्दजी भटेवड़ा परिवार की महिलाएँ राहू		१६५	कन्या सुबोधिनी भा दूसरा
२ श्रीमती तुलसाबाई कोचर हिंगनघाट		१००	३००० प्रतियाँ
३ श्री नवलचन्दजी पूगलिया की माताजी नागपुर		१००	
४ श्रीमती गुगनीबाई ध्र धनराजजी मुणोत अमरावती		३०१	
५ श्रीमती मैनाबाई गेलडा सुमावल		१०१	
६ श्रीमती रतनबाई ध्र विजराजजी सचेती मलकापुर		१०१	
७ अवशिष्ट सौ श्राविकाओं द्वारा महायता		१६५	
१ श्रीमती श्रीकुंवरबाई सुरा मीयनी		२०१	कन्या
२ " तुलसाबाई कोचर हिंगनघाट		१०१	सुबोधिनी
३ " तानीबाई चोरडिया		१०१	भाग तीसरा
४ " सौ धोंडीबाई गुन्देचा चान्दा		१११	
५ " सरदारबाई चोरडिया हिंगनघाट		१०१	द्वितीय आवृत्ति
६ " वैराग्यवती तुलसाबाई चान्दूर बाजार		१०१	३०००
७ " प्यारीबाई गांधी लोनावला		१०१	
८ सुन्दरबाई सकलेचा मजलेगांव		५०	
९ " सौ रूपीबाई कटारिया चान्दा		२१	

बोर्ड की गुणग्राहकता

इस धार्मिक परीक्षा बोर्ड की अन्य संस्थाओं से एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जिस संस्था के विद्यार्थी बोर्ड की परीक्षाओं मे सम्मिलित होकर तीन वर्ष तक बराबर प्रथम श्रेणि में उत्तीर्ण होते रहेंगे, उसके धर्माध्यापक को प्रमाण पत्र के साथ रजतीय पदक प्रदान किया जायगा। पर इस समय मर्यादा के पूर्व ही अपनी संस्था से विद्यार्थियों को परीक्षाओं में बैठाकर उनके यशस्वी परिणामसे सन्तोष गौरवान्वित होने

वाले धर्माध्यापकों का परीक्षाप्रारंभ होने के वर्ष से ही रौप्य-पदक के साथ प्रमाण पत्र देकर सन्मान किया गया। पहले चार वर्षों के सन्मानित अध्यापकों के नाम क्रमशः इस प्रकार है —

पं श्री उदयचन्दजी जैन, श्री विनय जैन पाठ शाला सनवाड मेवाड वी सं		२४६४
पं श्री फूलचन्दजी जैन सारंग, श्री जैन रत्न विद्यालय	भोपालगढ	,, २४६५
,, केशवलाल अम्बालाल शाह	खम्भात	,, २४६६
श्री रामराव देशमुख श्री तिलोक जैन पाठशाला, पाथर्डी		,, २४६७

यहा केवल प्रथम चार वर्षों के सम्मानित अध्यापकों का नाम निर्देश किया गया है। य‍० क्रम लगातार चला आ रहा है और अभी तक पिछले बीस वर्षों में बीसों अध्यापक सम्मानित किये गये हैं।

केवल थोड-से वर्षों के भीतर ही यह बोर्ड, संस्था के संस्थापक पं रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म की प्रेरणा से संस्था के कर्मठ रजिस्ट्रार एवं मन्त्री पं श्रीमान् राजधारी त्रिपाठी शास्त्री के अथक परिश्रम से सतत विकास पथ की ओर अग्रसर हो रहा था इतने ही में सारे विश्व को अपनी युद्ध-ज्वाला से झुलसाने वाले द्वितीय विश्व-युद्ध का प्रारंभ हो जाने से इस देशपर भी उसका व्यापक प्रभाव पड़ा। हमारा यह बोर्ड भी उसकी चपेट से न बच पाया। फिर भी किसी प्रकार के प्रचार एवं शोहरत के बिना यह बोर्ड मौन भाव से अपना विकास करता रहा। समय की गति के अनुसार इस की परीक्षाओं की वृद्धि होती रही। अनेक संस्थाएँ इस के साथ अपना संबंध जोड कर गौरव का अनुभव करने लगीं। अन्त में एक समय यह आया कि जिस बोर्ड का निर्माण केवल महाराष्ट्र प्रांत के लिए हुआ था, वह महाराष्ट्र प्रांत तक सीमित नहीं रहकर अखिल भारत-व्यापी हो गया। इस बोर्ड की परीक्षाओं में प्रतिवर्ष परीक्षार्थी की किस प्रकार वृद्धि होती गई, उसकी सूची अन्त में दी गई है।

दु खद अवसान

इस प्रकार बोर्ड अपने प्रगतिपथपर अग्रसर हो रहा था, इसी बीच मिति आश्विन कृष्णा २ विक्रम संवत् २००० को पाथर्डी में मुनि श्री प्रमऋषिजी म का स्वर्गवास हो गया। वयोवृद्ध अनुभवी मुनिश्रीजी का वर्णन पहले संक्षेप में किया जा चुका है। आपने बोर्डवर में इस बोर्ड के प्रवर्तक प रत्न मुनि श्री आनन्दऋषिजी म के पास दीक्षा ली थी। आपकी बुद्धिमत्ता एव व्यवहार-दक्षता प्रशंसनीय थी। प रत्न मुनिजी के तो आप दाहिने हाथ थे। यहातक कि स्वय गुरुदेव (पंडितरत्नजी) कोई नवीन कार्य प्रारंभ करनेके पहले तथा कोई जटिल प्रश्न उपस्थित होने पर आपसे विचार-विमर्श कर लेते थे। इस बोर्ड के उत्थान तथा विकास में भी आपकी द्वारा अवर्णनीय बौद्धिक सहायता प्राप्त हुई। इस स्वर्गीय आत्मा का पूर्ण प्रेम महाराज श्री का पूर्ण आत्मीयन था। उनकी

बुद्धिमत्ता इस संस्थारूपी लता का पूर्ण आधार थी। उनके दिवंगत होने से संस्था की बहुत बड़ी क्षति हुई। अतएव उनका स्मरण यह बोर्ड और इसके कार्यकर्ता-गण आजीवन करते रहेंगे।

बोर्ड को भारत-व्यापी बनाने के लिए नई योजना

वैसे तो बोर्ड अपने प्रारंभिक कालसे परीक्षा लेकर उत्तीर्ण छात्रों को पारितोषिक एवं प्रमाणपत्र देता आ रहा था। परंतु धीरे धीरे अन्य संस्थाओं के संपर्क में आने के पश्चात् बोर्ड के भूतपूर्व रजिस्ट्रार पं० राजधारी त्रिपाठी शास्त्रीजी ने यह अनुभव किया कि जबतक देशव्यापी संस्थाओं के निरीक्षण के लिये किसी निरीक्षक (इन्सपेक्टर) की नियुक्ति न हो, असमर्थ धार्मिक पाठशालाओं को प्रतिवर्ष ग्रांट स्वरूप सहायता न दी जाय, एवं उच्च शिक्षणाभिलाषी छात्रों को छात्रवृत्ति देकर उनका उत्साह न बढ़ाया जाय तबतक बोर्ड सर्वांग-पूर्ण नहीं हो सकता। इसप्रकार पूज्य श्री आनन्दऋषिजी म० श्री के चरणारविंदो में त्रिपाठी शास्त्रीजी अर्ज करते रहे। परन्तु बोर्ड के पास इतनी शक्ति नहीं होने से म० श्री इस आवश्यक बात को टालते रहे। अंत में इस योजना को कार्यरूपमें परिणत करने का योग आने पर अमरावती चातुर्मास के पश्चात विक्रमाब्द २००३ में अमरावतीनिवासी श्रीमान धर्मप्रेमी दानवीर सेठ बाबूलाल दादाभाई बखारी ने ५००० पांच हजार रुपये इस नूतन योजना के लिये निकाले। इनके अतिरिक्त स्वामगाँव निवासी श्री हीरालालजी मोतीलालजी बोरा, श्री गणेशलालजी चंपालालजी बोरा, श्री हवक (?) चंद हेमचंदजी शाह और आकोलानिवासी श्री लालचन्दजी माणकचंदजी कोटेचा ने आर्थिक सहायता का अभिवचन देकर इस कार्य की पुष्टि की। तत्पश्चात और भी अनेक धर्मबंधु इस कार्य को सफलीभूत बनाने के लिये उद्यत हुए। अंतमें पूज्यश्रीजी के बोदवड चातुर्मास में दि० २६-८-४६ को " श्री वर्द्धमान जैनधर्म शिक्षण प्रचारक सभा की स्थापना बोर्ड के सहायक रूपसे हुई और इसका कार्यालय पाथर्डी में रखना ऐसा निश्चय हुआ। इस संस्था के मूल आधार स्तम्भ ५००१ के एक मुश्त देनेवाले ये महानुभाव हैं।

१	श्रीमान दानवीर सेठ बाबूलाल दादाभाई बखारी			अमरावती
२	,,	,,	गुलाबचन्द ओंकारभाई गोमसिया	बडनेरा
३	,,	,,	नथमलजी हजारीमलजी गांधी	जामखेड
४	,,	,,	पुखराजजी नेमिचन्दजी देवड़ा	औरंगाबाद
५	,,	,,	फूलचन्द जैतचन्द गोसर	जामनगर (जालना)

इन के अतिरिक्त इसी तरह श्रीवर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा के अन्तर्गत धार्मिक परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों के लिए छात्रवृत्ति देनेवाले अनेक सद्गृहस्थ हैं। उनमें अनेक ऐसे सज्जन हैं, जिन्होंने कि २५००, २०००, ११०१, ५०१, ३०० २५१, और १०१ तक की सहायता दी है। यह नामावली बहुत बड़ी है। इसी

प्रकार पाथर्डी धार्मिक परीक्षा बोर्ड की परीक्षाओं के लिए छात्र तैयार करने वाली संस्थाओं के सहायतार्थ सभा के और अनेक महानुभावोंद्वारा ग्रांट स्वरूप सहायता दी गई। यह नामावली भी बहुत बडी है। और इस विभाग में छात्रवृत्ति विभाग की तरह ही बडी बडी रकमें प्राप्त हुई है।

छात्रवृत्ति-सबंधी नियम

१) इस वृत्ति का उम्मीदवार वही छात्र होगा जिसने कि श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की कम से कम प्रथम परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली होगी।

२) छात्रवृत्ति आगामी परीक्षा के लिए स्वीकृत की जाती है, अत इस परीक्षा में सफलता प्राप्त कर लेने पर ही पूरी वृत्ति (बारह मास की) एक साथ दी जायगी।

३) एक बार स्वीकृत की हुई छात्रवृत्ति सफलता प्राप्त करते जाने पर बोर्ड की सिद्धान्ताचार्य परीक्षा तक रखी जायगी और अच्छे अंक प्राप्त करनेवाले छात्रों की वृत्ति में क्रमश वृद्धि भी होती रहेगी।

४) छात्र को अपने मासिक अभ्यास का विवरण संस्था के अध्यक्ष या मंत्री और प्रधानाध्यापक से प्रमाणित करा कर सभा के कार्यालय में पाथर्डी भेजते रहना होगा और सभा के निरीक्षक [इन्स्पेक्टर] निरीक्षण के लिए आवें तो छात्र को उपस्थित रहकर अपने अभ्यास का परिचय देना होगा।

५ छात्रवृत्ति विद्यालयीय छात्रों को ही दी जायगी। स्वतंत्र छात्र (प्रायव्हेट) छात्रवृत्ति के उम्मीदवार नहीं माने जायगे।

ग्रांट-सबंधी नियम

(१) वह संस्था जो श्री ति० र० स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी की परीक्षाओं में कम से कम तीन साल से छात्रों को सम्मिलित करा रही हो, तथा जिसका निरीक्षण सभा के निरीक्षक द्वारा किया गया हो और बोर्ड के परीक्षाफल तथा निरीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर जिस की सहायता के योग्य पात्रता सिद्ध हो चुकी हो, सभा-ग्रांट (सहायता) की उम्मेदवार मानी जायगी।

(२) जिस संस्था के लिए सहायता स्वीकृत की जायगी, उसको पाथर्डी परीक्षा बोर्ड की परीक्षाओं के लिए छात्र तैयार करना अनिवार्य होगा।

(३) संस्था का कार्य असमाधानकारक प्रतीत होने पर सहायता बंद कर दी जायगी और पुन तीन साल के कार्य को देखकर ही सहायता देने का विचार किया जा सकेगा।

(४) स्वीकृत सहायता दो किस्तों में (प्रथम किस्त मई माह में और दूसरी अक्टूबर में) भेजी जायगी।

(४) संस्था को अपनी धार्मिक शिक्षण-संबंधी गति-विधि से सभा के कार्यालय को प्रतिमास के अंत में परिचित कराना होगा छात्रवृत्ति और ग्रांट (सहायता) की रकम का निर्णय उस विभाग की निर्णायक समिति करेगी।

परीक्षा में उत्तीर्ण विशिष्ट छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करते समय और असमर्थ संस्थाओं को ग्रांट स्वरूप सहायता देते समय बोर्ड इस बात का बराबर ध्यान रखता है कि ध्रौव्य-फंड कायम रखने हुए उसके व्याज से यह कार्य सुचारु रूप से चलता रहे। इस दीर्घ दृष्टि से काम लेने पर आज इस " *श्री वर्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा* से छात्रवृत्ति प्राप्त कर देश के अनेक छात्र-छात्राएँ बोर्ड की प्रारंभिक परीक्षा से आचार्य परीक्षा तक का अभ्यास कर रही है। सभा द्वारा प्रत्येक परीक्षा के परीक्षार्थी को छात्र वृत्ति इस प्रकार दी जाती है।

जैन सिद्धांताचार्य परीक्षा,	प्रत्येक खंड	६६ रु	धार्मिक
,, सिद्धांतशास्त्री परीक्षा	,, ,,	७२ रु	,,
,, ,, प्रभाकर ,,	द्वितीय खंड	६० रु	,,
,, ,,	प्रथम ,,	४८ रु	,,
,, ,, विशारद ,	द्वितीय ,,	३६ रु	,
, ,, ,, ,	प्रथम ,	२४ रु	,,

श्री ति र स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की वार्षिक सभाएँ

बोर्ड की वार्षिक सभा प्रतिवर्ष जिस स्थानपर बोर्ड के सदुपदेशक पं रत्न मुनि श्री आनंदऋषिजी म का चातुर्मासार्थ विराजना होता है, वहींपर होती है। क्योंकि सभा के शुभावसर पर पधारनेवाले सज्जनों को सभा की कार्यवाही के साथ साथ " एक पथ दो काज, इस न्याय से संतों के पुनीत दर्शन एवं व्याख्यान वाणी का भी अलभ्य लाभ प्राप्त हो जाता है। बोर्ड के स्थापना-काल से ही इस नियम का बडी मुस्तैदी से पालन किया जा रहा है। वार्षिक सभा के समय बोर्ड की उन्नति के हेतु अनेक नई योजनाएँ बनाकर उन्हें कार्य रूपमें परिणत की जाती है। प्रत्येक वर्ष का विवरण लिखनेपर लेख का कलेवर बहुत अधिक बढ जाने की संभावना से मैं केवल एक दो साल की महत्वपूर्ण कार्यवाहीपर प्रकाश डालता हैं।

सन् १९४९ में भूतपूर्व ऋषिसंप्रदायाधीश वर्तमान में पूज्य उपाध्याय श्री आनंद ऋषिजी म का चातुर्मास बोदवड (खानदेश) में था। यह बोर्ड की स्थापना का दसवा वर्ष था। इस अवसरपर बोर्ड के रजिस्ट्रार महोदय ने महाराज श्री की सेवा में विद्वत्परिषद बुलाने के लिये श्रीसंघ के नाम से प्रार्थनापत्र भेजा। पत्र पढकर बोदवड श्रीसंघ ने अपने यहां विद्वत्परिषद् बुलाने और उसके लागत खर्च के दानकी उदारता बताई। तद नुसार बोदवड में दि १८-९-४९ को विद्वत्परिषद करने की घोषणा प्रकाशित कर दी। समाज के प्रसिद्ध प्राय. सब विद्वानों को निमन्त्रण पत्र भेज दिये गये। परन्तु उस समय

भारत में सांप्रदायिक द्वेषाग्निकी भयंकर ज्वाला चारों ओर प्रज्वलित हो रही थी। भय के कारण रेल्वे प्रवास किसी को इष्ट नहीं था। केवल तीन चार विद्वान् उपस्थित हुए। जिनकी मुख्य उपस्थिति अपेक्षित थी उनमें से केवल धीरजलाल के तुरखिया उपस्थित हुए। अतएव लाचार होकर उपस्थित विद्वानों ने अपनी परिषद् में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किये।

प्रस्ताव पहला

यह परिषद् पाथर्डी परीक्षा बोर्ड की नियमावली और पाठ्यक्रम का संशोधन करना उचित समझती है।

प्रस्ताव दूसरा

बोर्ड की वर्तमान नियमावली और पाठ्यक्रम सब केंद्रों तथा समाज के प्रसिद्ध विद्वानों के पास भेजकर उनसे परिवर्तन तथा परिवर्धन मंगाया जाय।

प्रस्ताव तीसरा

आई हुई सूचनायें निम्नलिखित विद्वानों की उपसमिति के पास छहमाह के अंदर पेश की जायें।

उपसमिति के विद्वान्

(१) श्री धी के तुरखिया, ब्यावर
(२) पं श्री राजधारी त्रिपाठी रजिष्टार, पाथर्डी
(३) ,, ,, अमोलकचंदजी सुरपुरिया, एम् ए. एल एल बी पूना
(४) ,, ,, सागरमलजी ओस्तवाल,भुसावल
(५) ,, ,, बद्रीनारायणजी शुक्ल, अहमदनगर

प्रस्ताव चौथा—बाहर से आइ हुइ सूचनाओं को लक्ष्य में रखकर उपसमिति एक कच्चा खाचा तैयार करे, तथा अनुकूल समय पर विद्वानों को मार्गव्यय देकर विद्वत्परिषद बुलाई जाय।

प्रस्ताव पांचवा—जब तक नवीन पाठ्यक्रम तैयार न हो जाय, तब तक वर्तमान अभ्यासक्रम से काम लिया जाय।

अध्यक्ष धी के. तुरखिया

उपसमिति के प्रस्तावानुसार नियमावली प्रत्येक केंद्रों में एवं मुख्य मुख्य मुनिवृन्द तथा विद्वानों की सेवा में भेजी गई थी। जिन में बारह मुनिराजों एवं विद्वानों ने अपनी बहुमूल्य सम्मतियाँ भेजकर हमें गौरवान्वित किया।

इस बोदवड चातुर्मास में दि १८ सितंबर १९४६ को बोर्ड की जो दसवीं वार्षिक सभा हुई उस में अन्य कारवाई के अतिरिक्त एक विशेष कार्य यह हुआ कि पं राजधारी त्रिपाठीजी के जिम्मे प्रारंभ से जो रजिस्ट्रार एवं सेक्रेटरी इन दोनों पदों का उत्तरदायित्व था, इस लिये इन के भार को हलका करने के लिए पंडितजी को सिर्फ

रजिस्ट्रार पद एवं उन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र प. चन्द्रभूषण त्रिपाठीजी को सेक्रेटरी पद का कार्यभार सर्वानुमति से दिया गया। ये भी अपने पिताश्री की तरह ही संस्था के प्रारंभिक काल से एकनिष्ठ होकर सेवा कर रहे हैं।

उपर्युक्त मुख्य मुख्य मुनिराजों, विद्वानों एवं केंद्रा यत्नों की ओर से पाठ्य क्रम एवंनियमोपनियम संबंधी सम्मतिया आजाने पर दि १६-७-४७ के रोज उपसमिति की बैठक शुभस्थान बेलापुर रोड (श्रीरामपुर अहमदनगर) में बुलाई गई। उपसमिति के सब विद्वान् उपस्थित थे। सर्व सम्मति से पाठ्यक्रम का कच्चा ढाचा तैयार करके पुन मुख्य मुख्य मुनिराजों, विद्वानों एवं केंद्रा यत्नों के पास भेजकर उनकी सम्मतिया मगाई गई। तदनतर दि ८-१०-४७ के रोज शुभस्थान बेलापुर रोड श्री रामपुर (अहमदनगर में श्री पार्श्वनाथ जैन विद्याश्रम (हिंदू विश्व विद्यालय) काशी के तत्कालीन अधिष्ठाता) प. शांतिलाल वनमाली शेठ "न्यायतीर्थ" की अध्यक्षता में विद्वत्परिषद् बुलाई गई इस परिषद में पंद्रह विद्वान् उपस्थित हुए। इन के अतिरिक्त जैन धर्म के और भी अनेक सद्गृहस्थ इस आयोजन में सम्मिलित हुये थे। बोर्ड के प्रारंभिक काल से अपनी प्रेरणा से समाज के उदार व्यक्तियों द्वारा सहायता दिलाकर उसे विकसित करने वाले प. रत्न पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के समक्ष बहुत ऊहापोह के पश्चात् दो दिन परिश्रम करके विद्वानों ने परीक्षा का पाठ्यक्रम एवं नियमोपनियम तैयार करके बोर्डकी कार्यकारिणी समिति को समर्पित किया और निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए-

प्रस्ताव पहला --बोर्ड की परीक्षासबंधी नियमावली और उसके पाठ्यक्रम का उचित सशोधन कर के धार्मिक परीक्षा बोर्ड की कार्यकारिणी समिति को यह परिषद सुपूर्द करती है। वह समिति उचित संशोधन करके अपने कार्यरूप में परिणत करे। प्रमुख स्थान से।

प्रस्ताव दूसरा - परीक्षा बोर्ड की यह विद्वत्परिषद् सर्वानुमति से निश्चय करती है कि धार्मिक परीक्षा बो के द्वा पाठ्य क्रम का सुचारु रूप से योग्य अध्ययना ध्यापन एवं उसे लोकोपयोगी बनाने के लिए प्रतिवर्ष ग्रीष्मावकाश में जैन शिक्षण वर्ग का किसी केंद्रस्थान पर टर्म (ज्ञान सत्र) खोलने का आयोजन किया जाय और उसका समुचित प्रबंध करने के लिए "श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा ,, पाथर्डी से अनुरोध करती है।

प्रस्ताव तीसराः--कन्याओं और महिलाओं के योग्य प्रथम तीन परीक्षाओं तक जैन पाठ्य क्रम निश्चित करने के लिए एक उपसमिति निम्न सज्जनों की संगठित की जाती है।

१) पं रतनलालजी संघवी "न्यायतीर्थ,,	छोटीसादडी
२) पं. धीरजलालजी के तुरखिया	ब्यावर
३) पं शान्तिलालजी वनमाली शेठ	बनारस

४) पं. सूर्यमलजी चोरडिया खाचरोद
५) रजिस्ट्रार श्री धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी (संयोजक)

प्रस्ताव चौथा —धर्मभूषण, सिद्धांतविशारद, सिद्धांत प्रभाकर, सिद्धांत शास्त्री सिद्धांताचार्य में उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को निम्न उपाधियाँ क्रमशः दी जावें।

१ "श्री जैन धर्म भूषण,,
२ "श्री जैन सिद्धांत विशारद,,
३ "श्री जैन सिद्धांत प्रभाकर,,
४ "श्री जैन सिद्धांत शास्त्री
५ "श्री जैन सिद्धांताचार्य

प्रस्ताव पांचवां —परीक्षकों का उचित चुनाव करने के लिए और उचित पारिश्रमिक देने का निश्चय करने के लिए निम्न सदस्यों की एक "परीक्षकसमिति,, नियत की जाती है।

१ पं. श्री धरिलाल के. मुरलिया, ब्यावर
२ पं. श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, ,,
३ ,, रजिस्ट्रार धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी

प्रस्ताव छट्ठा —परीक्षा बोर्ड द्वारा निर्धारित परीक्षाओं की माध्यम भाषा संस्कृत अथवा हिंदी रहेगी। प्रांतीय भाषा में भी लिखने की अनुमति दी जा सकेगी।



देवलापूर रोड - श्रीरामपुर (अहमदनगर) में जुलाई वर्ष विद्वत्परिषद् द्वारा "श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी (अहमदनगर) के लिए संशोधित नियमोपनियम तथा निर्धारित पाठ्य क्रम

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड,पाथर्डी (अ.नगर)

—नियमोपनियम—

१ बोर्ड का नाम

"श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड" यही नाम इस बोर्ड का कायम रहेगा।

२—बोर्ड की स्थापना

स्थानकवासी जैन समाज के कविसम्राट् पूज्यपाद श्री १००८ श्रीतिलोक ऋषिजी महाराज के सुशिष्य, स्वर्गीय स्वनामधन्य गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी महाराज के शिष्य, वर्तमान श्रीऋषिसम्प्रदायाधीश श्रीमज्जैनाचार्य, बाल ब्रह्मचारी, श्री १००८ पूज्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज श्री के सदुपदेश से ता. २४।१२।३६ के रोज स्थापित।

३ स्थान

बोर्ड के आद्य सहायक,संयोजक, दानवीर सेठ श्री नानचन्द भगवानदासजी दूगड, मु. घोडनदी (पूना) ने वर्तमान पूज्यश्रीजी की सूचनानुसार मु. पाथर्डी में आकर

बोर्ड की स्थापना जाहिर की और इसी स्थान को प्रधानकार्यालय मु. पो. पाथर्डी (जिला अहमदनगर) रहेगा।

४—बोर्ड का उद्देश्य

जिन जिन स्थानों में स्थानकवासी जैन समाज तथा जैनेतर जाति की तरफ से धार्मिक तथा व्यावहारिक पाठशालाएँ चल रही हों, उन पाठशालाओं में तथा सिद्धांतशालाओं में स्थानकवासी जैन धर्म के अनुकूल धार्मिक अभ्यास को उत्तेजन देना तथा धार्मिक ज्ञान में बालकों की रुचि उत्पन्न करना, उस में उत्तेजना देने के लिए तथा स्थानकवासी जैनसिद्धांत की जानकारी के लिये परीक्षाएँ कायम करना, उन परीक्षाओं में जैन अजैन सभी छात्रों को बोर्ड की नियमावली के अनुसार प्रमाणपत्र तथा पारितोषिक देना ये बोर्ड के उद्देश्य हैं।

५ बोर्ड का वर्ष मिति (मास) कार्तिक शुद्ध १ से कार्तिक कृष्ण दिपमालिका तक माना जायगा।

६ बोर्ड के सदुपदेशक महाराज श्री संस्थापकजी अध्यक्षजी, व्यवस्थापकजी, रजिस्ट्रारजी. तथा मन्त्रीजी के नाम रिपोर्ट व नियमावली के मुखपृष्ठपर प्रकाशित होते रहेंगे।

७ बोर्ड में निम्नश्रेणी के सभासद नियुक्त किये जायेंगे—

१ संरक्षक—एक मुश्त या किस्त से ५०१ रुपये या इस से अधिक देनेवाले।

२ आजीवन सदस्य „ „ २०१ रुपया „

एवं विशिष्ट परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों के लिए विशिष्ट पदकप्रदानार्थ क्रमश। २५१ २०१ १५१ रुपये देनेवाले।

३ आश्रयदाता—१०१ रुपये स्थायी रकम में अथवा विशिष्ट पदक में देनेवाले।

४ पदक दाता—५१ रुपये देनेवाले।

५ साधारण सभासद—एकमुश्त २५ रुपये देनेवाले।

८ जो सज्जन बोर्ड के विकास के लिए बौद्धिक सहायता अर्थात् जिस कर्तव्य के द्वारा अलौकिक प्रभाव उत्पन्न हो ऐसी कारवाई करेंगे, उनको भी संरक्षक मेम्बरपद प्रदान किया जायगा और उनका फोटो प्राप्त होने पर ऑफिस में रखा जायगा।

९ संरक्षक सभासदों का ब्लाक एवं आजीवन सदस्य तथा आश्रयदाताओं के शुभ नाम वो के प्रत्येक बृहद् रिपोर्ट में प्रकाशित रहेंगे और संरक्षक मेम्बरों की तरफ से उनका बड़ा फोटो प्राप्त होनेपर आफिस मे रखा जायगा

१० बोर्ड की सभायें इस बोर्ड को चलाने के लिये अधोलिखित योग्यता सम्पन्न सदस्यों की एक साधारण सभा होगी।

११ सभासदों की योग्यता—ऊपर लिखे हुए ६ प्रकार के सभासदों में धर्मनिष्ठता आस्तिक्य, उत्साह, बोर्ड के लिए अभिरुचिसम्पन्न होना आवश्यक है।

१२ साधारण सभा के अधिकार—कार्यकारिणी मंडल का चुनाव करना, पदाधिकारियों का चुनाव करना, आडिटर तथा ट्रस्ट मंडल का चुनाव करना, बोर्ड का नियमोपनियम तैयार करना या करवाना वादग्रस्त जटिल विषयों का निर्णय देना, आदि बोर्ड की सम्पूर्ण सत्ता इस सभा के अधिकार में रहेगी।

१३ साधारण सभा की बैठक—साधारण सभा की बैठक प्रति तीसरे वर्ष होना अनिवार्य है किसी विशेष प्रसंग में बीच में भी बुलाई जा सकती है और इस सभा की सूचना १५ दिन पहले सभी सदस्यों को दी जायगी।

१४ साधारण सभा का कोरम कम से कम २१ सदस्यों का होगा, मंत्री की उपस्थिति अनिवार्य है।

१५ सभा के नियत समय में कोरम की पूर्ति नहीं हुई तो सभा स्थगित समझी जायगी, स्थगित सभा १५ दिन के बाद फिर बुलाई जा सकेगी, उस समय उपस्थित सदस्य सभा का कार्य चलाएँगे।

१६ सभा के नियत समय से १५ मिनट तक अध्यक्षजी सभास्थान में उपस्थित नहीं हुए तो उपस्थित सदस्यों में से अध्यक्ष चुनकर सभा का कार्य चलाया जायगा, अध्यक्षजी के उपस्थित होने पर उनका स्थान दे दिया जायगा,

१७ इस सभा के अध्यक्ष यावज्जीव वयोवृद्ध दानवीर सेठ लालचन्दजी भगवानदासजी दूगड़ रहेंगे, उनके पश्चात् संरक्षक मेम्बरों में से अध्यक्ष का चुनाव बहुमत से होगा।

१८ साधारण सभा के सभासदों की सम्मति आवश्यकीय विषयों पर पत्रद्वारा भी मंगाई जा सकती है, इस तरह ११ मेम्बरों की मतैक्यता होनेपर वह प्रस्ताव अमल में रहेगा। यह नियम सरक्युलर मीटिंग के लिये समझना चाहिए।

—कार्यकारिणी सभा—

१९ साधारण सभा से चुने हुए १५ सदस्यों की यह सभा कायम रहेगी।

कार्यकारिणी सभाके अधिकार

२० बोर्ड के खर्च के लिये बजट तैयार कर सभा को देना, साधारण सभा के प्रस्तावों को अमल में लाना, वैतनिक कर्मचारियों के कार्यों की देखरेख करना, वार्षिक रिपोर्ट तैयार कर प्रकाशित कराना, ट्रस्ट मंडल की कार्यवाही का निरीक्षण करना।

२१ कार्यकारिणी सभा का चुनाव प्रति तीसरे वर्ष हुआ करेगा।

२२ यह सभा अपने अध्यक्ष उपाध्यक्ष का चुनाव स्वयं करेगी।

२३ जनरल सभा तथा कार्यकारिणी सभा के मंत्री एकही रहेंगे जो बोर्ड मंत्री रहेंगे।

२४ कार्यकारिणी सभा मंत्रीजी से सूचित स्थान पर प्रतिवर्ष अथवा जरूरत पड़ने पर बीच में भी बुलाई जायगी। इस का कोरम कम से कम ५ सदस्यों का होगा जिस में मंत्री की उपस्थिति अनिवार्य होगी।

२५ नियत समय पर कोरम पूरा नहीं हुआ तो मीटिंग स्थगित समझी जायगी।

२६ स्थगित मीटिंग पुनः ७ रोज बाद बुलाई जायगी, उस समय भी यदि कोरम पूरा न हुआ तो जितने सदस्य उपस्थित रहेंगे, वे ही सभा का कार्य पूर्ण कर लेंगे।

२७ साधारण सभा और कार्यकारिणी सभा के प्रस्ताव बहुमत से पास होंगे, दोनों पक्षों के समान मत होनेपर अध्यक्ष को १ मत अधिक देने का अधिकार रहेगा, जटिल विवादग्रस्त अवसर प्राप्त होनेपर बोर्ड के जन्मदाता पूज्यश्रीजी की सूचना निर्णयरूपसे सब को मान्य होगी।

२८ किसी सभासद को विशेष प्रसंग पर कारणवशात् सभासदता से पृथक् करने का अधिकार कार्यकारिणी सभा के अध्यक्ष को रहेगा।

–बोर्ड के पदाधिकारी–

२६ अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, व्यवस्थापक, रजिस्ट्रार, मंत्री ये बोर्ड के पदाधिकारी रहेंगे।

३० अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, व्यवस्थापक, ये तीन अवैतनिक और रजिस्ट्रार, तथा मंत्री ये सवैतनिक कर्मचारी होंगे।

–कार्यकारिणी समिति के अध्यक्षोपाध्यक्ष के कर्तव्य व अधिकार–

३१ बोर्ड का कार्य सुचारु और शान्ति से चलाना, संस्था की सपूर्ण कार्यवाही पर ध्यान रखना, संस्था में किसी विषय पर मतभेद उपस्थित हो जाय तो अपना मत देकर दूर करना, आवश्यकतानुसार रजिस्ट्रार, सेक्रेटरी के अतिरिक्त संस्था में वैतनिक कर्मचारी की नियुक्ति करना, ये सभी बातें कार्यकारिणी सभा के अध्यक्ष के अधिकार में रहेंगी। अध्यक्षजी की अनुपस्थिति में उपाध्यक्षजी उन कामों की पूर्ति करेंगे।

नोट–रजिस्ट्रार तथा मंत्री की नियुक्ति श्रीमद् पूज्यश्रीजी की सलाह से कार्यकारिणी समिति करेगी।

व्यवस्थापक के कर्तव्य व अधिकार

३२ बोर्ड का पक्का हिसाब रखना, सेक्रेटरी द्वारा प्राप्त रकम की रकम को स्वीकार करना, सेक्रेटरी द्वारा किये हुए मासिक खर्च का बराबर जाच कर के उस के अनुसार बिल को चुकाना और बोर्ड के चालू खर्च के लिये रुपये २०० तक शिल्लक अपने पास रखना।

रजिस्ट्रार के कर्तव्य व अधिकार

३३ रजिस्ट्रारजी के आधीन परीक्षासम्बन्धी कारवाई अर्थात्, केन्द्रों की स्वीकृति देना, परीक्षा-तिथि नियत करके वर्तमानपत्रों में प्रकाशनार्थ भेजना, एव केन्द्र व्यवस्थापकों को सूचित करना तथा परीक्षक कायम करके उनसे प्रश्नपत्र मंगाना, संशोधन करके प्रकाशित कराना, केन्द्रों से आई हुई प्रश्नोत्तर कापियों को तत्तत् स्थानों में संशोधनार्थ भेजना, परीक्षाफल का कच्चा ढाचा समालोचना तैयार करके मंत्री के आधीन करना, रजिस्ट्रार या मंत्री के नाम पर बाहरगाम से आए हुए सभी जटिल प्रश्नों का निराकरण करके समाज को संतुष्ट रखना, तथा उन सभी लेखों की यथायत् परिस्थिति अपने रजिस्टर में दर्ज करना, आवेदनपत्रादि केन्द्रों में भेजना, और मंत्रीजी के कागजातों का निरीक्षण करके अपनी योग्य सूचना देना, परीक्षाफल प्रकाशित करना के तत्तत् स्थानों में अर्थात् हरप्रकार के सदस्यों को और केन्द्रों में भेजना, प्रमाणपत्र पदक तैयार करके उचित समय पर केन्द्रों में प्रेषित करना, ये सभी कार्य रजिस्ट्रार के आधीन रहेंगे।

मंत्रीजी के आधीन रजिस्ट्रार के अतिरिक्त सम्पूर्ण कार्यवाही जैसे संस्था में आई हुई रकमों की रसीद देना, दाताओं के पास भेजना व्यवस्थापकजी के पास रकम देकर रजिस्टर पर सही लेना, आय, व्यय का हवाविवरण अपने पास रखना, रजिस्ट्रारजी से प्राप्त रिजल्ट करके रजिस्टर पर दर्ज करना, तत्तत् केंद्रों में पाठ्यपुस्तकादि भेजना, अध्यक्ष तथा रजिस्ट्रार कीसम्मति से वार्षिक सभा की तिथि निर्णय कर के जाहिर करना तथा, निमंत्रणपत्र आदि सदस्यों के पास भेजना, आय-व्यय का मासिक बिल तैयार कर के व्यवस्थापकजी से लेना और पद्धतिअनुसार सभी कर्मचारियों को वितरण करना आदि बोर्ड सम्बन्धी सम्पूर्ण जिम्मेवारिया उनके ऊपर रहेंगी और दैनिक खर्च का निर्वाह करने के लिये १०० रुपये तक उन के पास शिल्लक रहेगा।

नोट—कारणवशात् रजिस्ट्रारजी की अनुपस्थिति में मंत्रीजी, एवं मंत्रीजी की अनुपस्थिति में रजिस्ट्रारजी का सम्पूर्ण काम चलायगें।

रजिस्ट्रार या मंत्री इन दोनों में से किसी एक को लम्बे अवकाश पर जाना हो और बोर्ड के कार्य में अड़चण पड़ती हो तो तात्कालिक कार्य चलाने के लिये योग्य व्यक्ति को योग्य वेतन से नियुक्त कर लेने का रजिस्ट्रार को अधिकार रहेगा।

' दिन दूनी रात चौगुनी ' इस कहावत के अनुसार जिस तरह बोर्ड उन्नति तथा प्रचार हो उसको ध्येय बनाकर अपने २ अधिकार के कार्यभारों को संभालेंगे, और जरूरत पड़ने पर परस्पर में बौद्धिक सहायता का आदान प्रदान कर सकेंगे।

बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज (ट्रस्टमंडल)

३५ यह बोर्ड स्थानकवासी समाज के ७ सदस्यों का होगा। रजिस्ट्रार, अध्यक्ष, व्यवस्थापक, ये ३ ट्रष्टी कायम रखकर बाकी ४ ट्रस्टियोंका चुनाव प्रति तीसरे वर्ष साधारण (जनरल) सभा करती रहेगी, सिर्फ वर्तमान रजिस्ट्रार के लिये स्थानकवासी समाज शब्द छूट है।

३६ अचानक कीसी ट्रस्टी का स्थान रिक्त हो जाय तो कार्यकारिणी समिति की सहायता से उस स्थान की पूर्ति ट्रस्ट मंडलकर सकेगा।

३७ विशिष्ट परिस्थिति में ट्रस्ट के सदस्यों में परिवर्तन करने का अधिकार कार्यकारिणी समिति को रहेगा।

ट्रस्टमंडल का अधिकार

३८ संस्था की स्थायी रकम का व्याज उत्पन्न करना तथा बैंक या साहूकारी पेढियों आदिमें जहां पर संस्था की रकम ठेव रखी जाय, वहां पर ट्रस्ट मंडल के अध्यक्ष या व्यवस्थापक के नाम से जमा करा कर उनके नाम से ठेव चिठी लेना, उचित समझे तो कोई स्थावर जायदाद संस्था के नाम से खरीदी करना व तारणपर देना, संस्था की रकम जहां रखी हो वहां से उठाना या दूसरी जगह रखना आदि,

३९ जिस स्थान पर संस्था की रकम व्याज से ठेव रूप में रखी है, वह कायदे के अनुसार मुदतबाहर न जाय इस तरफ ट्रस्ट मंडल अपना पूर्ण लक्ष रखे और कायदे के अनुसार रकम वसूली के लिये तजवीज करे।

४० ट्रस्ट मंडल को अपने अध्यक्ष तथा मंत्री का चुनाव अपने मंडल में से करने का अधिकार रहेगा, कार्यकारिणी सभा के अवसर पर ट्रस्ट मंडल अपनी कार्यवाही का रिपोर्ट पेश करेगा, और उस की सम्मति से कार्यकारिणी सभा बजट तयार करेगी।

४१ बोर्ड की स्थायी रकम में से ट्रस्ट मंडल या कार्यकारिणी सभा को खर्च करने का अधिकार नहीं है। किसी वर्ष में संयोग ऐसा प्रसंग आ भी जाय तो दूसरे वर्ष उस की पूर्ति कर देनी होगी।

४२ बोर्ड में एक पटक खाता है उसका व्याज पटक देने में ही लगाया जा सकता है, दूसरे मद में नहीं।

४३ बोर्ड में निर्धारित पाठ्यक्रम के प्रकाशनार्थ कितनेक दाताओं ने सहायता दी है, वह रकम " धार्मिक पुस्तक-प्रकाशन " खाते बोर्ड में जमा है। उसका विनियोग नीचे लिखे उपनियमों के अनुसार होगा।

(क) इस रकम के व्याज से श्री ति र. स्था जैन धार्मिकपरीक्षा बोर्ड पाथर्डी की पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन तथा उन उन पुस्तकों के सम्पादकों को पुरस्कार देने, आदिकार्य होते रहेंगे।

(ख) इस खाते की मूल रकम को खर्च करने का अधिकार किसी को नहीं है किसी वर्ष में ऐसा प्रसंग आ जाय तो दूसरे वर्ष में उसकी पूर्ति कर देनी चाहिए।

(ग) ये पुस्तकें मूल्य से दी जायेंगी, इनकी बिक्री का पैसा उसी खाते में जमा होता रहेगा।

४४ इस संस्था में खर्च से अधिक रकम उत्पन्न हो जाने पर भी किसी दूसरी संस्था में खर्च करने का अधिकार ट्रस्ट मंडल या कार्यकारणी सभा को नहीं है, किन्तु इसी के धन को और अधिक विशाल बनाने की योजना करें।

प्रसंगवशात् बचत रकम का उपयोग श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षणप्रचारक सभा, के अन्दर कर सकते है।

४५ समाजहित के लिये अधिक परिश्रम करके इस बोर्ड के जन्मदाता श्रीमज्जैनाचार्य, पूज्यश्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज ने समाज को जागृत कर उस की सहायता से इस बोर्ड को स्थापित कराया है इसलिये साधारण सभा कार्यकारिणी सभा, ट्रस्ट मंडल, और कर्मचारी वर्ग को पूज्यश्रीजी की सूचना सदैव मान्य होगी।

४६ प्रसंगोपात्त पूज्यश्रीजी की सूचना के अनुसार बोर्ड के रजिस्ट्रार या मंत्री जो कार्य कर लेंगे, वह बोर्ड को सदैव मान्य होगा।

४७ बोर्ड की परीक्षासंबंधी सम्पूर्ण कारवाई करने का रजिस्ट्रार तथा मंत्री को स्वतंत्र अधिकार रहेगा।

४८ मंत्रीजी के प्रबन्ध से इस बोर्ड में एक विद्वत्परिषद् कायम रहेगी, जो समयानुसार महाराजश्री की सूचना को लक्ष्य में रखते हुए परीक्षाओं के पाठ्यक्रम तथा नियमोपनियमों में न्यूनाधिक्य कर सकेगी।

४९ धार्मिक परीक्षाओं में जिन पाठशालाओं की उत्तरोत्तर उन्नति दीख पड़ेगी, उन पाठशालाओं के अध्यापकों को बोर्ड की तरफ से अध्यापकीय प्रमाणपत्र तथा पुरस्कार दिया जायगा।

५० उक्त नियमों में परिवर्तन, परिवर्धन, आवश्यकतानुसार, जनरल सभा द्वारा होता रहेगा।

५१ इस नियमावली का अमल दरामद वीर स २४७४ मिति कार्तिक शुक्ल १ से माना जायगा।

उक्त नियमोपनियम हम लोगों की दृष्टि से योग्य है, संशोधन, परिवर्धन, करके प्रकाशित करने के लिए स्वीकृत की जाती है।

हस्ताक्षर

१ श्री चन्द्रभान रूपचंद डाकलिया- बेलापुररोड
२ श्री माणकचंद किसनदास मुथा–अहमदनगर
३ श्री रतनचंद भिकमदास वाठिया–पनवेल

सदस्य

नियमावलि-संशोधन-समिति
श्रीतिलोकरत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड-पाथर्डी (अहमदनगर)

॥ ॐ अर्हन् ॥

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी, (अहमदनगर)

— परीक्षासम्बन्धी नियमोपनियम —

१— इस बोर्ड की परीक्षाएँ प्रतिवर्ष ७ प्रकार की होंगी – [१] प्रवेश, [२] प्रथमा [३] धर्मभूषण, [४] स्था जैन सिद्धान्तविशारद, [५] स्था जैन सिद्धान्तप्रभाकर, [६] स्था जैन सिद्धान्तशास्त्री, [७] स्था जैन सिद्धान्ताचार्य। इन परीक्षाओं में से किसी भी प्रान्त के जैन-अजैन परीक्षार्थी प्रविष्ट हो सकते हैं।

२— प्रवेश और प्रथमा परीक्षा में दो दो पत्र होंगे, प्रत्येक पत्र १०० पूर्णांक का होगा। उत्तीर्ण होने के लिए छात्रों को प्रत्येक पत्र में कम से कम ३५ अंक प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

३— प्रवेश परीक्षा परीक्षार्थी स्वेच्छानुसार लेखी या मौखिक दे सकता है, जिसका उल्लेख आवेदन पत्र में स्पष्ट कर देना चाहिए

४— प्रवेश परीक्षा सम्पूर्ण ही होगी, अर्थात् दोनों पत्र की परीक्षा एक ही वर्ष में समाप्त करनी होगी।

५— प्रथमा परीक्षा लेखी ही होगी। इस परीक्षा को परीक्षार्थी अपने योग्यतानुसार सम्पूर्ण या पत्रश भी दे सकता है।

(क) उक्त दोनों परीक्षाओं में प्रथम पत्र में अनुत्तीर्ण और द्वितीय पत्र में उत्तीर्ण छात्रों को पुन सम्पूर्ण परीक्षा देनी होगी, परन्तु प्रथम पत्र में उत्तीर्ण एवं द्वितीय पत्र में अनुत्तीर्ण परीक्षार्थियों को अगले वर्ष में केवल द्वितीय पत्र की ही परीक्षा देनी होगी।

(ख) उक्त दोनों परीक्षाओं में से अपने योग्यतानुसार किसी भी परीक्षा में प्रविष्ट हो सकता है।

-- धर्मभूषण या स्था जैन सिद्धान्तविशारद परीक्षा --

६— इन परीक्षाओं में २-२ खंड होंगे और हरएक खंड में दो दो पत्र होंगे।
(क) ये परीक्षाएँ सम्पूर्ण या खण्डश ली जायेंगी पत्रश नहीं।

ख) इन परीक्षाओं में सम्पूर्ण परीक्षा देनेवाला परीक्षार्थी प्रथम खंड में अनुत्तीर्ण होकर द्वितीय खण्ड में उत्तीर्ण है, तो उसको पुन सम्पूर्ण परीक्षा देनी होगी, परन्तु यदि प्रथम खण्ड में उत्तीर्ण है तो उसको अगले वर्ष सिर्फ द्वितीय खण्ड की ही परीक्षा देनी होगी।

ग) प्रथमा परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाला छात्र इन दोनों परीक्षाओं में से किसी एक में प्रविष्ट हो सकेगा। परन्तु धर्मभूषण परीक्षोत्तीर्ण छात्र "सिद्धांतप्रभाकर" परीक्षा में प्रविष्ट नहीं हो सकेगा।

७-प्रवेश, प्रथमा, धर्मभूषण, सिद्धांतविशारद, इन चारों परीक्षाओं में उत्तीर्ण परीक्षार्थी निम्न श्रेणियों में विभक्त किए जायेंगे।

क) प्रथम श्रेणी—६० प्रतिशत अथवा अधिक अंक प्राप्त करने पर
ख) द्वितीय ,,—४५ ,, ,, ,, ,, ,,
ग) तृतीय ,,—३५ ,, ,, ,, ,, ,,

८—उक्त परीक्षाओं के प्रश्न पत्र हिन्दी भाषामें रहेंगे, प्रश्नोत्तर अपनी मातृभाषा हिन्दी, मराठी, गुजराती, में लिखे जा सकते हैं। धर्मभूषण या विशारद में प्रत्येक पत्र के पूर्णांक १०० रहेंगे, उत्तीर्ण होने के लिए प्रत्येक पत्र में ३५ अंक प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

—श्वे॰ जैन सिद्धान्तप्रभाकर परीक्षा—

१०—यह परीक्षा दो खण्डों में ली जायगी, नियम में ६ (ख) इस परीक्षा के लिए भी लागू होगा।

११—इस परीक्षा में तत्तत् पाठ्यग्रंथों के प्रश्नपत्र तत्तत् भाषा में में रहेंगे, अर्थात् संस्कृत पाठ्यग्रंथ के संस्कृत में, प्राकृत में एवं हिंदी के हिन्दी में रहेंगे।

१२—इस बोर्ड की "सिद्धांतविशारद" परीक्षा या तत्समकक्ष परीक्षाओं में उत्तीर्ण परीक्षार्थी ही इस परीक्षा में प्रविष्ट हो सकेंगे।

श्वे॰ जैन सिद्धांतविशारद परीक्षा की समकक्ष परीक्षाएं

क) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, की, "प्रथमा परीक्षा" (जैन दर्शन लेकर)
ख) गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारस, की प्रथमा परीक्षा
ग) बंगाल संस्कृत एसोसियेशन, कलकत्ता, की न्यायप्रथमा

—श्वे॰ जैन सिद्धांतशास्त्री परीक्षा—

१३) यह परीक्षा तीन खण्डों में होगी, हरएक खण्ड में तीन तीन पत्र रहेंगे। यह परीक्षा खण्डशः दी जायगी।

क) जो छात्र इस बोर्ड की प्रभाकर परीक्षा उत्तीर्ण होंगे, अथवा तत्समकक्ष परीक्षाओं में उत्तीर्ण होंगे वे ही प्रविष्ट हो सकेंगे

ख) "स्था. जैन सिद्धांतप्रभाकर" की समकक्ष परीक्षाएँ—

१) धार्मिक परीक्षा बोर्ड, रतलाम, की, "विशारद परीक्षा"
२) गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस, की "मध्यमा"—
३) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की, मध्यमा"—(जैन दर्शन लेकर)
४) बंगाल संस्कृत एसोशिएशन कलकत्ता की"न्याय मध्यमा परीक्षा"

-स्था जैन सिद्धांताचार्य परीक्षा-

१४—यह परीक्षा तीन खण्डों में होगी, हरएक खण्ड में तीन तीन पत्र रहेंगे यह परीक्षा भी खण्डश ही होगी।

क) तीसरे खण्ड में मौखिक परीक्षा शास्त्रार्थ पद्धति पर होगी जो जैन दर्शन के विशिष्ट विद्वान् द्वारा अथवा एक अधिक प्रश्न पत्र द्वारा ली जायगी।

ख) इस बोर्ड की शास्त्री परीक्षा अथवा तत्समकक्ष परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्र प्रविष्ट हो सकेंगे।

—"स्था जैन सिद्धांतशास्त्री" की समकक्ष परीक्षाएं—

१) श्री धार्मिक परीक्षा बोर्ड, रतलाम की "शास्त्री परीक्षा"
२) गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस, की ,,
३) बंगाल संस्कृत एसोशिएशन, कलकत्ता, की "न्यायतीर्थ परीक्षा"
४) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की "साहित्यरत्न,,परीक्षा (जैन दर्शन लेकर)
५)किसी भी युनिवर्सिटी की बी ए परीक्षा (संस्कृत या अर्धमागधी लेकर)

१५)-सिद्धांतप्रभाकर, सिद्धांतशास्त्री, सिद्धांताचार्य इन तीनों परीक्षाओं में हरएक पत्र में पूर्णांङ्क १०० रहेगा, उत्तीर्ण होने के लिए प्रत्येक पत्र में कम से कम ४० अंक प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

—श्रेणी विभाग नियम ३ के अनुसार ही रहेगा—

१६—एकदम सिद्धांतशास्त्री, अथवा सिद्धांताचार्य परीक्षा में प्रविष्ट होने के लिए किसी विशिष्ट परीक्षार्थी को स्वीकृति प्रदान करने का अधिकार रजिस्ट्रार महोदय को है।

१७—आवेदन पत्र भरने से पूर्व समकक्ष परीक्षाओं में उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को अपने आवश्यक उत्तीर्ण परीक्षा के प्रमाण पत्र को या उस की प्रमाणित प्रतिलिपि को भेजकर रजिस्ट्रार श्री तिलोक र० स्था० जैन धा० परीक्षा बोर्ड पाथर्डी अहमदनगर, की विशेष लिखित आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए।

—आवेदन पत्र सम्बन्धी नियम—

१८— परीक्षा में प्रविष्ट होने के लिए आवेदनपत्र प्रतिवर्ष १५ अक्टूबर के पूर्व रजिस्ट्रार श्री तिलोकरत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी (अहमदनगर) के

कार्यालय में प्रार्थना पत्र आ जाना चाहिए, एवं आवेदनपत्र प्राप्त हो जाने पर खाना पूरी करके १५ दिसम्बर तक रजिस्ट्रार कार्यालय में आ जाना चाहिए, इसके पश्चात् आए हुये आवेदनपत्रों को स्वीकृत करना या न करना बोर्ड की सुविधा पर निर्भर है।

१६—आवेदनपत्र सम्पूर्ण छात्रों का एक पाठशाला से एक ही बार आना चाहिए।

२०—छात्र स्वयं आवेदनपत्र के लिए प्रार्थना न करें, पाठशालीय छात्रों को केन्द्र व्यवस्थापक द्वारा प्रार्थनापत्र भेजना चाहिए।

प्राइवेट छात्र अपने समीपस्थ केन्द्र व्यवस्थापक महोदय के मार्फत आवेदनपत्र मंगा सकते हैं, और उन्हीं के द्वारा भेज सकते हैं।

२१—आवेदन पत्र के पिछले पृष्ठ पर वांछनीय परीक्षा से पूर्व की परीक्षाएं किस सन् में किस केन्द्र से उत्तीर्ण की हैं, इसका उल्लेख अवश्य करना चाहिए, अन्यथा आवेदनपत्र स्वीकृत न हो सकेगा।

— परीक्षा—शुल्क—

२२—जब तक बोर्ड की तरफ से नई सूचना न निकले तब तक प्रवेश, प्रथमा, धर्मभूषण, विशारद, ये परीक्षाएँ निःशुल्क हुआ करेंगी, शेष परीक्षाओं का शुल्क इस प्रकार है।

(१) सिद्धान्तप्रभाकर परीक्षा सम्पूर्ण	=	२ रु
(२) ,, ,, प्रतिखंड	=	१ रु
(३) सिद्धान्तशास्त्री परीक्षा प्रतिखंड	=	३ रु
(४) सिद्धान्ताचार्य परीक्षा प्रतिखंड	=	४ रु.

—बोर्ड की परीक्षाओं में सम्मिलित होनेवाले—

—पूज्य साधु-साध्वीगण के लिये सुविधाएँ—

२३—साधु- साध्वीयाँ जिस किसी स्थान से परीक्षाओं में प्रविष्ट हो सकते हैं उनके लिए केन्द्र नियम का बंधन नहीं है।

(क) प्रवेश, प्रथमा, धर्मभूषण, विशारद चार परीक्षाएँ स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति के निरीक्षण में हो सकेंगी। प्रश्नपत्रादि यथा समय बोर्ड आफिस से भेज दिया जायगा। स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति का पूर्ण नाम एवं पता परीक्षातिथि से १ मास पूर्व में श्री रजिस्ट्रार श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, के कार्यालय में आ जाना चाहिए।

(ख) सिद्धान्तप्रभाकर, सिद्धान्तशास्त्री, सिद्धान्ताचार्य, परीक्षाएँ बोर्ड की तरफ से नियुक्त निरीक्षक के समक्ष ली जायेंगी, जिनके आने-जाने का खर्च तत्रत्य स्थानीय श्रीसंघ को देना होगा।

(ग) मुनिवृंद तथा साध्वीयाँ प्रथम की ५ परीक्षाओं में अपने योग्यतानुसार किसी भी परीक्षा में प्रविष्ट हो सकेंगे शेष परीक्षाएँ क्रमशः देनी होंगी।

केन्द्र सम्बन्धी नियम

२४– प्रवेश, प्रथमा, धर्मभूषण, विशारद, इन परीक्षाओं के लिए हरएक स्थानों में बोर्ड के नियमानुसार केन्द्रस्वीकृति दी जा सकती है जहां एक साथ ५ से अधिक परीक्षार्थी बैठ सकते हों।

(क) जहां से धर्मभूषण, विशारद, के परीक्षार्थी उत्तीर्ण हो चुके हैं, वहां की सम्पूर्ण स्थिति की जांच करके प्रभाकर परीक्षा के लिए केन्द्रस्वीकृति दी जा सकती है।

(ख) शास्त्री, सिद्धान्ताचार्य परीक्षाएँ निर्धारित केन्द्रों में होंगी। जैसे—

१— बरार, सी पी खानदेश, कर्नाटक, निजामस्टेट महाराष्ट्र आदि दक्षिण प्रान्तों के लिए—श्री तिलोक जैन पाठशाला-पाथर्डी (अहमदनगर)

२— मालवा, मेवाड़, मारवाड़, राजपूताना, पंजाब, काठियावाड़, गुजरात के लिए श्री जैन गुरुकुल-ब्यावर (राजपूताना)

३—बिहार, बंगाल, संयुक्त प्रान्त, के लिए श्री पार्श्वनाथ जैन विद्याश्रम, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय-बनारस (यू पी)

२५— संस्था के अध्यक्ष, सेक्रेटरी, अथवा किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को केन्द्र-व्यवस्थापक नियुक्त किया जायगा, केन्द्रसम्बन्धी सम्पूर्ण जिम्मेवारी उन्हीं के ऊपर रहेगी।

२६— केन्द्रस्वीकृति एवं केन्द्र-व्यवस्थापक की मंजूरी के लिये प्रार्थनापत्र अन्तिम जौलाई तक रजिस्ट्रार कार्यालय में आ जाना चाहिए।

२७— परीक्षा-तिथि से १५ दिवस पूर्व में प्रवेशपत्र, मौखिक परीक्षा के लिए रिजल्ट फार्म, सूचनापत्र, आदि परीक्षासम्बन्धी कागजात भेज दिये जायेंगे।

२८–परीक्षा-तिथि से दो रोज पूर्व प्रत्येक केन्द्र-व्यवस्थापक के पास मुहरबन्द प्रश्नपत्र पहुँच जायेंगे, उस मुहरबन्द लिफाफे को परीक्षा-समय पर ५ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के समक्ष खोलकर नियत समय पर परीक्षार्थियों को वितरण करें, एवं बोर्ड ऑफिस से भेजी गई सूचनाओं का पालन करते हुवे, पूर्ण व्यवस्था रखें।

२९–रजिस्ट्रारको अधिकार है कि परीक्षाके दिनोंमें किसी केन्द्र का निरीक्षण स्वयं करें या अन्य व्यक्ति द्वारा गुप्त अथवा प्रगटरूप से करावें। केन्द्र व्यवस्थापकों का कर्तव्य होगा कि मुहरबन्द प्रश्नपत्र, मुहरबन्द लिखित उत्तरपुस्तिकायें तथा अन्यान्य वस्तुयें बोर्ड द्वारा नियुक्त निरीक्षक को दिखला देवें, निरीक्षण समय में जिस केन्द्र की प्रामाणिकता में कुछ शंका होगी वह केन्द्र तोड़ दिया जायगा।

३०–उस बोर्ड की परीक्षाओं में जो छात्र उत्तीर्ण होंगे उनका प्रमाणपत्र, पदक पारितोषिक यथासमय केन्द्र व्यवस्थापकों के पास भेज दिया जायगा, उन को संस्था के वार्षिकोत्सव अथवा विशिष्ट अवसर पर वितरण करें, तथा उस का विवरण परीक्षा बोर्ड कार्यालय में भेजने का लक्ष्य रखें।

३१-बोर्ड की परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों की नामावली (परीक्षाफल) योग्य समाचारपत्रों में प्रकाशित कर दी जायगी एवं केन्द्र-व्यवस्थापक के पास भी भेज दी जायगी

३२-बोर्ड की सभी परीक्षायें प्राय फरवरी मास में हुआ करेंगी, जिसकी निश्चित सूचना यथा समय केन्द्रों में भेज दी जायगी, तथा वर्तमान पत्रों में भी प्रकाशित करा दिया जायगा।

३३-बोर्ड की परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों को जो प्रमाणपत्र दिया जायगा, यदि वह खो गया तो, वर्ष, स्थान, रोलनम्बर, परीक्षास्थान, लिखकर केन्द्र-व्यवस्थापक के मार्फत प्रार्थनापत्र रजिस्ट्रार कार्यालय में भेजने पर पुन प्रमाणपत्र की नकल मिल सकेगी, परन्तु उसके लिये १ रु शुल्क देना पड़ेगा।

३४-श्री ति र त्न जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी, की परीक्षाओं में अच्छे नम्बर से उत्तीर्ण होनेवाले छात्रों को श्री वर्द्धमान जैन धर्मशिक्षण प्रचारक सभा, पाथर्डी, (अहमदनगर), की तरफसे नियमानुसार स्कॉलरशिप (छात्रवृत्ति) प्रदान करने की योजना की गई है, जिसकी सूचना तत्तत् पाठशालाध्यक्षों को भेज दी जायगी एवं वर्तमानपत्रों में भी प्रकाशित करा दिया जायगा।

३५-परीक्षासम्बन्धी पत्रव्यवहार रजिस्ट्रार, श्री तिलोकरत्न स्था जैन धार्मिक बोर्ड, पाथर्डी (अहमदनगर), इस पते से करना चाहिए।

३६-उक्त नियमों में आवश्यकतानुसार संशोधन, एवं परिवर्धन, विद्वत्परिषद् की अनुमतिसे रजिस्ट्रार महोदय को करने का अधिकार है।

३७-इस नियमावली का अमल व्यवहार सन् १९५० की परीक्षा से जब तक नई सूचना न निकले तब तक हो सकेगा।

पारितोषिक व प्रमाणपत्र देने का नियम

३८-जिस परीक्षा में जितने पत्र या खण्ड है वे सभी पत्र या खण्ड पास कर लेने पर ही प्रमाणपत्र तथा पारितोषिक मिल सकेगा, पत्र या खण्डमें नहीं।

३९-यदि बोर्ड में काफी रकम हो तो उत्तीर्ण सभी छात्रों को पदक या पारितोषिक दिया जायगा। अन्यथा बोर्ड के निर्णयानुसार परिमित छात्रों को दिया जायगा।

४०-पारितोषिक प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रों को ही नीचे लिखे अनुसार दिया जायगा—

	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी
प्रवेश परीक्षा—	।।।	।।
प्रथमा परीक्षा—	१॥	१।
धर्मभूषण परीक्षा या	२	२
सिद्धान्त विशारद	,,	,,

सि प्रभाकर परीक्षा	५	४
सि शास्त्री परीक्षा	१५	११
सि. आचार्य परीक्षा	३५	२५

नोट—१—सिध्दान्ताचार्य परीक्षा में सर्वप्रथम आनेवाले छात्र को पारितोषिक" के अलावा बोर्ड की तरफसे "स्वर्णपदक" दिया जायगा और उस छात्र को 'श्री अमोलक जैन स्थानकवासी सहायक-समिति, पूना" की तरफसे ५१ रु का श्री "रभाकुँवर पारितोषिक" भी विशेष रूप से प्राप्त होनेपर दिया जायगा।

२—इतर सभी परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी उत्तीर्ण सर्वोच्च आनेवाले छात्र को निम्न रूप से विशिष्ट "रजतपदक" दिये जायगें।

शास्त्री परीक्षामें-आकोला (वरार) निवासी श्रीमान अमरचन्द गोविन्दजी कर्नाई द्वारा प्रदत्त अमरचन्दपदक"।

प्रभाकर परीक्षामें- श्रीमान दानवीर सेठ नानचन्दजी भगवानदासजी दूगड घोडनदी, द्वारा प्रदत्त पारखकुटुम्बपदक"।

धर्मभूषण परीक्षा में देडगांव (अहमदनगर) निवासी श्रीमान् सेठ नवलमलजी सन्तोकचन्दजी मुणोत द्वारा प्रदत्त "नवलमल मुणोतपदक"

सिद्धातविशारद परीक्षा में श्रीमान् सेठ रूपचन्दजी जवाहरलालजी रामावत, हैद्राबाद (दक्खन) द्वारा प्रदत्त "रामावतपदक"

प्रथम परीक्षा में श्रीमान् हेमराजजी हजारीमलजी मुणोत, इटारसी द्वारा प्रदत्त १ "रूपीबाई मुणोत पदक"

प्रवेश परीक्षा में श्रीमती राजाबाई भ्र मागीलालजी चोरडीया, वरोरा, द्वारा प्रदत्त "मदनलाल चोरडियापदक"

यदि हो सकेगा तो उपरोक्त नियम के अतिरिक्त प्रथम श्रेणी और द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण सभी छात्रों को पारितोषिक के स्थानपर रजतपदक ही वितरण किया जायगा अन्यथा लब्धांक के अनुसार परिमित छात्रों को दिया जायगा।

विद्यावारिधि पं राजधारी त्रिपाठी शास्त्री,

रजिस्ट्रार,
श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन
धार्मिक परीक्षा बोर्ड,
पाथर्डी [अहमदनगर]

॥ ॐ अर्हन् ॥

श्री तिलोक र स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी (अहमदनगर) का निर्धारित पाठ्यक्रम

प्रवेश परीक्षा

प्रथम पत्र—प्रवेश परीक्षा पाठ्य पुस्तक (पाथर्डी) पृष्ठ १ से २१ तक।

द्वितीय पत्र—प्रवेश परीक्षा पाठ्यपुस्तक पृष्ठ २२ से सम्पूर्ण।

प्रथमा परीक्षा

प्रथम पत्र—आवश्यक सूत्र १२ व्रत तक सार्थ, (पाथर्डी बोर्ड द्वारा सम्पादित) अथवा श्री अ भा श्वे स्था जैन कान्फरन्स मुम्बई से प्रकाशित, सामायिक सूत्र सार्थ ३२ दोषसहित, रत्नाकर पच्चीसी मूल, मातृभाषा (हिन्दी, गुजराती या मराठी) महावीर सन्देश, समकित के ६७ बोल।

द्वितीय पत्र—आवश्यक सूत्र (अवशिष्ट) श्रमणसूत्रसहित पाथर्डी बोर्ड द्वारा सम्पादित अथवा श्री अ भा श्वे स्था जैन कान्फरन्स द्वारा प्रकाशित, पचीस बोल का थोकडा सार्थ (पुण्य, पाप की १२४ प्रकृतियों को छोडकर,) शालोपयोगी जैन—प्रश्नोत्तर प्रथम भाग [पाथर्डी] बालकों के लिये १० श्रावकों का चरित्र। कन्याओं के लिये १६ सतियों का चरित्र।

धर्मभूषण परीक्षा

(प्रथम खण्ड)

प्रथम पत्र—नवतत्त्व सार्थ पूर्ण (पाथर्डी) कर्मप्रकृति, ऐतिहासिक नोंध, अथवा स्थानकवासी जैन-इतिहास [भण्डारीजी]

द्वितीय पत्र—जैनागमतत्त्वदीपिका, भक्तामर मूल पांच समिति तीन गुप्ति का थोकडा।

(द्वितीय खण्ड)

प्रथम पत्र—जैनदर्शन [सेठिया ग्रन्थमाला, बीकानेर,] "धर्म और धर्मनायक" गुणस्थान द्वार [सेठियाजी]

द्वितीय पत्र—कर्मग्रन्थ प्रथमभाग, लघुदंडक पूर्ण, साधारण निबंध हिन्दी में।

सिद्धान्तविशारद परीक्षा

(प्रथम खण्ड)

प्रथम पत्र—नवतत्त्व सार्थ कर्मप्रकृति, (पाथर्डी,) "स्था जैन इतिहास-परिचय" (पाथर्डी बोर्ड) (ऐतिहासिक नोंध और 'लोकाशाह मतसमर्थन' इन दो पुस्तकों के आधार से तैयार किया गया ग्रन्थ)

द्वितीय पत्र–स्था जैनागमतत्त्वदीपिका, संस्कृतमार्गोपदेशिका (भाण्डारकर कृत) प्रथम भाग, पाँच समिति तीन गुप्तिका थोकडा, भक्तामर स्तोत्र (भावार्थ)

(द्वितीय खंड)

प्रथम पत्र—प्राकृत मार्गोपदेशिका या प्राकृतपाठमाला, कर्मग्रन्थ भाग १ ला।

द्वितीय पत्र—दशवैकालिक सूत्र, निर्ग्रन्थ प्रवचन, उपासकदशाङ्ग सूत्र, साधारण निबन्ध हिन्दी में-निबन्धादर्श की सहायता से।

स्था जैन सिद्धान्तप्रभाकर परीक्षा

(प्रथम खण्ड)

प्रथम पत्र––जैनेन्द्र प्रक्रिया या लघुसिद्धान्त कौमुदी (सम्पूर्ण) अथवा संस्कृत मन्दिरान्त प्रवेशिका, लघुसिद्धान्त कौमुदी (अव्ययान्त)

द्वितीय पत्र—दशवैकालिक सूत्र (संस्कृतच्छायानुवाद) उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन १ से २० अनुवादस्वरूप।

(द्वितीय खण्ड)

प्रथमपत्र–प्रमाणनयतत्त्वालोक (सूत्रार्थ भावार्थ) कर्मग्रन्थ भाग २ रा।

द्वितीय पत्र–जिनागमकथासंग्रह, ज्ञातासूत्र का शब्दार्थ, प्राकृत का संस्कृतच्छायानुवाद और प्राकृत भाषानुवाद।

--स्था जैन सिद्धान्तशास्त्री परीक्षा–

(प्रथम खण्ड)

प्रथम पत्र– प्राकृत व्याकरण (हेमचन्द्राचार्य) अथवा पं बेचरदासजीकृत।

द्वितीय पत्र–जैन तर्कभाषा अथवा न्यायसिद्धान्तमुक्तावली प्रत्यक्षखण्ड, तत्त्वार्थ सूत्र (सभाष्य)

तृतीय पत्र–प्रश्न व्याकरण (सटीक), राजप्रश्नीय सूत्र (उत्तरार्द्ध) सटीक

(द्वितीय खण्ड)

प्रथम पत्र–षड्दर्शनसमुच्चय, अनुयोगद्वार (सटीक)

द्वितीय पत्र–आचाराग सूत्र (सटीक) प्रथमश्रुत स्कंध, औपपातिक सूत्र (सटीक)

तृतीय पत्र–सुरसुन्दरीचरियम् परिच्छेद १–२, समराइच्च कहा भव ३

(तृतीय खण्ड–)

प्रथम पत्र–स्याद्वादमंजरी

द्वितीय पत्र–स्थानाग सूत्र, नन्दीसूत्र (सटीक)

तृतीय पत्र–निबन्ध संस्कृत और प्राकृतमें। विशेष वाचनके लिये जैनतत्त्वप्रकाश (पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराजकृत)

–स्था जैन सिद्धान्ताचार्य परीक्षा–

(प्रथम खण्ड)

प्रथम पत्र–प्रज्ञापना सूत्र (सटीक)

द्वितीय पत्र–प्रमाणमीमांसा, सप्तभङ्गितरंगिणी

तृतीय पत्र–कुमारपालचरित्रम्।

(द्वितीय खण्ड)

प्रथम पत्र–रत्नाकरावतारिका

द्वितीय पत्र–सूत्र कृताङ्ग सूत्र (प्रथमश्रुत स्कंध) सटीक, भगवती सूत्र (सटीक) शतक १५

तृतीय पत्र–अध्यात्मसार, धम्मपद

(तृतीय खण्ड)

प्रथम पत्र–सम्मति प्रकरण (मूल), बृहद्द्रव्यसङ्ग्रह

द्वितीय पत्र–विशेषावश्यक सूत्र (सभाष्य)

तृतीय पत्र–भारतीय दर्शन (पं. बलदेव प्रसादजी उपाध्याय, एम ए. प्रोफेसर हिंदू विश्वविद्यालय, काशी) ईश्वर और सृष्टिकर्तृत्व

चतुर्थ पत्र–मौखिक परीक्षा शास्त्रार्थ पद्धति पर।

वि वा प राजधारी त्रिपाठी शास्त्री,

रजिस्ट्रार

श्री ति र स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड

पाथर्डी (अहमदनगर)



संस्था पर वज्राघात

इस प्रकार तत्कालीन ऋषिसंप्रदायाधीश पूज्य श्री आनन्दऋषिजी म. की प्रेरणा से बोर्ड का कार्य सुचारु रूपसे चल रहा था। इसी बीच पूज्य श्री के पास कान्फरन्स की ओर से सम्प्रदायों के एकीकरण की दृष्टि से पत्र पर पत्र आने लगे। कॉन्फरन्स के आग्रह के कारण आप श्री ने विक्रम संवत् २००४ में घोडनदी में ऋषि-सम्प्रदायी सतियों का सम्मेलन कर मनमाड होकर रतलाम की ओर विहार किया। अनेक ग्रामों का स्पर्श करते हुए जब आप मनमाड पधारे, तब आप श्री के पास अहमदनगर से श्रीमान् कुन्दनमलजी फिरोदिया की ओर से इस आशयका एक पत्र आया। अब आप को उत्तर की ओर विहार करना चाहिये और इस बार का चातुर्मास ब्यावर करेंगे तो बहुत उपकार होगा। इस पर महाराज श्री ने देश काल का विचार करते हुए फिलहाल सुखे समाधे रतलाम पहुँचने पर चातुर्मास विषयक निश्चय करने की भावना व्यक्त की। क्यों कि उस समय रतलाम में ऋषि-संप्रदाय की वृद्धसतीजी श्री रंभाजी म० विराजमान थी। उन्हें आपको दर्शन देना था।

मनमाड में ही आप श्री के पास सब के हृदय पर आघात पहुँचानेवाला एक दुःखद समाचार यह पहुँचा कि बोर्ड के अध्यक्ष दानवीर श्रीमान् नानचन्दजी दुगड ने अपना मानवीय आयुष्य पूर्ण किया है। उनका वियोग बोर्ड के लिए असह्य था। फिर भी अपने सतगनोचित स्वभावानुसार आप श्री अपने विहारानुक्रम से आगे बढते हुए धार नगर में पहुचे। उस समय बोर्ड को विकास की ओर पहुँचाने वाले रजिस्ट्रार पंडित श्री राजधारी त्रिपाठी शास्त्रीजी महाराज साहब के दर्शनार्थ आये, बोर्ड की गति-विधि पर आप श्री से बहुत कुछ विचार-विमर्श कर वे पाथर्डी पहुंचे ही थे कि त्रिपाठीजी के धार छोडने के आठ दिन बाद महाराज श्री के पास एक शोक समाचार पहुँचा कि चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को महावीर जयन्ती के दिन सभा में भाषण करते करते पं. श्री राजधारी त्रिपाठीजी की हृदय-गति बंद हो जाने से स्वर्गवास हो गया।

दानवीर सेठ श्रीमान् नानचन्दजी दुगड, तथा पं श्री राजधारीजी त्रिपाठी दोनों बोर्ड के आधारस्तंभ थे। श्री दुगडजी के स्मरणीय दान से बहुत दिनों से विचार मूर्त रूप में परिणत हुआ। उसके बाद उनकी प्रेरणा से और भी अनेक सद्-गृहस्थोंने बोर्ड को उदार हृदय से सहायता दी। आप वृद्ध तो थे ही, फिर भी अपने शुद्ध धर्म परायण जीवन के साथ पूर्ण व्यावहारिक होने से आपसे प्रतिसमय बोर्ड को बहुत सहायता मिलती थी। बोर्ड के आप प्राण ही थे। इसी प्रकार रजिस्ट्रार पं. श्री राजधारीजी त्रिपाठी ने इसके विकास में कितना अथकश्रम उठाया, उसके सम्बन्ध में पहले बहुत कुछ लिख चुका हूँ। श्री तिलोक जैन विद्यालय के इतिहास में उनके इस आकस्मिक अवसान के बारे में प्रकाश डाल चुका हूँ। वे कितने सदाचारी एवं कर्तव्यनिष्ठ थे कि भगवान के नाम का उच्चारण करते करते अपने प्राण छोडे। बहुत कम व्यक्तियों

की ऐसी धन्य मृत्यु होती है। इस प्रकार बोर्ड के आद्य सभापति दानवीर सेठ श्रीमान नानचंदजी बूगड़ तथा आद्य रजिस्ट्रार पं. श्री राजधारीजी त्रिपाठी के अवसान से कितनी अवर्णनीय क्षति हुई। जिसकी पूर्ति होना सब को अशक्य प्रतीत हो रहा था। इस दुःखद घटना को बारह साल हो जाने पर भी लोग आज भी इन दोनों का स्मरण करते हैं। बोर्ड के इतिहास के साथ इन का नाम सदैव जुटा रहेगा।

बोर्ड के नवीन अध्यक्ष तथा रजिस्ट्रार

स्व. श्री नानचंदजी बूगड़ अपनी जीवितावस्था में जब बोर्ड के अध्यक्ष रूप से काम करते थे, तब पनवेलनिवासी श्री रतनचंद बाठिया उपाध्यक्ष रूप से बोर्ड का कार्य संभालते थे। वे बोर्ड की प्रत्येक प्रवृत्ति से अच्छी तरह परिचित थे। अत एव श्रीमान् नानचन्द बूगड़ के बाद वे ही सर्वानुमति से अध्यक्ष रूप से नियुक्त किये गये। बाठियाजी ने भी भूतपूर्व अध्यक्ष की तरह बोर्ड के कार्य में बहुत सहायता पहुँचाई है। इनका बौद्धिक योग के साथ आर्थिक योग भी कम नहीं है।

फिर भी बोर्ड के रजिस्ट्रार की जगह तो अभीतक खाली ही थी। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई दे रहा था, जो इस स्थान की पूर्ति कर सकता था। पर स्व. पंडित जी अपने समय में एक ऐसे व्यक्ति को तैयार कर गये थे, जो इस बोर्ड का सूत्र-संचालन अच्छी तरह कर सकता था। वह थे पं. बदरीनारायणजी शुक्ल। इनकी ही महाराजश्री की सम्मतिसे रजिस्ट्रार रूप में नियुक्ति की। ये स्व. पं. त्रिपाठीजी की प्रेरणासे ही इधर आए थे। प्रथमतः युवाचार्य श्री आनन्दऋषिजी म. के शिष्य मुनि श्रीमोतीऋषिजी म. के अध्यापनार्थ पनवेल चातुर्मास में शुक्लजी आए। मुनिश्री को पढाते हुए इन्होंने जैनधर्म का अभ्यास कर प्रस्तुत बोर्ड की परीक्षाएँ देना प्रारंभ किया और क्रमशः आगे बढते बढते जैन सिद्धांताचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। बोर्ड के प्रथम आचार्य पंडित बदरीनारायणजी शुक्ल ही हैं। बोर्ड के लिए यह अत्यंत सौभाग्य की बात थी कि पंडितजी के स्वर्गवास के बाद उनके ही शिष्य और संस्थाके योग्य स्नातक श्रीशुक्लजी जैसे व्यक्ति रजिस्ट्रार रूप से प्राप्त हुए। इसके पहले वे अहमदनगर सिद्धांतशाला में साधु-साध्वियोंको जैनधर्म संबंधी शास्त्रीय संस्कृत प्राकृतका अभ्यास कराते थे।

इस बोर्ड के मंत्री-पद पर तो बहुत पहलेसे ही पं. श्रीचंद्रभूषणजी त्रिपाठी काम कर रहे थे। अब इन दोनों युवकों के सहयोगसे बोर्ड का कार्य और भी प्रबल वेग से चलने लगा। इस में भी पं. शुक्लजी का कार्य विशेष सराहनीय है।

परीक्षा बोर्ड के भवन की समस्या और निजी भवन

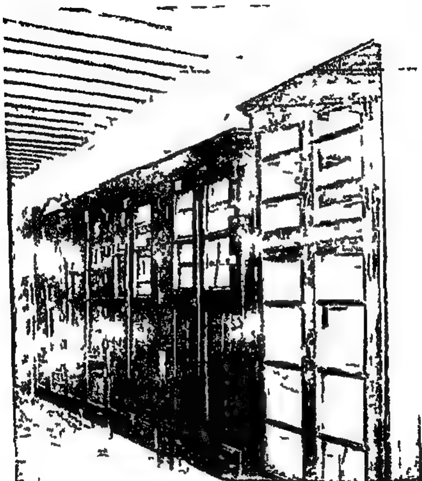
सन् १९३६ में ही इस बोर्ड की स्थापना हो गई थी, पर श्री तिलोक जैन विद्यालय की तरह इसका भी कोई निजी भवन नहीं था। बोर्ड की परीक्षाओं से आन्तर्गत

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड भवन, पाथर्डी



जहाँसे अखिलभारतव्यापी स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षादि विविध प्रवृत्तियोंका सञ्चालन हो रहा है।

श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी



विविध धार्मिक सांस्कृतिक आध्यात्मिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय विषयों के विभिन्न भाषाओं में हस्तलिखित एवं मुद्रित ११००० ग्रंथों का उपयोगी संग्रहालय।

होकर प्रतिवर्ष परीक्षार्थिओं की सख्या बढने के साथ अन्य भी अनेक तदुपयोगी प्रवृत्तियाँ बढ चुकी थी। फिर भी यह सारा कार्य किरायेवाले एक छोटे-से मकान में चलाया जाता था। कई बार तो आप रजिस्ट्रार पं श्री रामधारी त्रिपाठीजी ने पूज्य श्री आनन्दऋषिजी म० का इस ओर ध्यान आकर्षित किया। वे कहते थे,, इस बोर्ड की प्रवृत्तियाँ दिन-दिन बढ रही है, सारे देश के विद्यार्थी इसकी परीक्षाओं में सम्मिलित होते है। ऐसे स्थानकवासी जैन समाज के द्वारा मान्य बोर्ड का निजी भवन होना आवश्यक है। भवन के अभाव में हम महत्त्वपूर्ण फाइलें आदि भी सुव्यवस्थित रूप से नही रख पाते,, पर प्रत्येक बार महाराजश्री बोर्ड की आर्थिक मर्यादा के कारण इस प्रश्न को टालते रहे। स्व० त्रिपाठी की यह इच्छा अपने जीवन-काल में पूर्ण नही हो पाई।

श्री त्रिपाठीजी के बाद जब श्री शुक्लजी बोर्ड के रजिस्ट्रार पद पर नियुक्त हुए, तब इनके मस्तिष्क में भी भवन-सबन्धी प्रश्न चक्कर काट रहा था। बोर्ड के अध्यक्ष उपाध्यक्ष आदि भी इसके लिए चिंतित थे। पहले सब की यह योजना थी कि श्री तिलोक जैन विद्यालय के नव निर्मित भवन के पास ही प्रशात वातावरण में गाव से दूर बोर्ड का कार्यालय हो तो अच्छा। इस के लिए बहुत कुछ प्रयत्न भी किया गया, लेकिन कारणविशेष से बोर्ड के अध्यक्ष आदि इस कार्य में सफल नही हो सके। सन १९५२ में जब श्रमण सघ के प्रधान मत्री श्री आनन्द ऋषिजी म का नाथद्वारा में चातुर्मास था, तब दि १५-१२-५२ के रोज बोर्ड की जनरल कमेटी हुई। उसमें भवन को दृष्टि में रख एक प्रस्ताव यह पास किया गया।

"बोर्ड के कार्यालय की जगह किराए की है। मकान मालिक को स्वयं उनकी आवश्यकता है। अत कार्यालय के लिए दूसरी व्यवस्था यथाशक्य शीघ्र ही कर लेना नितात आवश्यक है। ऐसा निवेदन व्यवस्थापक श्री हीरालालजी गाधी ने सभा के सम्मुख पेश किया है। कार्यालयीय व्यवस्था के महत्त्व को लक्ष्य में रखते हुए सभा के सदस्य यह आवश्यक मानते है कि कार्यालय के लिए निजी भवन व्यवस्था करा लेना ही उपयुक्त होगा। इस कार्य को यथाशक्य शीघ्र ही सम्पादित करने के लिए श्री. रतनचन्दजी बाठिया, श्री माणकचन्दजी मुथा और श्री हीरालालजी गाधी इन तीन सदस्यों की एक सब कमेटी नियुक्त की जाती है। कमेटी को अधिकार दिया जाता है कि वह स्थान आदि का निर्णय कर के कार्यालय के योग्य भवन की व्यवस्था करावे"। यह प्रस्ताव करते समय यह निश्चय किया गया था कि छ महीने में भवन की समस्या हल हो जानी चाहिये। बहुत दौड-धूप करने पर भी इस अवधि में यह समस्या किसी तरह हल नही हुई। अन्त में श्री. माणकचन्दजी मुथा ने बोर्ड के रजिस्ट्रार प शुक्लजी को भवन के उपयुक्त मकान की तलाश करने के लिए कहा। श्री शुक्लजी को भी यह प्रश्न बेचैन कर रहा था। बहुत तलाश एवं चिंतन करने के बाद उनकी दृष्टि श्री मोहनलालजी डागा के विशाल मकान पर पडी। ये सज्जन पाथर्डी-

निवासी ही थे। पाथर्डी में इनके अपन इस विशाल भवन के अतिरिक्त और भी बहुत सी स्थावर सम्पत्ति है। बाहर भी इनका कारोबार फैला हुआ था। इसलिये उन्होंने कुछ समय से अहमदनगर रहना आरम्भ कर दिया था। इस लक्षाधिपति माहेश्वरी बन्धु से श्री गुरुजी ने मकान के सम्बन्ध में बातचीत की। कई दिनों तक वार्तालाप करनेपर भी कोई निर्णय नहीं हो पाता था। क्योंकि श्री डागाजी पच्चीस हजार से कम में किसी भी शर्तपर यह मकान देने के लिए तैयार नहीं थे। बोर्ड के पास ध्रौव्य फंड भी उस समय कुल तीस हजार था। अपन सारे ध्रौव्य फंड को इस प्रकार केवल मकान में लगा देना उचित भी नहीं था, परन्तु गुरुजी भी अपने संकल्प से पीछे हटनेवाले नहीं थे। उन्होंने बड़े परिश्रम से साढ़े इक्कीस हजार रुपयों में धार्मिक संस्था के निमित्त यह सौदा तय किया और मकान के सम्बन्ध में महाराज श्री की सेवा में समाचार लिखे कि " बड़े परिश्रम से पाथर्डी निवासी श्री मोहनलालजी डागा का मकान बोर्ड को मिल रहा है, वे केवल साढ़े इक्कीस हजार रुपयों में इतना विशाल भवन संस्था को देने के लिए तैयार हैं। यदि यह कार्य जल्दी कर लिया जाय तो हम भवन की दृष्टि से सदैव के लिए चिंतामुक्त हो सकेंगे। अन्त में गुरुजी के प्रयत्न से सबकी यह इच्छा सफल हुई। मैंने पहले कभी इस स्थान को देखा नहीं था। अभी बोर्ड का यह विवरण उसके कार्यालय में बैठकर ही लिख रहा हूँ। वस्तुतः श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड का यह कार्यालय बहुत विशाल है। दूर से ही यह विशालकाय बहुत विशाल भवन सबका ध्यान आकर्षित कर लेता है। इसका घेरा १ ॥ वर्ग गज है। नीचे छोटे-बड़े ११ कमरे हैं। इस भवन के ऊपर के हिस्से में एक कन्याविद्यालय भी चलता है। इस धार्मिक परीक्षा बोर्ड भवन के समीप ही जो भवन है। उसके पहिले मंजिल में "श्री अमोल जैन सिद्धांतशाला तथा दूसरे मंजिल में "श्री रत्न जैन पुस्तकालय" भी है। इस पुस्तकालय में दो हजार से अधिक हस्तलिखित ग्रंथोंका संग्रह है और संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी भाषा की अच्छी से अच्छी लगभग आठ हजार से ऊपर मुद्रित पुस्तकों का संकलन है। पाथर्डी के आसपास के स्थानों में ऐसा सर्वांगपूर्ण पुस्तकालय अपने समाज में अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। इस प्रकार इस बोर्ड से केवल परीक्षाओंका सञ्चालन ही नहीं होता है। इसी अंतर्गत व्यवस्थित रूपसे परीक्षार्थियों को सैद्धांतिक ग्रंथों का अध्यापन कराया जाता है और तदुपयोगी एक विशाल पुस्तकालय भी है।

सब प्रकार की प्रवृत्तियों का संचालन करने के लिए उपयुक्त मकान की समस्या तो इस तरह हल हो गई। उसके क्रय के लिए एक साथ इक्कीस हजार रुपये दे देने से संस्था के पास ध्रौव्य फंड कम रह गया था। परंतु संस्था की प्रारंभ से सेवा करनेवाले दान वीरों ने इस विकट प्रश्न को जल्दी हलकर बोर्ड की प्रवृत्तियों में बहुत गति

प्रदान की। अनेक लोगों ने कमरों की दृष्टि से दस हजार, तीन हजार, इक्कीस सौ, पंद्रह सौ, ग्यारह सौ आदि के हिसाब से तेईस हजार रुपये देकर बोर्ड के ध्रौव्य-फंड की पूर्ति कर दी। जिन सज्जनों ने एक-एक कमरे की दृष्टि से जितने रुपये दिये, उन सब के तैलचित्र के साथ एक तख्ती लगी हुई है, जिसमें दाता द्वारा प्रदत्त रुपयों का उल्लेख है। मकान के सहायक दाता की तथा उनके दान की सूची इस प्रकार है।

१००००	श्री	एक गुप्तदानी सद्गृहस्थ	
२१००	"	चौथमलजी पुखराजजी ओसवाल	घडनेरा
११०१	"	तिलोकचन्दजी सूरचन्दजी गुन्देचा	चाँदा (अहमदनगर)
२१००	"	वस्तीमलजी नवरतनमलजी मुथा	रायचुर
५००	"	अक्कूबाई हीराचन्दजी	जोधपुर
१५००	"	घेवरचन्दजी कपूरचन्दजी चोरडिया	हिंगणघाट
१५०१	"	मगनलालजी सुन्दरजी तथा रमणिकलालजी	अमरावती
५०००	"	एक सद्गृहस्थ ह. केशवलालभाई	जालना
३०००	"	नवलमलजी सूरजमलजी बोका	याडगिरी
६७६	"	चौथमलजी सुराणा (आश्वासन १५०१ रु)	नाथद्वारा
५०१	"	जमराजजी कालाभाई लाठिया	मूर्तिजापुर
११०१	"	भटेवरा ब्रदर्स	राहू

ऊपर जिन श्री हीरालालजी गाँधी का बोर्ड-भवन के सबंध मे उल्लेख कर चुका हूँ, वे सज्जन बोर्ड के प्रारंभिक काल से व्यवस्थापक है। वे स्वभाव के उदार, धर्मशील, सदाचारी तथा कर्तव्यपरायण व्यक्ति हैं। उनकी गृहस्थिति सामान्य होने पर भी अध्यक्ष तथा मंत्री की तरह पाठशालीय जनरल कमेटी के समय आगतुक मेहमानों की सब प्रकार की व्यवस्था करने में सदैव तत्पर रहे है। श्री तिलोक जैन विद्यालय के भी वे सम्मान्य सदस्य है। बोर्ड की स्थापना होने पर अर्थात् सन १९३६ ई० मे ही आप निःस्वार्थ भाव से (अवैतनिक रूप से) परीक्षा बोर्ड, श्री अमोल जैन सिद्धान्तशाला, श्री रत्न जैन पुस्तकालय, श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा, आदि पारमार्थिक संस्थाओं का हिसाब लिखते रहे है। सहज रूप से इस प्रकार निरपेक्ष सेवा करनेवाले बहुत कम व्यक्ति होते हैं। अपनी साधारण परिस्थिति होने पर भी इन्होंने-तन-मन और धन से भी संस्थाओं की पर्याप्त सेवा की है।

परीक्षा-बोर्ड के परीक्षक

शुद्ध विद्यानिष्ठ व्यक्ति स्वय कष्ट सहन करके भी दूसरों की सेवा करने में तत्पर रहते है। वे जहाँ कहीं ऐसी बात देखते है कि इस स्थान पर परोपकार वृत्ति से लोगों को सस्कारी एव धार्मिक बनाने के लिए कार्य हो रहा है, वहाँ वे बिना कुछ लिए

सेवा वृत्ति से काम करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। इस बोर्ड को सौभाग्य से प्रारंभ से ही ऐसे सेवाभावी परीक्षकों का सहयोग मिला, जो किसी प्रकार का पारिश्रमिक लिए बिना एक वर्ष नहीं, दो वर्ष नहीं, पर सन् १९५८ तक नियमित रूप से समय पर बराबर प्रश्नपत्र निकालकर भेजते रहे हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने उसी निरपेक्ष भाव से परीक्षार्थियों की सैंकड़ों, सहस्रों कापियाँ जाँची भी हैं। विद्वानों की यह त्याग-वृत्ति मैंने केवल जैन समाज में ही नहीं देखी है। हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द. भा. हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, राष्ट्र भाषा प्रचार समिति वर्धा ने भी अपने प्रारंभिक काल में ऐसे विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया है और धनिकों की अपेक्षा भी उनकी त्याग वृत्ति से ये संस्थाएँ आज इतनी विशाल है। इन तीनों संस्थाओं के साथ मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। पाथर्डी स्थित यह परीक्षा बोर्ड भी इन भव्य परीक्षकों के सहयोग से आज इतने व्यवस्थित रूप से चल रहा है। विगतवर्षों से अखण्ड रूप से सेवा करनेवाले उन परीक्षकों की सूची इस प्रकार है।

बोर्ड के परीक्षक वर्ग

१ श्री डॉ. मंगलदेवजी शास्त्री एम्. ए. डी. फिल. (ऑक्सन)
भू. पू. रजिस्ट्रार प्रिंसिपल गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, वाराणसी
२ ,, डॉ. इन्द्रचन्द्रजी शास्त्री एम्. ए. पी. एच्. डी.,
अध्यक्ष संस्कृत विभाग दिल्ली विद्यालय, देहली
३ ,, डॉ. बनारसीदासजी जैन एम्. ए. पी. एच्. डी.
प्रोफेसर ओरियंटल कॉलेज लाहौर
४ ,, डॉ. हीरालालजी जैन एम्. ए. पी. एच. डी. संचालक-श्री वैशाली विद्यापीठ
५ ,, डॉ. जगदीशचन्द्रजी शास्त्री एम्. ए. पी. एच्. डी.
प्रोफेसर-श्री महावीरविद्यालय, मुम्बई
६ ,, पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल 'न्यायतीर्थ' ब्यावर
७ ,, प्रो. मोहनलालजी महता एम्. ए. पी. एच्. डी. 'शास्त्राचार्य' बीकानेर
८ ,, पं. दलसुखभाई मालवणिया 'न्यायतीर्थ' अहमदाबाद
९ ,, पं. पूर्णचन्द्रजी दक 'न्यायतीर्थ' कानोड़
१० ,, पं. हरिनारायणजी शर्मा 'न्याय व्याकरणाचार्य'
प्र. अ. श्री सैन्यासी संस्कृत महाविद्यालय अहमदाबाद
११ ,, पं. शान्तिलाल व. शेठ 'न्यायतीर्थ' देहली
१२ ,, पं. रोशनलालजी चपलोत 'न्यायतीर्थ बी. ए. एल्. एल्. बी. बीकानेर
१३ ,, पं. घेवरचन्दजी बांठिया 'न्यायतीर्थ' खींचन
१४ ,, पं. कन्हैयालालजी नागौरी 'एम. ए. न्यायतीर्थ' ,,
१५ ,, पं. बसन्तीलालजी नलवाया 'न्यायतीर्थ साहित्यरत्न' रतलाम

१६	,, पं चांदमलजी जैन 'न्यायतीर्थ'	रामपुरा
१७	,, पं देवेन्द्रकुमारजी जैन सिद्धान्तशास्त्री 'साहित्यरत्न'	पाथर्डी
१८	,, पं रतनलालजी संघवी 'न्यायतीर्थ' 'साहित्यरत्न'	छोटीसादड़ी
१९	,, पं, बदरीलालजी वकील- 'काव्यतीर्थ'	खाचरोद
२०	,, पं सूर्यमलजी चोरडिया 'विशारदत्रय'	,,
२१	,, पं धीरजलालजी तुरखिया	गंगापुर
२२	,, पं लालचन्दजी मुणोत 'न्यायतीर्थ'	ब्यावर
२३	,, पं यशवंतराजजी खिंवसरा-सि शास्त्री	कुचेरा
२४	,, पं रत्नकुमारजी रत्नेश 'साहित्यरत्न'	मुम्बई
२५	,, पं महेशचन्दजी जैन 'न्यायतीर्थ' 'साहित्यरत्न'	कानोड
२६	,, पं उदयचन्दजी जैन 'धर्मशास्त्री'	कानोड
२७	,, पं रोशनलालजी जैन सि शास्त्री	बडिया
२८	,, पं गुलजारीलालजी चौधरी 'न्यायतीर्थ'	उदयपुर
२९	,, पं चांदमलजी कर्नावट एम् ए 'साहित्यरत्न'	बरफाना
३०	,, पं कन्हैयालालजी दक 'न्यायतीर्थ'	उदयपुर
३१	,, पं बसन्तकुमारजी जैन 'न्यायतीर्थ' धर्मशास्त्री	राजकोट
३२	,, पं पारसमलजी प्रसून एम्. ए 'साहित्यरत्न'	भोपालगढ
३३	,, पं मुनीन्द्रकुमारजी जैन	राजनांदगांव
३४	,, पं पार्श्वकुमारजी जैन 'साहित्यरत्न'	रायपुर
३५	,, पं अमोलकचन्दजी सुरपुरिया एम् ए एल एल बी	पूना
३६	,, सौ मदनकुँवरबाई पारख	चांदा C P
३७	,, देवकी बहनजी प्रिंसिपल श्री जैन गर्ल्स हाईस्कूल	लुधियाना
३८	,, सुमतिकुमारी ओसवाल	भुसावल

पर समाज के उदार व्यक्तियों के सहयोग से बोर्ड की जब कुछ सुदृढ़ स्थिति हो गई, तब परीक्षा बोर्ड के वर्तमान रजिस्ट्रार श्री पं शुक्लजी ने जनरल कमेटी के सामने प्रस्ताव रखकर परीक्षकों को पारिश्रमिक रूप से कुछ दिलाने का निश्चय किया। यह पारिश्रमिक अन्य सेवाभावी संस्थाओं को दृष्टि में रखकर उनके अनुकूल दिया जाता है।

श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड को अखिल भारतीय श्वे स्था जैन कॉन्फ्रेन्स द्वारा मान्यता।

सन् १६७६ के दिसम्बर मास की बात है। जब अहमदनिवासी श्रीमान् ताराचन्दजी गेलड़ा के दीर्घ प्रयत्न से साराभगर-स्थित जैन बोर्डींग होम में श्रीमान् कुन्दनमलजी फिरोदिया की अध्यक्षता में कॉन्फरन्स का वृहद् सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में

दूर दूर से अनेक व्यक्ति आये थे। इसमें एक प्रस्ताव था कि कॉन्फरन्स की ओर से भारतव्यापी परीक्षाएँ चलाई जायें। इससे पहले कॉन्फरन्स ने राष्ट्रीय वृत्तिवाले, सेवा परायण श्री संतबालजी के संचालकत्व में जैन पाठावली के सात भाग अनेक भाषा में तैयार कराये थे। यह सङ्कलन इस प्रकार तैयार कराया गया कि जिससे विद्यार्थी क्रमशः आगे बढते-बढते मैट्रिक तक इन सातों भागों को पूरा कर लें। कुछ समय बाद ही रतलाम के परीक्षा बोर्ड ने कॉन्फरन्स में अपना विलीनीकरण कर दिया। पर पाथर्डी बोर्ड का कार्य सुव्यवस्थित रूपसे चलता रहा। बाद में सादडी साधु-सम्मेलन, गोजल रोड, कुचेरा, जोधपुर, दिल्ली आदि अनेक स्थानों पर परीक्षा बोर्ड के विलीनीकरण के सम्बन्ध में चर्चा चलती थी। लेकिन इसकी गति विधि, आर्थिक स्थिति तथा सुव्यवस्था से प्रभावित होकर श्री इन्द्रचन्द्रजी शास्त्री, पं. उदय जैन, श्री चम्पालालजी कर्णावट वकील आदि विद्वान् पाथर्डी बोर्ड का जोरदार समर्थन करते रहे। इन सब का यह सुझाव था कि कॉन्फरन्स ने परीक्षा की दृष्टि से अभी केवल सात भाग ही तैयार कराये हैं, उनके पास ऐसा कोई पाठ्यक्रम भी नहीं है, अतः यह बोर्ड जिस ढंग से चल रहा है उसी ढंग से चलता रहे तो समाज में धार्मिक ग्रन्थों का अधिक पठन पाठन हो सकता है। बोर्ड के रजिस्ट्रार व सेठजी भी पाथर्डी बोर्ड का स्वतन्त्र रूप से अस्तित्व रखने के लिये पूर्णरूपेण प्रयत्नशील थे। अन्त में उनके अथक परिश्रम से कॉन्फरन्स ने धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी को अपनी ओर से मान्यता प्रदान की, कि श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी को अ. भा. श्वे. स्था. कॉन्फरन्स की ओर से मान्यता प्रदान की जाती है, यह अपनी परीक्षाएँ चला सकता है। इतना ही नहीं कॉन्फरन्स ने श्री संतबालजी द्वारा संपादित पुस्तकों को प्रकाशित कर उन्हें परीक्षाओं में रखने का अधिकार बोर्ड को दे दिया। मान्यता के विषय में इन दोनों संस्थाओं में परस्पर जो करारनामा हुआ वह इस प्रकार है —

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड और श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरन्स दिल्ली दोनों ने एकत्र विचारणाकर निम्न प्रकार ठहराया है कि-

१) श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरन्स दिल्ली श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी को मान्य रखता है।

२) श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी अबसे अपने पत्र व्यवहार में पुस्तकों में और अन्य स्थानोंपर अपना नाम इस प्रकार रखेगा।

'श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरन्स द्वारा मान्य' श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी। इस प्रकार श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी ने स्वीकार किया है और कॉन्फरन्स ने भी इस प्रकार स्वीकृति दी है।

२५-६-५४ डी. के. दुग्लिया, ऑनरेरी सेक्रेटरी
अखिल भारतवर्षीय श्वे. स्था. जैन कॉन्फरन्स देहली

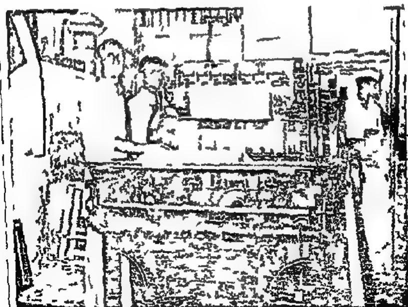
परीक्षा बोर्ड की प्रेस बिल्डिंग (श्री सुधर्मा मुद्रणालय)

परीक्षा बोर्ड की विविध प्रवृत्तियों के पर्यवेक्षक



श्रीमान् तिलोकचन्दजी गुन्देचा
चांदा (अहमदनगर)

श्री सुधर्मा मुद्रणालय का कम्पोजिंग-विभाग



श्री सुधर्मा मुद्रणालय के प्रबन्धक श्री के ए काटे प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रंथ की छपाई करते हुये

सुधर्मा पत्रिका एवं सुधर्मा मुद्रणालय

बोर्ड की सतत बढती हुई प्रगति को देखकर बहुत समय से यह अनुभव किया जा रहा था कि यहा से किसी ऐसी मुखपत्रिका का प्रकाशित होना अनिवार्य है। जिसमें प्रतिमास परीक्षा सम्बन्धी विवरण के साथ विविध विषयों से गुंफित लेख प्रकाशित होते रहें। बोर्ड के वर्तमान रजिस्ट्रार श्री शुक्लजी ने कई बार इस ओर बोर्ड के सदुपदेशक प रत्न मुनि श्री आनन्दऋषिजी म का ध्यान आकर्षित किया। महाराजश्री की भी बहुत दिनों से यही इच्छा थी, पर अभीतक का विवरण लिखने के फलस्वरूप मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि जबतक भूमिका दृढ न हो, तब तक सामनेवाले व्यक्ति के लाख कहने पर भी वे कोई कार्य शुरू नहीं करते। वे प्रत्येक कार्य को स्थायित्व करना चाहते है। इसलिए पत्रिका प्रारभ करने से पूर्व इसके सस्थापक, आधार स्तंभ सरक्षक आजीवन सदस्य, सदस्य आदि बनाये। बोर्ड के प्रारम्भिक काल से उदार, हृदय से सहायता पहुँचानेवाले जालना निवासी श्रीमान् केशवभाई जवेरचद शाह सर्व-प्रथम ५००१ रु देकर इस पत्रिका के सस्थापक बने, इसी प्रकार १००१ देकर आधार-स्तभ बननेवाले चार सदस्य है १ श्री चद्रभानजी रूपचन्दजी डाकलिया, श्रीरामपुर २ श्री केशरचन्दजी कचरदासजी चोरा, आश्वी ३ श्री सूरजमलजी कस्तूरचदजी गाधी अहमदनगर ४ श्री माणकचदजी किसनदासजी मुथा, अहमदनगर। ५०१ रु, देकर सरक्षक बननेवाले दस सदस्य २५१ रु देकर सहायक सदस्य बननेवाले ४१ सदस्य और १०१ रु देकर आजीवन सदस्य बननेवाले १२६ सदस्य हैं। महाराजसाहब के मार्गदर्शन से समय समय पर और भी इसके सदस्य बनते रहते हैं। इस प्रकार समाज के अनेक दाताओं का सहयोग प्राप्त होने से इस पत्रिका की नींव सुदृढ हो रही है।

बोर्ड के पास पत्रिकोपयोगी पर्याप्त द्रव्य एकत्रित होने के पश्चात् सुधर्मा नामक पत्रिका गतवर्ष के अगस्त मास से प्रकाशित की गई। भगवान् महावीर के प्रथम पट्टधर श्री सुधर्मा स्वामी ही थे। सब जैन सम्प्रदायों में उन्हीं की पट्टपरपरा चल रही है। इस पत्रिका का भी सुधर्मा स्वामी की तरह व्यापक दृष्टिकोण है। इसमें समाज को परीक्षा बोर्ड की गति-विधि से परिचित कराने के साथ धार्मिक, आध्यात्मिक एव सामाजिक लेख प्रकाशित किये जाते हैं। पत्रिका में एक स्तभ ऐसा भी है, जिसमें परीक्षार्थी छात्र या अध्यापकों द्वारा लिखित परीक्षोपयोगी लेख दिये जाते हैं। पत्रिका में जीवन को विकास की ओर ले जानेवाली सात्विक सामग्री प्रकाशित की जाती है।

१९५५	३ ८७	२६७१	२२५६
१९५६	३०१७	३१२४	२५५२
१९५७	३७८१	३३८१	२५ ०
१९५८	५१७८	३७ ६	२३८३
१९५९	५४४४	४३६४	२५१

इस माडे को विकास की उच्च स्थिति पर पहुँचाने के लिए आद्य रजिस्ट्रार पं त्रिपाठीजी की तरह संस्था के वर्तमान रजिस्ट्रार पं शुक्लजी का बहुत बड़ा हाथ है। पं शुक्लजी के नेतृत्व में पिछले बारह साल में ही संस्था ने सर्वाधिक प्रगति की है। उसका संकेत ऊपर कर चुका हूँ।

पंडित रत्न उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज के सौजन्यपूर्ण व्यवहार से ही अनेक पारिवारिक संकटों के बावजूद भी मैं इस कार्यको करने में समर्थ हो सका हूँ। धर्मगुरु होनेपर भी इस बीच उनकी सदैव गुरुतर पितृवत् वात्सल्यपूर्ण दृष्टि रही है तथा यह विवरण भी जानकारी प्राप्त करके ही पूर्ण कर सका हूँ। अतएव आपके द्वारा प्राप्त की हुई आपकी यह वस्तु आपश्री के श्री चरणों में ही समर्पित करता हूँ।

महेंद्रकुमार जैन



प्रशस्ति



सम्पूर्ण ग्रन्थ पूज्य उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म. की कल्पना और प्रेरणा के फलस्वरूप उनके पट्टशिष्य प. मुनि श्री मोतीऋषिजी म और मुलेखक विद्वद्वर्य श्री महेन्द्रकुमारजी के अथक परिश्रम एव समाज के अग्रगण्य विद्वान् मुनिराजो तथा श्रद्धाशील लेखको के प्रखर पाडित्य का प्रतीक है। ग्रन्थ का आरम्भ पूज्यपाद महाराजश्री के वश परिचय से किया गया है और समाप्ति श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के परिचय से की गई है। वैसे इस ग्रन्थ को हम तीन भागो में विभक्त कर सकते है। पहले भाग में पूज्यपाद महाराजश्री का परपरागत परिचय, स्वर्गीय आत्मा के लिए श्रमण सघ के पूज्य आचार्यश्री, पूज्य उपाचार्यश्री प्रमुख अनेक विद्वान् मुनिवरो एव विदुषी सतीवृन्द तथा सद्गृहस्थो की ओर से अर्पित की हुई श्रद्धाजलियो का प्रकरण और अन्त में पूज्यपाद महाराजश्री की अलौकिक कृतियो का विवेचन है।

दूसरे भाग में समाज के विशिष्ट विद्वानो के विविधवस्तुविषयक निबन्ध है और तीसरा भाग दिवगत पूज्यपाद महाराजश्री के ज्वलन्त स्मारक रूप में पाथर्डी में स्थापित श्री तिलोक जैन विद्यालय और श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड इन दोनो सस्थाओ का परिचयरूप है।

वस्तुत किसी भी महामहिम महापुरुष की महनीय कीर्ति का यथार्थ कीर्तन शक्य कोटिसे परे ही होता है, तथापि कुशल लेखकने प्रकाश्य विषयोंपर यथ प्रकाश डालने में अपनी प्रतिभा व प्रयासका योग्य उपयोगकर अध्यात्मरसिक पाठकों के समक्ष मननीय सामग्री प्रस्तुत की है।

पाठक गण इस ग्रन्थरत्न के पठन–मननसे रत्नत्रय की प्रभावना को वृद्धिगत करें, यही शुभ-कामना है।

बदरीनारायण शुक्ल

परीक्षा मन्त्री

श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी

सम्पूर्ण